मोहन राकेश रचनावली

संपादक जयदेव तनेजा

Hindi Premi

149677

बहुमुखी प्रतिभा के धनी नाटककार-कथाकार के रूप में चर्चित-मूल्यांकित मोहन राकेश ने समय-समय पर अन्य विधाओं में भी काफी कुछ लिखा। रचनावली के इस खंड में उस 'काफी कुछ' में से जो कुछ, जितना कुछ और जैसा कुछ उपलब्ध किया जा सकता था उस सब को यहाँ संगृहीत किया गया है। विविध विधाओं की कुछ पूर्व-प्रकाशित रचनाओं के साथ-साथ अब तक अप्रकाशित या असंकलित रही अनेक पूरी अथवा अधूरी रचनाओं को यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

इसमें सबसे पहले कुछ नई सामग्री के साथ राकेश की डायरी के उस उत्तरार्द्ध को भी रखा गया है, जिसका पूर्वार्द्ध खंड-एक में है। इसके बाद मुम्बई के डायरीनुमा 'स्पॉट नोट्स' और फिर प्रकाश एवं ध्वनि का अनूठा प्रयोग 'विजन्स- 1919' क्रमशः दिए गए हैं।

इनके अतिरिक्त, फ़िल्म माध्यम से जुड़ी कुछ नई सामग्री, काव्य, किशोर एवं बाल साहित्य तथा विविध विधाओं की आधी-अधूरी तेरह रचनाएँ भी इस खंड में दी गई हैं जिनमें 'कई एक अकेले' जैसा अचर्चित और अपूर्ण उपन्यास भी शामिल है।

प्रस्तुत खंड की बहुविध सामग्री मोहन राकेश के बहुआयामी रचनाकार व्यक्तित्व का परिचय देती है।

Hindi Premi

R
081
तनेजा-मो

149677

Hindi Premi

Hindi Premi

Hindi Premi

मोहन राकेश रचनावली-१

[विविध विधाएँ]

H Premi

Hindi Premi

मोहन राकेश रचनावली

खंड : नौ

सम्पादक

जयदेव तनेजा

149677

राधाकृष्ण

नयी दिल्ली पटना इलाहाबाद

Hindi Premi

R
081
तनेजा - मो

ISBN : 978-81-8361-427-6

मोहन राकेश रचनावली-9

© अनीता राकेश

पहला संस्करण : 2011

मूल्य : ₹ 10400
(तेरह खंड)

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002

शाखाएँ : अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800 006
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001

वेबसाइट : www.radhakrishnaprakashan.com
ई-मेल : info@radhakrishnaprakashan.com

आवरण : राधाकृष्ण स्टूडियो

मुद्रक
बी.के. ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

MOHAN RAKESH RACHANAWALI-9
Edited by Jaidev Taneja

Hindi Premi

अपनी स्टडी में

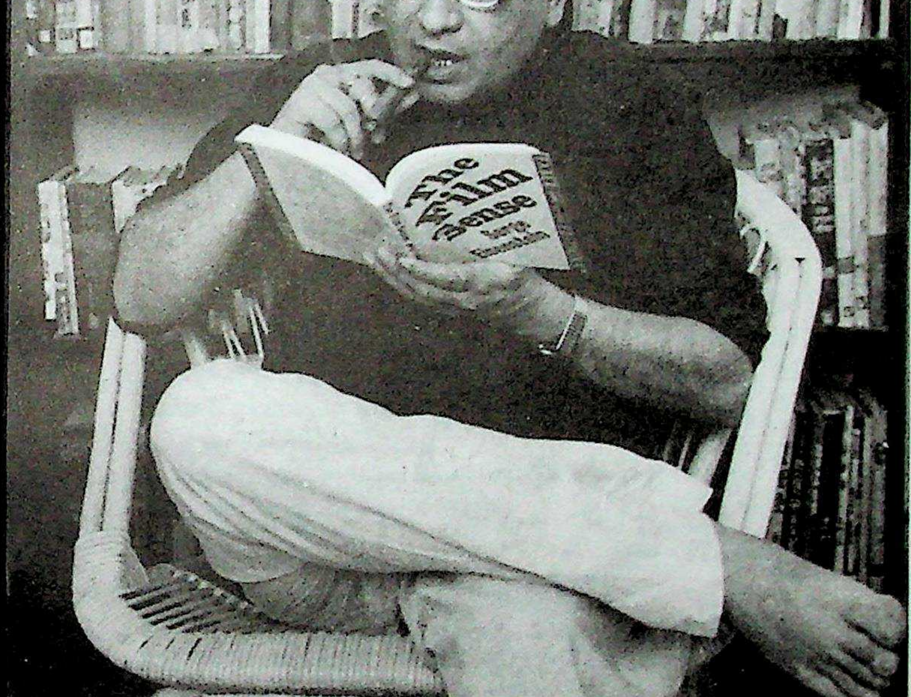

Hindi Premi

For R. Awasthi.

Children's story.

काँटेदार आदमी

[illegible]

बाल कहानी : 'काँटेदार आदमी'

Hindi Premi

अनुक्रम

भूमिका *11*

डायरी

नई दिल्ली 28.12.1958 से 19.5.1968 19

स्पॉट नोट्स

स्पॉट नोट्स एंड अदर नोट्स : बॉम्बे 145

ध्वन्यालोक (साउंड एंड लाइट)

विजन्स : 1919 (जलियाँवाला बाग़) 167

फ़िल्म

The Rent Collector 201
Ek Aur Zindagi 213
Adhe Adhure : Agreement 233
Rakesh's Letter to Raj Bedi 234
A Letter to Om Shivpuri 235
Mohan Rakesh vs Basu Bhattacharya 236
Let's Decide at the Script Stage 238

समीक्षा

निराशावादी यथार्थ और कल की आशा (तीन कहानी-संग्रह) 245
'नूरजहाँ' काव्य—एक परिचयात्मक दृष्टि 252
तुलसी की भक्ति 256
पंत और नवीन : जीवन-दर्शन 259
दायरे से हट कर दायरा 265

काव्य

दुनियाँ 271
चाबुक 272

Hindi Premi

जो हमें नहीं मिला 273
उन्नीसवाँ सिगार 274

समय सारथी
(किशोर साहित्य)

सुदूर अतीत : सालते प्रश्न
गौतम बुद्ध 279
सुकरात 285
अशोक 291

अन्तराल : विद्रोही आस्थाएँ
जोन ऑफ़ आर्क 297
कबीर 303
मीरा 309

निकट अतीत : क्रान्तिकारी दृष्टियाँ
स्वामी दयानन्द 314
भगतसिंह 320
वाल्टेयर 326

वर्तमान : सीधे साक्षात्कार
महात्मा गांधी 332
जवाहरलाल नेहरू 338
मार्टिन लूथर किंग 344

बिना हाड़-माँस के आदमी
(बाल साहित्य)

काँटेदार आदमी 353
बिना हाड़-माँस के आदमी 360
सुनहरा मुर्ग़ा, काला बन्दर और लाल अमरूद का पेड़ 364
गिरगिट का सपना 368

पुनश्चः
पिता-पुत्री संवाद 371

Hindi Premi

पूरी विधाएँ : अधूरी रचनाएँ

शय्या (नाटक)	377
मिस्टर भाटिया (रेडियो रूपान्तर)	380
ख़ालिस और नाख़ालिस (एकांकी)	390
चिदम्बरा (पुस्तक समीक्षा)	400
रात बीतने तक (ध्वनि नाटक)	401
ऊँची झील (यात्रा-संस्मरण)	404
कई एक अकेले (उपन्यास)	407
हिस्चू (बीज-नाटक)	451
दिल्ली-कलकत्ता यात्रा (डायरी)	452
पुनर्वास (कहानी)	453
भूख (कहानी)	459
फ़्लैश कट (कथा-बीज)	461
परम्परावाद या परम्परा-बोध (विचार-बिन्दु)	463

Hindi Premi

Hindi Premi

भूमिका

मुख्यतः नाटककार-कथाकार के रूप में चर्चित-मूल्यांकित रचनाकार मोहन राकेश ने समय-समय पर अन्य विधाओं में भी काफ़ी कुछ लिखा। रचनावली के इस खंड नौ में उस 'काफ़ी-कुछ' में से जो कुछ, जितना कुछ और जैसा कुछ उपलब्ध हो सका—उसे यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इसमें सबसे पहले मोहन राकेश की प्रकाशित डायरी का वह उत्तरार्द्ध है जिसमें जालन्धर से दिल्ली आने के पहले दिन से लेकर 19 अप्रैल, 1968 तक के लगभग साढ़े नौ वर्षों के व्यक्तिगत-सामाजिक-साहित्यिक जीवन की घटनाओं, प्रतिक्रियाओं, सोच-विचार और अनुभव—संसार के विविध, सच्चे एवं अनौपचारिक प्रमाण मौजूद हैं। एक अन्य डायरी में 21 मार्च, 1968 से लेकर 4 अप्रैल, 1968 तक की अंग्रेज़ी में लिखी प्रविष्टियाँ भी उक्त डायरी में यथास्थान रखकर इस रचनावली में ही पहली बार प्रकाशित की गई हैं। एक और डायरी में 11 जुलाई से लेकर 5 अगस्त, 1964 के बीच अपने मुम्बई प्रवास के दौरान राकेश ने 'स्पॉट नोट्स' के नाम से कुछ दिलचस्प एवं ध्यानाकर्षक व्यक्तियों, संवादों, स्थानों, प्रसंगों एवं स्थितियों इत्यादि के पर्यवेक्षण और उस पर अपनी प्रतिक्रियाओं की 269 प्रविष्टियाँ दर्ज की हैं। इनमें से, कई कोशिशों के बावजूद, केवल 50 टिप्पणियाँ ही पढ़ी जा सकी थीं , जिन्हें 'एकत्र' में प्रकाशित किया गया था। रचनावली में पाँच नई टिप्पणियाँ और जोड़ी गई हैं। एक प्रकार से ये भावी रचनाओं की कच्ची सामग्री है, ऐसे रोयें-रेशे जिनसे या जिनके इर्द-गिर्द राकेश बहुत कुछ बुनना चाह रहे होंगे।

'विजन्स : 1919' ध्वनि और प्रकाश पर आधारित एक अनूठा प्रयोग है, जिसे अमृतसर के ऐतिहासिक जलियाँवाला बाग़ के निर्मम एवं कुख्यात हत्या-कांड की पचासवीं जयन्ती के अवसर पर भारत सरकार के 'सौंग एंड ड्रामा डिविज़न' के विशेष आग्रह पर राकेश ने 27 मार्च

Hindi Premi

से 14 अप्रैल, 1969 के बीच लिखा था। रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से ये आलेख रेडियो, रंगमंच, फ़िल्म, टी.वी. इत्यादि के सभी माध्यमों से भिन्न है। इसके गीत पंजाबी की मूर्धन्य रचनाकार अमृता प्रीतम ने लिखे थे। कर्नल एच.वी. गुप्ते के निर्देशन में 14 अप्रैल, 1969 को जलियाँवाला बाग़ में प्रस्तुत इस प्रदर्शन का संगीत सतीश भाटिया ने तैयार किया था। दृश्यांकन और प्रकाश परिकल्पन कर्नल गुप्ते का ही था। यहाँ प्रकाशित आलेख के शब्द प्रदर्शन की रिकॉर्डिंग से लिये गए हैं और दृश्य, ध्वनि-विवरण तथा तकनीकी नोट्स राकेश के मूल आलेख की संशोधित प्रति से। इस सर्वथा प्रयोगधर्मी आलेख को 'ध्वन्यालोक' शीर्षक सम्पादक ने दिया है।

फ़िल्म और राकेश का रिश्ता आरम्भ से ही रहा। अपने जीवन की पहली नौकरी इन्होंने लाहौर की एक कम्पनी 'दरबार पिक्चर्स' में बुद्धिजीवी/लेखक के रूप में की थी और जीवन के अन्तिम दौर में भी कई रूपों में वह फ़िल्म से जुड़े रहे। 'उसकी रोटी', 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'आधे अधूरे' जैसी अपनी रचनाओं के फ़िल्मांकन से सम्बद्ध रहने के अतिरिक्त 1970-71 के आसपास मोहन राकेश, प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्म कम्पनी 'मर्चेंट आइवरी प्रोडक्शंस' के लिए, 'द रैंट कलैक्टर' फ़िल्म के पटकथा-संवाद भी लिख रहे थे। कहा जाता है कि इसकी आधी से ज़्यादा पटकथा उन्होंने लिख भी ली थी— परन्तु दुर्भाग्य से वह प्रोजेक्ट पूरा नहीं हो सका। इससे भी बड़ी विडम्बना ये है कि राकेश के आकस्मिक निधन के बाद इसका आलेख उनकी फ़ाइलों में भी कहीं नहीं मिला। फिर भी, इसकी तैयारी से सम्बद्ध काफ़ी महत्त्वपूर्ण सामग्री हमें उनकी एक डायरी में मिल गई, जिसे यहाँ उसके मूल अंग्रेज़ी रूप में ही प्रकाशित किया गया है। इसी डायरी में 'कुछ व्यक्तिगत प्रश्न' भी लिखे गए हैं जिनके बारे में शायद राकेश निर्माता-निर्देशक से कुछ स्पष्टीकरण माँगना चाहते थे। इसके अतिरिक्त राकेश के बहुचर्चित नाटक 'आधे अधूरे' के फ़िल्मीकरण से सम्बन्धित कुछ सामग्री भी यहाँ दी गई है। जिसमें प्रकाशित एक अनुबन्ध-पत्र तथा इस सन्दर्भ में राकेश द्वारा प्रमुख अभिनेता ओम शिवपुरी, मित्र-प्रबन्धक राज बेदी तथा निर्देशक बासु भट्टाचार्य को लिखे गए तीन पत्रों से फ़िल्म के अधूरे रह जाने के व्यावहारिक कारणों के साथ-साथ एक स्वाभिमानी हिन्दी लेखक की गरिमा तथा अपनी शर्तों पर काम करने की ज़िद की स्पष्ट झलक भी देखी जा सकती है।

Hindi Premi

मोहन राकेश का छोटा भाई वरीन/वीरेन्द्र एक बोहेमियम तबीयत का पेंटर था। कुछ समय तक कुमारकान्त के छद्म नाम से रेडियो सीलोन में काम करने के बाद वह मुम्बई लौट आया था और फ़िल्मकार प्यारे लाल सन्तोषी के साथ काम कर रहा था। अस्थिर और मनमौजी वरीन अब स्वयं फ़िल्म बनाना चाहता था। उसने राकेश से उनकी चर्चित कहानी 'एक और ज़िन्दगी' की फ़िल्म-पटकथा लिख देने का अनुरोध किया। अपने छोटे भाई के सहायतार्थ राकेश ने उसके लिए अंग्रेज़ी में कहानी के फ़िल्मालेख की रूपरेखा तैयार कर दी, जिससे कि उसे फ़िल्म वित्त निगम से ऋण मिल सके। परन्तु ऋण न मिल पाने या किसी अन्य कारण से वह फ़िल्म बन नहीं पाई। संयोगवश उस आलेख की एक प्रति राकेश के मित्र सत्येन्द्र शरत् के सौजन्य से सम्पादक को मिल गई, जिसे यहाँ पहली बार प्रकाशित किया गया है। ध्यातव्य है कि यह पटकथा नहीं, 1970-71 के आसपास लिखी गई एक रूपरेखा मात्र है। इसे इसी संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए।

अपने अन्तिम वर्षों में राकेश 'फ़िल्म सेंसर बोर्ड' और 'फ़िल्म वित्त निगम' से सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे। इस दायित्व के कारण शुद्ध/समानान्तर/कला सिनेमा के वर्तमान एवं भविष्य और उसकी समस्याओं को लेकर वह काफ़ी जागरूक थे और गहन सोच-विचार कर रहे थे। इस सन्दर्भ में उनके चिन्तन की एक झलक हमें उनके अंग्रेज़ी में लिखे और 1 दिसम्बर, 1972 के 'फ़िल्मफ़ेयर' में छपे एक गम्भीर लेख 'लैट्स डिसाइड एट द स्क्रिप्ट लैवल' से मिल जाती है। सिनेमा सम्बन्धी इस फुटकर किन्तु नई सामग्री से फ़िल्म-लेखक के रूप में आत्मसम्मानी राकेश की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि, गम्भीरता, जागरुकता और फ़िल्म माध्यम की गहरी समझ एवं अद्यतन जानकारी की स्पष्ट झाँकी मिलती है।

इस नई सामग्री के साथ-साथ यहाँ राकेश की सात समीक्षाएँ भी दी गई हैं, जिनसे लेखक की क्रमशः विकसित होती समीक्षा-दृष्टि का परिचय मिलता है। इनमें चार पुस्तक-समीक्षाएँ, दो लेख और एक नाट्य-प्रदर्शन की समीक्षा शामिल है। ये रचनाएँ 1954-55 से लेकर 1968-69 के बीच लिखी गईं और 'आलोचना', 'विश्वज्योति' तथा 'नटरंग' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। राकेश ने अपने लेखन का श्रीगणेश संस्कृत में लिखी-छपी बाल-कविताओं से किया था, परन्तु उनमें से एक भी उपलब्ध नहीं हुई। 7-8-1946 को उर्दू में लिखी उनकी

Hindi Premi

एकमात्र उपलब्ध कविता 'दुनिया' से लेकर बाद की डायरियों में मिली तीन अन्य हिन्दी कविताओं को भी 'काव्य' शीर्षक के अन्तर्गत यहाँ छापा गया है। यूँ उनके कवि-कर्म का संकेत हमें उनके आरम्भिक फ़िल्मालेख, एकांकियों और पार्श्व-नाटक 'छतरियाँ' में भी मिलता है।

हिन्दी के बड़े लेखक प्रायः बाल-साहित्य को हेय दृष्टि से देखते और उससे बचते हैं। लेकिन राकेश ने गौतम बुद्ध से लेकर मार्टिन लूथर किंग तक भारत/विश्व के, कालक्रम से चुने हुए, बारह प्रेरणा-पुरुषों की प्रामाणिक एवं रोचक जीवनियाँ लिखी थीं। इन्हें 1972 में 'समय सारथी' नामक किशोरोपयोगी पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया था। 1965 में राकेश ने 'कादम्बिनी' के सम्पादक मित्र राजेन्द्र अवस्थी के लिए कुछ मनोरंजक एवं प्रबोधक बाल-रचनाएँ भी लिखी थीं। 1974 में उन्हें 'बिना हाड़-मांस के आदमी' के नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया। राकेश की अप्रकाशित-असंकलित रचनाएँ खोजते हुए 1997 में मुझे एक टेप मिला था, जिसमें 'कुर्सी' को लेकर राकेश और उनकी नन्हीं बेटी पुर्वा के बीच हुई एक बालसुलभ दिलचस्प तकरार टेपांकित है। उसे लिप्यान्तरित करके यहाँ 'बिना हाड़-मांस के आदमी' के अन्त में 'पुनश्च' के रूप में दिया गया है।

मोहन राकेश रचनावली के इस खंड के अंत में उनकी तेरह खंडित रचनाएँ 'पूरी विधाएँ : अधूरी रचनाएँ' शीर्षक के अन्तर्गत दी गई हैं। ये आधी-अधूरी रचनाएँ उनकी डायरियों अथवा फ़ाइलों से हस्तलेख या टंकित रूप में मिली हैं। कुछेक पर रचना-काल लिखा है और शेष का कई स्रोतों से अनुमान लगाना पड़ा है। उदाहरण के तौर पर यहाँ प्रकाशित नाटकांश 'शय्या' परीक्षा की पीले पड़े पन्नोवाली कॉपी पर राकेश के हस्तलेख में मिला, जिस पर उसका रचनाकाल 1945 भी लिखा था। एकांकी 'ख़ालिस और नाख़ालिस' टंकित रूप में मिला जिस पर 1958 अंकित था। यात्रा-संस्मरण 'ऊँची झील' आकाशवाणी इलाहाबाद से 1 मई, 1960 को प्रसारित हुआ था—इसका लिखित प्रमाण मौजूद है। राकेश का अधूरा उपन्यास 'कई एक अकेले' 1965 में 'सारिका' के चार अंकों में क्रमशः प्रकाशित हुआ था। दिल्ली-कलकत्ता यात्रा की 'डायरी' के पन्ने पर ही 21-3-68 की तारीख़ पड़ी है। अनुमानित तारीख़ वाली रचनाओं में से राकेश की अपनी कहानी का रेडियो-रूपान्तर 'मि. भाटिया' और ध्वनि-नाटक 'रात बीतने तक' के एक वैकल्पिक दृश्य के तीनेक पन्ने टंकित रूप में मिले। इनका

Hindi Premi

सम्भावित लेखन-काल 1957 से 1958 के बीच माना गया है क्योंकि इसी दौरान रेडियो जालन्धर के लिए राकेश ने अपना ज़्यादातर काम किया था। पुस्तक-समीक्षा 'चिदम्बरा' का एक टंकित पृष्ठ ही एक फ़ाइल से मिला। लगता है इसके आगे-पीछे दो एक और पुस्तकों की समीक्षाएँ भी रही होंगी। इसके प्रकाशित या प्रसारित होने का उल्लेख भी कहीं नहीं मिला। इसलिए पन्त के इस बृहद काव्य संग्रह के प्रकाशन वर्ष के आधार पर इस समीक्षा का लेखन-काल भी 1958 मान लिया गया है। बीज-नाटक 'हिस्चू' के मिले एक टंकित पन्ने के बाईं ओर ऊपर की ओर पड़े ज़ंग लगे क्लिप का गहरा कत्थई निशान इस बात का संकेत/प्रमाण है कि यह एक पूरी रचना रही होगी, जिसका प्रथम पृष्ठ तो किसी तरह बचा रह गया और शेष पृष्ठ अलग होकर कहीं खो गए। 1967 में राकेश 'तीन बीज-नाटक' नामक एक पुस्तक को छपने के लिए लगभग देने ही वाले थे। अनुमान लगाया जा सकता है कि 'शायद...' और 'हंः!' के साथ तीसरा नाटक यही रहा होगा क्योंकि राकेश की एक डायरी में कम-से-कम पन्द्रह बीज-नाटकों के नाम और कुछेक नोट्स मिलते हैं—लेकिन टाइपराइटर तक सम्भवतः यही एक पहुँच पाया था। इसी प्रकार राकेश की डायरियों में अनेक कहानियों के नाम एवं कथाबीज और विचार बिन्दु भी मिलते हैं। अज्ञात रचनाकाल और परस्पर सम्बन्धहीनता के बावजूद 'कुछ बेहतर' के आधार पर इन चार को चुनकर अन्त में प्रस्तुत किया गया है।

राकेश के हस्तलेख में प्राप्त पाँच पन्नों की एक अधूरी और शीर्षकहीन कहानी के काग़ज़ इतने पुराने और भुरभुरे हो चुके थे कि छूने भर से टूटने लगते थे। दारोगा रायसिंह वाली तीन पेज की कहानी भी अधूरी और शीर्षकविहीन है, किन्तु वह टाइप की हुई थी। दोनों कहानियों में यद्यपि दूर तक किसी प्रकार की कोई समानता दिखाई नहीं देती। फिर भी, सावित्री देवी का चरित्र एवं नाम-सन्दर्भ तथा महिलाओं के पुनर्वास के प्रश्न से जुड़ी होने के कारण इन दोनों को एक-साथ रख दिया गया और 'पुनर्वास' नाम दे दिया गया है। दूसरी कहानी 'भूख' राकेश के प्रिय विषय स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की विडम्बना पर आधारित है और उसका अन्तिम अंश भी उससे अलग टाइप किए हुए पन्ने पर मिला था। नायिका की मनःस्थिति और मानसिकता को देखते हुए सम्पादक ने उन्हें परस्पर मिला दिया है—यह अलग बात है कि उसके अधूरेपन में इससे भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। तीसरी रचना 'फ़्लैश कट'

Hindi Premi

वास्तव में अपने कथा-चरित्र को साफ़-साफ़ पहचानने और उसे सम्पूर्णता से व्यक्त कर सकने वाले सही शब्द की तलाश में भटकते लेखक के छटपटाते अन्तर्मन का बिम्ब है। दुर्भाग्य से यह बिम्ब भी अधूरा है। इसे 'कथा-बीज' और आख़िर में प्रकाशित 'परम्परावाद या परम्परा-बोध' को 'विचार-बिन्दु' कहा गया है। यह पृष्ठ किसी लेख या भाषण की तैयारी का हिस्सा लगता है। इन अन्तिम चार रचनाओं (?) को छोड़कर शेष सामग्री प्रायः काल-क्रम से ही संयोजित की गई है।

इस खंड की बहुविध सामग्री मोहन राकेश के बहुआयामी रचनाकार व्यक्तित्व का परिचय देती है और इस बात को प्रमाणित भी करती है कि अपने 'आर्टिस्टिक सैल्फ़' के पूरी तरह संतुष्ट न होने की स्थिति में वे कितना कुछ अधूरा अथवा अप्रकाशित ही छोड़ देते थे!

—जयदेव तनेजा

Hindi Premi

डायरी

Hindi Premi

Hindi Premi

डायरी

(28.12.1958 से 19.5.1968 तक)

नई दिल्ली : 28-12-58

आज मैं इस शहर का नागरिक हूँ। जालन्धर छूट गया, सचमुच ही छूट गया। कितनी बड़ी लकीर है? सन् 53 से 58—सवा पाँच साल!

तब में और आज में अपने में कितना अन्तर आया है। आज कोई कह रहा था, "तुम्हारे कहकहों में आज वह बात नहीं है जो सन् 53 में थी।"

आज पहला दिन था कि बाहर निकलकर लोगों से मिला। परसों सुबह यहाँ पहुँचने से आज सुबह तक पेटियाँ खोलने और सामान लगाने में ही लगे रहे।

और जालन्धर से दिल्ली तक की ट्रक यात्रा! सारी रात लगभग जागते कटी थी। मगर ढाबे की दाल और चाय का मज़ा भी ऐसी यात्रा में ही आता है।

और 26 को आते ही मिला उ...का पत्र। शाम को वीणा लाइब्रेरी के पास मिल गई। स्टेशन के रिफ्रेशमेंट रूम में चाय पीकर घर आए। फिर उसे ईस्ट पटेल नगर तक छोड़ आया!

कल वह फिर आई। काफ़ी देर तक बातें होती रहीं। कुछ तनाव-सा भी आ गया मुझे किसी की इच्छा से चालित होना किसी भी रूप में सह्य नहीं। वह 'हारमनी' की बात क्यों नहीं समझ पाती?

...आज लोगों से 'मिट्टी की गाड़ी'* की आलोचना ही सुनी। सिर इतना भारी है कि एक लफ़्ज भी नहीं लिखा जाता। तो बेहतर यही है कि...

नई दिल्ली : 1-1-59

आज यहाँ आए एक सप्ताह हो गया।

---

* बेगम जैदी के 'हिन्दुस्तानी थियेटर' द्वारा हबीब तनवीर के निर्देशन में प्रस्तुत शूद्रक के संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिक' के हिन्दुस्तानी अनुवाद की प्रस्तुति। —सं.

Hindi Premi

कुछ लिखना तो आरम्भ कर ही दिया। आर्थिक दृष्टि से आगे एक भँवर-सा नज़र आता है। फिर भी, जैसे-तैसे यह पार होगा ही।

उस दिन 'मिट्टी की गाड़ी' देखने गये थे। उन लोगों ने 'मृच्छकटिक' का आधार न ही लिया होता तो अच्छा रहता। एक अच्छी-ख़ासी फेंटेसी बन सकती थी—मगर एब्सर्ड स्क्रिप्ट और होरिबल डायलॉग्स ने सारा इफेक्ट ही तबाह कर दिया।

न्यू ईयर ईव—

बड़े आराम से घर में ही नए साल का अभिनन्दन किया। माँ से 'ब्लेसिंग' ली। आज वीणा फिर आई। वह कई घंटे रही। उस दिन का तनाव धुल गया।

नई दिल्ली : 2-1-59

शाम सत्येन्द्र शरत् और कृष्णा सोबती के साथ कटी। कृष्णा तो काफ़ी बड़ी लगती है। शी मस्ट बी एट लीस्ट 40।

सत्येन्द्र को नौकरी छोड़ने की धुन सवार है।...उसकी बातें सुनकर तो यह कहा नहीं जाता कि नौकरी न छोड़े—मगर...।

I must restrain myself in the matter of expenses. How can I afford to spend the way I do?

नई दिल्ली : 8-1-1959

...ज़िन्दगी का एक साल और गुज़र गया।

सुबह उठा तो तबीयत उदास थी। शायद कल की वजह से। कल सुबह ही शर्मा जी आए थे। डेढ़ घंटा उनसे बातें हुईं। उन्होंने बताया कि नीत (राकेश का बेटा नवनीत) यहीं है। मन बहुत बेचैन हुआ। यह भी जाना कि बच्चे से मिलने की शर्त यह है कि 'उस' से भी मिला जाए।...कितनी बड़ी विडम्बना है!

वह आज शायद चला गया होगा। मैं नहीं जानता कि वह मुझे कब देख पाएगा, और जब तक न देख पाएगा, किस रूप में जानेगा, और जब देख पाएगा तो किस रूप में जानेगा।...आई डू नॉट नो हूज़ ट्रेजडी इज़ दि ग्रेटेस्ट—हिज़, हर्स ऑर माइन।

और शर्माजी ने भी वही बात कही जिसकी मुझे बहुत पहले से शंका थी।

"मुझे डर है कि वह भी उसके पास रहेगा नहीं," उन्होंने कहा। "इस एक साल में उसने बहुत 'ग्रो' किया है। उसमें एक विद्रोह-सा है। वह माँ की उतनी ही बात मानता है जितनी उसे सूट करती है। वरना हर बात में अपनी ही करता है।"

...फिर वह होटल का सीन याद आता है। चिड़िया का बच्चा पंखे से टकराकर नीचे आ गिरा था। नीत हाथ पकड़कर रो रहा था।

Hindi Premi

नीते, ज़िन्दगी में कभी तू भी अपने बाप को समझ सकेगा?

...साधारण-सा ही दिन आरम्भ हुआ। सुबह माँ का स्नेह और आशीर्वाद लिया और लिखने-पढ़ने बैठ गया। बाद दोपहर घर से निकला। आकस्मिक-सी बात है कि आज ही चमन के लड़के अनिल का बर्थ-डे भी था। उसके लिए दो-एक प्रेजेंट लिये। चमन के घर पार्टी में आकर अच्छा लगा। कहीं तो महज आत्मीयता मिलती है—!

...चाहता हूँ कुछ और भी लिखूँ। लेकिन क्या? ज़िन्दगी का शून्य बातों से तो भरता नहीं। रोज़ एक बार 'डॉ. ज़िवागो' उठाता हूँ, फिर रख देता हूँ। पढ़ नहीं पाता। क्यों?

कल से ज़िन्दगी में क्या अन्तर आएगा? कुछ नहीं। इट विल गो आन एज़ यूजुअल।

और दूर का क्या? इस सम्बन्ध में केवल विस्मय ही है।

9-1-59

आज Praha (Prague), Czechoslovakia, से, Garmila Mastooska नामक लड़की का पत्र आया। डॉ. स्मेकल को कहानियों की किताबें भेज देनी चाहिए थीं।

अगले सप्ताह मेहमान-ही-मेहमान रहेंगे। काम खाक करेंगे!

नई दिल्ली : 13-1-59

कहानी सम्बन्धी लेख आज भी पूरा नहीं हुआ। भाई साहब, काम की रफ़्तार बनाइए—ये लच्छन अच्छे नहीं।

कल स्टेशन जाकर सुबह-सुबह ख़राब ही हुए। रमेश और दादी माँ दोनों नहीं आए। घर आकर दो तारें मिलीं। रमेश तो फिलहाल लखनऊ ही रह गया।...दूसरा तार 'रंगमंच' का ही था कि 10 को 'आषाढ़ का एक दिन' स्टेज किया गया—successful रहा। प्ले खुद देख पाता तो बात थी।

वही दर्द फिर जारी है। यह तकलीफ़ जाने क्या करेगी?

ख...का पत्र आया, क्या ख़ूब...उल्टे मुझी पर इलज़ाम! I could not understand this!

कल लेख

'अभाव' त

इतवार के

Hindi Premi

नई दिल्ली : 14-1-59

दिन में 'वाइल्ड इज़ दि विंड' देखने चला गया। Anna Magnani का रोल अच्छा था–पिक्चर अच्छी लगी।

शाम वही काफ़ी हाउस और टी हाउस में।

लेख दोपहर को पूरा करके भेज दिया।

मन का शून्य!

घर आकर यह ख़ालीपन ही अखरता है। मगर चारा ही क्या है?

नई दिल्ली : 16-1-59

कल काफ़ी तकलीफ़ रही। शाम को अजब भूल-भुलैयाँ में पड़े। कमर में बहुत दर्द था, डॉक्टर के ही जाना ज़रूरी समझा। घर से निकले भी। 24 की बजाय 22 नम्बर की बस में बैठ गए। बस पहाड़गंज को मुड़ गई तो ध्यान आया कि वह बेयर्ड रोड होकर नहीं जाएगी। सोचा, कनॉट प्लेस में स्कूटर ले लेंगे। मगर नई दिल्ली स्टेशन पर बस रुकी तो यहीं उतर गए। ख्याल था कि वहाँ से सीधा बेयर्ड रोड को रास्ता जाता है। वहाँ से स्कूटर वगैरह कुछ नहीं मिला। पैदल कनॉट प्लेस पहुँचे और पंचकुइयाँ रोड पर मुड़ गए। कुछ दूर जाकर पता चला कि उससे तो बेयर्ड रोड के पहले चौक पर पहुँचेंगे जबकि डाक्टर की दुकान मेन मार्केट वाले चौक पर है। किसी तरह घिसटते हुए वहाँ पहुँचे और आते हुए बस में मरने को हो गए।

रात को दर्द का दौरा कुछ कम हुआ!

आज शरत् को खामख्वाह परेशानी हुई!

यहाँ अक्सर लोगों को यह विश्वास ही नहीं होता कि मैं सचमुच नौकरी-शौकरी छोड़कर चला आया हूँ–और...कि किसी 'मार' पर नहीं आया!

कल तक तबीयत ठीक होनी ही चाहिए।

नई दिल्ली : 18-1-59

कल राजेन्द्र यादव तशरीफ लाते हैं!

गुज़रे हुए कल पुरुषोत्तम कुमार यहाँ थे।

रात रमेश का तार आया कि तुरन्त लखनऊ आओ।

आज तार दिया कि आना मुश्किल है।

Hindi Premi

दिन चमन के साथ बीता। रात को बोलशॉय बैले देखने चले गए। Dying Swan नृत्य अच्छा था—नृत्य का दूसरा एक्ट उतना नहीं जँचा।

कई रातों से एक सपना दीखा करता है—कई रातों से क्यों—कई महीनों से—दो एक साल से शायद कि एक बड़ा-सा इंजन, बड़ी-सी गाड़ी लिए पटरी से उतरकर चल रहा है—वह जंगल में भी चलता है, एक प्लेटफार्म से दूसरे प्लेटफार्म पर भी गाड़ी को ले जाता है—मगर पटरियों पर रहकर नहीं। हमेशा लगता है कि गिर न जाए, मगर किसी तरह उसका सन्तुलन बना रहता है। सोचता हूँ कि अब यह पटरी पर चढ़े, अब चढ़े—मगर वह उसी तरह चला चलता है—अपने को इंजन में ही बैठे हुए महसूस करता हूँ क्योंकि उसकी हर 'डायरेक्शन' को अन्देशे के साथ देखता हूँ—मगर ड्राइव न जाने कौन करता है—

मैं तो केवल चिन्ता-ही-चिन्ता करता हूँ।
लगता है ज़िन्दगी में रंग और स्वाद नहीं है—हर चीज़ बेलज़्ज़त है—
क्या मेरी भी पटरी छूट गई है?

बहुत कुछ अब भी अपने में ही दफ़न रहता है। इन्सान चाहकर भी क्या ज़िन्दगी के सब पर्दे उठा सकता है?

आज मन फिर उपन्यास को लेकर 'ऑफ़ द ट्रैक' चला जाता।
गनीमत तो यह रही कि बस...।

नई दिल्ली : 31-1-59

राजेन्द्र यादव के आ जाने के बाद कई दिन उसी व्यस्तता में निकल गए। उसके सैटिल हो जाने के बाद ही अपना कुछ होश हुआ।

इस बीच 'सुहागिनें' शीर्षक कहानी को रिराइट करने के सिवा कुछ नहीं किया।

...आज जाने कैसा दिन था। सुबह राजेन्द्र पाल की बात पर ग़ुस्सा आ गया। शाम को कॉफी हाउस में कुछ अजब-सा लगा। हबीब, कुमुद, चमन, सन्तोष और श्याम साथ आए। 'आषाढ़ का एक दिन' का पहला अंक पढ़ा, खाना खाया—

कैसा लगता है, कह नहीं सकता। देयर इज़ एक्साइटमेंट इन दि माइंड, व्हाई? आई डू नाट नो।

Hindi Premi

नाउ आई मस्ट ट्राइ टु गेट सम गुड, ओनेस्ट स्लीप।

रेस्ट, लेटर।

नई दिल्ली : 6-2-59

पहले दो दिन रमेश पाल के साथ कटे। पता चला कि 'आषाढ़ का एक दिन' का अभिनय पहले नागपुर में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर हुआ (not yet confirmed), फिर 10 को लखनऊ में रंगमंच की ओर से। सर्वदानन्द वर्मा, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर इत्यादि antagonistic रहे। फिर 21 को नाट्य समारोह में अभिनय हुआ, जिसमें इसे 'बेस्ट प्रोडक्शन' का एवार्ड मिला। और भी कई प्राइज़ मिले। इन्होंने वहाँ से जो काग़ज़ात भेजे थे, वे यहाँ नहीं मिले। 21 की पर्फारमेंस के लिए ही रमेश ने बुलाया था। तार में कारण भी लिखा होता तो ज़रूर चला जाता मगर...।

अब यहाँ के नाटककार इसी आधार पर नाटक को रन डाउन करने की कोशिश में हैं कि लखनऊ में बाबू सम्पूर्णानन्द ने इसका उद्घाटन करने से इनकार कर दिया क्योंकि उनसे कहा गया था कि नाटक में कालिदास को हीन किया गया है। ह्वाट् पीपुल...मैं तो पहले ही स्वीकार किए हूँ कि संगीत नाटक अकादमी–प्राइज़ किसी और को मिलेगा–हालाँकि अवस्थी ने उस दिन कहा था कि "भाई, rumour है, प्राइज़ मिल रहा है। it is very high up।" मैं नहीं जानता। न जानना चाहता हूँ। ख़ामख़ाह नींद बरबाद होती है।...सिर्फ़ प्रकाशकों की वजह से कोफ़्त होती है वरना सिवाय अपनी किताबों की royalties पर जीने के और किसी चीज़ की आशा या अपेक्षा नहीं रखना चाहता। मगर कैसे हो? कैसे? एक प्रकाशक ने छह महीने के एकाउंट में 24 रुपए भेजे हैं और एक ने साल का बकाया 8 रुपए! Heavens!

श्रीनगर : 14-4-59

...और दिल्ली से श्रीनगर। फिर वही आकस्मिक निश्चय, वही अफरातफरी–वही यात्रा!

दिल्ली में रहकर पौने चार महीने में बहुत-बहुत कुछ जाना। बहुत से लोगों के असली चेहरे सामने आए। कई बार कोफ़्त हुई–कई बार मनोरंजक लगा। ख़ैर–हर अनुभव व्यक्तित्व को निखारता है–अपने भी चेहरे को समझने में मदद देता है।

दिल्ली में रहकर जिस व्यक्ति को सबसे ज़्यादा पहचाना है, वह है राजेन्द्र यादव। यह तो कहना शायद ठीक न हो कि वह मूलतः ही घटिया आदमी है–उसमें अच्छाइयाँ भी हैं निःसन्देह–मगर वह इंफीरियरिटी काम्पलेक्स से ग्रस्त है। उसी वजह से शायद उसमें इतनी ईर्ष्या की भावना है। वह हमेशा ऐसी ही बात करेगा जिससे तुम्हें चोट

Hindi Premi

लगे, दुःख पहुँचे। He cannot make you feel happy! तुम उसके लिए कुछ भी करो—वह अपनी आदत से लाचार वैसे ही हरकतें करता जाएगा।

उसकी दूसरी आदत जिसकी वजह से कई बार परेशानी हुई, वह है रुपए-पैसे के मामले में उसका रवैया। अगर शक्ति गुप्ता वाली बात सच हो तो कितनी शर्म की बात है।...और यह आदमी है जिसकी लगभग लाख रुपए की जायदाद है आगरा में—घर में नकदी है, गहने हैं। और दूसरी तरफ़ हम लोग हैं कि घर में एक रत्ती सोना नहीं, कोई जायदाद नहीं, पैसा नहीं। मगर इन्सान बिना किसी चीज़ के भी तो dignity से जी सकता है!

दादी और बूआ का दबाव—ब्याह कर लो, ब्याह कर लो! मगर मेरी समस्या का यह निदान कैसे है? The girl I wanted to marry, refused me. What now? I do not know anyone else with whom I can spend a happy married life. And then there is the consciousness of this emptiness in life. Then?

कल बैसाखी थी—और कल ही मैं पहली वायु यात्रा करके यहाँ पहुँचा—यह नया साल गर्भ में क्या लिए है?

नई दिल्ली : 23-8-59

श्रीनगर से चले महीना हो गया। आकर एक दिन डायरी लिखने का मन नहीं बना—हालाँकि कहीं कुछ ऐसा हुआ जिसे लेकर बहुत कुछ लिखा जा सकता था।

...9 की रात को रेडियो पर समाचार आया कि संगीत नाटक अकादमी की ओर से सर्वश्रेष्ठ हिन्दी नाटक का एवार्ड 'आषाढ़ का एक दिन' पर दिया गया है। उसके बाद से आज तक—ये दो सप्ताह इतनी जल्दी बीते हैं कि कुछ पता ही नहीं चला। पार्टियाँ, समारोह, लेख, आलोचना, कहकहे, और सबके बीच एक गहरी नामालूम उदासी—वह उदासी क्यों रही है कह नहीं सकता। कह नहीं सकता कि पुरस्कार की अवचेतन पर किस प्रक्रिया का यह परिणाम है।

...यादव का व्यवहार फिर कुछ अजीब-सा लगा। बहुत कोशिश करने पर भी वह खिंचाव सामने आ ही गया।...न जाने क्यों मुझे छोटा बतलाकर या समझकर उसे खुशी होती है?

चाहता हूँ कल से फिर उपन्यास में लगूँ।

नई दिल्ली : 21-9-59

...एक महीना—और किया कुछ भी नहीं। कुछ पन्ने किए—बस!

Hindi Premi

ज़ाने क्यों कुछ दिनों से बार-बार वीणा की याद आती है। उससे उम्मीद कम-से-कम नहीं थी इस तरह टूट जाने की...But probably just a friendship—a real friendship between a man and a woman is an impossibility.

शायद यह मेरा कोरा आदर्शवाद ही है—वरना, ज़रा-सी चालाकी बरतने से आदमी सब सम्बन्धों को बनाए नहीं रख सकता?

और रमेश ने रुपए माँगे थे। पुरस्कार के रुपए आने पर शायद हर दोस्त ने महसूस किया कि मैं एकदम अमीर हो गया हूँ। अढाई हज़ार रुपए—सचमुच बहुत होते हैं इतने रुपए। मगर वे आते ही क्या हो गए—किन गड्ढों को भरने में चले गए—उसे कोई भी नहीं समझना चाहता। और शायद उसने भी समझा हो कि मैंने बस यूँ ही, उसे टाल दिया है...but, I have to be patient and watch him, does friendship depend on what you can offer and what you cannot?

चंडीगढ़ convention में मोहन से अनायास ही मुलाक़ात हो गई—ठीक उसी तरह मिले जैसे पहले मिला करते थे। दो दिन साथ-साथ कटे...I was, happy but...

और convention में जो उत्तरदायित्व लिया है—जो कुछ आगे के लिए करना धरना है—I wish I had a better capacity for work than I have...

और अपनी ज़िस्मानी ज़रूरतें—अपनी emotional भूख...?

खब्त सवार था कि नाटक खुद produce करेंगे—बस दिलो-दिमाग़ पर वही विचार छाया जा रहा था। आख़िर छोड़ दिया—लिखना पहली चीज़ है, और कुछ नहीं।

नई दिल्ली : 23-10-59

Last night they broadcast AKED as a national play. I felt like committing suicide after listening to it. And I feel like destroying all that I have written of the novel.

नई दिल्ली : 11-12-59

मेरा डायरी लिखने को भी दिल नहीं कर रहा, फिर ज़बर्दस्ती क्यों लिख रहा हूँ?

मगर बहुत दिनों से अपनी stocktaking भी तो नहीं की। क्यों?

Facts : Neet came.

राज came.

बसु came.

Hindi Premi

Mohan Chopra came.
And I am a damnfool writing all this.

New Delhi : 12-12-59

First steps were taken today in connection with the production of AKED.

New Delhi : 13-12-59

Another day of spontaneous irritation and disgust. It seems people have lots and lots of time to waste. But I do not want to waste my time. I want that any movement of life should be spent doing work—at least usefully. I get disgusted with myself when even because of physical tension I cannot work. I do not like it. I do not like idling. I do not like sitting, dressing and wasting myself. But only my courtesy is my undoing.

Yadav talked about Sharat yesterday in great detail. That upset me quite a bit. I can't stand hyprocrisy in anyone—much less in a friend. He does many time behave in that manner. He has behaved even shabbily with me. How can I tolerate all that?

But is the irritation due to the fact that I have not been able to work for some days? I do not know.

नई दिल्ली : 8-1-60

आज पैंतीसवाँ जन्मदिन है।

यूँ, दिन बीत चुका है और लिखना चाहता था, आज पैंतीसवाँ जन्मदिन था, परन्तु घड़ी की सुइयाँ अभी वहाँ नहीं पहुँचीं जहाँ आकर तिथि बदल जाती है।

यूँ, समय को बाँटने का अर्थ ही क्या है?

मैं नहीं जानता—परन्तु समय अपने में इतना सुनिश्चित और सुविभाजित है—फिर भी इतना अनिश्चित और अविभाजित है कि कहा नहीं जाता कि सचमुच एक दिन ही व्यक्ति के जीवन में एक अतिरिक्त गाँठ डाला जाता है—हालाँकि हर दिन एक गाँठ डालता है, यह सत्य है।

अभी थका हुआ हूँ—लिखने को मन बहुत है, फिर भी लिखने से मन विरक्त है—आज क्या ये सूत्र ही लिखे जाएँगे?

बहरहाल, सोना चाहिए।

Hindi Premi

20-1-60

Wrote on the pages preceding the diary of 8-1-60 and discovered the irritable lapse.

22-1-60

Started writing the novel all over again.

22-6-60

क्या लिखूँ?

Gulmarg : 21-5-61

It is just ten days since I came to this room. It had kept raining for the first six days and after a spell of sunshine for three days, it has started raining again today. As soon as it becomes cloudy, the temperature goes down terribly. The hands and feet start getting numb.

I have almost finished revising 'Akhiri Chattan Tak' today. 'Almost' because I may run over the pages once again tomorrow morning. It has been so since yesterday. Turning over the pages and adding comas and fullstops here and there, I wrote the new introduction also today.

But it has been a day of terrible depression, a depression that seems to be eating me from within. I know the fountainhead of this onflow of depression: it is the bungling that I have made in the matter of matrimony once again.

I somehow got out of that situation, with a bitter feeling of getting separated from my son, whom, with all my reason and detachment, I somehow love very much.

But the second experiment of matrimony has been a stab in the back, less fatal but more crushing. The first woman had education and intelligence though she lacked softness, softness of speech and manner, and of love. That hurt me. This woman on the other hand has neither that education nor intelligence and has a cringiness of the lower middle class of a Punjabi small town. One gave me the feeling of sand and stones, the other woman gives me the feeling of rubbish and drain water. And therein lies the hope. One can clear the rubbish and filter the drain water but one cannot turn the sand into wheat flour. That is why I have not yet given my hope with Pushpa, though her hysteria has already led me to wilder hysteria. A contageous disease, this hysteria.

The bitterness of the new experience could have been fatal for me, but for one redeeming feature: this time I have not lost my creativity, but

Hindi Premi

on the other hand, have got into deeper urges of it, though only through sheer vengeance, or through sheer resignation or just through the will to survive.

Gulmarg : 3-6-61

Was it chance or deliberation? I do not know. Only a few days back, going to the club I had thought, what if all of a sudden I run across Navneet there? And today I did run across him. He passed by my balcony with his mother in the morning. I did not recognise the bespectacled lady coming from the Post Office side first. And suddenly I did. I do not remember whom I recognised first, her or Navneet. But there they were. The tiny toddler looked back twice. I got down and called him. He first hesitated and then came. What love! What bliss! When he embraced me I felt the abyss in my heart was filling. When he kissed me, I felt I was at the top of the world. My son! My flesh and blood! Just myself! How wonderfull! He came again an hour later and the four hours with him were joy unbounded; joy that is also pain; pain that is pleasure and pleasure that is sorrow. I was cut in the deep within and healed at the same time; trodden over and elevated.

How ignorant and yet how very under standing he is. "Wont you come to my room?" he said and never once insisted that I must. He is just the son I could wish for; so much after the pattern of my heart! And yet I have to live away from him and at what cost?

I understand he is going to be here for a week. My goodness, how will this week be spent? My son, beloved little son, living only a few yards away from me and coming to meet me as a guest! What irony!

It is getting to be eleven and I must sleep. But shall I sleep?

26-1-62

कहानी 'मफलर वाला चेहरा' का एक पन्ना टाइप किया।

छब्बीस जनवरी का पृष्ठ खोला और लिखने लगे यहाँ—एक पृष्ठ आगे। क्या इसका भी कोई मनोवैज्ञानिक कारण है?

27-1-62

रात बारिश हुई। भीगा हुआ दिन है। विशेष कुछ नहीं।

28-1-1962

आज 'मृच्छकटिक' का अनुवाद पूरा दोहरा दिया।

Hindi Premi

29-1-1962

'लहरों के राजहंस' का काम शुरू कर दिया।

30-1-1962

कुछ पृष्ठ और लिखे।

रूस में प्रकाशित कहानी संग्रह की प्रति डाक से प्राप्त हुई।

1-2-1962

नाटक का काम चल रहा है। क्या पूरा हो पाएगा?

29-2-62

कितना नाटकीय रहा है यह महीना! पहली तारीख़ को ही बी पुष्पा जमशेदपुर आ धमकी थी। कितना आकस्मिक था उसका आना—फिर भी कितना प्रत्याशित!...और उसके बाद के दो दिन। क्या ज़िन्दगी-भर वे दो दिन कभी भूले जा सकते हैं?

पहले दिन आकर शाम की गाड़ी से वह चली गई थी। स्टेशन पर उसने बखेड़ा खड़ा करना चाहा था, मगर किसी तरह उसे गाड़ी में बिठा दिया था। रात को खाने की टेबल पर बैठे हुए चमन ने कहा था, "मैं नहीं समझता था कि वह आकर इतनी आसानी से चली जाएगी। चलो, सस्ते में जान छूट गई।"

"मगर यह बहुत मुमकिन है कि वह कल सुबह की गाड़ी से लौट भी आए," मैंने कहा था।

"यू आर ए लिमिट!" कहकर चमन हँस दिया था।

मगर दूसरे दिन सुबह नहाकर टाई बाँध ही रहा था कि वह सचमुच लौट आई।

चमन रात की गाड़ी से राँची चला गया था। घर में रेखा, अनिल, भूपसिंह और मैं—हम चार व्यक्ति थे।

उस सुबह से अगले रोज़ शाम तक—उफ़ तौबा! क्या सचमुच कोई स्त्री अपने होशोहवास में वे सब हरकतें कर सकती हैं?

मगर डॉक्टर या श्री शेषन् तथा रामचन्द्रन् के आने पर उसका रूप सहसा कैसे बदल जाता था।

श्री शेषन् की समझदारी से ही उस रात उसे भेजा जा सका। अगले दिन चमन के लौटने पर मेरे हवाई जहाज़ से दिल्ली जाने की सलाह बनी।

दिल्ली पहुँचकर जो नक्शा सामने आया उसे भी क्या कभी भूला जा सकेगा?

5/2 शाम को पहुँचे—ताला तोड़ना पड़ा।

6/2 उसकी बहन का लड़का—

7/2 खामोशी

Hindi Premi

8/2 बी का आगमन—करोल बाग़ से कमलेश्वर को साथ लिया। राजपाल के यहाँ का दृश्य—टैक्सी ड्राइवर जीतसिंह 552—फिर राजकमल—

टेलीफ़ोन पर प्राप्त सूचनाएँ

रात को ओमप्रकाश के घर हुई बैठक—फैसला हुआ कि अगले दिन आकर वह वहाँ से अपना सामान ले जाएगी।

9/2 वह नहीं आई।

घबराहट हुई। कमलेश्वर के यहाँ से प्रद्युम्नसिंह को अमृतसर भेजा। रमेश की दावत थी किरण के यहाँ।

10/2 राजकमल में फिर गए। किसी तरह निकल कर टैक्सी में घूमता रहा। फिर शीला सिनेमा में Solomon & Sheba देखा। वहाँ एक रूमानी घटना घटित हुई।

11/2 सुबह अम्माँ आ गईं। वोहरा से भेंट—रिवोली के दो चक्कर—कमलेश्वर टैक्सी में रहा—बातचीत के बाद फिर टैक्सी में।

12/2 गिरधारी लाल, मोहन, वोहरा और पुरी से बातचीत दरियागंज में—फैसला।

13/2 वह सामान ले गई। मोहन को बस पर चढ़ा दिया।

14/2 अम्माँ को कीर्तिनगर छोड़ दिया।

15/2, 16/2 पैकिंग, शिफ्टिंग

17/2 अम्माँ चली गईं।

18/2 अपनी पैकिंग। शरत्-रमेश के साथ।

19/2 दीनानाथ से भेंट—ज्ञान की बात। टेलीफ़ोन! श्री चौहान से भेंट।

20/2 तैयारी—यात्रा।

21/2 कानपुर—वही स्त्री—दूसरे लोग।

22/2 इलाहाबाद

23-26/2 कलकत्ता—श्री शान्तिप्रसाद जैन तथा श्रीमती रमा जैन से बातचीत तथा नौकरी का निश्चय।

27/2 जमशेदपुर

28/2 विश्राम।

इसी महीने एक नए जीवन का सूत्रपात होगा—सम्पादकीय जीवन का। इससे आगे का जीवन क्या व्यवस्थित होने लगेगा?

1-3-1962

घर पर F. Ap. से भेंट। बातचीत। चाय की दो प्यालियों के इधर-उधर?

4-3-1962

गाड़ी जमशेदपुर से चल दी है।

Hindi Premi

जमशेदपुर रहकर इस बार खाने-पीने और सोने के सिवा कुछ नहीं किया। थकान इतनी थी कि कुछ किया जा ही नहीं सका। सचमुच रेखा और चमन कितने निकट के आत्मीय हैं। 8 जनवरी और आज के बीच इन दोनों ने जो कुछ किया है, उसे भी कभी भूला जा सकता है क्या?

और अनिल के प्यार को भी?

सवा आठ हो रहे हैं और गाड़ी किसी छोटे-से स्टेशन पर आ रुकी है। जाने कौन-सी ताजा चीज़ है जिसकी आवाज़ अँधेरे में लगाई जा रही है। इस अपरिचित स्थान का अँधेरा भी आज मुझे कितना आत्मीय लग रहा है।

6-3-1962

इलाहाबाद में एक दिन गुजार कर आगे की यात्रा पर चल दिया। यह यात्रा कल दिन के दो बजे तक चलेगी।

जीवन जिन भयावह परिस्थितियों में से गुज़रा है, उनकी एक उदासी मन में है। सोचना चाहता हूँ कि वह सब अब बीत गया है—परन्तु क्या सचमुच बीत गया है?

मेल गाड़ी की तेज़ रफ़्तार—तेज़ी से गुज़रते हुए अँधेरे के साथ—मन की सतह पर जमी हुई काई—दूर न जाने कहाँ दूब के उगने का-सा आभास—क्षितिज के छोर पर खोये हुए नक्षत्रों की लिखी हुई लिपियाँ—क्या आज धरती इतनी उर्वर रह गई है कि इससे उगा हुआ सचाई और ईमानदारी की बीज पनप सके? मगर मैं नास्तिक क्यों हो रहा हूँ? धरती अनुर्वरा कब रही है?

एक दिन सब कड़ुआहटें बीत जाएँगी। मगर उससे पहले अपना-आप भी क्या बीत चुका नहीं होगा?

7-3-1962

सुबह और सिर दर्द—इन दोनों का साथ कब छूटेगा?

20-3-1962

आज बेदी साहब ने अपना 'सेल्फ पोर्ट्रेट' लाकर सुनाया तो तबीयत खिल उठी। मन हुआ कि जाकर उनके हाथ, और हाथों के साथ वह झुर्रियोंवाला माथा चूम लूँ।

Hindi Premi

21-3-1962

9 तारीख़ को ज्वाइन किया था—तब से अब तक समय ही नहीं मिला। अभी तो काम में मन लगा हुआ है, आगे की कहना मुश्किल है।

17 से 'भारती' की भागदौड़ रही। अच्छा है, शान्ति से निपटारा हो गया। बच्ची को महसूस नहीं हुआ, यह सबसे अच्छी बात है।

हवा में वासन्ती स्पर्श और अपना अकेलापन—यह तो जीवन-भर की समस्या है मेरे भाई।

होली का दिन। खेलोगे? कैसे? कहाँ? किससे?
...शाम को साहित्यिकों की होली है—होली हुड़दंग!

अब तो घर के आडम्बर से ही मन भागता है। फ़्लैट लेकर रहने को मन नहीं होता। क्या ऐसे ही नहीं कट सकती?

1-4-1962

महीना वैशाख का।

नई फसल आएगी।

मगर मुझे वही घुन खाये गेहूँ के दाने खाने को मिलेंगे। उसी बन्द कमरे की बुसी हुई हवा में साँस लेनी होगी।

क्यों?

क्योंकि मैंने नई फसल के स्वागत में एक गीत लिखा था, ताज़ा हवा को अन्दर लाने के लिए अपनी साँकल को छुआ था।

मैं गुनहगार हूँ, मुझे मेरे पाप की सज़ा मिलनी ही चाहिए।

मगर महीना वैशाख का है। क्या मेरी सज़ा केवल वैशाख-भर के लिए टाली नहीं जा सकती?

मेमोरेन्डा

पुष्पा ने बम्बई में भी वही बखेड़ा किया। नतीजे के तौर पर मामला अब अदालत में है।

बम्बई : 1-10-1962

...तो आज मैनेजमेंट ने लॉक आउट कर दिया। सुबह दफ़्तर पहुँचे, तो दरवाज़े के आगे जाली खिंची हुई थी...।

Hindi Premi

2-10-1962

...आज हड़ताल का बारहवाँ दिन है। दफ़्तर अस्थायी रूप से रिट्ज होटल के कमरा नम्बर 305 में चला गया है। आज वहाँ सब लोग इस तरह जमा थे जैसे षड्यन्त्रकारियों का गिरोह हो। एक कमरे में बड़े अफ़सर गप कर रहे थे और दूसरे में छोटे अफ़सर 'काम' कर रहे थे।

अफवाह है कि दिल्ली के दफ़्तर में भी हड़ताल हो गई है। हड़ताली अपनी माँगों पर डटे हुए हैं, लॉक आउट का उन पर ख़ास असर नज़र नहीं आता। साह और के.सी. रामन दफ़्तर होकर आए थे। बता रहे थे कि हड़तालियों का हुजूम दफ़्तर के बाहर जमा था—मगर वे तोड़-फोड़ की मनःस्थिति में नहीं थे। सब लोग शान्त थे—मगर अपनी जगह मज़बूत।

कल जे.सी. के घर से आकर Bombelli's में चाय पीते हुए अच्छी चुहलबाज़ी रही। Crosswords के मिस्टर...सबसे loyal servant की तरह बात कर रहे थे और सबसे ज़्यादा घबराए हुए थे...।

उस दिन (शुक्रवार को?) दफ़्तर के बाहर ख़ासा मुज़ाहिरा हुआ। जे.सी. के खिलाफ जो प्लैकर्ड बनाए गए थे उनमें से कुछ इस तरह थे :

1. **J. C.—**
   This is your harem.
2. J. C. must go.

बम्बई : 7-11-62

चन्द दिनों में कितना कुछ हो गया।

6 अक्तूबर को लॉक आउट हट गया था। उस दिन से लोगों की जान-में-जान आई।

...16 अक्टूबर को त्यागपत्र दे दिया। 18 को अजन्ता-एलोरा की तरफ़ निकल गए। 22 को लौटकर आए। पता चला, कलकत्ता से बुलाहट हुई है। 23 को सुबह के प्लेन से कलकत्ता चले गए।

23 को श्री एस.पी. जैन के यहाँ खाने के बाद लम्बी बातचीत हुई।

24 को सुबह श्रीमती रमा जैन से फिर बातचीत हुई।

25 को सुबह फिर श्री और श्रीमती जैन से बातचीत हुई। चीन के संकट के बावजूद कई घंटे बात होती रही।

अपने में यह तजरुबा काफ़ी रोचक रहा।

26 की रात को जमशेदपुर चले गए और 27 की रात को लौट आए।

28 को शाम के प्लेन से वापस बम्बई पहुँच गए।

Hindi Premi

इन दिनों जे. सी. का रुख काफ़ी बदला हुआ नज़र आता है। मगर इरादा नौकरी में रहने का बिलकुल नहीं है।

रात 'कंचनजंघा' देखने गया। दार्जीलिंग के प्राकृतिक सौन्दर्य का बहुत सुन्दर चित्रांकन है। कहानी human detail और अच्छे screenplay के बावजूद आरोपित लगी।

बम्बई : 2-12-1962 (सुबह)

त्यागपत्र के विषय में मिस्टर राय से बातचीत हुई थी। वे कलकत्ता बात करके आए। 15 फरवरी को रिलीव करने की बात लिखकर दी गई है।

फ्लैट ख़ाली करने के लिए नोटिस दे दिया है। कार बेचकर कम्पनी के कर्ज़ की रकम चुका दी है। (यह कार भी एक कहानी ही रही!)

अब जगह बदलने की तैयारी करनी होगी। अम्माँ वरीन के साथ अपना कमरा लेकर रहेंगी (फिलहाल)। अपने लिए—वसुधैव कुटुम्बकम्!

इन दिनों दफ़्तर जाना और वहाँ कई घंटे कुर्सी पर बैठना बहुत अजीब-सा लगता है। मगर कोई चारा भी तो नहीं है।

इस बीच Asia Society की मिसेज़ क्राउन (Bonny?) आई थीं। लंच रूम में, रूबेन की पार्टी में तथा गुलमोहर में—तीन बार उनसे भेंट हुई। मसला कोई भी हो, राजनीति या साहित्य, ये ससुरे अमरीकन बात एक-सी बेहयाई से करते हैं।

दफ़्तर में आकर लोग त्यागपत्र के सिलसिले में जो तरह-तरह की बातें करते हैं, वे काफ़ी रोचक लगती हैं।

कल शाम को अवस्थी ने बियर की बोतलों को पहुँचाया। उसी समय राजेन्द्र सिंह बेदी और बलवन्त गार्गी आ गए। दो घंटे दौर चलता रहा। गार्गी अपने पेरिस और रोम के अनुभव सुनाता रहा। (soft, sentimental, bookish)। उठकर खाना खाने नैनकिंग चले गए। लगभग ख़ाली था। खाने के बाद घंटे-भर की मीटिंग Bombelli's में हुई। कॉफी का दौर चला। बेदी ने मुल्कराज आनन्द के बारे में जो कुछ बताया और गार्गी ने गुरुमुखसिंह मुसाफिर के बारे में—वह काफ़ी रोचक लगा।

स्वास्थ्य ठीक नहीं है। इस बारे में कुछ करना चाहिए।

Hindi Premi

1-1-63

रात काफ़ी चहलपहल में बीती। डेढ़ बजे तक सी. सी. आई. में थे–इसके बाद चार बजे तक एन. एस. सी. आई. में। सी. सी. आई. में प्रायः बुड्ढों की भीड़ थी, एन. एस. सी. आई. में तरुणों की। अपने जैसे लोग दोनों जगह मौजूद थे। रात के बारह बजे डांसिंग फ्लोर के हुड़दंग में भी शामिल रहे–उस वक़्त तबीयत खुश थी।

दिन भी खुशी-खुशी चढ़ा। ग्यारह बजे सोकर उठे। नहाकर गेलार्ड में काफ़ी पी। फिर घसीटा हलवाई के यहाँ जाकर पूरियाँ खाईं। बाद दोपहर दोस्तों के साथ घूमते कहकहे लगाते रहे।

शाम रेखा के साथ एनी के यहाँ चले गए। कुछ देर बाद दोनों के साथ आकर Bombelli's (Warden Road) में बैठे रहे। वे दोनों पेरिस के lesbian clubs के विषय में बातें करती रहीं।

वहाँ से उठने तक तबीयत उदास हो चुकी थी हालाँकि जब एनी के घर की तरफ़ जा रहे थे तो अचानक कुछ क्षणों के लिए लगा था जैसे यह शाम ज़िन्दगी की सबसे हसीन शामों में से हो।

इस वक़्त कमरे में हैं–Chateau Windsor Guest House के 12 नम्बर कमरे में। फ़्लैट कल ख़ाली कर दिया है। अपने लिए इसी तरह की ज़िन्दगी ज़्यादा स्वाभाविक लगती है।

कमरे में एक आदमी और है। उसे सुबह पहली बार देखा था। नाम उसने बताया था, याद नहीं रहा। वह दक्षिणी अफ्रीका का रहने वाला है। परसों सुबह के जहाज़ से वापस जा रहा है। चला जाएगा तो पूरा कमरा अपने रहने को हो जाएगा। इस तरह कमरा बाँटकर रहना अच्छा नहीं लगता।

वह आदमी लेटा हुआ खाँस रहा है। कमरे में एंटीसेप्टिक मरहम की गन्ध फैली है। जाने उसे एक्ज़ेमा की शिकायत है या केवल सरदर्द की। वह बीच-बीच में मेरी तरफ़ देख लेता है, मगर खामोश है। अचानक वह उठकर बैठ गया है। वह कह रहा है कि उसे खाँसी-ज़ुकाम और बुख़ार है। उसका जहाज़ परसों जाएगा। मोंबासा। वहाँ से शायद वह हवाई जहाज़ पकड़े। मुझे उसे देखकर मैथिलोन और सामी की याद आती है। 12 साल में ज़िन्दगी में इतना परिवर्तन आया है, फिर भी वह जहाँ की तहाँ रही है।

मन हो रहा है कि उठकर कहीं चला जाऊँ। मगर कहाँ?

वह आदमी बाहर चला गया है। मैं सोच रहा हूँ कि क्या अम्माँ इलाहाबाद में अकेली रह लेंगी? आज तक अकेली रही नहीं कभी। मगर चारा भी तो नहीं था। उन्हें किसी तरह यह आदत डालनी ही होगी। तभी तो मैं यह ज़िन्दगी जी सकूँगा–अकेले रहने और भटकने की ज़िन्दगी।

Hindi Premi

मन उदास है, इस उदासी में भी एक मिठास है। मैं यह उदासी खोना नहीं चाहता। इसमें से निकलना भी नहीं चाहता। लगता है, जैसे यह उदासी अन्दर के ज़ख़्मों पर लीपा हुआ एक मरहम है।

कुल चवालीस सुबहें बाक़ी हैं–आज के और मुक्ति के दिन के बीच!

परसों से काम शुरू करूँगा। जब तक कमरा अकेला नहीं हो जाता, अपना-आप स्वाभाविक नहीं लगता। स्वाभाविक न लगने पर काम कैसे किया जा सकता है?

परसों की रात भी अजीब थी। शीला, सोम, सन्तोष, सोना, अनिल सब लोग रात-भर फ़्लैट में थे। ढाई-तीन बजे तक गप होती रही। सुबह अजब घरेलूपन से चाय बनी। इतने दिन उस फ़्लैट में घर था, मगर वह घर नहीं लगता था। परसों घर उठ गया था, फिर भी शायद पहली बार वहाँ उस तरह के घरेलूपन का आभास मिला था। यह एक व्यंग्य था या compensation?

कमरे का पार्टनर भी बैठकर लिखने लगा है।...लिखा हुआ काग़ज़ उसने मरोड़कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया है और बालकनी में चला गया है। उसे जाने क्यों नींद नहीं आ रही?

मुझे भी नींद नहीं आएगी हालाँकि सुबह जल्दी उठ जाना है। खाँसता हुआ बीमार आदमी पास में लेटा हो, तो अपना-आप भी आधा बीमार-सा ही लगता है।

यह इस साल की शुरुआत है। अगले साल की शुरुआत भी शायद ऐसी ही होगी और उससे अगले साल की भी। यह सब अपनी ओर सिर्फ़ अपनी वजह से ही है। अपने आपको आदमी कैसे बदल सकता है? और बदलने की ज़रूरत भी क्या है?

2-1-63

और कुछ न सही, डायरी ही सही। प्यारे, रात का खाना हज़्म करने के लिए कुछ तो लिखा करो।

ख़ाली दिन ख़ाली आया और ख़ाली ही बीत गया। पुरलुत्फ़ बात एक ही हुई कि दाढ़ी आज हज्जाम से बनवाई। उसने गर्म तौलिये में मुँह लपेटकर मल दिया, तो जवानी के (!) दिन याद हो आए।

प्यारे खानाबदोश, अब मुसाफिरखाना हाज़िर है। गाड़ियाँ प्लेटफार्मों पर लग रही हैं–तुम्हारे लिए। यह तो तुम तय कर नहीं सकोगे कि किस गाड़ी का टिकट लो, सो जो गाड़ी सबसे पहले नज़र आ जाए, उसी में सवार हो जाना। कहीं-न-कहीं तो पहुँचोगे ही, चाहे पहुँचकर कहीं और को हो लेना।

साथ के बिस्तर पर सोनेवाले आदमी की शायद इस कमरे में यह आख़िरी रात है (नाम उसका अब भी मालूम नहीं)। दोनों बार आने पर कम्बख़्त कमरे में दिखाई नहीं दिया! रात को आऊँगा तो सो रहा होगा। सोकर उठूँगा तो रवाना हो चुका होगा।

Hindi Premi

नियति है प्रिय, यह मेरी, तुम्हारी और उसकी...
यह 'उस' कौन है, डियर?

13-1-1963

सोचा था, आठ जनवरी को डायरी लिखूँगा। याद ही नहीं रहा।

बम्बई : 15-9-63

नहीं सोच पा रहा कि क्या लिखना चाहता हूँ। क्यों आज महीनों बाद डायरी उठाई है...क्यों कुछ पंक्तियाँ लिखकर एक पन्ना फाड़ दिया है...क्यों दूसरी बार लिखकर तीन शब्द काटने के लिए रुका हूँ...मन सुलझ रहा है, या अभी उलझन में है?

एक हलचल ज़रूर है। अशान्ति। कोई चीज़ अन्दर-ही-अन्दर काट रही है। क्यों? किसकी वजह से? क्या वजह अपना-आप ही नहीं?

शायद। हालाँकि मानने में तकलीफ़ होती है। पिछले कुछ सालों में बहुत-बहुत उलझा हूँ। ज़्यादातर उलझनें अपने स्वभाव की रही हैं। सच, कैसा हूँ मैं? कहीं बहुत रूखा, कहीं बहुत कोमल। एक क्षण बहुत खुश, दूसरे क्षण बहुत उदास। हालात ने मन को बहुत कन्फ्यूज़ कर दिया है। किसी क्षण अपने पर बहुत विश्वास होता है, किसी क्षण बिल्कुल भी नहीं रहता। कभी अपना-आप बहुत भरा हुआ लगता है—इतना कि बरसों लिखकर भी हल्का न हो। पर थोड़ी ही देर में स्थिति बिल्कुल दूसरी हो जाती है। लगता है कि यह एक झूठा भ्रम है, केवल एक निराधार उत्कंठा। वरना अपने में कुछ है नहीं। साल-पर-साल गुज़रते जाते हैं। उम्र बीतते-बीतते शायद बीत ही जाएगी—एक खोखले असन्तोष में। कुछ समझ में नहीं आता। बहुत बार खुद ही तो कहा है—कुदरत का मज़ाक होते हैं कुछ लोग। योग्यता उनमें नहीं हो तो सिर्फ़ एक हलचल होती है। तत्त्व नहीं होता, सिर्फ़ आभास होता है। वह आभास ही ज़िन्दगी-भर छलता रहता है। कहते हुए भी मन में हौल उठा करता है।...अपने अन्दर की हलचल भी आभास की छलना ही तो नहीं?

इस वक़्त मन परेशान क्यों है? क्यों तिन्नी को बार-बार डाँट देता हूँ? वह गरीब बहुत नई, बहुत अधपकी है, इसीलिए? आसपास के सब लोग ज़्यादा पके, मँजे हुए हैं। वह गरीब कोशिश करके भी उस स्तर तक उठ नहीं पाती। मेहनत की आदी भी नहीं है। मन उसका ज़रूरत से ज़्यादा रूमानी है। इतना कि किसी भी क्षण मुझसे तटस्थ नहीं हो पाती। किसी भी क्षण अपनी रूमानी कल्पना से बाहर नहीं जीती। काम करती है, मगर उसमें जी जान से अपने को खो नहीं पाती। अकेला होता तो उसे ज़्यादा प्यार से समझाता। दूसरों की वजह से उलझ जाता हूँ, तो डाँटने लगता हूँ। चाहता हूँ कि मेरे मन की हर बात वह कहे बिना समझ जाए। वैसे ही काम करे।

Hindi Premi

मेरे बरसों के संस्कार वह चार दिन में अपने अन्दर समेट ले। वह भी चाहती है। कोशिश करती है। पर बार-बार थक जाती है। बार-बार सब कामों से हटकर मेरे पास खिंच आती है। मुझे बुरा नहीं लगता। अच्छा लगता है। मुझे ख़ुद इस चीज़ की भूख है। गहरी भूख। वह तटस्थ हो रहे, तो ख़ुद मुझी को बुरा लगेगा। पर हर क्षण उसे दूसरों की नज़र से भी देखता रहता हूँ। चाहता हूँ कि वह पहले उन नज़रों से सही उतरे, बाद में मेरी नज़र की तरफ़ ध्यान दे। चाहे मुझे उसमें तकलीफ़ ही हो।

अब नींद नहीं आ रही। मन था उसे देर तक समझाऊँ। पर अवस्था ऐसी नहीं है। वह दूसरे कमरे में है। इस कमरे में मैं हूँ, राज है, बासु है। वे दोनों सो गए हैं। साथ के कमरे में भी सब लोग सो गए हैं। शायद तिन्नी भी। मुझे बहुत ग़ुस्सा है उस पर। बहुत तरस भी आ रहा है। जब भी ऐसी व्यवस्था होती है, वह ज़ाहिरा तौर पर ख़ुशी से स्वीकार क्यों नहीं कर पाती? इतनी मेच्योरिटी उसमें क्यों नहीं है? कब आएगी? आएगी भी या नहीं? वह क्यों नहीं समझ पाती कि अपने इस रूमानी बचपने से, दूसरों के बीच अपनी कमज़ोरी ज़ाहिर करके, वह मेरे प्राइड को चोट पहुँचाती है। उन सबके बीच जो आज तक मुझसे छोटे रहे हैं, वह मुझे छोटा बना देती है? क्यों नहीं समझ पाती वह कि मुझे भी उसकी उतनी ही ज़रूरत महसूस होती है, सिर्फ़ मैं जब्र करना जानता हूँ? क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मेरी या उसकी तरफ़ से कोई भी ऐसा व्यवहार हो जो मुझे छोटा बना दे?

दिल घबरा रहा है। खाना ज़्यादा खाया है। महज़ शेखी में। अब क्या हो सकता है? यह तो खाते वक़्त सोचना चाहिए था। मगर मैं वक़्त पर कब सोचता हूँ?

8-10-63

मन शान्त नहीं है। कभी शान्त हुआ भी है मन? लिखने लगूँ, तो न जाने क्या-क्या लिख जाऊँगा। अच्छा यही है कि फिलहाल अपने को रोके रहूँ और उम्मीद करता रहूँ कि शायद...।

नई दिल्ली : 26-4-64

जालन्धर छोड़ने के बाद डायरी लिखने की आदत ही लगभग छूट गई है। धूल-भरी डायरियाँ उठाकर देखता हूँ कि कहीं-कहीं कुछ पंक्तियाँ कभी लिखी हैं, बस...!

और अब भी यहीं आकर विराम...मुझे हुआ क्या है?

नहीं, कुछ-न-कुछ ज़रूर लिखूँगा। भले इतना ही कि आज इतवार है—अप्रैल की छब्बीस तारीख़। दिन के...मगर घड़ी तीन तारीख़ को शिमला जाते हुए रास्ते में टूट गई थी। अब तक उसकी मरम्मत नहीं हो पाई। पैसे न होने की वजह से।

Hindi Premi

आज इतवार है। सोचा था उठकर लेख पूरा करूँगा, पर उसे हाथ नहीं लगा पाया। पहला लेख लिख रहा हूँ अंग्रेज़ी में। पता नहीं बन पाएगा या नहीं।

आज आगे लिखना असम्भव है। कल कोशिश करूँगा।

नई दिल्ली : 2-6-64

...सातवाँ दिन है आज कि कुछ लिखा-पढ़ा नहीं जाता। सोचा भी नहीं जाता। कमरे के बाहर से अक्सर कौओं की आवाज़ें सुनाई देती हैं। पहले भी ऐसे ही आती होंगी ये आवाज़ें, पर सुनाई नहीं देती थीं।

आसपास के सारे माहौल से मौत की गन्ध आती है। अपने से भी। राजधानी में चलती हुई राजनीतिक जोड़-तोड़ मौत की घाटी में कुलबुलाते कीड़ों की याद दिलाती है।

27 मई की दोपहर को अपने पुराने काग़ज़ छाँट रहा था। बरसों के पुराने काग़ज़। छाँटने का उत्साह न ला पाने के कारण ये काग़ज़ ज़्यादा उलझते गए थे। बरसों इन्हें साथ-साथ लिए फिरा था। बीच-बीच में महीनों ये एक या दूसरी जगह बन्द रहे थे। कभी खुलते भी थे, तो सैकड़ों और काग़ज़ों के साथ उलझकर, पहले से ज़्यादा बेतरतीब होकर, फिर बन्द हो जाते थे। हमेशा सोचता था कि किसी-न-किसी दिन इन्हें छाटूँगा।

पहले भी दो-एक बार बेकार कोशिशें की थीं। उस दिन एक और कोशिश कर रहा था। अनीता हाथ बँटा रही थी। अकेले तो शायद कोशिश ही न कर पाता।

सुबह से हम लोग काम में लगे थे। बारह-साढ़े बारह बजे कमलेश्वर आ गया– जर्मन स्कॉलरशिप का फार्म भरने के लिए। घंटा-डेढ़ घंटा उसके साथ निकल गया। इस बीच खाना भी खा लिया।

कमलेश्वर के चले जाने पर फिर काम शुरू किया। पर दस ही मिनट में कमलेश्वर नीचे से लौट आया। चेहरा उड़ा हुआ था। उसके मुँह से बस इतना ही निकला, "Nehru is dead...dead."

नई दिल्ली : 8-6-64

कल रात फिर वही हुआ जो एक बार इंडस कोर्ट में हुआ था...बल्कि उससे भी भयानक था इस बार का पागलपन...आज मन बिलकुल टूट गया है...जैसे कोई उम्मीद बाक़ी न हो...

दूध की तरह उफनती भावना...पर जैसे किसी ने इसमें एसिड मिला दिया है...

Hindi Premi

...तुमसे सच नहीं कहा था किसी ने कि तुम एक अभिशापित व्यक्ति हो जिसके लिए कोई–कोई रास्ता नहीं है?

दिन-भर मन पर जड़ता छाई रही। आज पंडित नेहरू का अस्थिप्रवाह था इलाहाबाद में। सुबह रेडियो कमेंटरी भी नहीं सुनी। मदन के यहाँ मीटिंग में गया था–Short story quarterly के बारे में बात होती रही। मशीन की तरह बात करता रहा। मन बात में नहीं था। अपने में भी नहीं। लगता है, उन लोगों ने नोट भी किया। पर किसी ने कुछ पूछा नहीं।

कल बम्बई जाने का प्रोग्राम है।

नई दिल्ली

और कुछ दिन बीत गए। कई प्रोग्राम बने और टूटे। बम्बई, गुलमर्ग, बम्बई, बम्बई, शिमला, बम्बई। जाना कहीं नहीं हुआ। बस एक बार चंडीगढ़ होकर लौट आया।

...दिमाग़ बिलकुल ख़ाली-ख़ाली रहता है। पढ़ने-लिखने को बिलकुल मन नहीं होता। गर्मी की वजह से भी और उन कारणों से भी जो कि रोज़ छोटी-छोटी बातों को लेकर पैदा हो जाते हैं।

कुछ दिन उन स्थितियों का ब्यौरा लिखूँगा। हो सकता है उससे अपने सामने स्थिति कुछ स्पष्ट हो सके...!

नई दिल्ली : 25-6-64

बात-बात में उसने एक ऐसी बात कह दी कि उसके पास से उठ आया। लगा कि खटपट से बचकर काम करने का एक ही रास्ता है कि उसे दो-एक महीने के लिए, कम-से-कम, बम्बई भेज दिया जाए। चुपचाप उठकर हजामत बनवाने चला गया। लौटकर आया, तो वही रोज़ की बात। वह आकर गले में बाँहें डालकर और चेहरे-से-चेहरा सटाकर पास बैठ गई। पहले चुपचाप उसे देखता रहा। फिर दो घंटे उससे बात होती रही।

जब गम्भीर होकर बात करती है तो काफ़ी सचेत हो जाती है। कह रही थी कि emotional integration चाहे कितना हो, साँस की दो अलग-अलग नलियाँ होने का द्वैत तो रहेगा ही। ख़ून का दौरा अलग-अलग दो दिमाग़ों में जाएगा, तो कुछ तो अलग-अलग ढंग से वे सोचेंगे ही। फिर तुम कैसे उम्मीद करते हो कि मैं बिलकुल perfect हो जाऊँ, जैसे तुम चाहो। बिलकुल वैसे ही चलूँ वैसे ही सोचूँ? मैंने अस्सी फीसदी अपने को तुम्हारे साँचे में ढाल दिया है, बीस फीसदी अगर नहीं ढाल पाती तो उसके लिए क्या करूँ? दिन में पाँच मिनट लड़ाई तो किन्हीं भी पति-पत्नी में हो

Hindi Premi

जाती है—बल्कि इससे ज़्यादा ही होती है। तुम कैसे चाहते हो कि मैं ऐसी हो जाऊँ कि कभी लड़ा ही न करूँ?

मैं उसे अपने बारे में बताता रहा, अपनी एकान्त की खोज के बारे में जितना सुनती गई, उतना उदास होती गई। अन्त में रो दी। फिर बच्चों की तरह थोड़ा प्यार पाकर हँसने लगी। बोली, ''मैंने तो सौ फीसदी अपने को तुम्हारे सामने सरेंडर कर दिया है। मुझे अपनी ज़िन्दगी तो जीनी ही नहीं है जीना है सिर्फ़ तुम्हारे लिए, तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार चलते हुए।'' पर अगले ही क्षण मेरी इच्छा के अनुसार चलने के लिए मेरे मुँह से सिगरेट छीन लिया, ''पढ़ा नहीं आज अखबार में कि कैंसर हो जाता है?'' और खाना बनाने चली गई।

पूछा कि पढ़ाई के लिए महीने दो महीने राज भाई के पास बम्बई भेज दूँ तो गम्भीर होकर बोली, ''देखो राकेश, जो भी तुम्हें ठीक लगे, एक बार सोचकर मुझे बता दो। मेरी मर्ज़ी की यहाँ वकत ही क्या है? तुम कहोगे, तो चली जाऊँगी।'' और उसकी नाक जैसे कि अक्सर ग़ुस्से में लम्बी हो जाती है, वैसे हो गई।

अब खाँस रहा हूँ, तो नीचे दरी पर पड़ी-पड़ी कह रही है, ''ना-ना-ना! खाँसना नहीं।''

26-6-64

आज मुक्तिबोध को भोपाल से यहाँ ले आया गया है। जिस अचेतन अवस्था में है, उसे देखकर डर-सा लगता है। शरीर में जान तो जैसे है ही नहीं। जिस शालीनता से उनकी धर्मपत्नी यह सब सह रही हैं, वह सचमुच प्रशंसनीय है। बचने की सम्भावना कितनी है, इसका पता डॉ. विग के लौटकर आने पर ही शायद चल सकेगा।

दिन में ज़्यादा वक़्त घर से बाहर रहा। दोपहर को कुछ देर काम किया। रात को आने तक उसने एक कहानी लिख रखी थी—अधूरी...रेखा के साथ 'एल्प्स' में बिताई एक दोपहर को लेकर। पूछती रही कि कैसी लगी। कहा, पूरी कर लो तो बताऊँगा। इस पर ज़िद पकड़ बैठी। नहीं, बताओ। यही बता दो कि थीम कैसी है। कहा कि पूरी होने से पहले कोई कमेंट नहीं दूँगा। इस पर मन्नू की अनलिखी कहानियों के उससे सुने प्लाट सुनाने लगी। मना किया, जो रूठकर बैठ गई। फिर कमलेश्वर के संग्रह 'खोई हुई दिशाएँ' की 'प्लाटविहीन एब्स्ट्रेक्ट' कहानियों के प्लाट सुनाने लगी। बोली कि ये तो कहानियाँ हैं ही नहीं, डायरी के अंश हैं—इससे अच्छी डायरी तो वह खुद लिख सकती है। मना किया कि अब रात के वक़्त कहानियों की चर्चा से बोर न करो, तो कोर्स की किताब उठाकर मार खाई-सी दोहरी होकर उस पर झुक गई। बीच-बीच में शिकायत-भरी नज़र से देखती रही।

Hindi Premi

और सब बात समझ जाती है—इतनी बात नहीं समझ पाती कि मुझे भी कभी अपने लिए एकान्त चाहिए, लिखने और सोचने के लिए समय चाहिए। उसे लगता है कि मेरा होना तो सिर्फ़ उसके लिए है—बस उसे देखने, प्यार करने और उसकी बातें सुनने के लिए—कम-से-कम उतना समय जितना कि घर पर रहूँ। कहेगी, "इतनी-इतनी देर तो तुम बाहर रह आते हो। मैं तुमसे कब बात करूँ? मेरी बात तुम्हें अच्छी लगती ही नहीं। मेरी बात तुम कभी सुनना ही नहीं चाहते। मैं सोचती थी कि तुम मेरे सहायक और पथ-प्रदर्शक बनोगे, पर तुम हो कि...।"

कहते-कहते कांशस हो जाती है। "सॉरी, सॉरी, सॉरी। मेरा यह मतलब नहीं था। सच, यह मतलब मेरा बिलकुल नहीं था। तुम जो कुछ मेरे लिए करते हो, वह तो है ही। पर मैं जो चाहती हूँ, वह क्यों नहीं करते? देखो, मन्नू यादव को अब भी अपनी कहानियाँ दिखाती हैं।"

"तो मैं क्या तुम्हारी कहानियाँ नहीं देखता? मैं तो बल्कि...।"

"बस यही तो बात है। तुम मुझे बस ताने ही दे सकते हो। जानते हो कि मुझे अभी ठीक से लिखना नहीं आता। जो कुछ मन में होता है, जैसे-कैसे काग़ज़ पर उगल देती हूँ। तुम चाहते हो तो नहीं लिखा करूँगी।"

"हाँ, यही तो मैं चाहता हूँ। इसीलिए तो तुम्हारी एक-एक कहानी दोहराने में इतना वक़्त लगाता हूँ।"

"तो यह सब अपनी पत्नी के लिए ही तो करते हो। मैं तो यह कहानी लिखना ही नहीं चाहती थी, और भी कई कहानियाँ हैं जो मैं नहीं लिख रही। मेरे दिमाग़ में इस वक़्त..."

"कम-से-कम सात कहानियों के प्लॉट हैं।"

"तीन कहानियों के प्लॉट हैं...ऐं...क्या कहा तुमने...अब मेरा मज़ाक उड़ाते हो न...मेरे साथ हमेशा तुम्हारा यही सलूक रहेगा—" और वह रोने लगती है।

घर से जाकर गर्मी में जिस्म टूटने लगा। लौटते में काफ़ी सिरदर्द था।

आकर खाना खाया। खाना खाते हुए आर्थिक परेशानी का ज़िक्र किया तो गुम-सुम-सी हो रही। बोली, "एक मेरी कहानी अभी पढ़ लोगे?" जैसे कि कहानी पढ़ना आर्थिक समस्या का हल हो।[1]

रात को चिट्ठियाँ लिखने बैठा, चौकी पर पास बैठकर ऊपर झुकी रही। पूछती रही, "अब कैसी तबीयत है?"

कुछ चिट्ठियाँ छाँटकर फ़ाइलों में रखने को दीं, तो अनमनी-सी फ़ाइलों के पास चली गई। फिर चिट्ठियों का पुलन्दा एक तरफ़ रखकर फ़र्श पर लेट गई। थोड़ी देर में मैं बाहर होकर आया, तो बोली, "राकेश, तुम मुझे बम्बई भेज दो।"

Hindi Premi

उसके बाद माथे पर त्योरियाँ डाले कुछ देर लगातार बोलती रही कि किस तरह उसका यहाँ होना मेरे काम में बाधा डालता है–कि आर्थिक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए उसका मुझसे दूर रहना ही ठीक है।

एक साँस में बोली, "तो मैं कल बम्बई जा रही हूँ" और दूसरी साँस में, "क्या मदन से कहकर तुम मुझे अभी इंटर की क्वालिफिकेशन के बेसिस पर कोई नौकरी नहीं दिलवा सकते?"

"तुम बम्बई जाना चाहती हो या नौकरी करना चाहती हो?"

इस पर उसकी त्योरियाँ गहरी हो गईं और वह फिर कुछ देर लगातार अपनी परेशानी की बात करती रही–कि उसके मन पर बोझ लगातार बढ़ता जा रहा है–कि आख़िर मेरे काम न करने के लिए उसी को ज़िम्मेदार ठहराया जाएगा–कि अभी वह बाईस साल की नहीं हुई, इतनी लम्बी उम्र किस तरह कटेगी–कि दो-एक साल में मन पक्का करके वह मेरे साथ केवल 'इमोशनल' सम्बन्ध रखेगी, शारीरिक सम्बन्ध बिलकुल खत्म कर देगी...।

.

28-6-64

रात (या सुबह) साढ़े तीन-चार तक बात का सिलसिला चलता रहा।

ग्यारह से बारह के बीच अपनी तैयारी करती रही। बारह बजे बोली कि गाड़ी आनेवाली होगी, अभी चले चलें। मैंने कहा अभी रुको, मैं नहा लूँ, फिर खाना खाकर एक बजे तक चलते हैं। मैं नहा लिया तो खाना लेकर आ गई। खाना खाकर मैंने कहा कि टैक्सी लाने से पहले मैं कमलेश्वर को बुलाता हूँ, उससे नमस्कार-अमस्कार कर लो। कमलेश्वर आया, तो पहले दो-चार मिनट उससे बोली नहीं, फिर रोती हुई पास आकर बैठ गई।

"क्या बात है?" कमलेश्वर ने पूछा।

"कुछ नहीं, बम्बई जा रही हूँ," और सारा चेहरा उसका आँसुओं से भीग गया।

"अपनी मर्ज़ी से ही जा रही हो न?" कमलेश्वर ने पूछा।

इस पर फूट पड़ी। "ये मेरी वजह से काम नहीं कर पाते। यूँ वजह चाहे आने-जानेवालों की हो, पर बात मेरे सिर पर ही आती है। सो मैं जा रही हूँ। देखूँगी, मेरे पीछे कितना काम करते हैं।"

बात खुलने लगी, तो खुलती गई। कमलेश्वर चुप बैठा सुनता रहा। दो-चार बार मैंने बात काटकर रोकने की कोशिश की भी पर रुकी नहीं। "मेरी नेचर ही ऐसी है तो मैं क्या करूँ। मैं बहुतेरा अपने पर कन्ट्रोल करती हूँ, पर नहीं कर पाती। बात दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जाती है। आपको नहीं पता, कैसे-कैसे क्राइसिस में से हम लोग गुज़रे हैं। पहले तो ऐसी-ऐसी स्थितियाँ आया करती थीं कि बस...। मैंने अपने को

Hindi Premi

कितना ही डेवेलप पहले से किया है, पर जो नहीं हो पाता, उसके लिए क्या करूँ? मैंने सुबह कहा इनसे कि मुझे मत भेजो, मैं मर जाऊँगी। मेरे लिए वहाँ एक-एक साँस लेना असम्भव होगा। पर इन्होंने डाँट दिया कि बार-बार नए-नए प्रोग्राम क्यों बनाती हो? अब इसीलिए मैं जा रही हूँ।''

''तुम अपने मन से क्या चाहती हो?'' कमलेश्वर ने पूछा।

''अपने मन से अब जाना ही चाहती हूँ।'' और फिर रोने लगी।

मैंने फिर समझाना चाहा कि अब आर्थिक स्थिति इतनी ख़राब हो गई है कि और रिस्क हम नहीं उठा सकते, तुम अपनी ही नहीं, मेरी भी तो स्थिति देखो। मुझे दोहरी परेशानी है—पूरे साल-भर से चल रही है। एक तरफ़ तो पैसा नहीं है, उधार चढ़ता जाता है। दूसरी तरफ़ कुछ लिख-पढ़ न पाने से वैसे भी अपने में व्यर्थता-सी लगती है। अगर बीच में दो-एक महीने हम एक-दूसरे को ब्रेक दें, तो उससे हम लोगों के लिए अच्छा ही रहेगा।''

''इस ब्रेक से मैं तो बिलकुल ब्रेक कर जाऊँगी,'' वह बोली। ''पर मैं कुछ कहती नहीं। आप चाहते हैं चली जाऊँ, तो चली जाती हूँ।''

फिर समझाया कि 'इमोशन' पर काबू पाना कई बार कर्त्तव्य हो जाता है। कमलेश्वर ने भी समझाया। बोला, ''जाओ, टैक्सी ले आओ।''

''मैं अभी टैक्सी लेकर आता हूँ,'' कहकर मैं उठा खड़ा हुआ। पीछे से कमलेश्वर भी आ गया।

टैक्सी आई, तो उसमें भी रोती हुई सवार हुई। सबको ऐसे हाथ जोड़े जैसे क्रास पर लटकने जा रही हो। रास्ते में मेरा हाथ हाथ में ले लिया। स्टेशन के पास पहुँचकर बताने लगी कि दवाई की शीशी कहाँ रखी है और—और क्या-क्या कहाँ-कहाँ पर है। आँखों में रुके हुए आँसू बार-बार नीचे ढुलक आना चाहते हैं।

स्टेशन पर उतरकर देखा कि जिस डायरी में रुपए रखे थे, वह घर पर ही भूल आया हूँ। कुल दस रुपए ज़ेब में थे। गाड़ी के छूटने में सिर्फ़ पौन घंटा रहता था। लाचार दूसरी टैक्सी पकड़कर वापस चले आना पड़ा—यह सोचकर कि अब तो रात की गाड़ी से ही जाना हो सकता है।

शाम को जाकर उसकी सीट पठानकोट एक्सप्रेस में बुक करा आया। उससे पहले काफ़ी देर उसे भाषण दिया—बचकाना हरकतें छोड़कर एक गम्भीर स्तर पर मन को लाने के लिए। कुछ देर रुआँसी रही, फिर हारे-से भाव से माफ़ी माँगने लगी। मैं ग़ुस्से में बोलने लगा, तो बोलता ही गया। लम्बा भाषण दिया कि उसका सारा attitude है—I versus the world, कि उसे अपने करने, होने, सहने, न सह पाने का ही एहसास रहता है—सारे परिवार को एक इकाई के रूप में लेकर वह 'हम' में नहीं जी सकती।

Hindi Premi

और भी जो-जो बातें मन में आईं, कहता गया। वह कुछ नहीं बोली। बाँहों में सिर डालकर पड़ी रही। कुछ देर बाद उठ आई। ''देखना, इस बार वहाँ से पूरी तरह बदलकर आऊँगी,'' हल्के से कन्धे पर सिर रखकर बोली। ''जैसी तुम चाहते हो न, बड़ी और गम्भीर—वैसी ही बनकर आऊँगी। आज तक के लिए तुम माफ़ कर दो। कर दिया है न माफ़?''

मन उमड़ आया, तो उसके सिर को सहलाता रहा। ''अच्छा ठीक है, अब ये बातें छोड़ दो। अगर सचमुच अपनी बात साबित करना चाहती हो, तो वहाँ जाकर ठीक से पढ़ो और सितम्बर में परीक्षा दो।''

''ज़रूर पढ़ूँगी। ज़रूर परीक्षा दूँगी। माफ़ तुमने कर दिया है न?''

''कर दिया है।''

''भाई को अच्छी-सी चिट्ठी लिखोगे?''

'लिख दूँगा।''

''भाभी को भी।''

''उन्हें भी।''

''और देखो—इक्कीस को वर्षगाँठ के दिन ज़रूर आ जाना।''

''अच्छा।''

''ज़रूर!''

''कह दिया है न।''

''देख लेना, इस बार मैं वहाँ से कितनी अच्छी होकर आऊँगी।''

टिकट ले आने के बाद भी इसी तरह की बातें करती रही। आठ बजे खाना खा लिया। साढ़े आठ पर टैक्सी मँगवा ली। अम्माँ ने कहा, वे भी साथ चलेंगी।

स्टेशन पर टहलते और बातें करते रहे। रोने से मना किया था, सो अन्दर से रुआँसी होकर भी ऊपर से संयत रही। बताती रही कि रूमालों से लेकर चिट्ठियों तक कौन-सी चीज़ कहाँ रख आई है। वही एक बात कई-कई बार। यह भी कहती रही कि सिगरेट कम पीना। आँखों से, होंठों से, बातचीत से लग रहा था जैसे यह लड़की लड़की न होकर पतली-सी खाल में भरी कोई भावना हो—एकान्तिक भावना जो कि एक व्यक्ति के समूचे अस्तित्व को काटकर, आप्लावित करके, यहाँ तक कि तहस-नहस करके, स्वयं भी तहस-नहस हो जाना चाहती हो। उस समय उसके पहले के कहे शब्द मुझे याद आते रहे—''क्या किसी तरह मैं पूरी-की-पूरी 'फिजिकली' तुम्हारे अन्दर नहीं समा सकती?''

और लग रहा था कि उसके शरीर को अगर कहीं से भी नाख़ून से कुरेद दूँ, तो वह वहीं से जेलीफिश की तरह टूट जाएगी और पलों में बहकर अदृश्य हो जाएगी।

गाड़ी चलने से कुछ पहले अन्दर जाकर अपनी खिड़की की सीट के पास बैठ गई—मेरे कहने से। गाड़ी ने सीटी दी, तो देर तक हाथ दबाए रही। गाड़ी चली, तो

Hindi Premi

दूर तक हाथ हिलाती रही। पर अचानक गाड़ी रुक गई। किसी का बच्चा नीचे रह गया था।

जल्दी से पास पहुँचे, तो फिर हाथ पकड़कर बोली, "देखा, मैंने गाड़ी रोक दी है।"

गाड़ी दोबारा चली, तो बोली, "अच्छा अम्माँ, अब नहीं रोकूँगी।"

फिर हाथ हिलाते-हिलाते गाड़ी दूर निकल गई।

लौटते में बिना बात के अम्माँ पर ग़ुस्सा हो आया। रास्ता भर 'शाउट' करता रहा।

29-6-64

आज पहला दिन है जब मैं घर में हूँ और वह घर में नहीं है।

दिन-भर जमकर काम किया। शाम को रोज़ की तरह टी-हाउस, काफ़ी-हाउस में गया। कनॉट प्लेस का चक्कर लगाया। कुछ लोगों की धुनाई-खिंचाई की। कहकहे लगाए। मगर बार-बार ध्यान आता रहा—वह अभी गाड़ी में है...अभी पूरी रात का सफर उसे और करना है...।

घर आया तो बहुत-सी डाक पड़ी थी। अधिकांश चिट्ठियाँ उसी के नाम थीं—भाई और भाभी की तरफ़ से। रमेश बक्षी की चिट्ठी भी आधी उसी के नाम थी। मेरे नाम आई भाई और भाभी की चिट्ठियों में भी उसी का ज़िक्र था।

उसके नाम एक पत्र लिखकर ये सब चिट्ठियाँ साथ बन्द कर दीं। अब रात काफ़ी हो गई है। तय नहीं कर पा रहा कि बाहर सोना ठीक होगा या अन्दर।

1-7-64

कोशिश की कि आज बाहर सो जाऊँ, पर अभी तक नींद नहीं आई। सो उठकर अन्दर चला आया कि और कुछ नहीं, तो डायरी ही लिखी जाए।

...दिन में अकेले होना अच्छा लगा। लगा जैसे एक मुद्दत के बाद खुली हवा में साँस लेने का—अपने ढंग से जीने का—मौका मिला हो। लगा कि अकेलेपन की ज़िन्दगी—बिना किसी की किसी भी तरह की दखलन्दाजी के—ही अपने लिए स्वाभाविक है कि चौदह महीने ख़ामख़ाह एक दीवार से लड़ते हुए गुज़ार दिए—अगर तभी से अकेलेपन में रहकर काम शुरू कर दिया होता, तो अब तक जाने क्या-क्या लिख डाला होता।

शाम को मन्नू ने कहा, "अनीता बम्बई में ही है या लौट आई?"

"वहीं है, क्यों?"

"आपका कुछ भरोसा थोड़े ही है कि तार देकर बुला ही लिया हो। या कल-परसों में खुद वहाँ पहुँच जाएँगे।"

Hindi Premi

"मैं बीस को जाऊँगा। इक्कीस को उसकी एनिवर्सरी है न, इसलिए।"

"वही तो मैं कह रही थी। पाँच दिन में उधर भागेंगे और कहने को यहाँ काम हो रहा है।"

घर लौटकर आया, तो ख़ालीपन महसूस हुआ। अम्माँ ने एक बार आवाज़ नहीं सुनी, तो चिल्लाने लगा, "आपको तो मेरी आवाज़ सुनाई देती ही नहीं।"

बाहर जाकर लेटा, तो अकेलापन और भी महसूस हुआ। लगा कि वह यहाँ होती, तो इस वक़्त आइसबॉक्स ख़ाली कर रही होती, दरवाज़े-खिड़कियाँ खोल रही होती। फिर पास आकर धीरे से कहती, "गुडनाइट!" दाँतों पर उसके दाँतों का तीखा दबाव और गालों पर उसके होंठों की गहरी मसलन महसूस हो रही होती। पास की चारपाई पर आकर लेटती, तो एक बार हाथ पकड़कर दबा देती। कहती, "सिर दबा दूँ?"

मना करने पर चुप हो जाती। फिर पूछती, "दवाई?"

फिर मना कर देने पर एक बार झुककर हाथ को चूम लेती। फिर दोबारा कहती, "अच्छा, गुड नाइट।"

2-7-64

सिनेमा हाउस में बैठे-बैठे सोचा कि एक उपन्यास लिखना चाहिए—दिल्ली की ज़िन्दगी के 'स्पॉट नोट्स' के रूप में। ऐसा कि जिसमें ज़िन्दगी के कच्चे रेशे ही हों, कहानी न हो। इससे ज़्यादा कुछ नहीं सोच सका क्योंकि गर्मी बहुत थी।

अब रात हो गई है। मतलब अकेले सोने का वक़्त आ गया है। कितनी खोखली ज़िन्दगी होती अगर पिछले चौदह महीने इसी अकेलेपन में काटे होते।

मगर जब वह आ जाएगी, तो दूसरी तरह से कोफ़्त हुआ करेगी। न इस तरह चैन है, न उस तरह।

5-7-64

अकेले घूमने में अच्छा भी लगा—गुज़रे दिनों के अकेलेपन की याद भी ताज़ा हो आई। दिमाग़ में तनाव होने से हर जगह बेचैनी महसूस होती रही।

कभी-कभी लगता है कि अहिन्दीभाषी लेखक को हिन्दी में नहीं लिखना चाहिए। भाषा में सही मुहावरा लाने के लिए कितना सिर पटकना पड़ता है। और अपने हिन्दी-भाषी दोस्त हैं कि बिना परेशानी के लिखे चले जाते हैं।

उसे 'मिस' किया। मगर एक सुख तो है ही कि हर रात को लड़ाई-झगड़ा नहीं होता, भाषण नहीं देना पड़ता।

Hindi Premi

6-7-64

सुबह काम करने बैठा ही था कि अम्माँ ने ज़रा-सी बात पूछ ली—बुश्शर्ट धुलने देनी है कि नहीं। बस, दिमाग़ बिगड़ गया।

अनीता के फार्म का पता करने चला गया। फार्म नहीं मिला। आकर सो गया। उठने के बाद रात ग्यारह बजे तक काम करता रहा।

माँ को अभी सोए हुए देखा, तो पछतावा होने लगा। कितनी सीधी है बेचारी। कभी कुछ कहती नहीं। इतना बोल लेता हूँ, तब भी।

बाहर मौसम अच्छा है। दिन-भर बूँदाबाँदी रही। अब बूँदाबाँदी नहीं है।

8-7-64

अब रात है। यह तो तय है कि फिलहाल बम्बई नहीं जाऊँगा। मगर मन में न जा पाने का अफसोस भी है।

बार-बार मन उसी गार में लौट जाता है—आर्थिक परिस्थिति के आतंक के। बचना चाहता है पर फिर-फिर लौट जाता है। उसे सुलाकर नहीं रह पाता। हर वक़्त एक टेबुलेटर दिमाग़ में चलता रहता है, कहीं खतरे की घंटी बजती रहती है। एक खाई सामने नज़र आती रहती है। हालत वहाँ तक नहीं पहुँचती कि आदमी शराफत का लबादा उतारकर अपने को नंगा कर दे। मगर दूसरों के बीच फटे हुए सफ़ेद कपड़े पहनकर जीते हुए भी अपने को हर वक़्त अपने नंगेपन का एहसास रहता है। बल्कि सफ़ेद कपड़े की ओट होने से नंगापन और भी नंगा लगता है।

कुछ दिनों से रोज़मर्रा का वह रुटीन टूटा हुआ है। अब नए सिरे से वह रुटीन शुरू नहीं होना चाहिए। अपनी तरफ़ से भी कोशिश करनी होगी। पर बहुत कुछ उसकी कोशिश पर भी निर्भर करता है।

तय किया कि आज से तीन महीने तक सिगरेट, शराब नहीं पिएँगे, बेमतलब टी-कॉफी हाउस भी नहीं जाएँगे।

9-7-64

कल उसे आने को तार दिया था। आज सुबह मन हुआ कि नहीं, खुद ही चलना चाहिए।

...गाड़ी रुकी हुई है। अनारक्षित डब्बे में ऊपर की बर्थ पर चादर बिछा रखी है। रास्ते में अब जो भी हाल हो।

Hindi Premi

एक मुद्दत हो गई धक्के खाते सफर किए। आरक्षित सफर की साहब मिज़ाजी आदत ही बनती जा रही है। ख़ामख़ाह आदमी अपने ऊपर एक-एक करके बन्दिशें लगाए जाता है। आज़ादी के नाम पर क़दम-ब-क़दम अपने को कैद किए जाता है। नौकरी की कैद से आदमी छूट सकता है, घर-गृहस्थी की कैद से भी। पर ये छोटी-मोटी कैदें...इनसे छूटने की तो शायद वह ज़रूरत तक महसूस नहीं करता।

डे-कम-स्लीपर के कंडक्टर ने कहा था, गाड़ी चलने के वक़्त बता सकेगा कि वहाँ कोई बर्थ ख़ाली है या नहीं। अब उसके पास जाकर पता करने का इरादा नहीं है। इस बार 29 घंटे का सफर इसी तरह सही।

गाड़ी रुकी हुई है। रेलवे लाइन के उस तरफ़ कितनी ही चिड़ियाँ फुदक रही हैं। बूँदें पड़ रही हैं। बहुत हल्की धूप भी है। उस तरफ़ की खिड़की के पास 'सिंगल' सीट पर एक पागल औरत बैठी है जो एक-एक करके सबकी तरफ़ घूर रही है। मुँह में शायद सबको गाली भी दे रही है। उसके अलावा और साथी हैं—दो फ़ौजी, दो सिविलियन।

हवा में ठंडक। एक उदास-सा सफर ज़िन्दगी का, लाइन के पत्थरों पर आते-जाते लोग। अपने में अधूरेपन का एहसास। एक लाइन छोड़कर अगली लाइन पर खड़ी हुई गाड़ी कहाँ जाएगी? स्लेटी बुश्शर्टवाला आदमी कहाँ जाएगा?

अपने सिवा किसी के बारे में आदमी झूठी बातों के सिवा क्या सोच सकता है? कितनी झूठी बातें होती हैं जिन्हें अपनी कल्पना समझकर हम खुश हो लेते हैं।

गरदन पर एक कीड़े ने काट लिया है। शायद भिड़ ने। दर्द की टीस गरदन से कन्धे तक जा रही है।

गाड़ी नई दिल्ली स्टेशन पर रुक रही है।

डाइनिंग कार। हर चेहरे का एक एंगिल होता है। ख़ूबसूरती का और बदसूरती का। आदमी किसी को पसन्द करता है तो उसे ख़ूबसूरती के एंगिल से ही देखता है। नहीं पसन्द करता, तो बदसूरती के एंगिल से देखने लगता है।

भरतपुर। सोच रहा था उसके लिए एक अलग तरह की ज़िन्दगी के बारे में। मतलब इस साल की ज़िन्दगी से अलग।

...कि वह रंगमंच या और किसी गतिविधि को लेकर एक स्तम्भ लिखने लगे नियमित रूप से—तो उससे दोनों तरह से सुविधा हो सकती है। उसे बराबर के स्तर पर जीने का अवसर मिलेगा, साथ ही मुझसे 'डाइवर्ज़न' हो जाएगा। कुछ आर्थिक सुविधा भी होगी।

देखूँगा, अगर भारती से इस विषय में बात की जा सके।

Hindi Premi

खुले हरे खेतों में से गुज़रते हुए सबकुछ खुशनुमा लगता है—शायद बरसात की वजह से। पगडंडियाँ गीली हैं, गड्ढों में हल्का-हल्का पानी है। खम्भे भीगकर निखर आए हैं। सपाट काली मिट्टी में हरी कोंपलें फूट आई हैं। आकाश ऊँचा-ऊँचा-सा लगता है जिससे दूर पेड़ों की पंक्तियाँ बौनी हो गई हैं। गौएँ और फूस-मिट्टी के घर सब एक ही तरह से सीधे एक भीगी खामोशी में डूबे से लगते हैं।

हरियाली ज़र्द हो आई है। अँधेरा उतरनेवाला है।

बयाना जंक्शन। धुएँ में ढकी एक बत्ती—अपने दिमाग़ की तरह।

इस्पात के बने दिमाग़ हैं हम लोगों के जो कि अत्याधुनिक ढंग की स्ट्रीमलाइंड रचनाएँ रचते हैं। बहुत-बहुत पॉलिश्ड होती हैं ये रचनाएँ—हर नोक-नुक्ते से दुरुस्त मगर बेजान।

हिन्दी में इस्पाती रचनाओं का दौर नई कविता से शुरू हुआ। अब आज की कहानी भी उसी साँचे में ढल रही है। आदमी ऐसी बात सच-सच कह दे, तो कारखानों के सौ-सौ फोरमैन लाठियाँ लेकर सिर फोड़ने को आते हैं।

इन कारखानों में ढली ज़मीन बंजर होती है, झीलें सुरमे की, आकाश पथराया हुआ। जो चीज़ हमसे खोई जा रही है, वह है मिट्टी की गन्ध, उसकी नमी और नरमी, उसका फूहड़पन, अनघड़पन, बेतरतीबी और बेपरवाही।

क्षणवाद। कुछ लोगों की लिखी पंक्तियों में ज़िन्दगी के धड़कते क्षण उसी तरह सजीव रहते हैं जैसे तेज़ एसिड में भीगे मुर्दा जिस्म—जो कि एक मुद्‌दत तक ज्यों-के-त्यों रहने का आभास देते हैं।

डिनर के बाद। अपने से ऊबा हुआ मन। खाने के अफार से बोझिल। बैठने, पढ़ने, लिखने, सोने से उचाट। बाहर के अँधेरे से उदासीन। कोयले और पसीने में भीगा बसा।

कुछ लोग सो गए हैं। कुछ सोने की तैयारी में हैं। कुछ जागने-सोने के बीच के विराम में हैं।—अपनी तरह।

11-7-64

वही हुआ जिससे डर रहा था। स्टेशन पर पहले कोई नज़र नहीं आया। फिर देखा भाभी को। पूछा, "अकेली आई हैं?" तो बोली, "नहीं, ये बाहर गाड़ी पार्क कर रहे हैं।"

उसके बारे में खुद नहीं पूछा। भाभी ने ही कहा, "कल तीन बजे ही वह भी यहाँ से गाड़ी चढ़ गई है।"

Hindi Premi

पूरी बात राज ने बताई। तार मिलते ही इन लोगों ने सब गाड़ियों का पता किया। तीन बजे पंजाब मेल में उसे आख़िरी सीट मिल गई।

घर लौटने पर राज को ट्रंक कॉल मिला। मिलते ही उसने भोपाल में शरद जोशी को तार दिया,

"Wire Anita's programme"

आज शरद का उत्तर आया है :

"Anitaji reached Delhi."

12-7-64

सुबह तबीयत कुछ ख़राब थी। नहाकर चाय के साथ दो टिकियाँ एनासिन की लीं और घूमने निकल गए। Trilogy के बारे में सोचते रहे।

लौटकर आए, तो पता चला तीन तार आए हैं।

एक कमलेश्वर का राज के नाम–

Despatch Rakesh, Anita reaching. Save my friend please.

दूसरा मेरा नाम–

Anita reaching Monday Janata Express myself leaving fifteenth. Send complete instalment 12th positively.

तीसरा अनीता का राज के नाम :

It is all in the game.

दिन-भर सिवाय नोट्स लेने के कुछ काम नहीं किया।

सोचता रहा, अब उसकी गाड़ी चली होगी, अब बयाना पहुँची होगी।

भारती के यहाँ चले गए, scandal-mongering होती रही।

पुष्पा, जिसकी की हुई बातों की चर्चा उर्मिला भाभी और गिरधारी कल कर रहे थे, आज सामने दूसरी ही तरह की बातें करती रही। "भाई साहब, इस बार हम लोग दस दिन के लिए महाबलेश्वर गए। भारती जी रोज़ आपको याद करते थे। कहते थे, राकेश को यहाँ होना चाहिए था। सचमुच वहाँ की walks बहुत ही ख़ूबसूरत हैं। मैं तो चल नहीं पाती थी, इन्हें बेचारों को अकेले घूमना पड़ता था।"

भारती हाँ-में-हाँ मिलाता रहा। "राकेश, महाबलेश्वर में सचमुच तुम्हें बहुत मिस किया। बहुत-बहुत मिस किया।"

Hindi Premi

13-7-64

दिन-भर लिखता रहा, इन्तज़ार करता रहा दूध-मिले एसिड की जिसे शाम को जनता एक्सप्रेस से पहुँचना है।

14-7-64

शाम को भारती आया। मालूम हुआ कल भी वे लोग आए थे–जब हम पान खाने गए थे। फिर दूसरी बार भी आए, स्टेशन पर भी पहुँचे, पर भेंट नहीं हो पाई।

दिल्ली-इलाहाबाद के क़िस्से सुनते-सुनाते रहे।

भारती ने मनहर चौहान के कुछ क़िस्से सुनाए। एक यह भी कि उसने लिखा था–'आपके चपड़ासी की लौटाई रचना मिली।' तो इसने उत्तर दिया था कि 'चपड़ासी वाकई बदतमीज है जो उसने आपको धक्के देकर नहीं निकाला।'

17-7-64

आज सुबह पूछा, क्या पढ़ा है तो हाथ की किताब का पिछला चैप्टर उसने बता दिया–evolution of State के बारे में। स्टेट के प्रकार पूछे, तो गुमसुम हो रही। इससे सिर भन्ना उठा। काफ़ी डाँट दिया। अच्छा इतना ही हुआ कि डाँट चुपचाप सुन-सह गई।

मन बहुत परेशान हुआ कि इतना तरद्दुद–उसके बम्बई आने, फिर दिल्ली जाने और लौटकर आने, मेरे बम्बई आने, फार्म भरने भेजने का...और उससे पहले उसके किताबें लाने, कॉलेज ज्वाइन करने का...क्या सिर्फ़ किताब सामने रखकर डे-ड्रीमिंग करने के लिए ही था?

बाद में बोली, "अच्छा, रोज़ रात को मुझसे पूछ लिया करो।"

तीन चैप्टर उसे आज रात तक तैयार करने को कहा–हाउस टेस्ट के लिए।

19-7-64

परसों रात और कल रात अपने मन में उसके लिए बहुत प्यार उमड़ा। दोनों रातें तीन बजे तक जागते बीतीं। आज की रात (मतलब अभी बीती रात) गहरी नींद सोए।

परसों दिन में डाँटने के बाद शाम को उसे 'क्लिओपात्रा' दिखाने ले गए, बारिश हो रही थी, उसके बावजूद। पिक्चर बेहूदा लगी। उसके बाद जो कुछ मन में उमड़ा, वह केवल प्रतिक्रिया नहीं थी। वह बाँहों में सिहरती रही और कहती रही, "ओ गॉड! हाऊ गुड इज़ इज़!...गुड!"

Hindi Premi

कल शाम, सी.सी.आई. में चले गए–भारती, गिरधारी, राज और मैं। हम लोग पहले गए, राज बाद में आया। भारती के साथ ज़्यादा साहित्यिक राजनीति की ही बातें होती रहीं। वात्स्यायन के बम्बई आने का क़िस्सा, जो पहले चार बार वे लोग सुना चुके हैं, वह फिर से सुनाने लगा, तो उसे याद दिला दिया कि यह माजरा नया नहीं है।

ज़्यादा बातें हुईं–दिल्ली के छुटभैयों के बारे में, टी-हाउस-कॉफी हाउस के बारे में, उन कहानीकारों के बारे में जिनसे वक्तव्य नहीं मँगवाए गए–उनके बारे में जिन्होंने वक्तव्य नहीं भेजे। एक मज़ाक हुआ। राज से गिरधारी ने कहा, "तुम्हारे मुँह से शराब की गन्ध आती है।"

"तुम्हारे मुँह से तुलसीपत्र की गन्ध आती है," राज ने उससे कहा और फिर बोला, "और ये जो दो चले जा रहे हैं, इनके मुँह से प्रेमपत्र की गन्ध आती है।"

इस पर भारती रुककर बोला, "क्यों ग़लत बात कहते हो? राकेश के मुँह से तो हमेशा त्यागपत्र की गन्ध आती है।"

विदा होते हुए राज वाला चुटकुला दोहराया गया–"होगी तो घर जाकर सबके साथ। वक़्त ही फ़र्क़ होगा। किसी के साथ नौ बजे होगी, किसी के साथ ग्यारह बजे। अच्छा है, जो ग्यारह बजे होनी है, नौ बजे ही हो जाए।"

22-7-64

कल उसके नवजीवनारम्भ की वर्षगाँठ थी–पहली।

दिन में खाना खाकर दोनों जन घूमने निकल गए। बांद्रा गए, बासु के यहाँ। उसे साथ लेकर मिसेज़ राय के यहाँ गए क्योंकि रिंकी वहाँ थी। चाय पी। मिसेज़ राय अपनी पहली पुस्तक की चर्चा से, जो तभी छपकर आई थी, दुलहिन की तरह शरमाती रहीं।

रिंकी को साथ लेकर पापा-आंटी से मिलने चले गए। उनके पास जाना अपने में एक आशीर्वाद है। पापा की तबीयत और बिगड़ गई थी। आंटी ने बताया कि डॉक्टर कहता है वे पन्द्रह-बीस रोज़ से ज़्यादा नहीं जिएँगे।

वहाँ से माउंट मेरी चर्च होते हुए वापस आए–रिंकी बासु को माउंट मेरी रोड और कांवेंट रोड पर छोड़ते हुए।

बांद्रा स्टेशन पर मज़ाक करते रहे–कि क्यों न पिछले साल की तरह आज भी यहाँ पर लड़ लिया जाए। रास्ते में सचमुच लड़ाई हो गई।

चर्च गेट स्टेशन पर उतरे, तो दोनों के चेहरे तने हुए थे। बारिश हो रही थी, इसलिए कुछ देर उसी तरह रुके रहना पड़ा।

Hindi Premi

घर पहुँचे, तो थोड़ा भीग गए थे, तनाव तब तक बना रहा जब तक उसने आकर माफ़ी नहीं माँगी।

रात को पहले डाइनिंग टेबल पर प्रेम के एक रिमार्क से, फिर आइसक्रीम में राज के एक चरित्र-वर्णन से बेहद ग़ुस्सा आया। वह उस सब बातचीत में शामिल रही—बल्कि उससे उत्साहित रही—इसलिए रात को ग़ुस्सा निकाला उसी पर। बीच में स्वीटी (कुतिया) पर भी कुछ ग़ुस्सा निकला। बाक़ी ग़ुस्सा रात-भर पीठ पर चढ़ते कीड़ों को मारने के सिलसिले में अपने पर निकालते रहे। नींद बहुत कम आई।

23-7-64

सबकुछ ठीक चल रहा था कि बिना बात के झगड़ा हो गया। ख़ामख़ाह अपनी बात रखने के लिए अभी भाभी का बढ़िया फूलदान टूट जाता। तीन-चार मिनट वह तनी रही, फिर अन्दर आकर वही पुच-पुच, पुच-पुच।

शरद जोशी ने तुलसी वाली बात लिखी है। किसी और ने भी यह बात कही थी। सच, क्यों मन में इसके लिए इतनी कमज़ोरी है। जब वह आकर नहीं उलझती तो खुद जाकर उसे उलझा देता हूँ।

...अभी आकर कह रही थी, "क्यों लड़ते हो मुझसे? मुझे ज़्यादा दिन तो जीना नहीं है।"

लगा जैसे किसी ने मन को निचोड़ दिया हो। वह बाहर चली गई थी, उसे वापस बुलाया। डाँटा कि उसने ऐसी बात क्यों कही। वह बाँह से लिपटकर गाल-से-गाल सटाए कहती रही, "अच्छा, अब नहीं कहूँगी।"

महीना हो चला था बालों को टचअप किए। वह शैम्पू, डाई, ब्रुश वगैरह लेकर आ गई। बालों को ब्रुश से छूते हुए कहती रही, "चले आए थे वहाँ से बिना अपनी चीज़ें साथ लिये।...अब तुम्हारी बीवी लेकर आई है यह सब...फिर भी तुम्हें अच्छी नहीं लगती। अगली बार अच्छी-सी देखकर लाना।"

26-7-64

भाई भाभी की शादी की वर्षगाँठ है आज। सबको खबर इसी ने दी थी। सुबह जाकर फूल लाई। साथ चिट पर लिखा–To the Happy Couple. भाभी आजकल इससे ख़ूब खुश नज़र आती हैं। कभी डाँटने लगूँ, तो उलटे मुझी को डाँट देती हैं। यह तब मेरी तरफ़ मुँह बनाती है, "बस! और डाँटो!"

डायरी लिखते देखकर पास आ खड़ी होती है। कहती है, "सब बुरी-बुरी बातें लिख दो मेरे बारे में। कभी कोई अच्छी बात मेरे बारे में लिखने को तुम्हें नहीं मिलेगी।...बाद

Hindi Premi

में इसे छपा भी देना ताकि लोग मेरे बारे में पढ़कर यही सोचें कि कितनी बुरी थी वह। कितना तंग करती थी बेचारे को।''

''तुम्हें मालूम है, मैं क्या लिखता हूँ?''

''मालूम ही है। जब मुँह से हमेशा डाँटते रहते हो, तो लिखने में क्या जान बख़्श दोगे?''

27-7-64

दिन में भारती, पुष्पा आए थे—भाई-भाभी को मुबारकबाद देने। हम लोग जिमलेट पी रहे थे। कहने-कहाने पर भारती, पुष्पा भी लेने को तैयार हो गए—इस शर्त पर कि अनीता, मोहिनीजी और भाभी भी पिएँ। एक जाम सब लोगों ने साथ-साथ लिया। जब जिन बोतल से गिलासों में डाल रही थी, तो मैं पास चला गया। बोली, ''एक दिन पहले भी हम लोगों ने पी थी—मैंने, मोहिनीजी और भाभी ने।''

भारती, पुष्पा बताते रहे कि मनोहर श्याम जोशी ने रिपोर्टिंग में उस दिन के डिस्कशन का क्या कबाड़ा किया है—और कि वह पूरी रिपोर्ट फिर से लिखनी पड़ेगी। ''लगता है, उसने जान-बूझकर डिस्टर्ब किया है—ख़ासतौर से तुम्हारी कही बातों को...'' भारती ने कहा।

उन लोगों के जाने के बाद तैयार हुए और ड्राइव पर निकल गए। भावेश्वर दर्शन से वैद-परिवार को साथ लिया। अभियान हुआ विहार और पवाई लेक्स की तरफ़।

ज़्यादा वक़्त यार लोगों ने विहार लेक पर बिताया, पवाई लेक लौटते में गए। पहुँचे तो दुःख हुआ कि इस सुन्दर झील को छोड़कर विहार लेक पर इतनी देर क्या झख मारते हो।

पिकनिक के दौरान उसके उड़े बालों को देखकर ग़ुस्सा आया था, फिर उर्मिला भाभी की उसके बारे में कही बात से भी। पर घर पहुँचने तक दिमाग़ ठंडा हो चुका था।

रात को बाहर के कमरे में सोए। कहने लगी, ''तुम मुझे न मिलते तो बताओ मेरी क्या हालत होती।''

''तुम बताओ,'' पूछा उससे, ''तुम्हारी महाजन से या किसी और से शादी हो जाती।''

''कह नहीं सकती,'' वह सोचती हुई बोली। ''अपने बारे में सोचती यही थी कि मैं ज़िन्दगी-भर एक आदमी की होकर रहूँगी। तुमसे प्यार न करती, या तुमसे मिलने से पहले शादी हो जाती, तो रहती भी। पर तुमसे मिलने के बाद...कह नहीं सकती। उसके बाद शादी किसी और से करती ही क्यों, और अगर हो ही जाती, तो तुम्हारे पास ज़रूर आती।''

Hindi Premi

फिर पूछा, ''आज जो घनिष्ठता और आत्मीयता है, वह तब तो नहीं थी जब दिल्ली से चले थे। तब तुम क्या सोचकर साथ चल दी थीं?''

''मैं तुम्हारे साथ बदनाम होना चाहती थी,'' वह गहरे आन्तरिक आवेश के साथ बोली, ''तुम्हारे साथ अपना नाम जोड़ना चाहती थी। तुम्हारे साथ सोना चाहती थी और ज़िन्दगी-भर रहना भी चाहती थी।''

''और अगर मैं चन्द दिन बाद छोड़कर भाग जाता तो?''

''तो पता नहीं क्या करती। शायद आत्महत्या ही कर लेती। या ज़िन्दगी-भर कँवारी रहकर कहीं नौकरी करती। पर मन में ऐसा खतरा नहीं था। मन्नू और कमलेश्वर की बातों ने काफ़ी ढाँढ़स बँधा दिया था।''

''पर जब पहली रात को मैंने 'घर' की बात की थी, तो तुम उतावली क्यों हो उठी थीं? 'घर, घर, घर', तुमने कहा नहीं था, और कोई बात नहीं बस घर की रट लगाए जाओगे?''

''इस पर तो मैं उपन्यास लिखने जा रही हूँ। इट इज़ ए वंडरफुल थीम। माई मोस्ट प्रेशस सब्जेक्ट।''

''तुम लिखो उपन्यास, मैं अपनी डायरी छपवा दूँगा।''

''तुम छपवा दो डायरी—मैं यह उपन्यास ज़रूर लिखूँगी।''

30-7-64

कुछ देर बाद नींद आ गई। सुबह देर से उठा। बासु आया हुआ था। दोपहर बाद तक साथ रहे।

खाने के बाद बासु चला गया, और लोग भी। वह बीच के कमरे में अकेली थी। उसने पूछा कि कैसी तबीयत है, तो एकाएक बकना शुरू किया और पन्द्रह-बीस मिनट बकता रहा। उसकी एक बात से जो सालगिरह मनाने से रह गई—उसकी गर्मी फिर सारे दिमाग़ में चढ़ गई। सहसा उठा और साथ के कमरे में चला गया। फिर वहाँ से उठा और नीचे उतर गया। 'स्प्रिंगफील्ड बीच-एंड' देखने इरोज चला गया। अभी स्वामी विवेकानन्द सम्बन्धी डाक्युमेंटरी शुरू हुई थी कि जिस्म ढीला पड़ने लगा, ठंडा पसीना आने लगा और लगा जैसे दिल की कोई-न-कोई धड़कन मिस हो रही है। वहाँ से उठा और किसी तरह सड़कें पार करके घर आ पहुँचा।

थोड़ी देर में देखा, सब लोग घबराए हुए आसपास खड़े हैं—भाभी के अलावा पुष्पा भारती भी थी। भाभी ने एक पेग ह्विस्की पानी में डालकर दे दी। उससे धीरे-धीरे जिस्म में गर्मी लौटने लगी। बाद में पुष्पा भारती बताने लगीं कि उस वक़्त जिस्म बिल्कुल नीला पड़ गया था। भाभी ने कितने ही डॉक्टरों को फ़ोन किए थे, पर दिन के चार बजे कोई भी डॉक्टर नहीं मिला।

Hindi Premi

थोड़ी देर में भारती भी आ गया। तब तक शरीर काफ़ी सँभल चुका था। सब लोग कहते रहे कि एक बार पूरा चेक-अप ज़रूर कराओ।

शाम को गिरधारी और उर्मिलाजी आए, भारती और पुष्पा जी रात को फिर आए। तब तक अपना-आप नार्मल लग रह था—सिवाय हल्की-सी कमज़ोरी के।

31-7-64

कल डॉक्टर (दयाल) ने आज इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम और स्क्रीनिंग वगैरह करने को कहा था—आज सुबह बिस्तरे-मरीजाँ पर पड़कर इस दौर से गुज़रे। रिपोर्ट मिलेगी कल।

कल दिन-भर वह अलग रहकर पढ़ती रही। वरीन का फ़ोन आया था कि वह मिलने आएगा। तीन बजे वह आया। उसके साथ नेपोली और टी सेन्टर में बैठे रहे। वह बात करता रहा दिल्ली शिफ्ट करने के बारे में। अब कहता है कि वह पेन्टिंग में अपने को आज़माना चाहता है। अपनी तरह दुविधा में वह भी हमेशा रहता है—

शाम को इसने पूछा—गीली आँखों से—कि क्या मैं इसे अकेले साथ घुमाने ले चलूँगा। कहा, क्यों नहीं। बहुत दिनों बाद अकेले मैरीन ड्राइव पर घूमते रहे। वह कहती रही, "पहले मुझे गिल्ट सेंस रहती थी कि मेरी वजह से तुम काम नहीं कर पाते। अब और गिल्ट सेन्स होती है कि मेरी वजह से तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। अच्छा हो अगर बीच-बीच में हम लोग काफ़ी-काफ़ी देर के लिए अलग रहा करें।"

इस पर फिर ग़ुस्सा हो आया। मगर घर लौटने तक टेंशन खत्म हो गया।

कितनी यात्राएँ कीं बम्बई से नौकरी छोड़कर जाने के बाद?

मार्च 1963	बम्बई से दिल्ली वाया लश्कर
,, ,,	दिल्ली से शिमला कुफ़्री
अप्रैल 1963	कुफ़्री से दिल्ली
,, ,,	दिल्ली से लश्कर
,, ,,	लश्कर से इलाहाबाद
,, ,,	इलाहाबाद से दिल्ली
जून ,,	दिल्ली से बम्बई
,, ,,	बम्बई से दिल्ली
जुलाई ,,	दिल्ली से बम्बई
सितम्बर ,,	बम्बई से दिल्ली
,, ,,	दिल्ली से बम्बई

Hindi Premi

सितम्बर 1963	बम्बई से खंडाला—लोनावला
,, ,,	खंडाला से बम्बई
अक्टूबर ,,	बम्बई से माथेरान
,, ,,	माथेरान से बम्बई
नवम्बर ,,	बम्बई से माथेरान
,, ,,	माथेरान से बम्बई
,, ,,	बम्बई से माथेरान
दिसम्बर ,,	माथेरान से बम्बई
जनवरी 1964	बम्बई से दिल्ली
,, ,,	दिल्ली से इलाहाबाद
फरवरी ,,	इलाहाबाद से बम्बई
मार्च ,,	बम्बई से दिल्ली
अप्रैल ,,	दिल्ली से इलाहाबाद
,, ,,	इलाहाबाद से दिल्ली
,, ,,	दिल्ली से शिमला-कुफ़्री
,, ,,	कुफ़्री से दिल्ली
जून ,,	दिल्ली से चंडीगढ़
,, ,,	चंडीगढ़ से दिल्ली
जुलाई ,,	दिल्ली से बम्बई

और अब 5 अगस्त, 1964 को फिर बम्बई से दिल्ली।

इन 31 में से 29 यात्राएँ कीं अकेले।

1-8-64

रात सोने से पहले वह बाँहों में बिजली की तरह थिरकती रही। पल-भर के लिए उसकी आँखें सामने होतीं, फिर एकाएक मेरी बाँह या छाती में जा छिपतीं। फिर झटके से सामने आतीं, और फिर उसी तरह ओझल हो जातीं। इसके साथ सारा शरीर भी उसका थिरकता-काँपता, बाँहें कसतीं और ढीली पड़तीं, होंठ पास आने को होते और दूर हट जाते।

बहुत-बहुत थपथपाया उसे, बहुत-बहुत दुलारा। शरीर स्वस्थ नहीं था, फिर भी देर तक उसे अपने से, अलग करना असम्भव लगता रहा। लगता रहा जैसे अपने आधे प्राण उसके शरीर में हों और उसे सीने से लगाकर ही उन्हें पाया जा सकता हो।

कल रात सोने से पहले फिर उसने मछली की तरह तड़पना शुरू कर दिया तो उससे कहा, "देखो, इस वक़्त ये अठखेलियाँ रहने दो, मेरी तबीयत ठीक नहीं है।

Hindi Premi

तुम्हें भी पढ़ने के लिए जल्द उठना चाहिए। अपने मन को एक तरफ़ लगाओ। ये सब खेल सितम्बर में परीक्षा के बाद खेलना।''

''परीक्षा के बाद।'' वह बोली, ''हाय, तब तक सारा भूल भी जाऊँगी।'' तब ग़ुस्सा नहीं आया हँसी आई।

5-8-64, ट्रेन में

डीलक्स को बम्बई सेंट्रल छोड़े कुछ मिनट ही हुए हैं। अभी दादर नहीं आया। कल सारा दिन दुविधा में बीता कि वह साथ चलेगी या बम्बई ही रहेगी। भाई-भाभी का ख्याल था उसे बम्बई में ही रहना चाहिए। जब-जब साथ चलने की बात होती, वह खिल जाती, रुकने की बात होती तो मुरझा जाती। कल रात जैनकिंग में उसके बर्थडे की पार्टी दी थी। वहाँ बेहद सीरियस रही। क्योंकि चलने से पहले भाभी ने यह कह दिया कि उसे दिल्ली नहीं जाना है। रात को आख़िरी गोष्ठी में भाई-भाभी को राज़ी किया। उसके बाद भाभी के पास जाकर रोती रही।

अब जबकि गाड़ी बम्बई से दूर निकलती आ रही है, एहसास घर की तरफ़ जाने का नहीं, घर छोड़कर आने का है। पहले लगता था कि अपनी जड़ें सिवाय दिल्ली के और कहीं फैल ही नहीं सकतीं, पर आज महसूस होता है कि दिल्ली से कहीं ज़्यादा जड़ें बम्बई में हैं, अपनी जड़ें वहाँ से समेटी नहीं जा सकतीं।

आँखें बार-बार इस तरफ़ से हटकर उस तरफ़ चली जाती हैं। बेइन्तिहा ख़ूबसूरती है दोनों तरफ़...बादलों से ढकी हरियाली की। घने नाटे पेड़ों के बीच-बीच से उठे हुए नारियल के पेड़...गहरे बादलों के आगे अंकित और हल्की धुन्ध से ढँके...एक तरफ़ हल्की ऊँचाइयाँ और दूसरी तरफ़ हरे रोयों का समतल...बरसों का और बार-बार का परिचित, फिर भी एकदम नया और अजनबी, अपनी जगह स्थिर, फिर भी लगातार दौड़ता हुआ...

आँख इसके एक-एक चप्पे और हर चप्पे के एक-एक क्षण को अपने में भर लेना चाहती है। तेज़ दौड़ती गाड़ी में लेकिन यह एक से दूसरे क्षण के लिए भी सम्भव नहीं थे और एक क्षण के लिए भी कहाँ? गति के अनुपात से हर क्षण अविभाज्य रूप में विभाजित होता चलता है...इतनी सुन्दरता है, इतनी सजीवता...क्यों सम्भव नहीं इसे पूरा अपने में भर पाना...चारों ओर से विस्तार में एक क्षण ही पूरा जी पाना...

धुआँ-सा उठता है मन में, लहू में, शिराओं में फैल जाता है। वही सम्भवतः मन को दृष्टि् देता है...प्रस्तुत क्षण के लिए आनेवाले क्षण की भूमि प्रस्तुत करता है। वही मुझे मेरे और दृश्य के बीच एकात्मकता और अन्तराल का बोध कराता है।

नहीं, नहीं हुआ। वह जो चाहता था व्यक्त करना नहीं हो पाया। बात दृश्य को लेकर ही थी, इसके सौन्दर्य को...पर बुझकर अँधेरे में खो गई लौ-सी अपने में ही

Hindi Premi

गुम हो गई। हरियाली है, हल्की-हल्की धूप है, आवाज़ें हैं...सबसे तेज़ एक औरत की आवाज़...और गाड़ी के पहियों की...मगर तो बात अचानक मन को छू गई थी, वह नहीं है...

खिड़की के बाहर शाम अकेली-सी थी, धुँधली नहीं। बादल पीछे छूट गया था या छितरा गया था, पता नहीं। मन खिड़की के बाहर खुले में भटक गया था। रास्ते में छोटे-छोटे घरों, पोखरों, खेलते बच्चों, नाव चलाते माँझियों और अकेले चले जाते राहगीरों के बीच अपने को गाड़ी में चले जा रहे एक दर्शक के रूप में देख रहा था। फिर निःसंग हो गया जैसे कि इस दर्शक से उसे मतलब ही न हो।

शाम के रंगों को देखते हुए वह भी शाम की उदासी की बात करने लगी—सब कुछ हासिल होने पर भी घिर आनेवाली उदासी की। ऐसे में मन चाहता है कि या तो वह शाम सदा इसी तरह घिरी रहे—या फिर सबकुछ यहीं समाप्त हो जाए, इसके बाद कभी सुबह न हो।

शायद पहली बार एक वक़्त पर एक-सी बात सोचकर एक-दूसरे से 'कम्युनिकेशन' का एहसास हुआ। कितनी ही देर बाहर देखते रहे और बात करते रहे—घर की, शाम को घर लौटने की, घर में बत्ती के जलने की, खाने की खुशबू की, चूल्हे के धुएँ और आनेवाले मेहमान की...

अँधेरा होने के साथ-साथ बात का विषय बदलता गया—समाजवाद बनाम यथार्थवाद—यह कहानी, वह कहानी, वह विचार, यह विचार। दोहद स्टेशन आया तो खाने की याद आई। कम्युनिकेशन का रूप स्थूल हो गया।

स्त्रियाँ प्रायः इस तरह क्यों व्यवहार करती हैं, जैसे पुरुष से उन्हें किसी बात का बदला लेना हो! अच्छे-से-अच्छा खाना बनाएँगी, उसे खिला देंगी और खुद जैसे उसका दिल रखने के लिए थोड़ा-सा चख लेंगी। उसकी ज़रा-सी बीमारी में अच्छे-से-अच्छा इलाज और तीमारदारी करेंगी, पर अपनी बीमारी में आँख मूँदकर पड़ी रहेंगी। या इत्तला भी न करके सिर पर हाथ फेरती हुई काम करती रहेंगी और किसी को डॉक्टर का नाम नहीं लेने देंगी। जब आदमी चाहेगा कि वे अच्छे कपड़े पहनकर आएँ, तो बहुत साधारण-से कपड़े निकाल लेंगी और साबित करेंगी कि उनसे अच्छे कपड़े उनके पास हैं ही नहीं। मुद्दआ यह कि आदमी पर ज़िन्दगी-भर ऐसी एकतरफ़ा डिग्री किए रहेंगी कि वह सबकुछ हासिल करके भी हीन भावना से भरा रहे।

एक वक़्त था, जब रेलवे स्टेशनों की बेंचों से ज़्यादा घरेलूपन का एहसास होता था—कमरों और रेलवे-डब्बों की अपेक्षा। रात के वक़्त बिना गाड़ी का प्लेटफार्म और दो-एक सोए-अधसोए-से आदमियों का साथ—बातचीत का नहीं, ख़ामोशी का—मन को घर के ख़ालीपन का त्राण देता था। पर आज जब गाड़ी देर तक अहमदाबाद

Hindi Premi

स्टेशन पर रुकी रही, तो दो मिनट से ज़्यादा प्लेटफार्म पर टहलने को मन नहीं हुआ। वापस आकर अपनी सीट पर बैठा गया और ख़ाली प्लेटफार्म के दूसरी तरफ़ खड़ी ख़ाली गाड़ी को देखता रहा, देखता रहा...

6-8-64

सुबह। रात एक बजे तक मुश्किल से अपने को कुर्सी पर एडजस्ट किया ताकि नींद आ सके। वह बहुत पहले सो गई थी।

सुबह बैड टी के लिए उसे उठाया, तो चुपचाप उसने प्याली ले ली। बात नहीं की। न चाय पीते हुए, न उसके बाद। प्याली तकिए पर रखे चुपचाप पड़ी बाहर की तरफ़ देखती रही। फिर उसने आँखें मूँद लीं।

नज़ले के दौरे से बेहाल हो रहा था। उससे नया रूमाल माँगा तो वह भी उसने चुपचाप निकालकर दे दिया और फिर से उसी तरह पड़ी रही।

थोड़ी देर बाद हिलाया। कल नाश्ते के लिए मना कर देने के बाद मथुरा स्टेशन पर खाने को मिले दाल के बड़े—पत्थर की तरह सख़्त। इससे पहले कि चाय की प्याली हासिल की जा सके, गाड़ी चल दी। खुश्क गले से, घर चलकर कमरे की व्यवस्था करने की बात शुरू की, तो सुनने को मिला, ''आहिस्ता बात नहीं कर सकते?'' और भाषण शुरू हो गया कि मैं कभी और कहीं अपनी आवाज़ पर कन्ट्रोल नहीं रखता।

''...और तुम जो यह भाषण दे रही हो।''

''भाषण? कोई दो लफ़्ज भी कह दे तो वह भाषण लगता है?'' नतीजा। एक कुर्सी की तरफ़, दूसरा खिड़की की तरफ़

घर पहुँचने तक सिर तो नहीं, पर हाथ आपस में मिल गए थे। टैक्सी में बैठे हुए।

कमरे में आकर अच्छा लगा, नहीं भी लगा। आते ही दिल्ली के जनमानस का एक सबूत मिल गया। कमलेश्वर ने बताया कि यहाँ अफवाह थी कि मैं गोयनका ग्रुप का कोई पेपर (शायद कहानी पत्रिका) ज्वाइन करने बम्बई गया हूँ। दिनेश और महेन्द्र झंभ भी यह बात कह रहे थे। लगा कि अच्छे भले पक्की सड़क पर चलते-चलते फिर से कीचड़-भरे रास्ते पर उतर आए हैं।

नरेन्द्र से बात हो रही थी नेहरू की मौत के बाद पैदा हुए हालात के बारे में, बढ़ती कीमतों के कारण पैदा हुई बौखलाहट के बारे में। बात करते हुए अपना सन्तुलन फिर खो दिया—जैसे उस दिन श्री धर्मप्रकाश आनन्द से बात करते हुए बम्बई में हुआ था। नरेन्द्र आज के भ्रष्टाचार और अनैतिकता की ज़िम्मेदारी नेहरू पर डालने के हक में नहीं था—तर्क था उसका कि नेहरू का व्यक्ति चरित्र ही राष्ट्रीय बुर्जुआजी का था,

Hindi Premi

इसलिए उसके क्रान्तिकारी ढंग से समाज संगठन की आशा ही नहीं की जा सकती थी। उसका ज़ोर इस बात पर था कि ज़्यादा ज़िम्मेदारी उन लोगों की है जो समय पर इस नैतिक विघटन के खिलाफ आवाज़ नहीं उठा सके। पर आज क्या रास्ता है, इस सम्बन्ध में उसका मन भी दिग्भ्रम में था...।

आज ज़्यादातर मूल्यों की बात वही लोग करते नज़र आते हैं जिनकी स्वयं किन्हीं मूल्यों में आस्था नहीं है—जो कि 'मूल्य' को केवल एक शब्द के रूप में जानते हैं—और अपनी सादगी या धूर्तता में उतने में ही सार्थकता पा लेना चाहते हैं।

लगता है कि आसमान चारों ओर से कसता आ रहा है, फौलादी शिकंजों की-सी बाँहें हैं उसकी—बीच में मकड़ी के जालों-से बारीक ताने-बाने हैं और मछली के काँटों से बारीक़ काँटे। यह जाने अभी कितना और कसेगा, कितना और उलझाएगा और कितनी और नोकें गड़ाएगा।

7-8-64

रमेश पाल अपनी जगह परेशान है। रेडियो की नौकरी को लात मारने के बाद आज इज़्ज़त के साथ उस ज़िन्दगी में लौटना उसके लिए मुश्किल हो रहा है। टेलिविज़न की नौकरी के लिए एप्लाई नहीं किया—चाची से हुई बातचीत ने हौसला तोड़ दिया। संगीत-नाटक अकादमी वाली जगह के लिए डॉ. मेनन ने निरुत्साहित कर दिया। अब दिल्ली नाट्य संघ के अन्तर्गत नाट्य अकादमी के प्रिंसिपल की जगह के लिए कोशिश कर रहा है। कल इंटरव्यू है। शाम तक पता चलेगा।

...न जाने क्यों एक बेगानेपन का अहसास उसे होने लगा। कुछ-कुछ मुझे भी होता है। उसके जिस आत्मविश्वास के लिए मन में बहुत कद्र थी, उसमें अब एक खोखलेपन का अहसास होता है। जब वह इस तरह की बात करता है–'डॉ. ...ने अपनी भूमिका में मेरा ज़िक्र किया है'—तो बात ही नहीं, वह ख़ुद भी छोटा लगता है।

रवीन्द्र कालिया ने मार्कंडेय का पत्र दिखाया। पत्र से लगा कि वह आदमी अस्तित्व के लिए छटपटा रहा है। अपने पर ओढ़े एक बोझ के नीचे स्वयं दब गया है। जैसे-कैसे अपने को जस्टीफाई करना चाहता है। पत्र कमलेश्वर ने भी पढ़ा। मज़ाक होता रहा, जैसे कि पत्र की जगह स्वयं पत्र-लेखक सामने हो।

गोपाल मित्तल के मिलने और हाथ मिलाने में एक अधिकार भावना होती है। पर उससे बीच की दूरी कम नहीं होती। लगता है, एक चौड़ी सड़क के दो फुटपाथों से दो आदमी एक-दूसरे की तरफ़ हाथ बढ़ा रहे हैं।

Hindi Premi

महेन्द्र भल्ला, प्रबोध और अशोक सेक्सरिया साथ-साथ थे। अक्सर साथ-साथ होते हैं। टॉपिक प्रायः एक ही होता है—श्रीकान्त वर्मा। उसी की निन्दा-प्रशंसा करते हैं। अक्सर निन्दा। विषय बदलने के लिए निर्मल का ज़िक्र कर लेते हैं। यही दो पोल हैं जिनके इर्द-गिर्द उनकी बातचीत घूमती हैं। उसी में से ह्यूमर पैदा होता है, उसी से साहित्य चर्चा का दायित्व पूरा होता है। उनके लिए साहित्यिक दुनिया श्रीकान्त वर्मा से शुरू होती है, निर्मल वर्मा पर समाप्त हो जाती है। बीच के कुछ मुकाम हैं—रामकुमार, विजय चौहान, मुक्तिबोध, शमशेर, नामवर सिंह। नामवर के ज़िक्र से गाली देने का शौक पूरा हो जाता है। नगेन्द्र-जैनेन्द्र से राकेश-कमलेश्वर तक का उल्लेख इतिहास-बोध के सिलसिले में होता है। कभी-कभी नेमि, सुरेश और नरेश मेहता का। उदार-भावना भीष्म साहनी और कृष्ण बलदेव वैद के ज़िक्र से सन्तुष्ट होती है। और लोगों का ज़िक्र उन्हें सम्मानघातक लगता है। कभी-कभी करना पड़ जाता है, फिर भी। नीचे झुककर सड़क पर पड़ा पैसे का सिक्का उठाने की तरह।

मुद्रा, रवीन्द्र जिमनेज़ियम के नए पहलवान हैं। हर वक़्त पोल वाल्ट करते हैं। और नहीं तो हाट-स्टेप-जम्प का ही अभ्यास करते हैं। गनीमत है कि दोनों हँसना जानते हैं।

मन्नू नए घर में खुश नज़र नहीं आई। वह खुद उखड़ी-उखड़ी-सी थी, इसलिए सभी कुछ उखड़ा-उखड़ा-सा लगा। कह रही थी कि न उसे दिल्ली शहर पसन्द आ रहा है, न दिल्ली का कॉलेज। टिंकू खेल रही थी। कुसुमजी देख रही थीं, सुन रही थीं। 'पैसा नहीं है'—राजेन्द्र के जीवन-संगीत का यह स्थायी पहलू मन्नू ने भी पिक-अप कर लिया है।

8-8-64

वे क्षण जबकि आदमी कुछ भी नहीं कर पाता, कुछ भी नहीं सोच पाता, कुछ भी नहीं चाह पाता। जबकि अपना-आप रुका-सा महसूस होता है—बहते पानी में रहकर भी घने सेंवार में उलझा-सा! जबकि अपनी शक्तियों पर अपना वश नहीं होता—जबकि गति नहीं होती, बहाव नहीं होता। केवल एक कँपकँपी होती है—कँपकँपी...।

अकेलापन! अभिशाप भी हो सकता है, एक आकांक्षा, एक अपेक्षा भी। निवर्तन भी हो सकता है, प्रत्यावर्तन भी। कटे होना भी हो सकता है, जुड़े होने का अन्तराल भी।

Hindi Premi

व्यक्ति अनिवार्यतः अकेला है—हाँ, है। परन्तु यह अकेलापन असामाजिक या समाज-विरोधी ही हो, ऐसा तो नहीं। सामाजिक होने से ही तो अकेलेपन का बोध भी है, उसी से अकेलेपन की आवश्यकता भी है। अपने अकेले के लिए अकेलापन तो जेलखाने में भी हासिल हो सकता है—वह अकेलापन कितनी बड़ी यातना है। जो अकेलापन आदमी स्वयं अपने लिए चुनता और चाहता है, वह तो अपने अकेले के लिए नहीं होता—बहुतों में रहने के कारण, बहुतों के बीच से पैदा हुआ, वह अकेले होने का प्रयत्न बहुतों के साथ अपने सम्बन्ध सूत्र की ही तो उपज है—और इसलिए कहा कि वह सम्बन्ध सूत्र से मुक्त नहीं।

अकेलेपन की ज़रूरत महसूस होती है ताकि दुकेले होने की सही भूमि प्रस्तुत हो सके। जो अकेलापन अकेले तक ही रहेगा, वह मृत्यु ही न होगा? जीने की तो शुरुआत ही अकेलेपन से आगे होती है—दूसरे व्यक्ति के पास होने से। यह और बात है कि वह दूसरा व्यक्ति एक हो, या कई लाख हों!

उद्धरण, उद्धरण, उद्धरण। जो उद्धरणों पर आश्रित हो, वह सृजनात्मक चेतना कैसे है? दूसरों के चिन्तन से व्यक्ति के चिन्तन को एक दिशा अवश्य मिलती है, उसकी चिन्तन शक्ति को उससे गति भी मिल सकती है, परन्तु अन्ततः दूसरे का चिन्तन—शब्दों और पंक्तियों की सीमा में बँधा—अपनी सम्पूर्णता में उसका चिन्तन तो नहीं हो जाता। दस उद्धरण, यहाँ-वहाँ से लिए हुए काग़ज़ पर लिख दिए जाएँ, या टेप रिकार्ड कर दिए जाएँ, इसमें अन्तर ही क्या है? अमुक, अमुक और अमुक के कहे को अपनी 'दृष्टि' बनानेवाला व्यक्ति टेप-रिकार्डर से भिन्न किस तरह से है?

9-8-64

'डायलॉग्ज़ इन ड्रीम्ज़'—आदमी बाहर तो अपने को जस्टीफाई करता ही है, सपनों में भी इस प्रक्रिया से न बच पाए—यह कितनी बड़ी ज़हमत है। सुबह उठने से पहले दिमाग़ में जो डायलॉग चलते हैं, उनसे ख़ासी उलझन होती है। हर करवट में एक-न-एक प्रवाद, एक-न-एक बहस। उठने तक स्थितियाँ और डायलॉग तो गायब हो जाते हैं, रह जाता है एक डिप्रेशन—उन सब प्रभावों का जिनसे कि शायद एक जद्दोजहद चलती है।

हरिवंश कश्यप दिन में आया। झुकी-झुकी आँखों से बात करता रहा। 'दस कहानियाँ' के 'नेहरू अंक' के बारे में। चाहता था, उसके लिए कुछ लिखा जाए।

जितनी देर बैठा, अपने में सिमटा रहा। कोई बात करने को नहीं सूझी तो अमृता प्रीतम की मेज़ का ही ज़िक्र करने लगा। "इन्द्रजीत ने डिज़ाइन की है। बहुत

Hindi Premi

आर्टिस्टिक है। बिलकुल और ही तरह की है। तीन-चार सौ किताबें भी उसमें आ सकती हैं।''

फिर भीष्म साहनी का पता लेकर उसी तरह झुके-झुके भाव से चला गया।

10-8-64

खूब पानी बरसा। बाहर निकले, तो सामने थी लकवा खाई ज़िन्दगी। बरसात ने ट्रैफिक की कमर तोड़ दी थी।

पानी था, गड्ढे थे, कीचड़ थी, कंकड़ थे और थे फिसले हुए पैरों और पहियों के निशान। कमलेश्वर ने बात बताई—कि किसी दुश्मन को इस शहर पर गोले बरसाने की ज़रूरत नहीं, बस पानी बरसा दे—सबकुछ पैरेलाइज़ हो जाएगा।

इक्कीस नम्बर के बस स्टाप की तरफ़ जाते हुए सुना—दो आदमी गन्दे नाले में बह आए हैं। बाद में पता चला, उनमें एक बच्चा था। रात को लौटने तक वहाँ पैट्रोमेक्स लैम्प जल रहे थे। दो में से एक लाश की खोज हो रही थी।

उसके बाद बस की भीड़। भीड़ की नैतिकता। बावजूद गर्मी और पसीने के शरीरों की एक-दूसरे से जुड़े रहने की कोशिश। नर और मादा का शाश्वत आकर्षण। पुरुषों के भौंडे मूर्खतापूर्ण चेहरे और लड़कियों की अर्थपूर्ण मुस्कुराहटें। दबाव से बचने की दिखावटी कोशिशों में और गहरे दबाव। दबाव के स्रोतों को एक बार घूमकर देख लेने की कोशिश। बेबसी में अपने स्टॉप से आगे तक की यात्रा। साथ शिकायत, ''क्या हाल है आजकल बसों में!''

पानी, गड्ढे, बढ़ती हुई कीमतों के खिलाफ जुलूस—पुलिस के घेरे में धीरे-धीरे रेंगता हुआ—कॉफी हाउस के चेहरे—लगता है इस शहर पर, और इस शहर पर ही नहीं, आसमान के इस छोर से उस छोर तक हर जगह एक तारीकी, एक थकन, एक पराजय उतरती आ रही है। यह हल्के ज़हर से हासिल होनेवाली एक-एक अंग की मृत्यु है, जिसकी गति नहीं है, विद्रोह नहीं है, कहीं संघर्ष नहीं है। है तो केवल एक बौद्धिक उदासीनता या केवल विमूढ़ता जिसे कि कुछ पाखंडी लोग एक दर्शन की तरह ओढ़े ले रहे हैं। चलते क़दमों और फिसलते पहियों के नीचे मूल्यों की लाशें हर क्षण, हर कहीं कुचली जाती हैं—पर सहसा कहीं-न-कहीं से मूल्यों की बात भी सुनाई दे जाती है—प्रायः उनके मुँह से जो कि देह की तो क्या जानते, आज लाश को भी नहीं पहचान पाते। जीवन के प्रति एक आवेशपूर्ण स्वीकृति और स्वीकृतिगत विद्रोह की ललक कहीं किसी में दिखाई नहीं देती—जो है, वह केवल एक व्यवसाय भावना है। मूल्यों का व्यवसाय हो या न हो—मूल्यों की बात ज़रूर अच्छे दामों बेची जा सकती है।

Hindi Premi

अन्दर एक खलल का होना सच है। अशान्ति और असन्तोष का होना भी सच है। आत्म और आत्मीय के बीच एक आडम्बर की स्थिति भी ग़लत नहीं पर बात जो कचोटती है वह यह कि यह सहजता है अस्तित्व की या विकृति? विकृति होने पर भी चाहे उसे नकारा नहीं जा सकता, पर...पर सहजता के नाम पर उसे स्वीकार कर लेना भी कहाँ तक मुमकिन है?

11-8-64

रमेश पाल—मुगलों के वक़्त से निकलकर आज की दुनिया में आया-सा। राजेन्द्र अवस्थी, मासूम बच्चे की तरह छोटे-छोटे सवाल पूछता, छोटी-छोटी बात पर खुश करने की कोशिश करता। हमेशा मन में सोचता हुआ कि ज़ेब से पर्स निकाले या नहीं, निकाले या नहीं। नई सम्पादकी के पुल से झाँकता, मगर किनारे पर दिखाई देने की अस्वाभाविक कोशिश करता।

रविशंकर और हेब्बार के साथ हुई बातचीत की रिपोर्ट 'धर्मयुग' में पढ़ी। लगा बातचीत सुलझाव के साथ नहीं हुई। हमेशा, हर बातचीत के बाद ऐसा ही लगता है। बात के कई-कई कोण एक-दूसरे में गुँथे रहते हैं और जितना कहा जाता है, वह सब भोंडा और 'क्रूड' लगता है। क्या कोई ऐसी प्रक्रिया सम्भव नहीं जिससे व्यक्ति मानस की हर अनुभूति, उसके विचारों की हर संगति अपनी सम्पूर्णता में स्वतः अपेक्षित हो जाए? शब्द का माध्यम अपनाने में अधूरेपन का तीखा अहसास हमेशा सताता है, और यह अन्देशा भी हमेशा बना रहता है कि जो कही हुई बात में जहाँ एक ओर बहुत 'सीमित कुछ' कहा जाता है, जोकि बहुत एकांगी भी होता है, वहाँ दूसरी ओर इसके ग़लत समझ लिए जाने, या 'अभिप्रेत' अर्थ से अलग किसी और अर्थ में ले लिए जाने की सम्भावना बनी रहती है। ध्वनित शब्द में यही अर्थ या निकटतम अर्थ को व्यक्त करने की सम्भावना फिर भी अधिक होती है, पर लिखित शब्द—ओह, कितना अपूर्ण, कितना विकलांग माध्यम है यह! और उस पर मजबूरी यह कि लिखित शब्द ही आधार है विचार को सुरक्षित रखने और समय में सम्प्रेषित करने का!

12-8-64, दिल्ली

अपने से ऊबा हुआ मन। अकेले कमरे में रेडियो पर संगीत। पर्दों की फड़फड़ाहट। पाँच उँगलियोंवाली एश-ट्रे कुछ माँगती-चाहती-सी। मनीप्लांट सूखा-मुरझाया हुआ। चिट्ठी लिखने के काग़ज़, मगर लिखने से नितान्त विरक्ति। सामने नहाने का सामान, मगर नहाने से भी विरक्ति। एक दोस्त का दिया वक़्त, मगर घर से निकले

Hindi Premi

से भी विरक्ति। मगर चाह दीवारों में बन्द होकर बैठे रहने की भी नहीं। केवल एक दाह। हल्का-हल्का भारीपन। उदासी। आलस।

मिलने के प्रोग्राम। वक़्त की पाबन्दी की कोशिश। कुछ दूसरे काम टालकर भी निश्चित स्थान पर पहुँच जाना। मिलने पर हल्का-सा उत्साह, बासी बियर के हल्के मरियल झाग-सा। हाथों में कोशिश से लाया गया दबाव। फिर आमने-सामने बैठकर एक शून्य। वही कल के सवाल आज। वही लम्बी शाम को रात तक खींच ले जाने की कोशिश। वहीं रहने, घर जाने या कहीं और जाने के बीच का असमंजस। अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर आने-जाने की—मात्र इतनी ही हलचल।

ऊपर-ऊपर—आकाश की ओर—उठते जाने का एहसास। अभी कई एक हैं जो मुझसे भी ऊपर हैं—दादी माँ, नानी माँ, माँ, मामा, मौसी, बूआ, फूफा, दीदी। पर ज़्यादातर स्त्रियाँ हैं। मामा और फूफा से सम्बन्ध सम्पर्क नहीं के बराबर है। औरों से भी नहीं है। ज्यों-ज्यों वक़्त बीतता गया है, ऊपर के लोग एक-एक करके झड़ते गए हैं, एहसास होता रहा है कि मुझे किसी तख़्ती पर खड़ा करके धीरे-धीरे ऊपर उठाया जा रहा है। एक तरह से निकटतम परिवार में सबसे बड़ा, सबसे सीनियर, पुरुष पात्र अब मैं ही हूँ—और यह एहसास हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर हमेशा-हमेशा के लिए जा खड़े होने के एहसास से कम नहीं है...

हर शाम की एक ही समस्या—कहाँ और किसके साथ बैठकर पी जाए। दूसरे से जितनी पीना, उससे ज़्यादा उसे पिलाना। मुसीबत आ पड़े तो इतनी-सी शिकन माथे पर लाना जैसे आँख में चींटी जा घुसी हो।

ज़िक्र उठा शिवकुमार शर्मा का जिन्हें आज तक देखा नहीं। 'नई कहानियाँ' खरीदने की फिराक में थे। नेफा से लौटे कृशनचन्दर के पात्र उनके सहयोगी बनने जा रहे थे। तीनों की तरफ़ से बात कर आए थे। और 'अस्ल' साहब से भी दोस्ती का रिश्ता कायम कर रहे थे। 'अस्ल' साहब पर चीनी खरीदकर लाने की ज़िम्मेदारी डाल कर खुश थे।

श्री शिवकुमार शर्मा ने 'नई कहानियाँ' खरीदने की बात की और चारों तरफ़ इसकी धूम मचा दी। फिर 'नीली झील' पर फ़िल्म बनाने की बात करने लगे। फिर एक टुथ-पेस्ट फैक्टरी का सौदा करने लगे। अब लगे हाथों बैनेट कोलमेन एंड कम्पनी खरीदने की सोच रहे हैं। और नेफा वाले हैं कि हर सौदे में उनके वर्किंग पार्टनर होने की फिराक में हर दिन का एक तिहाई हिस्सा उनके साहचर्य में बिताते हैं।

13-8-64

गायत्री भाभी, कमलेश्वर की नज़र में। पढ़-लिखकर भी वही अठारहवीं सदी के संस्कार। वही सब काम करती है जो गाँव की अनपढ़ औरतें किया करती हैं। उसी

Hindi Premi

तरह व्रत-उपवास रखती है। उसी तरह तीज-त्यौहार मनाती है। उसी तरह आधी-आधी रात तक इन्तज़ार में बिना खाए बैठी रहती है।

उस दिन तीज थी। सावनी तीज। गायत्री भाभी ने नथ डाली। लाल साड़ी पहनी। मिट्टी की मूर्तियाँ बनाईं। पूजा की। तीज की कथा सुनाई।

''एक भाई की बहन थी जिसे उसकी भावज ने मरवा दिया। मरवाकर एक पेड़ के नीचे दफ़न कर दिया। ननदोई अपनी पत्नी को विदा कराने आया तो रास्ते में पेड़ के नीचे उसे अपनी पत्नी देवी बनकर बैठी मिली। उसने अपने पति को बता दिया कि किस तरह उसकी भावज ने उसे मरवाया है। वह आदमी अपनी ससुराल पहुँचा। वहाँ पर उन लोगों ने कहा कि उसकी पत्नी तो न जाने किसके साथ निकलकर घर से चली गई है। इस पर उस आदमी ने असली बात अपने साले को बता दी...कि उसकी बहन, उस आदमी की पत्नी, को मरवाकर पेड़ के नीचे दफ़ना दिया गया था और वह अब देवी बनकर वहाँ बैठी है। भाई, बहनोई को साथ लेकर वहाँ गया। जाकर देखा कि उसकी बहन तो सचमुच वहाँ पर है। इस पर वह बहन को तो अपने साथ वहाँ से ले आया और वापस आकर अपनी पत्नी को उसने घर से निकाल दिया...।''

और कमलेश्वर हैं कि कथा सुन रहे हैं और सामने बैठे सिगरेट फूँक रहे हैं। हँस रहे हैं। मज़ाक कर रहे हैं। मगर साथ ही पैर भी पुजवा रहे हैं। उस स्थिति के प्रति समर्पित हैं, पर इससे बहुत ऊपर उठे हुए हैं। कह रहे हैं, ''तो इससे नतीजा यह निकला न कि पत्नियों को आख़िर घर से निकाल देना चाहिए।''

गायत्री भाभी की आँखों में अमंगल की छाया काँपती है, पर वह मुस्कुरा देती है। झुकी-झुकी आँखों से हल्का-सा विद्रोह करती है। ''तुम लोग तो मानते ही नहीं हो इन बातों को। बस, मज़ाक उड़ाते हो। तुमसे कोई कहे तो क्या कहे।''

''अरे एक तो तुम्हारी कथा से शिक्षा ले रहे हैं, और ऊपर से तुम नाराज़ हुई जा रही हो।''

गायत्री भाभी अब कुछ नहीं कहती। पूजा की थाली समेटकर रख देती है। पल्लू से सिर ढँककर उसके और मेरे पाँव छूती है। इस पर अनीता भी हँसती हुई सिर ढँक लेती है। भाभी के अनुकरण में मेरे और कमलेश्वर के पाँव छू देती हैं।

बस का इन्तज़ार...लम्बा इन्तज़ार...धूप में टहलते हुए उतना रास्ता वैसे ही चला जाता है जितना चलकर आदमी कम-से-कम गुरुद्वारा रोड तक तो जा ही पहुँचे...

ओंप्रकाश के केबिन में। चौहान, ओंप्रकाश। सामने 'आजकल' का अंक। 'पुस्तकें हैं कहाँ जो बिकें?'

प्रिटेंशस लेख, बिना किसी विश्लेषण या अंडरस्टैंडिंग के। पढ़कर गुस्सा जो आया, तो ख़ूब खरी-खरी सुनाईं। ओंप्रकाश बेचारा मुस्कुराता मुँह ताकता रहा। जैसे

Hindi Premi

किसी गुस्सैल बच्चे की बात सुन रहा हो। कहा कि बंगला से तुलना जो आप लोग करते हैं, तो क्यों नहीं अपनी तथाकथित 'लोकप्रिय' से 'लोकप्रिय' पुस्तकें भी आप बंगला पुस्तकों का दसवाँ हिस्सा भी बेच पाते? वहाँ आप पाठक की सीमाओं की बात ले आते हैं, तो जो पुस्तकें उनसे भी आधी बिकती हैं, वहाँ पाठक के सांस्कृतिक दीवालियेपन का ध्यान आपको नहीं आता।

चौहान मध्यस्थ की तरह कहते रहे, "दोनों ही अर्धसत्य हैं। इनकी बात भी, आपकी भी। पूरा सत्य दोनों में नहीं है।"

फिर बात हुई कि एक दिन चार-पाँच आदमियों में खुलकर इस विषय में बात की जाए। तय हुआ कि तेईस के इतवार को चार बजे ओंप्रकाश के घर में मिला जाए। हम तीनों के अलावा बन्ने भाई और कमलेश्वर भी हों।

अपनों के बारे में न लिखे आदमी, तो किसके बारे में लिखे? यह वैयक्तिक स्तर का विश्वासघात क्या कलागत ईमानदारी की अनिवार्य शर्त नहीं?

सोचना कम होता है अपने यहाँ, सोचने का उपक्रम और उत्साह ज़्यादा होता है। और उपक्रम में भी ईमानदारी कम, पूर्वग्रह और आत्मसमर्थन ज़्यादा। अधिकतर हम विषय की पकड़ में नहीं, उसके आभास में ज़्यादा जीते हैं। ज़मीन को नहीं, हवा के ज़र्रों को ज़्यादा टटोलते हैं। अपनी सीमाओं का सारा दोष दूसरों पर लाद देना चाहते हैं। जो कुछ नहीं पढ़ते, उसके सम्बन्ध में बहुत 'पॉजिटिव' राय रखते हैं—जो सम्बद्ध न हो उसके सामने ज़ोर-शोर से उद्‌घोषणाएँ करते हैं।

14-8-64

जगदीशचन्द्र स्नैक बार में। "बस एक पुस्तक आनी चाहिए। बस एक बार शुरुआत होनी चाहिए।"

"अगला उपन्यास अपने गाँव के बारे में लिख रहा हूँ। वह रियलिस्टिक है।"

"फ़ाइल मैं उठा लेता हूँ। मुझे अपना हाथ ख़ाली-ख़ाली लगता है।"

कमलेश्वर और गायत्री भाभी। दिन-भर घर न आने से हल्की-सी लड़ाई। इधर-उधर नाचती-कूदती अढाई बरस की मानो। सड़क की तरफ़ झाँकते देखकर पूछा कि क्या देख रही हैं, तो बोली, "शाम देख रही हूँ।"

खोजते हुए लोग। अर्थों को, उद्‌देश्यों को। अपनी-अपनी सार्थकता को। निषेध करते हुए, अस्वीकार करते हुए। नीचे और नीचे बैठने की कोशिश करते हुए। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर को छूने के लिए बेचैन। हर माध्यम की स्थूलता को लेकर असन्तुष्ट। एक-दूसरे के अधूरेपन के प्रति असहिष्णु। शंकालु! उत्तप्त। सुनने से पहले सिर

Hindi Premi

हिलाते हुए। नहीं, नहीं, नहीं। बिन्दु यह नहीं, वह है। यहाँ नहीं, वहाँ है। मैंने नहीं छुआ, पर उसे छुआ जा सकता है। हममें से किसी ने अब तक नहीं छुआ, पर कोई-न-कोई छूएगा। जाने कब और कैसे। पर हम उस सूक्ष्म को सिर की धार से बेधेंगे। पूरी चेतना के आवेश से। आज नहीं तो कल। कल नहीं तो जब कभी। बेधेंगे ज़रूर। चाहे किसी अनजाने क्षण में ही और बिना इस चेतना के कि जिसे वेधा गया है, वह लक्ष्य ही था।

15-8-64

रवीन्द्र कालिया, घर पर। यहाँ, 8ए/54, डब्ल्यू.ई.ए. में।

काम करते-करते हाथ रोककर उससे बात करने के लिए उठ गया। वह अपना वक्तव्य लेकर आया था—'नई कहानियाँ' के स्तम्भ 'नई कहानी : कुछ और हस्ताक्षर' के लिए।

वक्तव्य में शब्द-चयन अच्छा था। पर बात वही—किताबों के तहखाने से नए-नए निकलकर आए मौलवियों जैसी। हवाला दूसरों का, इसका, उसका। कि कहानी मर चुकी—दुनिया-भर में। जो लिख रहे हैं, झख मार रहे हैं कि जो लिखी जानी चाहिए वह कहानी नहीं होगी। इत्यादि, इत्यादि।

दो घंटे की माथापच्ची। वेल्यूज़ को लेकर। कहानियों और कहानीकारों को लेकर। कहता रहा कि वह कुछ कहानीकारों की बहुत कद्र करता है। उनकी कृतियों का बहुत मूल्य समझता है। मगर लिख नहीं सकता क्योंकि लोग उसे चापलूसी समझेंगे। इसके बावजूद इंटेग्रिटी की बात करता रहा। बोला कि अश्क ने उसकी पहली तीन पंक्तियाँ इस्तेमाल करके और बाक़ी का हिस्सा छोड़कर उसके साथ बे-इंसाफ़ी की है। 'यह सरासर बेईमानी है।' कुछ हिस्सों के बारे में कहता रहा, 'मेरा इससे यह मतलब नहीं, मतलब इससे बिल्कुल उलटा है। फिर बोला, 'मैंने तो आपकी ही बात का समर्थन किया है!' बहुत मासूमियत से।

कमलेश्वर कहता है कि यह लड़का बहुत 'चालाकी' दे रहा है। हर ग्रुप से हॉब-नॉब करता है और हर जगह दूसरों के खिलाफ बात करता है। मज़ाक उड़ाता है। लिखते वक़्त प्रिटेंशन्ज ओढ़ लेता है।

उससे यह सब कह भी दिया। वह रुआँसी शक्ल बनाए बात करता रहा। कहता रहा, ''मेरा ऐसा मकसद कभी नहीं होता। मैं ईमानदारी से जो महसूस करता हूँ, वही कह देता हूँ।''

कहा कि उसे ईमानदारी से और खुलकर ही बात करनी चाहिए। समझौता नहीं करना चाहिए। किसी भी उपलब्धि के लिए नहीं। किसी के असर में नहीं आना चाहिए। न मेरे, न किसी और के।

Hindi Premi

जाते वक़्त वह डिस्टर्ब्ड था। मगर जो मन में था, न कहता, तो मैं डिस्टर्ब्ड रहता।

करोलबाग़। अजमलखाँ रोड पर छुट्टी के दिन की शाम। फुटपाथ मार्केट। ग़लत नहीं कहते लोग कि अब भी यह शहर एक बड़ा-सा गाँव है। यह करोल बाग़ ख़ासतौर से। नीलाम से लाटरी तक। झूले से लेकर वजन तोलने की मशीन तक। हर चीज़ हाज़िर। पगड़ी से पाजामे तक। देसी जूती से पेशावरी चप्पल तक! हर शख़्स हाज़िर। कन्धे-बाजी का स्वर्ग।

आइडेंटिफिकेशन—अपने काम के साथ। और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। घूमना-फिरना, मजलिसें लगाना। मन झट वहाँ से उचाट हो जाता है। काम में लगा रहूँ, तो न थकान होती है, न मन उचाट होता है।

मासूमियत और धूर्तता के बीच कभी-कभी बहुत सूक्ष्म रेखा होती है जिसे आदमी पकड़कर भी पकड़ नहीं पाता। कहीं समझ में आ जाता है कि यह ऐसे हैं—फिर भी आदमी दूसरे को 'बेनीफिट ऑफ़ डाउट' दिए जाता है। परिणाम आख़िर वही निकलता है जिसकी कि उम्मीद होती है। मगर यह मीठा धोखा खाने का खेल वह फिर-फिर खेलता जाता है। शायद इससे भी अपने अन्दर की ही कोई ज़रूरत पूरी होती है।

16-8-64

सुबह-सुबह भीष्म साहनी। अनुवाद के लिए कहानी लेने। देर तक बातचीत। विषय : 'समकालीन सामाजिक और साहित्यिक सन्दर्भ में लेखक का विचाराभिव्यक्ति का दायित्व'। भीष्म के चेहरे और बातचीत में आज भी वह सहजता है जो 22-24 की उम्र के बाद नहीं रहती। विश्वास नहीं होता कि यह आदमी अगले साल पचास साल का हो जाएगा।

भीष्म कहता रहा कि 'मनीषा' गोष्ठी की गन्दगी देखने के बाद कुछ कहने-लिखने को मन नहीं होता। कि वह अपने में कहीं कन्फ़्यूज़्ड महसूस करता है। कि उसने सब लेखकों को पूरा पढ़ा नहीं है।

बात चलती रही। जीवन-सन्दर्भों से टूटे हुए लेखन को लेकर। इंडो-यूरोपियन तथा इंडो-अमेरिकन आदान-प्रदान की कहानियों को लेकर। स्थान—लन्दन, न्यूयार्क, बर्लिन, पेरिस—या अनिश्चित। एक कमरा—होस्टल, क्लब या रेस्तराँ का। नाच, सैर, बातचीत। शारीरिक कसाव। मानसिक अजनबीपन। परिणति—टेंशन या रिलीज़ में। टेंशन में कटुता। रिलीज़ में वितृष्णा।

Hindi Premi

हिन्दुस्तानी पात्र—अपने माँ-बाप, बहन-भाई बहुत छोटे पड़ते हैं इन साफ़िस्टिकेटिड पाइंट्स के लिए। जिन सन्दर्भों से निकलकर विदेश गए हैं, उन्हें स्वीकार करते शर्म आती है। इनका अजनबीपन फ़कत विदेशी होने का अजनबीपन है। या वह कुछ जो अजनबी दर्शन के बारे में पढ़ा है।

भीष्म कुछ उत्साहित हुआ कि वह अब लिखेगा। कि अपने को व्यक्त करना—इन सभी विषयों पर लेखकीय दायित्व की अनिवार्य शर्त है। बोला, ' 'मनीषा'—गोष्ठी के वाद एक लेख लिखना शुरू किया था, पर वह बीच में ही रह गया। पूरा नहीं किया। अब पूरा करूँगा।'

कुछ दोस्तों पर उसने दबे-दबे रायज़नी भी की। पर एहतियात रखते हुए कि बात का कहीं ग़लत इस्तेमाल न हो। साथ ही भलमनसाहत का तकाज़ा कायम रखते हुए। एकाध को छोड़कर औरों के नाम लेने में हिचकिचाते हुए।

टी-हाउस। मेज़ के इर्द-गिर्द चार आदमी। चौधरी, कश्यप और दो अपरिचित। अपरिचितों में से एक आँखें आधी-आधी भींचता हुआ कह रहा है,...'बेचकर तो दिखाएँ एक गाड़ी भी। एक दिन दो गाड़ी अनाज मँगवा लें और बेचकर दिखाएँ। मैंने कहा नन्दाजी से कि भाई हम तो हैं ही ऐसे—हमारा तो काम ही है हेरफेर करना। चोरी-चकारी हम नहीं कर सकते, डाका हम नहीं डाल सकते, किसी औरत पर ज़ोर-ज़बर्दस्ती करने का हौसला हममें नहीं—हम लोग बनिए की जात, कलम की हेरफेर ही तो कर सकते हैं। तुम लाओ अनाज...हमसे एक आना कम में बेचो, तो ग्राहक तुमसे ही खरीदेगा। उसे जो सस्ता देगा, उसी से तो वह लेगा। आओ तुम मार्केट में हमारे कम्पीटीशन में। आते क्यों नहीं?

'कीमत गिरेंगी—गिर सकती हैं—अगर तुम्हारे अपने आदमी करोड़ों के सौदे न कर रहे हों। तुमने कैरों को पकड़ा—वह तो छोटी-मोटी हेरफेर ही कर रहा था। सत्तर-अस्सी लाख की हेरफेर भी कोई चीज़ है और वह मारा गया अपने लड़कों की गुंडागर्दी की वजह से। वरना तुम बिज्जू पटनायक को क्यों नहीं हाथ लगाते? उसे जिसने पचास करोड़ की हेरफेर की है? वह तो साफ़ कहता है कि पचास लाख ख़र्च करके मैं चीफ मिनिस्टर हो गया। प्राइम मिनिस्टर बनने में कितना लगेगा? ज़्यादा-से-ज़्यादा दो करोड़?

'और कुम्भन दास (?) राजस्थान का। उसने गुड़ में पचास लाख बना लिया है और मूँछों पर हाथ फेरता बैठा है। गुंडागर्दी वह करता है, लोगों की लड़कियाँ वह उठवाता है, डाके वह डलवाता है, यहाँ तक कि चीफ मिनिस्टर के लड़के को ही अगवा करवा दिया और तीन लाख वसूल करके वापस छोड़ा...राजस्थान की विधान सभा की चाबी उसके हाथ में है। जिसे चाहे बनाए, जिसे चाहे बिगाड़े—उसको तुम

Hindi Premi

छू भी सकते हो? बनाने को कमेटियाँ तुम चाहे कितनी बना लो—स्टेटमेंट चाहे कितने दे दो—कीमतें क्या कमेटियों और स्टेटमेंटों से गिरती हैं? अनाज क्या काग़ज़ों और भाषणों से पैदा होता है? हम तो कहते हैं कि हम रखते हैं अपने गोदामों में, बनिए हैं, इसलिए नफे पर बेचते हैं, तुम आओ भरे बाज़ार में बनिए बनकर और हमारे कम्पीटीशन में बेचो।

'ये लोग चिल्लाते हैं को-ऑपरेटिव, को-ऑपरेटिव यहाँ साझेदारी की भावना है लोगों में जो को-ऑपरेटिव कामयाब होंगे? को-ऑपरेटिव बनते हैं दस दिन मुनाफा कमाने के लिए—उस वक़्त जब किसी चीज़ की किल्लत होती है। माल बाज़ार में आते ही को-ऑपरेटिव नदारद हो जाते हैं। यह है तुम्हारी को-ऑपरेटिव योजना। कि जो चीज़ प्राइवेट व्यापारी छह रुपए क्विंटल ढोकर यहाँ से महाराष्ट्र पहुँचा सकते हैं, उसके लिए तुम किसी अपने गुरगे के को-ऑपरेटिव को ओबलाइज़ करने के लिए चौदह रुपए क्विंटल में ठेका दे देते हो?

'यह मुल्क है जहाँ गन्दम और चावल तक लोगों को आसानी से मयस्सर नहीं, उस दिन एक अमरीकन कह रहा था कि चिकन को तो वे लोग रफ फूड समझते हैं। कहते हैं अंडा-मुर्गा भी कोई खाने की चीज़ है? एक डबलरोटी के बराबर वहाँ एक मुर्गे की कीमत होती है। वे खाते हैं स्टीक जिसमें अच्छी गिज़ा की सभी खासियतें मिली रहती हैं, जोकि प्योर और मेडिकेटिड फूड होता है। वहाँ भी है को-ऑपरेटिव मगर किस काम के लिए? फसलों को कीड़े से, चिड़ियों से बचाने के लिए। ज़रूरत हुई, तो हज़ारों मीलों में को-आपरेटिव से दवाइयाँ छिड़कवा लीं, बुलडोज़र मँगवा कर मीलों में जमी बर्फ़ तुड़वा ली कि वह पिघलकर सिंचाई के लिए पानी बन जाए। को-ऑपरेटिव की भी एक मोरेलिटी होती है। यहाँ है कोई भी मोरेलिटी तुम लोगों में—सिवाय इसके कि अगली इलेक्शन के लिए जो दस, बीस, पचास लाख रुपया चाहिए, वह कैसे और किससे हासिल करो?'

टी हाउस के बाहर पेड़ के इर्द-गिर्द बूट पालिश के बक्सों का ढेर—ज़ंजीरों से बँधा हुआ।

चौधरी कहता है, "लगता है जैसे, यहाँ किसी बूट फकीर का थान हो।...वह है न मटकेशाह का थान—नुमायश ग्राउंड और सुन्दर नगर के बीच जहाँ लोगों को मानता मानने से पहले मटके चढ़ाने पड़ते हैं। इधर-उधर, पेड़ों और दीवारों पर मटके-ही-मटके लटके नज़र आते हैं।"

तभी कोई लड़का आकर 'ईवनिंग न्यूज' हाथ में देता है। 'श्री शास्त्री के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव पेश होने की सम्भावना। कांग्रेसियों के मन में भी असन्तोष की लहर।'

Hindi Premi

स्नैक बार में सरदार के साथ बैठी हुई लड़की। दोनों कुछ ऑर्डर नहीं देते। कोई बैरा भी उनके पास नहीं जाता। आपस में वे बात भी नहीं करते। लड़की बस शरमाती-मुस्कुराती आँखों से इधर-उधर देखती जाती है।

सरदार उठकर कुछ देर के लिए बाहर चला जाता है। लड़की उसी तरह देखती बैठी रहती है। सरदार लौट आता है। कुछ देर में वह अचानक उठ पड़ता है। लड़की भी उठ पड़ती है और दोनों स्नैक बार से बाहर चले जाते हैं। चौधरी की आवाज़ जो कुछ देर खोई रही थी, अचानक फिर सुनाई देने लगती है,... "हाँ, यही तो बात है। राजेन्द्र से मैंने यही कहा कि अगर सचमुच तुम महसूस करते हो कि तुम लोगों के सोच-विचार की ज़मीन एक नहीं है, तो ईमानदारी का तकाजा यही है कि अपनी दोस्ती कायम रखो और साहित्यिक स्तर पर अपनी-अपनी ज़मीन पर खड़े होकर बात करो।"

टी हाउस। कुछ बौखलाई हुई नज़रें। कुछ घूरती हुई आँखें। कुछ चुभती हुई बातें। कुछ रुके-रुके कहकहे। कुछ दबे-दबे इशारे। एक का बेतकल्लुफ़ी से हाथ मिलाना। दूसरे का त्योरी डालकर बाँहें सिकोड़ लेना। किसी का कन्धे हिलाना। 'हमारी तो समझ में नहीं आता साहब कि आजकल लोग एक दूसरे से इतने जले-भुने क्यों रहते हैं? फिर भी इतने हिलमिलकर कैसे बैठते हैं।'

इसमें क्या सार्थकता है कि आदमी एक ही जिये हुए दिन को बार-बार जिये : फिर-फिर से उसी तरह, उसी क्रम से और उसी दायरे में। वही बातें करे—या वे नहीं तो वैसी ही। उसी तरह हँसे। उसी तरह हैरानी ज़ाहिर करे। उसी तरह बैठे। उसी तरह उठे। और उसी तरह मुँह उठाए। कल की तरह आज भी बस के क्यू में आ खड़ा हो?

एक घटनाहीन घटना अपने अन्दर घटित होती रहती है—घटनाहीन नहीं, क्रियाहीन। वह जो मन को, मनन को, ग्रहणहीन अनुभूति को एक प्रलक्षित क्रम से तोड़कर फिर-फिर से बनाती चलती है। हर आज, हर बीते कल का परिणाम होता है, उसका नया, बदला हुआ संस्करण, उससे समृद्ध और परिष्कृत। पर यह घटना क्या सभी के अन्दर घटित होती है? होती हो, तो क्यों फिर...?

पता है कि बहुत छोटी-सी बात है। बहुत साधारण। एक स्वाभाविक तनाव होता है स्नायुओं का जो नर और मादा मांसपिंडों को आपस में लिपटा देता है। एक-दूसरे में खो जाने, डूब जाने के लिए मजबूर कर देता है। सारी प्रक्रिया में एक मशीनीपन नज़र आता है। जैसे कि एक के बाद एक पुर्जा अपने वक़्त पर स्टार्ट होता जाता हो। मशीन एक ख़ास रफ़्तार पकड़ने के बाद एक परिणाम पर पहुँचकर रुक जाती हो—तार घर

Hindi Premi

में लगे टेबुलेटर की तरह। सब ठीक है, फिर भी उन क्षणों में जो विवशता, जो विस्मृति, जो अवसन्नता होती है, वह क्या है? उसमें चाहे क्षण-भर को ही सही, एक दिशा और काल निरपेक्ष अनुभूति का स्पर्श क्यों होता है? क्यों उस हूँ-हाँ और चिपचिपाहट के बीच भी कहीं वह मुकाम आ जाता है जहाँ लगता है कि सामने आकाश रूप सार्वकालिकता है और हम उसे अपने सिर की ठोकर से तोड़कर उसकी आख़िरी तह तक पहुँच जाने को हैं? और वह अनुभूति चेतना में जाग्रत होने से पहले ही विलीन क्यों हो चुकी होती है? उसके बाद शेष होती है चिपचिपाहट से शीघ्रातिशीघ्र मुक्ति पाने की कामना। हाथ कपड़ों को ढूँढ़ते हैं—नंगेपन में अपना-आप जानवर जैसा लगता है।... मगर वह जानवर का-सा नंगापन भी तो किसी-किसी स्थिति में अद्‌भुत होता है।

17-8-64

राजकमल के बाहर फुटपाथ पर श्रीकान्त वर्मा। अन्दर लक्ष्मीनारायण लाल, देवीशंकर अवस्थी। विषय--नई कहानी। 'मनीषा' गोष्ठी। उपेन्द्रनाथ अश्क। साहित्य की दूसरे दर्जे की विधा। केवल दो कहानीकार।

श्रीकान्त वर्मा कहता है कि जो बातें उसके नाम से कही जा रही हैं, वे उसने 'मनीषा' की गोष्ठी में नहीं कहीं। सब नामवर का प्रचार है। वह आदमी उसे ज़लील करने के लिए झूठी बातें बनाकर कहता है।

जनपथ होटल में मीटिंग। दो बाहर के अतिथि। ज्ञानीजी की दिलचस्पी सैंडविच खाने में है। चौहानजी 'अतिथि देवो भव' के सिद्धान्त पर चलकर आगन्तुकों के सामने विचलित हैं। लक्ष्मण शास्त्री ओरेटरी में इंटरेस्टेड है। अतिथि नोट्स ले रहे हैं। एक बहुत दुखी नज़र आते हैं, दूसरे बात-बात पर मुस्कुराते हैं। बाहर बारिश हो रही है। लक्ष्मीनारायण लाल घड़ी देख रहे हैं।

दिन-भर की थकान। अपना-आप—बिगड़े साज़ के बेढब संगीत-सा।

21-8-64

अट्‌ठाइस को पहले कॉफी हाउस। सुदेश (नहीं, स्वदेश कुमार) और वेद व्यास। सन्तोष नौटियाल। 'चाय पार्टियाँ' नाटक। डी.ए.वी. में रीडिंग है।

स्वदेश का एक ही विषय है—विश्वनाथ। नौकरी करता था, तब भी वही था, अब भी वही है। अब कहता है कि उस आदमी की नौकरी छोड़ने (मतलब छुड़ाए जाने) से ही स्वास्थ्य सुधर गया है।

बोला, "एक कहानी लिख रहा हूँ। अभी पूरी नहीं कर पाया क्योंकि समझ नहीं पा रहा कि वह नई कहानी है या पुरानी।"

Hindi Premi

टी हाउस में रवीन्द्र कालिया और लक्ष्मीनारायण लाल। फिर एक के बाद एक–कुलभूषण, रमेश गौड़, राजेन्द्र अवस्थी और पाँच अदद और। रमेश गौड़ अश्क की किताब 'कहानियाँ और फैशन' का ज़िक्र करते हुए कहता है, साहब इधर एक किताब आई है। उसका नुस्खा सुनिए। पहले एक जमूरा घंटी बजाता हुआ आता है और मजमा इकट्ठा करता है–'मेरा उस्ताद, उस्तादों का उस्ताद, उनका भी उस्ताद!'

फिर उस्ताद आता है और जमूरे का परिचय देता है 'यह जमूरा, मेरा नहीं, मैं इसका नहीं, जो है सब खुदा का है। तो साहबान, अब खुदा को हाज़िर-नाज़िर जानकर जो कुछ मुझे कहना है, वह इस जमूरे की ज़बान से सुनिए...।'

जमूरे, तेरा नाम?

सुरेश सिन्हा।

काम?

डॉक्टरी।

पेशा?

जी हज़ूरी।

शहर का नाम?

इलाहाबाद।

इरादा!

नेक।

फिर भी।

मजमे में नाम पाना।

तो जिस बात को मैं सच कहूँ, उसी को सच बताएगा।

बताऊँगा।

जो बात ज़बान पर लाऊँ, उसे मजमे में फैलाएगा?

फैलाऊँगा।

चार बार दिल्ली जाएगा।

जाऊँगा।

तो लेट जा चादर ओढ़कर।

(जमूरा लेट जाता है चादर ओढ़कर।)

अब तेरे ऊपर कलमा पढ़ूँ?

पढ़ो।

जब तक मैं न कहूँ, तब तक आँखें तो नहीं खोलेगा?

नहीं खोलूँगा।

और जो कुछ भी मैं कहूँ, उस पर पूरा यकीन लाएगा?

Hindi Premi

लाऊँगा।

जो कुछ न कहूँ, वह खुद बताएगा।

बताऊँगा।

तो आ, और बता कि इनमें सचेतन कहानीकार कौन-कौन हैं...।

भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, लक्ष्मीनारायण लाल कॉफी हाउस में। हल्की-फुल्की बातचीत। बेमतलब की।

राजकमल में मुलाक़ात श्री राजकुमार से। बातचीत 'अम्बर' में। विषय–दीदी का ऑपरेशन। विषयान्तर–व्यंग्य।

नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा का दीक्षान्त समारोह। भाषण श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा, अध्यक्षा, का। शब्द बेढब–चालीसवें साल की गोलाइयों की तरह। ब्लाउज़ ब्रेसियर, दो साइज़ छोटे। दस साल के रिट्रोस्पेक्ट में लड़की ख़ूबसूरत। बिलकुल डिप्टी मिनिस्टर या फ़िल्म हीरोइन होने के लायक! आज–

नाटक 'द फादर' (स्टिंबर्ग) का हिन्दी (?) रूपान्तर। भाषा बेढब। उठान, लाउड। इंटरप्रेटेशन–जर्की। तकनीकी पहलू, पालूटेड। नख से शिख तक दुरुस्त-चुस्त। क्लाइमेक्स–ढीला।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल। वहाँ से साथ टी हाउस। टी हाउस में निर्मल, प्रबोध, कमलेश। हमारे आने पर वे उठकर चले गए।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल साथ घर। उनके नाटक 'दर्पन' का पहला अंक?

नाटक समर्पित–श्री नेमिचन्द्र जैन को।

पहली प्रति–भाई श्री अलकाजी को।

उनकी सूचना–'इलाहाबाद से भैरव एक नई कहानी पत्रिका निकाल रहे हैं। बहुत सम्पन्न प्रकाशक की ओर से।'

बीस की सुबह। नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा का रिसेप्शन। समोसा, पेस्ट्री, चाय। सिवाय इसके कोई तालमेल नहीं। अलकाजी–कसे हुए। माया–ढीले-ढीले। भारत-भूषण के कमरे में। डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव। चुगद।

Hindi Premi

यूनाइटिड कॉफी हाउस में सुरेश, नेमि और हबीब के साथ। हबीब अलकाजी से बुरी तरह खार खाए हुए। बेतरह, बेवजह अलकाजी की निन्दा। हर बात पर। वह एक्टर बुरा है, डायरेक्टर बुरा है, प्रोड्यूसर बुरा है, स्कूल के लिए बुरा है, रंगमंच के लिए बुरा है, भाषा के लिए बुरा है, संस्कृति के लिए बुरा है।

फिर टी हाउस में। राजेन्द्र यादव, नेमि, लक्ष्मीनारायण लाल।
धर्मप्रकाश शर्मा का पालतू शायर—उसकी बेमतलब की ऊल-जलूल बातचीत।

कमलेश्वर पर हुई किराए की डिक्री को लेकर परेशानी। राजेन्द्र के और मेरे बीच। ओंप्रकाश के और मेरे बीच। गायत्री परेशान। अनीता परेशान। कमलेश्वर अलग-अलग जगह वक़्त देते हुए। हमारी दौड़-धूप। कमलेश्वर लापता है।

शाम। राजकमल में ओंप्रकाश, राजेन्द्र यादव, श्रीकान्त वर्मा। श्रीकान्त वर्मा के साथ 'मोना लीज़ा' में बातचीत। कृत्रिमता और प्रामाणिकता। सामाजिकता का अर्थ। महेन्द्र भल्ला की कहानी (उपन्यास—अंश) 'एक पति के नोट्स'। प्रिटेंशस और जेनुइन राइटिंग। श्रीकान्त वर्मा की सफ़ाई, 'मैं आज भी मार्क्सिस्ट हूँ और ज़िन्दगी-भर रहूँगा...पर मेरा मतलब तो यह है कि...।'

फुटपाथ पर राजेन्द्र से बातचीत। कमलेश्वर और ओमप्रकाश के बीच की समस्या को लेकर। डिक्री के प्रकरण में। बूँदाबाँदी। उससे घर पर देखने का निश्चय।

रात। घर पर। कमलेश्वर हँस रहा है। कहता है, सब ठीक है। सुबह पैसा वह ले आएगा। बस।...
खाना। पत्रिकाओं के बारे में बातचीत। किसे कितना सहयोग देना चाहिए।

इक्कीस की शाम। कॉफी हाउस। अशोक सेक्सरिया। विषय—'श्रीकान्त ने कहा कि आपको महेन्द्र की कहानी बहुत पसन्द आई।' लिट्रेचर इन जनरल। भाषा। इतने में राजेन्द्र यादव। प्रयाग शुक्ल। उखड़ी-उखड़ी बातचीत। 'कल्पना' कार्यालय की स्थिति। सामन्ती वातावरण।

दूसरे दौर में श्री सेंगर, मन्नू, बाँटिया। विषय—वेफ़र्ज़, कॉलेज, टिंकू, कॉफी, हॉट डॉग्ज़, रेडियो टॉक्स, श्री सेंगर की ज़िम्मेदारियाँ, उनकी भौजाई, ज़िन्दगी, वेफ़र्ज़, हॉट डॉग, कॉफी, दिल्ली में अकॉमोडेशन, रेडियो की पॉलिटिक्स, चिरंजीत गन्दा आदमी, कलकत्ते की याद...।

Hindi Premi

टी हाउस। फ्लेश लेमन सोडा। दूर से देवराज दिनेश की आँखें। फिर दिनेश उठकर उस टेबल पर। विषय–उम्र, आँखें, चश्मे का नम्बर, उर्मिल की बीमारी, डॉक्टर तिवारी...।

घर। कमलेश्वर का अब भी पता नहीं। मतलब, वह सामने नहीं गया। सुना, बारह बजे टी हाउस में था, साढ़े-छह बजे घर पर आया था।

24-8-64

बाईस को भीष्म और मिसेज़ साहनी घर पर। औपचारिक बातें। तेईस को पहले कालिया, फिर मन्नू।

कालिया ने नया वक्तव्य सुनाया। मन्नू से हँसी-मज़ाक चलता रहा। आज–दोपहर से नौ बजे तक आवारागर्दी।

25-8-64

रमेश पाल टी हाउस में। बात प्रमोद, कृष्णा, परम और शीला बावा की। उसने बताया कि एक मेट्रिमोनियल विज्ञापन के जवाब में अलीगढ़ गया था। लड़की फ्लाइट लेफ्टिनेंट थी–निहायत बदसूरत। एडवरटाज़र इसका कोई पुराना सहपाठी था। पता चला वहाँ पहुँचकर। सोचो, कितनी ऑकवर्ड पोजीशन हुई।

सवा सात बजे घर। कमलेश्वर। हिन्दी डायरेक्टरेट में कुलभूषण और जगदीश चतुर्वेदी से हुई बातचीत। बोला, 'जगदीश चतुर्वेदी लीडरी चाहता है। कुलभूषण बेवक़ूफ़ है। कहता है, अश्क और जैनेन्द्र के इंटरव्यूज़ के खिलाफ लिखेगा।'

26-8-64

बत्ती जलती रही, बुझती रही। जलती रही, बुझती रही।

27-8-64

स्थान–कमलेश्वर का कमरा। अवसर–बियर की तीन बोतलें। भोक्ता राकेश, कमलेश्वर। भोजन : राजेन्द्र। विषय : राजेन्द्र की बेईमानी।

विषयारम्भ : राकेश के कन्फेशंज़। स्थिति का विश्लेषण।

मध्य : राजेन्द्र द्वारा भलमनसाहत से कथ्य का आरम्भ। परन्तु शुरू करते ही कुंठा। फिर बेईमानी।...आख़िर स्वीकृति।

अन्ततः एक लेख की योजना।

Hindi Premi

28-8-64

निर्मल रामकुमार के घर के बाहर। उनके पिताजी की मृत्यु का सोग। साहित्यिक परिवार में से सिर्फ़ तीन आदमी। भीष्म, कुलभूषण और मैं।...वीरानगी।

खामोशी का बाँध टूटा। अच्छा लगा। उदासी में निर्मल की आँखें पहले से ज़्यादा डूबी हुई लगीं। पर उनमें मस्ती नहीं थी। रामकुमार की आँखों में, चेहरे में, मुरझाव ज़्यादा था, मस्ती भी थी।

भीष्म ने बताया कि मुक्तिबोध की हालत नाज़ुक है।

मेडिकल इंस्टीट्यूट। शमशेर, शमशेर सिंह नरूला, श्रीकान्त। नेमि।

पता चला कि सुबह मुक्तिबोध की साँस रुक गई थी। आर्टिफिशियल रेस्पायरेशन से ज़िन्दा रखा जा रहा है। अब किसी भी क्षण...।

बरामदा।

अपने सिवा हर एक की हँसी मुस्कुराहट अजीब लगती है। अस्वाभाविक। लगता है, मौत के साये में कैसे कोई हँस-मुस्कुरा सकता है। पर फिर अपने गले से भी कुछ वैसी आवाज़ सुनाई देती है।

कमलेश, अशोक वाजपेयी।

व्यस्त, जैसे कि किसी साहित्य समारोह के कार्यकर्ता हों। व्यस्त, चेहरे से।

मुक्तिबोध—रुकी-रुकी साँसें...

ऊपर से देखने में अन्तर नहीं...

लगभग वैसे ही जैसे दिल्ली आने के दिन थे।

बाहर बातचीत...

'चिता वगैरह का प्रबन्ध कैसे करना होता है?'

'भीष्म बता सकेंगे। इसके लिए हमने उन्हीं का नाम लिख रखा है।'

...मुस्कुराहटें!

'कुछ महाराष्ट्रियन विधि भी तो होगी।'

'वह प्रभाकर माचवे बता देंगे।'

हँसी।

मुक्तिबोध का सबसे छोटा बच्चा—खेलता-चिल्लाता 'अंकल! अंकल।'

कुछ वाक्य :

'एक साहित्यकार की अकाल मृत्यु! कितना अनर्थ है।'

'इसके लिए एक सरकारी कोष होना चाहिए।'

'हेल्थ सर्विसिज़ फ्री होनी चाहिए।'

'हेल्थ सर्विसिज़! हा-हा!'

'या सोशलिज़्म हो, या कुछ भी न हो।'

Hindi Premi

'हम प्रजातन्त्र के लायक नहीं।'

'आजकल क्या लिख रहे हैं?'

'कितनी बड़ी पुस्तक होगी?'

... ...

'कब तक पूरी हो जाएगी?'

... ...

'नागपुर से प्लेन कितने बजे आता है?'

'भिलाई की गाड़ी को उसका कनेक्शन नहीं मिलता।'

'चलें?'

'अच्छा...!'

29-8-64

कमलेश्वर ने बताया श्री चौहान के सम्पादकीय के बारे में, कि 'आलोचना' में उन्होंने भी 'नई कहानी' को तीन आदमियों की गुटबन्दी बताते हुए उसकी निन्दा की है—फोर्थ रेटर्ज़ की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए...।

5-9-64

साढ़े आठ बजे से एक ऐतिहासिक बैठक हुई स्टैंडर्ड होटल दरियागंज में—तिकोन के तीनों कोनों के बीच। तय हुआ कि तीनों वेल्यूज़ को लेकर अपना-अपना स्वतन्त्र स्टैंड लें। हर बात में साथ जुड़े रहना ग़लत है—और कि इसका प्रभाव भी अच्छा नहीं पड़ता।

आज शाम को घर से निकलकर राजकमल। वहाँ से ज्ञानपीठ। चौधरी के साथ 'अम्बर' में चाय। बातचीत का विषयः राजेन्द्र यादव। जैनेन्द्र का बेटा प्रदीप। 'तुम्हारे बारे में बोला कि...।'

मोतीमहल से गोलचा, गोलचा से मोतीमहल—पौन घंटा स्कूटर की तलाश में चहलक़दमी। स्कूटर मिलने पर रूपनगर। बिन्दु का फेयरवेल। दोस्त उसे समझा रहे थे : 'देखो, लड़कियों के साथ सोना अच्छा नहीं होता।' 'देखो वहाँ पानी मत पीना।'

मन्नू के यहाँ। मन्नू, कुसुमजी। कॉफी। विषय—ख़र्च। तीन सौ का मकान—हाथी। दिल्ली में बग़ैर घर के नहीं चल सकता। नौकर राशन बहुत ख़र्च करता है। राजेन्द्र को अपने ख़र्च के लिए दो सौ चाहिए।

टी हाउस के बाहर—सर्वेश्वर, श्रीकान्त, अजित, मुद्रा, देवीशंकर अवस्थी, रमेश गौड़ तथा अन्यान्य।

Hindi Premi

छोटा-मोटा हिन्दी साहित्य-सम्मेलन।

सर्वेश्वर : 'अब बैनेट कोलमेन वालों को मालूम पड़ेगा कि साहित्यकारों को रखना कितना महँगा पड़ता है।'

श्रीकान्त : 'या साहित्यकार, साहित्यकार नहीं रहेंगे, या प्रोप्राइटर, प्रोप्राइटर नहीं रहेंगे।

सर्वेश्वर : 'हम तो साहित्यकार रहेंगे ही।'

बाद में : 'उस रात लखनऊ में देखने के बाद आज देखा है। उस रात हमें तो लगा कि...।'

7-9-64

कल दिन में मदन के यहाँ–

रेखा, चमन, इन्दर नहीं आए थे। शक्ति जली-भुनी बैठी थी।

मदन के साथ कॉफी हाउस।

बातचीत :–शास्त्रीजी कितने दिन चलेंगे? इनके बाद कौन आएगा?

वही रेखा, चमन, इन्दर।

वापस मदन के घर–वाया सतीश गुजराल। परिचय न कराने की चमन की हिमाकत।

मदन के यहाँ दस्तरखान पर खाना।

बातचीत :–आज की राजनीतिक वस्तुस्थिति। कांग्रेस कितने दिन चलेगी? रामरतन गुप्ता के इलेक्शन का प्रसंग। इलेक्शन रद्द होने पर सुचेता कृपलानी का भाषण!

खाने के बाद उन लोगों ने कनॉट प्लेस में छोड़ दिया।

आज तीन बजे निकलकर कमलेश्वर के साथ आकाशवाणी भवन। घंटा-भर चिरंजीत के कमरे में नाटक के एडेपटेशन का प्रकरण। चिरंजीत की सफ़ाई।

वहाँ से ऊपर टी.वी. में।

रमेश, चार्ली और स्टेनो। मुलाक़ात की बात।

फिर सलूजा, मलहोत्रा।

कॉफी हाउस। रमेश पाल। जज सिंह। दो और सरदार।

चुटकुले–

एक देहाती सरदार और होटल में चाय खाने के वक़्त...

कॉटेज इंडस्ट्रीज़ की लड़की और शादी की बात...'ऐसी ही कुछ बात है।'

Hindi Premi

8-9-64

राजकमल।

एक राँची के प्रोफेसर—थीसिस छपवाने के चक्कर में। किताब छोड़कर जाने में उनकी जान जा रही थी।

कॉफ़ी हाउस। महेन्द्र, अशोक, सेठी, गोस्वामी। विषय : महेन्द्र का उपन्यास। निर्मल का लेख। सन्ध्या के साथ नायक के सम्भोग की घटना को लेकर 'एपीसोडिक एप्रोच' की बात, fibre में फिट न होने की बात...।

यादव।

कुछ देर कॉफी हाउस में अलग उसके साथ, फिर टी हाउस में। रमेश, मुद्रा, डॉक्टर तिवारी। फिर गोपाल मित्तल के पास से जाता ज्ञान। गोपाल मित्तल हमारी मेज़ पर। घटिया लतीफे। सोडा—तीन गिलास।

रमेश गौड़ बस स्टॉप पर—संग्रह में कहानी देने की अनुमति के लिए।

घर पर कमलेश्वर। रामानन्द दोषी प्रकरण।

9-9-64

तीन दिन से कुछ न कर पाने की थकान और उलझन। मेज़ पर कहानियाँ रखे बेबस-सा बैठा टाइपराइटर के की-बोर्ड को देख रहा था। आँख का फोकस ठीक न रहने से की-बोर्ड के नीचे की जाली बहुत बड़ी लगने लगी...एहसास हुआ जैसे बहुत गहरे 'इटरनिटी' में कहीं झाँक रहा हूँ...की-बोर्ड की चार पंक्तियाँ, चार से पाँच हुईं...फिर छह-सात हो गईं...फिर अलग-अलग कीज़ पंक्तियों से हटकर ऊँची-नीची नज़र आने लगीं...

मन में आया कि देखनेवाले का पर्सपेक्टिव यथार्थ को कितना बदल दे सकता है...। और कि खगोल में झाँकते हुए जो अव्यवस्था और बिखराव नज़र आता है, वह धरती से देखने के पर्सपेक्टिव का ही तो दोष नहीं?

10-9-64

कल—

घर से निकलकर एस.टी.सी. मदन के कमरे में। तीन हंगेरियन। बिज़नेस टॉक। फिर 'हिमालक्स' के आदमी। 10,000 रेफ्रिजरेटरों का ऑर्डर—शायद बुलगारिया से। मेटल्स एंड मिनरल्स ट्रेडिंग कॉरपोरेशन के श्री...से सर्टिफिकेट का अटेस्टेशन कराने

Hindi Premi

गए। उनका क़िस्सा—कैसे उन्होंने एक ईस्ट-यूरोपियन देश के कोयले की सप्लाई का सौदा पटाया। For seven days we talked...but nothing happened. Because of that clause...above the price. Then they consulted the chairman of their negotiating committee. I said I am packing my things and going back...

सौदा पट गया। मिनिस्ट्री खुश है। अभी सरदार स्वर्णसिंह वहाँ गए थे, तो...।

राजकमल। कमलेश्वर के साथ रेडियो के असिस्टेंट प्रोडयूसर श्री दीनानाथ।

फिर से कांट्रेक्ट पुराण।

'दोषी' के मामले में कमलेश्वर का attitude ठीक नहीं लगा।

शक्ति को टेलीफ़ोन—

"You see we have to go to Ashoka. Then to the Bulgarian National Day Reception. And then to Indu's, you can find his number from Statesman's office."

मगर मदन हठ करके लेने चला आया।

इन्दर के घर में—

सतीश गुजराल और उसकी पत्नी किरण...

शामलाल और मिसेज़ शामलाल—

मदन और शक्ति

तारिक साहब...

चमन, रेखा, शीला...

इन्दर की अम्माँ...बहन...

उसके अब्बा...वह

हम दोनों...

सतीश गुजराल के लतीफे—हकलाती धीमी, अस्वाभाविक आवाज़ में...।

शक्ति—शामलाल से मिलने पर...

तारिक साहब का अन्दाज़!

शीला टिप्सी...

रेखा-इन्दर अन्दर के कमरे में...

किरण गुजराल का होंठों से बात करने का ढंग...!

कुल मिलाकर कुछ भी नहीं।

Hindi Premi

रात को छत पर। शीला नशे में। चमन चारपाई पर। बातें शीला करती रही, 'Send Anita to me sometime. You do not think I am a bad influence, do you?'

12-9-64

परसों।

दोपहर को निकलने पर बस में महेन्द्र भल्ला। यात्रा की समस्या। भाषा लिखना किसी को आता ही नहीं। कॉफी हाउस में घंटा-भर। फिर जनपथ लेन से चमन को लाने। रेखा। टहलते हुए हबीब के बारे में बात। वह उसे भिलाई बुलाना चाहती है।

चमन के साथ कॉफी हाउस में। विषय : उसकी नौकरी। स्टील प्लांट और स्टील फनेंस। मैनेजमेंट।

वहीं रमेश पाल। उसे छोड़ने शंकर मार्केट तक। रास्ते में हबीब। रेखा की बात। पाल का विषय–किसी भी तरह 'थोड़ी-बहुत एक्स्ट्रा आमदनी।'

कॉफी हाउस में शरद देवड़ा और राजेन्द्र यादव। राजेन्द्र अवस्थी, मनोहर श्याम जोशी और एक और जर्नलिस्ट।

'लघु कहानी' की बात। लौटते हुए रेलिंग के पास भारती उपाख्यान। उसका रिवीज़न कि रविशंकर वाले डिस्कशन को लेकर क्या-क्या हुआ। वह थोड़ा डाउन हो गया। रात को कमलेश्वर के साथ मार्कंडेय की बात। बारिश में गली में।

कल–

शरद देवड़ा और राजेन्द्र घर पर। मार्कंडेय का पत्र। टैरेस पर चाय और राजेन्द्र के लॉज़िक से पैदा एक लतीफा–

'...तो कहानीकार कुल तीन?'

उसने हाथ मिलाया।

'उपन्यासकार दो?'

उसने फिर हाथ मिलाया।

'और नाटककार सिर्फ़ एक?'

उसने हाथ हटा लिया। बोला, 'हस्साला, कहाँ से बात निकालकर लाया है।'

ला बोहीम में राजेन्द्र और शरद देवड़ा के साथ कॉफी। शरद की तलखी 'ज्ञानोदय' छोड़ने की बात को लेकर। हम लोगों के लिखने की बात को लेकर। उसकी आँखों में आँसू आ गए।

स्थिति का स्पष्टीकरण।

Hindi Premi

साली बेल्जियम फिल्टर ने बुरी तरह परेशान किया। बहकर। बैरे ने बताया 'आपने टॉप ग़लत रखे हैं।'

चलने तक शरद देवड़ा की मुस्कुराहट लौट आई थी।

सड़क पर हुल्लड़बाज़ी और रीगल से स्कूटर...

सुबह-सुबह कमलेश्वर ने बताया, 'मुक्तिबोध की मृत्यु हो गई।'

मौत का दिन था यह...जैसे कि होता है कोई-कोई दिन...!

दोपहर को राधास्वामी सत्संग के स्टॉप के पास बस से उतरा, तो एक शव सामने से आ रहा था...

दोपहर को निगमबोध घाट पहुँचे, तो मुक्तिबोध की अर्थी वहाँ पहुँच चुकी थी। चिता जलाने से पहले पूजा हो रही थी।

खामोश लोग एक दूसरे की तरफ़ देख रहे थे, या मंडप में रखे शव की ओर।

पूजा हुई। लकड़ियाँ रखी गईं। आग लगा दी गई।

सबकुछ धुआँ हो गया। न जाने कितने संकल्प, कितने विचार, कितनी अनुभूतियाँ, कितनी आकांक्षाएँ...जो सबकुछ घंटे पहले साँस रुकने के साथ जड़ हो गई थीं।

सुना, मामा वरेरकर की हालत नाज़ुक है। हिचकी बन्द नहीं हो रही।

राजकमल में सुरेश अवस्थी, श्री शिवदान सिंह चौहान। वहाँ से उठकर 'स्टैंडर्ड' में। तीन घंटे बातचीत। लगा दीवार से सिर पटक रहे हैं—पत्थर की भुरभुरी दीवार से।

'स्टैंडर्ड' से कनॉट प्लेस। बात पौने आठ तक चलती रही—फुटपाथ पर।

टी हाउस। दिनेश, दो अलम्बरदार। चड्ढा (हरिदत्त?)। बोगस कानखाऊ क़िस्से।

सत सोनी, रवीन्द्र कालिया।

सत सोनी की बात 'दायरा' के बारे में।

रवीन्द्र कालिया 'ज्ञानोदय' के इंटरव्यू को लेकर। घर तक छोड़ गया।

13-9-64

दिन में कॉफी हाउस। बारह बजे। कमलेश्वर के साथ गर्मा-गर्म बातचीत। चौहान को लेकर। आगमन भीष्म साहनी का। कॉफी के साथ चौहान पुराण का दूसरा दौर। तय हुआ—किसी दिन राजेन्द्र की भूमिका साथ-साथ सुनेंगे। भीष्म के घर में।

बत्ती दिन में तीन बार जाती है। जब भी लिखने-पढ़ने की सोचो, तभी। या कि बिजली के जाने पर ही लिखने-पढ़ने की बात दिमाग़ में आ जाती है।

Hindi Premi

पानी उबाल कर पियो। घर से बाहर मत पियो। क्लोराइड-कंटेंट बहुत है। जमुना का पानी बाढ़ ने गँदला दिया है। ड्रेन नम्बर आठ की वजह से यह सब हो रहा है। इसमें अधिकारियों का कोई कसूर नहीं। वे तो रोज़ बाढ़ से घिरे इलाकों का चक्कर लगाते हैं। चाहते हैं कि पानी उतर जाए। बीमारियाँ न फैलें। कीमतें न बढ़ें। लोग खुशहाल रहें। नहीं होता यह सब, तो वे क्या करें? ढेरों काग़ज़ों पर रोज़ दस्तखत करके भी कुछ न हो, तो कैसे करें?

17-9-64

बात कल ही की रही थी कि आ पहुँचे रमेश पाल। रेखा को छोड़ने गया गली के मोड़ तक। वहाँ बातचीत हबीब और 'लहरों के राजहंस' को लेकर। तभी 'सरदार' की कार। ऊँचे स्वर में बात करने की कोशिश। ताकि सरदार सुन ले।

वापसी पर रमेश के साथ बातचीत। विषय 'इमोशनल सिक्योरिटी'। हिसार की लड़की (कॉलेज टीचर) अनीता। 'लहरों के राजहंस। रीडिंग की बात। घर आने का निश्चय। टी हाउस में दो बार। मसाला डोसा। दूसरी बार उठने तक मारे ज़ुकाम के बुरी हालत। 'फिर किसी दिन सही...।'

रमेश ने भारत की बात बताई। 'वह कह रहा था कि तुमने हम लोगों की पहली मुलाक़ात का यूँ विवरण दिया कि...।'

कल। निकला रेखा से मिलने और मुक्तिबोध की शोक सभा में जाने के इरादे से। पर कॉफी हाउस में दाख़िल हो, वहाँ से टेलीफ़ोन करके लौट आया। ज़ुकाम के साथ बुख़ार भी लग रहा था, जिस्म टूट रहा था। रेखा 5-25 तक अभी आई नहीं थी।

कल सुबह चिरंजीत को फ़ोन किया था, प्ले कैंसिल करने के लिए। उस दिन उसका बात करने का अन्दाज़ पसन्द नहीं आया था, जिस दिन वह भारत और पाल के साथ मिला था।

उसने फ़ोन पर सफ़ाई दी। शाम को मुक्तिबोध की सभा में मिलने की बात तय की। उसे भी फ़ोन कर दिया कि अब ठीक है, मिलने की ज़रूरत नहीं। मिलना होगा, वैसे मिल लेंगे। आज कल में।

कल रात घर आने पर पता चला अनीता से—गायत्री कमलेश्वर की लड़ाई हो गई थी। गायत्री दरवाज़े को ताला लगाकर चली गई थी। कमलेश्वर से कहकर कि घर पर नहीं होगी। कमलेश्वर शाम को चने खा रहा था। उसे ऊपर लाकर फ्रेंच टोस्ट बनवा दिए। तभी गायत्री आ गई। बैक-ग्राउंड बाद में मालूम हुई।

Hindi Premi

आज। घर से निकलकर शाम को कॉफी हाउस। रमेश पाल, सलीम रज़ा (?), उर्दू अनुवाद की बात। बाद में परसाई, कमलेश्वर, यादव। दूसरी मेज़ पर। विषय : कमलेश्वर का सम्पादकीय। तभी—महीपसिंह, सुखबीर। बैडमिंटन। यादव की लेग-पुलिंग।

प्रस्थान महीप, सुखबीर, यादव का।

आगमन प्रबोध का।

हल्की-हल्की बातें। प्राण तुम लघु-लघु गात! प्रस्थान पहले प्रबोध और फिर परसाई का।

कमलेश्वर द्वारा चौहान के साथ हुई बातचीत का विवरण।

अभी, अभी...।

चौहान मुँह ताकते, सफ़ाई देते रहे।

अभी, अभी...।

चौहान लेख माँगते रहे।

अभी, अभी...।

चौहान निढाल होकर चले गए।

प्रवेश वेदव्यास का। प्रश्न, 'यह राकेशवाद, कमलेश्वरवाद क्या है?'

विषयारम्भ...'नई कहानी...।'

प्रवेश रमेश पाल का!

'यह क्या बकवास है? हर वक़्त नई कहानी, नई कहानी। तुम्हारा हश्र भी इशा का-सा न हो जो हर वक़्त लोगों से 'लतीफ़ा', 'लतीफ़ा' कहता रहता था।'

फिर—कौशल कैसे मर गया?

बाहर।

विषय : 'लहरों के राजहंस' के लिए सलीम रज़ा (?) की बुकिंग। वेदव्यास उसे रिलीज़ करने को तैयार होगा?

चलते-चलते टी हाउस तक।

वहाँ से अलग-अलग रास्ते।

पूसा रोड पर फटफटिया से उतरने के बाद—

कमलेश्वर : 'उसके पति का खत आया है।'

बात—इमोशनल डिपेंडेंस कितनी है?

परिवार की चर्चा! अपने भाई के साथ इसकी भतीजी के रिश्ते में वह किस तरह रुकावट डाल रही थी।

'उसका दूसरा कारण भी हो सकता है।'

Hindi Premi

'हाँ, कि कहीं...।'

'पर देखो...।'

'मैं जानता हूँ। मैं इस यूनिट को किसी कीमत पर नहीं तोड़ सकता।'

ज़ीने में उपदेश—उसके पति को क्या उत्तर देना चाहिए।

18-9-64

साढ़े आठ बजे नींद टूटी श्री रमेश पाल के भेजे श्री बजाज के शुभागमन से। रमेश ने कहा था वह लड़का टाइप-आइप का काम कर दिया करेगा।

पूछा, 'किस वक़्त ख़ाली होते हो?'

बोला, 'सुबह मिनिस्ट्री में नौकरी पर जाता हूँ। शाम को ड्रामा स्कूल में। वहीं नौ बज जाते हैं।'

पूछा, 'हिन्दी टाइप की मशीन तो नहीं होगी?'

बोला, 'नहीं। उसकी प्रैक्टिस भी नहीं है। अंग्रेज़ी की प्रैक्टिस है।'

उसे विदा करके फिर सोने की कोशिश की, पर नींद नहीं आई।

शाम को गंगाप्रसाद विमल किसी और के साथ आए। उस वक़्त सो रहा था। अनीता ने उठाया नहीं। सवा नौ बजे उठने पर पता चला।

19-9-64

बर्फ़खाने के पास के शैक्स तोड़कर कई लोगों को आज बेघर किया जा रहा है। पीपे, कनस्तर, चारपाइयाँ, डब्बे, गुदड़ियाँ...ज़्यादातर यही सामान है जो सामने फुटपाथ पर बिखरा है। कुछ सामान लोग हाथों में लिए खड़े हैं। जैसे कि सड़क की जगह रेल के प्लेटफार्म पर खड़े गाड़ी का इन्तज़ार कर रहे हों।

कमलेश्वर। 'लहरों के राजहंस' के एडेप्टेशन पर बातचीत। गहरी आत्मीयता।

20-9-64

रेखा-चमन को सी-ऑफ़ करने जाना था। घर से निकलते ही सामने दिखाई दिए वही विस्थापित लोग—खामोश फुटपाथों पर बैठे हुए। डोलियाँ, चारपाइयाँ, तकिये, ढोलक। कुछ कारोबार का सामान। एक आदमी उस स्थिति में भी अन्दर से बाहर फेंके गए 'छोले-भठूरे' बेचता हुआ।

दीवारें तोड़ी जा रही थीं। छतें गिराई जा रही थीं। एक कोठरी में जो कि कुछ देर पहले ख़ाली कराई गई थी, बैठा एक आदमी बड़े से रजिस्टर में कुछ इन्दराज कर रहा था।

Hindi Premi

स्टेशन पर उन लोगों से पहले पहुँच गया। सीट ढूँढकर उस पर बैठ रहा। कुछ देर में चमन नज़र आया। दुबला हो जाने से, या जाने बुश्शर्ट की वजह से काफ़ी स्मार्ट और ख़ूबसूरत लग रहा था। उसने बताया, 'वे लोग बाहर हैं।' वह अकेला सामान रख रहा था।

बाहर थे इन्दर, रेखा, सीमा, बुई, शशि, और शीला की दोनों बच्चियाँ। अनिल नहीं था।

रेखा उस दिन की सफ़ाई देती रही कि देर से पहुँची घर पर इन्तज़ार करती रही।

कुछ देर में तकिये लिए हुए भूपसिंह आ पहुँचा। मरियल-सा।

हल्की-हल्की बातें चलती रहीं। गाड़ी दस मिनट लेट चली। वे दस मिनट अनइजीनेस में कटे।

गाड़ी चली गई, तो साथ-साथ सब लोग बाहर निकले। इन्दर ने अपनी गाड़ी में 'ओडियन' के पास छोड़ दिया।

राजकमल। रवीन्द्र कालिया, हरिवंश कश्यप। कमलेश्वर के कमरे में कमलेश्वर ने बताया ओंप्रकाश को बुख़ार हो आया है। वह चला गया है।

वहीं पढ़ा कमलेश्वर का सम्पादकीय। अपना नाम न होना काफ़ी महसूस हुआ। मगर कोशिश की कि चेहरे से ज़ाहिर न हो। श्री सत्यपाल विद्यालंकार से मज़ाक करता रहा।

वहाँ से उठकर चौधरी के पास चले गए। कमलेश्वर ने सम्पादकीय वहाँ पढ़कर सुनाया। रमेश गौड़ की कविता सुनाई।

वहाँ से चले स्टेशन। फटफटिया में। स्टेशन पर बदपरहेजी की। बर्फी खाई। कटलेट्स खाए। गन्दे। बेहूदा।

मुक्तिबोध की अस्थियाँ ले जानेवाले तीन व्यक्तियों—उनके लड़के, परसाई तथा शमशेर—के अलावा कोई नहीं था। परसाई और शमशेर से औपचारिक बातें होती रहीं। शमशेर दिल्ली आने-न-आने के सम्बन्ध में अनिश्चित बात करते रहे। परसाई निश्चित। गाड़ी बीस मिनट लेट चली। पर वैसी अनइजीनेस नहीं हुई।

21-9-64

सुबह एक नामालूम दस्तक।

नींद उससे खुली। पता चला, कोई नहीं है।

दिन में कमलेश्वर। 'लहरों के राजहंस' का एडेप्टेशन लेकर। उस पर बातचीत। 'सारिका' में राजेन्द्र यादव का सेल्फ पोर्ट्रेट और मन्नू का लेख। राजेन्द्र का सेल्फ

Hindi Premi

पोर्ट्रेट बिलकुल वाहियात लगा। मन्नू के लेख में अनावश्यक प्रशंसा और स्वाभाविक कड़ुवाहट मिली। लगा जैसे घर की लड़ाई सड़क पर लड़ी जा रही हो। बिना वजह।

...'कल्पना' में दीपक की समीक्षाएँ। कामचलाऊ।

शाम को सड़क की सैर। चर्चा परसाई और श्रीकान्त की। कमलेश्वर बताने लगा कि परसाई श्रीकान्त की वकालत करता रहा। कि वह कहता है केवल आर्थिक कारण से नौकरी कर रहा है, वरना विश्वास की दृष्टि से तो वह आज भी...।

रात को भीष्म और शीला साहनी। अनीता को विश करने। घंटा-भर बातचीत लेखकीय दायित्व पर। भीष्म की मध्यवर्गीय वृत्ति। गुडी, गुडी, गुडी, गुडी।

सिनेमा जाने से पहले रघुवीर सहाय का वक्तव्य। पहले नहीं पढ़ा था। लगा जैसे रबड़ का खिलौना हवा से फूला हो। अन्दर कहीं जान ही नहीं। परले सिर की चुगदियत। साहित्यिकता के नाम पर। छोकरा उँगली पर लहू लगाकर शहीद हो गया।

22-9-64

दिन-भर घर पर।

शाम को नीचे कमलेश्वर के कमरे में। उसने बताया कि आज ओंप्रकाश से 'सम्पादकीय' को लेकर बात हुई। ओंप्रकाश ने आज दो पत्र इसके और चौहान के नाम लिखे हैं। दोनों के सम्पादकीयों का हवाला देते हुए, तीनों की मीटिंग चाही है। कि इस बीच वन्ने भाई से भी ओंप्रकाश की बात हुई है। बन्ने भाई चौहान की थीम से नहीं, पर कथ्य से सहमत हैं। 'अश्वत्थामा' वाली बात पर उन्हें भी एतराज़ है।

बात कर रहे थे अपनी आस्था और मूल्यनिष्ठा के सम्बन्ध में–कि आए जयन्त गडकरी।

गडकरी बम्बई से अभी लौटा है। तलाक की पेटीशन देकर। बताता रहा कि किस तरह वह औरत आख़िरी दम तक अड़चनें डालती रही। हालाँकि केस सीधे एडल्ट्री का है। इसकी अनुपस्थिति में उसने इसके भाई को फाँस लिया था। 'उसका भी तो ख्याल नहीं रखती,' गडकरी कहता रहा। 'वह लड़का इतना पस्त और टूटा हुआ है कि क्या कहूँ, वह न इधर का रहा न उधर का। अगर मुझे छोड़कर उसी के लिए कुछ कर सकती, तो भी मुझे खुशी होती।'

23-9-64

ओंप्रकाश और दीपक, घर पर कमलेश्वर के कमरे में। नीचे पहुँचा तो बात वही हो रही थी। 'नई कहानी' की और कमलेश्वर के सम्पादकीय को लेकर। ख़ासा

Hindi Premi

ओवरडोज़ हो गया इस साल इस सबका। हर सुबह, हर शाम। जो मिलता है, वही बात करता है। मन होता है कुछ दिनों के लिए अपने को सील-इन कर लूँ। शहर में रहते हुए भी शहर से बाहर हो जाऊँ। वरना यह सिलसिला तो नहीं खत्म होने का अभी कई महीने।

दीपक ने एक बात ढंग की कही कि डिमार्केशन लेखकों का नहीं, रचनाओं का होना चाहिए। ज़िक्र भी उसी तरह से हो। इससे धरातल अधिक स्पष्ट होगा। अधिक स्वस्थ होगा। दिक़्क़त यह है कि वह बात को लम्बा बहुत करता है। संक्षेप में कहकर आगे नहीं बढ़ता।

दोपहर को घर से निकलकर बस स्टैंड पर बस की लम्बी प्रतीक्षा। तीन हिस्सों में दरियागंज तक की यात्रा।

ओंप्रकाश के केबिन में एक रूसी भाई बैठे थे। ओंप्रकाश पोलियो की दवाई इलाहाबाद भिजवाने के लिए किसी डॉक्टर (Tatov या Tarov?) का पता-अता पूछ रहा था।

वहीं चौहान आ गए। बात शुरू हुई, तो कमलेश्वर आ गया। बात गर्म होने लगी तो आ पहुँचे महावीर अधिकारी। उन्होंने क़िस्सा शुरू किया बैनेट कोलमैन एंड कम्पनी का। पता चला कि गवर्नमेंट की इन्क्वायरी से पहले उन्होंने डायरेक्टर बदल दिए हैं।

रमा जैन तथा कुछ संसद सदस्य (हरेकृष्ण मेहताब आदि) डायरेक्टर चुने गए हैं। प्यारेलाल साह वगैरह विद्रोही हो उठे थे। उनके साथ डिप्टी सेक्रेटरी, डिप्टी बिज़नेस मैनेजर इत्यादि लगा दिए हैं। उम्मीद थी कि सरकार अपने डायरेक्टर लगा देगी। मगर शान्तिप्रसाद जैन ने नोटों के पुलन्दे देकर टी. टी. के. के अलावा सभी मिनिस्टरों और दूसरे काँगरेसियों को फोड़ लिया है।

'जाट है वह आदमी।' अधिकारी अपने ख़ास अन्दाज़ में कहता रहा। 'सरकार बनियों की है। सो वह मनमर्जी से इसके साथ सम्भोग कर रहा है।'

फिर मोतीमहल में वह बात करता रहा अपने उपन्यासों की, कहानियों की। कुल मिलाकर वही बातें जो दो साल पहले करता था।

नेमि से बातचीत रमेश द्वारा 'लहरों के राजहंस' के प्रोडक्शन को लेकर।

प्रभाकर माचवे के यहाँ मुक्तिबोध की तेरहीं। खामोश बैठे लोग। बीच में मुक्तिबोध का चित्र। गुलदस्ते। माचवे के सिवा लेख लिखनेवाले नदारद।

हल्के-हल्के वाक्यों से टूटती खामोशी। सब लोग एक-दूसरे की आँखों में कुछ खोजते से। जर्मन विद्यार्थिनी, 'एक साहित्यिक की डायरी' के पन्ने पलटती हुई। कुलभूषण उसके कान में कुछ फुसफुसाता हुआ।

Hindi Premi

कुछ और आगन्तुक। एकाएक सबका उठ पड़ना। हाथ जोड़कर निकल आना। मुक्तिबोध का छोटा बच्चा ज़ीने में।

प्रभाकर माचवे : 'इसे रोज़ इस वक़्त नीचे टहलाना होता है। ज़रा मेरा पर्स देना...।'

साथ माचवीय मुस्कुराहट।

बियर की बोतलें लेकर ओंप्रकाश के यहाँ। सभी चुटकुले। आगमन राजेन्द्र यादव का। मन्नू का।

हँसी-हँसी में बातचीत। चौहान और आलोचना को लेकर। चौहान के वास्तविक दुख को लेकर। जोकि दुख कुलभूषण का भी है।

घर पर। श्री एस.एस. सेठी तथा झज्झर (?) से आए एक सज्जन। वहाँ के 'यूथ फेस्टिवल' में जाने की बात। कहा, कल बताऊँगा।

24-9-64

सुबह ग्यारह बजे कमलेश्वर इस कमरे में। बात की कि किस तरह रमेश पाल को 'लहरों के राजहंस' स्टेज करने से dissuade किया जाए।

साढ़े तीन बजे रमेश के कमरे में। ए.आई.आर. हॉस्टल। विक्टोरिया के ज़माने की छतें, दीवारें। अजब मुर्दनी। दरवाज़े। काँच, सब उस मुर्दनी के साक्षी।

रमेश पहले से बियर पी रहा था। उसका असिस्टेंट (कानजी?) भी तभी पहुँचा था। रमेश बोला, "आई हेड ऑलमोस्ट गिवन यू अप।"

मुश्किल से बात शुरू की। अपने को बेगाना-सा लगा उस तरह बात करना।

रमेश ने मतलब समझा, उसे पचाया।

उसके पलंग पर लेट गया। विषय बदल गया। छत और दीवारों की बात की, आपसी सम्बन्ध की, उसके बदले रूप की।

उसका पार्टनर आ गया। लद्दाखी।

स्लाइस आमलेट का ऑर्डर हुआ। तभी कमलेश्वर भी आ गया।

कमलेश्वर ने भी वही बात कही। उसी awkwardness के साथ।

रमेश ने बियर के घूँट के साथ उसे भी निगला। मुस्कुराहट और गालों की हल्की सुर्खी के साथ पचाया।

बात इस पर आई कि कोई क्लासिक क्यों न किया जाए। इस पर 'मृच्छकटिक' का सुझाव आया। रमेश ने कहा कि 'मृच्छकटिक' की बात सीरियसली सोचेगा।

Hindi Premi

वहाँ से निकले। कनॉट प्लेस में हमें ड्राप करके रमेश और उसका असिस्टेंट आगे चले गए।

कॉफी हाउस के सामने। 'कन्ज्यूमर्स को-ऑपरेटिव कॉफी हाउस' की हलचल। शामियाने के नीचे कुर्सी-मेज़ें। सुना मेम्बरशिप हज़ार तक पहुँच गई है। को-आपरेटिव बैंक 50 हज़ार तक कर्ज़ा देने को तैयार है।

शामियाने के बाहर महफिल। जैसे किसी की लड़की की शादी हो।

उधर कारिडोर में कॉफी बार!

टी हाउस में दिनेश। चन्दा करके ह्विस्की। बाद में पानेवाले से दिनेश ने दस रुपया कर्ज़ा ले लिया। 'चलो, चलकर कुछ खाएँगे।'...यह सिर्फ़ इसलिए कि मैंने ह्विस्की नहीं पी।

अन्दर। टी हाउस में। मुद्रा, कालिया। विषय : चौहान का सम्पादकीय, कमलेश्वर का सम्पादकीय। मुद्रा का चेहरा ज़रूरत से ज़्यादा उतरा हुआ। दयनीय।

हॉट डाग, हैम बर्गर, कॉफी। गोपाल मित्तल ने सलाम किया, तो कमलेश्वर को बताया कि उसी ने जैनेन्द्र आदि के साथ मिलकर एम.आर.ए. की मीटिंग कनवीन की थी जिसमें कमलेश्वर के 'सारिका' में जाने के खिलाफ बात की गई।

'तू कैसे जानता है?' कमलेश्वर ने पूछा।

'मैं इसे लाहौर से जानता हूँ' मैंने कहा। 'उन दिनों यह प्रोग्रेसिव था।'

'मैंने भी सोचा कि...।'

'कहो तो कल यहीं जुतियाया जाए।'

'मगर मुद्रा का नाम मत लेना...।'

'हाँ', रवीन्द्र बोला। 'बेचारे को अभी यू.एस.आई.एस. के कुछ अनुवाद और कर लेने दो।'

मुद्रा हँसा, मरियल हँसी। कहता, 'मेरा नाम मत लीजिएगा।'

बाद में कमलेश्वर से अकेले में वह कहता रहा, 'गुरु मैं तुम्हारे साथ हूँ। तुम जैसा कहो, वैसा करूँ।'

कमलेश्वर चलने के बाद भी रुक गया, तो कुछ देर इन्तज़ार करने के बाद फटफटिया लेकर चला आया।

मानो से खेलता रहा।

थोड़ी देर में कमलेश्वर आया। दो मिनट में बात खत्म हो गई।

दिन में एस.एस. सेठी से फ़ोन पर कह दिया कि झज्झर वाले बुलाना चाहें तो उन्हें हर रोज़ का 150 रुपया देना होगा। और कि वे कल शाम तक पता दे दें।

Hindi Premi

कल के दो प्रकरण। अधिकारी द्वारा चौधरी ब्रह्मप्रकाश के कारनामों पर प्रकाश (ऐसा होता है जाट आदमी!)–60,000 एकड़ ज़मीन रुपये गज़ पर एलॉट करा ली। उसके जरिए फिर अपनी सेना का पालन।

दूसरे–माचवे के जीने पर श्रीकान्त का एक व्यक्ति से बात करने रुक जाना।

ओंप्रकाश–(मुझसे) 'तुम कभी सफल नहीं होगे ज़िन्दगी में! तुम एक डिप्टी मिनिस्टर को विश तक नहीं करते!'

'किस चीज़ के डिप्टी मिनिस्टर हैं ये?'

'शिक्षा सचिवालय में।'

25-9-64

पाँच बजे राजेन्द्र यादव। बारिश के बावजूद। वक़्त का और ज़बान का पक्का है यह आदमी।

ऊपर नहीं आया। मानो को भेजकर नीचे बुला भेजा।

चार घंटे बात करते रहे। पहले दिनों से लेकर आज तक की। उसके सेल्फ पोर्ट्रेट को लेकर धुनाई की। माना कि झख मारी है।

'नई कहानियाँ' लेने की बात करता रहा। को-ऑपरेटिव बनाने की। हर तीन वाक्यों के बाद, 'मैं कलकत्ता हो आऊँ।' वही बचकाना बातें, विज्ञापनों की, कर्ज़ की, प्रकाशन खोलने की।

बाद में अपनी कहानियों की बात करते रहे। सामान्यतः कहानी की। आधुनिकतम कहानी के अन्तर्निहित फार्मूलों की।

कमलेश्वर पहुँचा पाँच बजे की जगह नौ बजे।

नया दौर शुरू हुआ तो बारह बजे तक चला। खाना वहीं खाया। ऊपर से खाना नीचे ले गया।

बातें ज़्यादातर दोहराई गईं। राजेन्द्र थोड़ी देर रेसिस्ट करके ट्रेक पर आ गया। फिर गहरी आन्तरिकता से बात होती रही।

तय किया कि मंगल को मिलेंगे। एक-दूसरे को अपनी चीज़ें सुनाएँगे।

उससे कहा कि कलकत्ता जाकर उसके मध्य-वित्तीय संस्कार अधिक जागृत हो आए हैं, जिसका असर उसके लेखन पर भी पड़ा है–तो उसने बुरा नहीं माना।

बहुत दिनों के बाद इस तरह बैठकर अच्छा लगा।

26-9-64

ग्यारह बजे कमलेश्वर मानो के साथ। 'नीचे मन नहीं लग रहा था, सोचा तुम्हें देख लूँ।'

Hindi Premi

थोड़ी देर बैठकर वह चला गया। बात हुई राजेन्द्र यादव के बारे में। 'मैंने कहा तू कलकत्ते जाकर बीस हज़ार ले आ। जिस दिन ले आएगा, उसी दिन 'नई कहानियाँ' मैं तुझे दिला दूँगा।'

'इस चुग़द को जाने कब अक्ल आएगी?'

'और क्या? सोचो...अगर तुझे बीस हज़ार ऐसे ही आसानी से मिल सकता था तो तूने कलकत्ते से ही पत्रिका क्यों नहीं निकाल ली?'

डॉक्टर मल्होत्रा की दुकान। मरीजों की लम्बी पंक्ति। मशीन की तरह डॉ. मल्होत्रा का काम किए जाना।

27-9-64

तीन बजे कमलेश्वर। गायत्री भाभी और मानो के साथ। उसने अपना 'आत्मकथ्य' सुनाया और पढ़ने के लिए छोड़ दिया। बात कर ही रहे थे कि विमल एक और व्यक्ति (दीक्षित?) के साथ आ पहुँचा। उठकर नीचे चले गए। वहाँ आठ बजे तक बात होती रही। ज़्यादातर बेमतलब। यह लड़का जाने सचमुच पढ़ता-लिखता है, या ऐसे ही बनता है। बातें इसकी बहुत असम्बद्ध होती हैं। समझदारी से ज़्यादा उतावली नज़र आती है। जैसे बिना पानी में उतरे छलाँग मारकर दरिया पार कर लेना चाहता हो। मानो से वह खेलता रहा, पर वह भी एक अजनबी के उत्साह से। दूसरा व्यक्ति ज़्यादा समय चुप रहा। कुछ थोड़ी-सी ही बात की उसने—वह भी मुझे और कमलेश्वर को ह्यूमर करने की कोशिश।

विमल ने अपना बनाया प्रारूप निकाला—वह भी उसकी बातों की तरह असम्बद्ध। 'मोहन राकेश, कमलेश्वर, रवीन्द्र कालिया तथा गंगाप्रसाद विमल, चार लेखकों में कहानी सम्बन्धी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गम्भीर बातचीत।' जो-जो कुछ उससे कहा, हर बात की हामी भरता गया। जैसे कि पहले से उसने भी वही सोच रखी हो। यादव, श्रीकान्त, सर्वेश्वर की कहानियों पर बात हुई। मतलब उनकी निन्दा। इसी अर्थ में चौहान की भी बात हुई। कमलेश्वर के सम्पादकीय की निन्दा से शुरू करके बात के रुख के अनुसार उसकी प्रशंसा करने लगा। जाते हुए बातचीत के लिए बुध का दिन मुकर्रर कर गया।

कमलेश्वर ने बताया, 'पुष्पा भारती का पत्र आया है। उसने लिखा है कि भारती जी सम्पादकीय पढ़कर बल्लियों उछल पड़े।'

और कि :

'आनन्द जैन बता रहा था। उसने कहा था कि किसी से भी कहना नहीं। बैनेट कोलमेन का सारा बोर्ड बदल गया है, यह तो तुम्हें मालूम ही है। शान्तिप्रसाद जैन

Hindi Premi

ने किसी बात के लिए नानपोरिया को फ़ोन किया, तो नानपोरिया ने कहा, कि मैं आपसे ऑर्डर नहीं ले सकता क्योंकि आप अब चेयरमैन नहीं हैं। इस पर उसे कसना शुरू किया गया, तो वह दिल्ली आकर सीधे शास्त्रीजी से मिला। शास्त्रीजी से बाद में शान्तिप्रसाद जैन ने मिलना चाहा, तो शास्त्रीजी ने मिलने से इनकार कर दिया। सुना है, जल्द ही बैनेट कोलमैन में एडमिनिस्ट्रेटर बैठनेवाला है। पी.के. राय की नौकरी चली जाएगी...और भी कई सम्पादकों, व्यवस्थापकों की नौकरी जाएगी। अधिकारी इसी काम से तो आया था दिल्ली कि अपनी नौकरी बचा रखे। भारती जी बीमार हैं, सुना नहीं? दफ़्तर आजकल नहीं जा रहे...।'

28-9-64

तीन बजे कमलेश्वर, ऊपर। उसके सामने अपना आत्मकथ्य।

उस वक़्त वोल्टाज़ का मेकेनिक मशीन चेक कर रहा था।

सवा पाँच बजे घर से निकला। बस स्टैंड पर पहुँचते ही बस मिल गई। कॉफी हाउस पहुँचा। Price Rise Resistance Committee के शामियाने में कॉफी पी। रामानन्द मुंजाल और उसका भांजा मिल गए। उनसे इधर-उधर की बातें होती रहीं। आज भी रामानन्द उतना ही मासूम लगा जितना उन दिनों था।

शामियाने में काफ़ी हलचल थी। सैकड़ों लोग आ-जा रहे थे। काउंटर पर लम्बा क्यू था। सामने के कॉफी हाउस ने हालाँकि रेट कम कर दिए हैं, फिर भी पुराने धुरन्धर उधर का रुख न करके क्यू में खड़े थे। बहुत से लोग बोर्ड के पास जमा होकर 'कॉफी एजिटेशन' की खबरें पढ़ रहे थे। नई खबर—फूड मिनिस्टर कमेटी के मेम्बर बन गए। प्राइम मिनिस्टर ने आशीर्वाद दिया।

मेला-सा था। सच, अगर यही जगह स्थायी हो जाए, तो कितना अच्छा हो। हिन्दुस्तान का शायद यह पहला पेवमेंट कैफे है...।

सामने के कॉफी हाउस वालों का ब्लैक बोर्ड और भी बड़ा था। 'In view of public demand, the management is pleased to announce... ।' पर उधर कोई ताक भी नहीं रहा था। मैनेजमेंट ने दरवाज़ों पर पर्दे लगा दिए थे ताकि कोई झाँककर देख न सके कि अन्दर कितने आदमी हैं। दरवाज़े पर दरबान तैनात था। पानवाला पंडित बोला, 'आज कुछ आदमी गए हैं अन्दर, साहब! कल तक तो कोई झाँककर भी नहीं देखता था।'

पंडित के लड़के ने दूसरा मोर्चा सँभाल लिया है—नए शामियाना कॉफी हाउस के अन्दर।

Hindi Premi

टी हाउस। दिनेश। मिस्टर गनी (?)। दूर राजेन्द्र यादव। इशारा।

वह दो कॉफियाँ लिये अकेला बैठा था। दूसरी कॉफी जिस सज्जन के लिए मँगवाई थी, वह उठकर किसी से मिलने चला गया था। अब राजू भैया बैरे से कह रहे थे कि एक कॉफी दस मिनट बाद ले आए, या उसे ही बाद में गर्म कर लाए– पर मैनेजमेंट ने यह दरख़ास्त रद्द कर दी थी।

राजू भैया के दोस्त (श्री सुरेन्द्र फ्राम देहरादून तथा श्री गुरुदत्त के सुपुत्र) आ गए, तो वहाँ से उठ आया।

बुक स्टॉल के पास अशोक वाजपेयी। एक टेबल पर चले गए, तो वहाँ पहुँचे गोपाल मित्तल, रामानन्द दोषी।

दोषी ने बहुत धीरे से कान में बात की। 'उस योजना में विष्णुजी को लाएँ?'

'ज़रूर!'

'कोई एतराज़ तो नहीं?'

'बिलकुल नहीं। ही इज़ मोस्ट वेलकम।'

दोषी चले गए!

मित्तल से सीधे पूछ लिया कि मारल रिआर्मामेंट की मीटिंग में उसके कमलेश्वर के खिलाफ आयोजन करने की बात कहाँ तक सच है।

मित्तल ने कसमें खाईं कि वह ऐसी किसी मीटिंग में कभी शामिल नहीं हुआ, एम.आर.ए. के किसी व्यक्ति को वह जानता तक नहीं, जैनेन्द्र से उसकी तीन साल में एक बार भी बातचीत नहीं हुई।

अशोक वाजपेयी हँसता रहा। ख़ासतौर से जब मित्तल ने कहा कि उसकी पुस्तक की भूमिका वात्स्यायन ने लिखी है, तो उससे कही बात से, 'ठीक ही तो है। गोपाल मित्तल उर्दू का वात्स्यायन है और वात्स्यायन हिन्दी का गोपाल मित्तल।'

फिर उससे पूछा, 'तुम्हारी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद किसने किया है? वात्स्यायन ने?'

'नहीं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने।

'एक ही बात है।'

फिर कुलवन्त सिंह विर्क। वहीं।

उसे खींचकर पास बिठाया। गोपाल मित्तल का चेहरा और फीका पड़ गया।

विर्क के साथ बाहर निकल आया। राजू भैया से जाकर छुट्टी माँगी तो वह बोला, 'तेरा नामराशि बैठा है।'

'कौन?'

Hindi Premi

'चोपड़ा।'

'कहाँ?'

'वहाँ सामने। ज़रा सँभलकर जाना।'

'मेरा बॉडी गार्ड साथ में है। वह सरदार।'

'किराए पर लाया है?'

'हाँ।'

बाहर दिनेश के साथ एक प्रेमालिंगन। मतलब, साले की तोंद के साथ।

बस में कुलवन्त के साथ आया।

'मोटा बहुत हो गया है।'

'हाँ। तेरे क्या हालचाल हैं?

'ठीक हैं।...कोई ज़नानी घर में है?'

'हाँ, है।'

'तीसरी या उन दोनों में से?'

'तीसरी।'

'कब से?'

'सवा साल से।'

'जामा मस्ज़िद पर एक दिन देखा था।'

'कबाब खाने गए होंगे।'

बस से उतरने पर वह अपने घर ले गया, राजेन्द्र नगर। बोला, 'ऊपर का फ़्लैट ख़ाली है। मन हो, तो चले आओ।'

फ़्लैट देख लिया। कहा, 'कल बताऊँगा।'

नीचे उसकी बीवी मिल गई। 'यह मोहन राकेश...।'

'मैं जानती हूँ।'

दोनों कुछ रास्ता छोड़ गए।

'तुम्हारा ज़िक्र सुनते रहते हैं।'

'किससे?'

'लोगों से।'

'कैसा?'

'सब तरह का।'

'अच्छा?'

'तुम हिन्दीवालों की बहुत चर्चा होती है।'

'अच्छा?'

'डैम लकी।'

Hindi Premi

'अच्छा?'
'पुरुषोत्तम का खत आया था।'
'क्या?'
'दिल्ली आना चाहता है।'
'क्यों?'
'बेवक़ूफ़ है।'
'अच्छा?'
'नौकरी करनी ही है, तो, यह क्या और वह क्या? सब एक-सी हैं।'
'हूँ।'
'जनानी की तरह। जैसे एक ब्याह ली, वैसे दूसरी।'
'हूँ।'
'बस रत्ती-मासे का ही फ़र्क़ होता है।'
'अच्छा?'
'और क्या!'

29-9-64

शाम को घर से निकलने पर टी हाउस के बाहर मिस्टर ज्ञान। देखकर भी दोनों ने नहीं देखा। पास से निकल गए।

अन्दर मिला विर्क। दो और सरदारों के साथ।
'जँच रहे हो,' उसने कहा।
'शुक्रिया।'
'ठीक ही है', उसने कहा।
'क्या?'
'सबकुछ।'
'यानी?'
'सभी कुछ।'
'मैं समझा नहीं।'
'वह भी ठीक है। ज़रूरत भी क्या है?'

शामियाना कॉफी हाउस के बाहर महेन्द्र, सेठी, गोस्वामी! राजेन्द्र अवस्थी। अवस्थी के जाने के बाद कॉफी लेकर रेलिंग के पास की मेज़ पर। थोड़ी देर में भीष्म और शीलाजी।

बातचीत–यादव और कालिया के लेखों को लेकर। महेन्द्र बोला, ''हिन्दी में इतना घटिया लिखकर भी आदमी ख्याति पा जाता है। मैं यादव को पन्द्रह आदमियों

Hindi Premi

के बीच भी बैठा देखूँगा, तो उसके पास जाकर कहूँगा कि जो कुछ तुमने लिखा है, वह ईडियाटिक है।"

"मैं पहले कह चुका हूँ।"

"ऐसे आदमी के साथ दोस्ती रखकर आप अच्छा कैसे लिख लेते हैं?"

"यह स्टेट सीक्रेट यहाँ मत पूछो।"

"निर्मल की कहानी पढ़ी?"

"नहीं।" साथ ही मुस्कुरा दिए।

"काफ़ी सुधार है," उसने कहा। "बेदी का इंटरव्यू।"

"...पढ़ा।"

"काफ़ी है," वह बोला।

भीष्म बताने लगा कि उसकी चौहान से भेंट हुई थी। पूछ रहे थे कि तुमने 'नई कहानियाँ' वाला लेख पढ़ा है? मैंने कहा, "नहीं।"

"चौहान का लेख पढ़ा है?"

उसी मासूमियत के साथ भीष्म ने जवाब दिया, "नहीं।"

"यह जगह ख़ूबसूरत है।"

"हाँ, बहुत ही...।"

"यह कॉफी हाउस हमेशा इसी तरह नहीं रह सकता?"

"इसके मेम्बरों से पूछना चाहिए।"

तभी दो आदमी काग़ज़ लिए हुए आ गए।

"आप मेम्बर हैं?"

"नहीं।"

"बनना चाहेंगे?"

"ज़रूर।"

और रुपया देकर मेम्बर बन गए।

घर आने पर कालिया। बोला कि "डॉ. मदान कल आ रहे हैं, उन्हें भी शामिल कर लें।"

"ज़रूर कर लो। आई आलवेज़ लाइक हिज़ कम्पनी।"

"यादव का लेख आपको कैसा लगा?"

"वाहियात।"

"मन्नू का?"

"अच्छा नहीं।"

"यादव को क्या हो गया है?"

"पता नहीं।"

Hindi Premi

"अन्त में यह क्या लिखा है उसने–अभी तो मैं जवान हूँ?"

"वह प्रिय पाठिका के लिए है।"

"हालाँकि उसे विश्वास नहीं आएगा।"

"क्यों?"

"तस्वीर देखकर।"

"वह ट्रांसपेरेंसी किसकी है?"

"ब्रह्मदेव की?"

"कैसे मालूम?"

"बुश्शर्ट ब्रह्मदेव की है।"

"अच्छा? सिगरेट भी ज़रा गौर से देखना। कहीं मेरी न हो।"

30-9-64

घर से निकला कमलेश्वर के साथ। बैंक होता हुआ टेलीफ़ोन ऑफिस गया। कनेक्शन का पता करने। मिस्टर चोपड़ा से पता चला 19-20 तक शायद लग जाए।

शामियाना कॉफी हाउस होते हुए राजकमल। वहाँ ओंप्रकाश के कमरे में कमलेश्वर के साथ। फिर कमलेश्वर के कमरे में। वहाँ मटियानी, गौड़, भल्ला। मीठी-मीठी बातचीत।

फिर ओंप्रकाश के कमरे में डॉ. मदान। रमेश कुन्तल मेघ। कालिया। कमलेश्वर। डॉ. मदान की कहानी सम्बन्धी जिज्ञासाएँ।

डॉ. मदान के साथ घर। अम्माँ से डॉ. मदान का वही मज़ाक।

...वापस कनॉट प्लेस।

...वापस घर।

1-10-64

कालिया के कमरे में हुई कहानी सम्बन्धी बातचीत में एक ओर पूर्वग्रह अधिक था, दूसरी ओर उत्तेजना। उत्तेजना और पूर्वग्रह के बीच वस्तुस्थिति के कुछ पक्ष स्पष्ट भी हुए पर कुल मिलाकर लगा कि यह आयोजन किसी भी तरह की निश्चित भूमि पर नहीं था। परिणाम, एक वितृष्णा और उदासी–मूल्यों के सम्बन्ध में दृष्टिहीनता को लेकर हल्की-सी खीझ।

खोज के आग्रह और आन्तरिक मूल्य चेतना के बिना किए गए वाद-विवाद सिवाय एक ढकोसले के क्या हैं?...और यह सोचना कि यह आग्रह...इतना ही उत्कट...औरों में भी होगा, क्या सचमुच एक दुराग्रह ही नहीं है?...हर आदमी

Hindi Premi

कहीं-न-कहीं एक झिल्ली में उलझा है...क्षण-भर झिल्ली से बाहर निकलकर बात करता है, तो फिर अचानक झिल्ली का आसरा लेने लपकता है।...डॉ. मदान और रमेश कुन्तल मेघ के हठ में अधिक ईमानदारी थी...सबसे डिप्रेसिंग और निराधार थी कालिया की बातचीत...बेहद, बेहद बचकाना!

15-10-64

शाम को घर से निकला, तो इरादा बाल कटवाने का था।

एक स्कूटरवाले ने पीछे से आकर आवाज़ें दीं। पता चला, रमेश पाल स्कूटर में बैठा है। बुला रहा है।

वह बेहद पिये हुए था।

उसके साथ स्कूटर में बैठ गया।

'शीला' तक गए। दुकान बन्द थी।

वह कह रहा था, 'आई एम हैप्पी।'

''मैं तुम्हारे इन शब्दों का मतलब जानता हूँ,'' मैंने कहा।

''मैं तुमसे कहने आया था—आज से हम दोस्त नहीं हैं।''

''वजह?''

''वजह कुछ नहीं।''

रीगल के पास उतर गए।

देखा उसकी पतलून पर, हाथ पर, बुश्शर्ट पर, ख़ून लगा है। हाथ जख़्मी है।

''तुम्हें मेरे दिल्ली आने का बहुत दुःख था न?'' उसने कहा।

''क्यों?''

''ऐसे ही?''

''पर हुआ क्या है जिसकी वजह से यह सब कह रहे हो?''

''मुझे भी तो जीने का हक है,'' वह झूलकर बोला। ''मैं कम-से-कम बीस-तीस साल और जीऊँगा। तुम भी शायद इतने साल जिओगे। पर तुम्हारे बारे में मैं निश्चित नहीं कह सकता। हाँ, मैं ज़रूर जिऊँगा।''

''ठीक है, पर तुम परेशान किस चीज़ से हो?''

''परेशान?'' वह चेहरा सख़्त किए बाँहों पर आगे को झुक गया। ''मैं क्यों परेशान होऊँगा?''

काफ़ी देर वह इसी तरह बात करता रहा। ''तुम समझते हो यह भी कहानी है? पचास रुपया, सौ रुपया, डेढ़ सौ रुपया कमाने का मसाला है?...मैं बता रहा हूँ तुम्हें, मैं मरूँगा नहीं। मैं अभी कम-से-कम बीस-तीस साल और जिऊँगा।''

तंग आकर उसके पास से उठ गया। कहा, ''अच्छा, फिर किसी दिन मिलेंगे।''

Hindi Premi

वह कुछ देर में उसी तरह झूलता हुआ टी हाउस से बाहर चला गया।

हाँ, एक बात और कही उसने, ''मैं तुम्हें वार्निंग दे रहा हूँ।''

''किस बात की?''

''कि एक पुराना दोस्त बहुत ख़तरनाक भी साबित हो सकता है।''

''ठीक है। तुम जब होश में रहोगे, तब बात करेंगे।''

''मैं आज के बाद कोई बात नहीं करूँगा,'' वह बोला। ''और तुम समझते हो कि मैं इस वक़्त होश में नहीं हूँ?''

कल महेन्द्र से फिर टेरेस पर बातचीत हुई थी। शुरुआत—राजेन्द्र यादव से दोस्ती क्यों और कैसे? आगे चलकर विषय : आज का जीवन-सन्दर्भ और रचना-प्रक्रिया—अकेले क्षण और 'अकेलेपन' का दर्शन।

आज ज्वाय फोटोग्राफर—आदमी को उसके पर्सपेक्टिव में रखकर देखने की बात...

4-11-64

कल रात यादव के यहाँ जाने को हुए, पर आलस कर गए। कमलेश्वर ने कहा, ''हटाओ, यहीं चाय पी लेते हैं।''

रात ग्यारह बजे तक उसके कमरे में ही बैठे रहे। उसने बताया कि डॉ. ओंप्रकाश और उसकी मिसेज़ के सामने मन्नू किस तरह अपने और राजेन्द्र के सम्बन्ध को लेकर बात कर रही थी। कह रही थी, ''जब कुछ है ही नहीं, तो भ्रम बनाकर भी क्यों रखा जाए?''

बात कहाँ से चलकर यादव के अब दिल्ली से बाहर जाकर काम करने के इरादे पर आई। टिंकू को क्यों भेजा गया, इसका ज़िक्र हुआ। फिर लेखक और उसकी बैंकरप्टी का प्रकरण उठा। बात के सिलसिले में पहली बार अपने मन की बात कमलेश्वर को बता दी। अपनी डायरी ले जाकर उसका वह पत्र निकालकर उसे दिखाया जिसमें दो तरफ़ मुँह किए दो इंजनों का ज़िक्र है और जोकि 'स्याह और सफ़ेद' शीर्षक उपन्यास का अन्त होता। भाई राजेन्द्र यादव को बता दिया था कि उपन्यास का अन्त इस तरह से करना चाहता हूँ। नतीजा यह हुआ कि कुछ दिन बाद भाई ने जब 'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश' के नाम से छपवाया, तो वह आइडिया वहाँ मार दिया—इस उपन्यास का अन्त लगभग उसी तरह करके। इससे मन इतना ख़राब हुआ कि 'स्याह और सफ़ेद' का बाक़ी हिस्सा लिखा ही नहीं बल्कि उसे दो हिस्सों में तोड़ दिया और पीछे का हिस्सा ही 'नीली रोशनी की बाँहें' शीर्षक से लिखना शुरू कर दिया। पहले हिस्से के 200 टाइप किए पन्ने ज्यों-के-त्यों रखे हैं।

Hindi Premi

कमलेश्वर को यह भी बताया कि यह बात उस आदमी से मैंने आज तक नहीं कही...मगर 'नया मकान' वाला आइडिया बताने पर जब उसने उस पर 'अपनी' कहानी लिख ली थी, तो उतनी तकलीफ़ नहीं हुई थी और उससे कह भी दिया था। पर इस बार...इतनी नफरत हुई कि उससे कुछ भी कहा नहीं।

''मेरा दिल उस आदमी से फट चुका है,'' मैंने कमलेश्वर से कहा। ''मैं अब सिर्फ़ निभा रहा हूँ...जैसे-कैसे भी।''

कमलेश्वर ने डायरी का वह अंश पढ़ा—सन् 58 का लिखा हुआ। उसके आगे का रिफरेंस भी उसे दिखाया। वह सुन्न होकर बैठा रहा।

कमलेश्वर के पास से उठकर आया, तो मन फिर उदास हो गया था। साढ़े बारह बजे तक करवटें बदलता रहा। फिर सो गया।

आज बहुत दिनों के बाद कॉफी हाउस की तरफ़ जा रहा था, तो अपने में बुजुर्गियत-सी लगी—न जाने क्यों। शायद बहुत दिनों के बाद रॉ-सिल्क का कोट पहना था, इसलिए।

7-11-64

कल शाम को पहले महेन्द्र भल्ला, फिर कालिया। महेन्द्र अपने कमिटेड होने की बात करता रहा। फिर लेखक की ईमानदारी के बारे में। उससे कहा कि हम लोग सही शुरुआत नहीं कर पा रहे हैं...लेखक के लिए जिस-जिस तरह की मुक्ति आवश्यक है, वह सब तरह की मुक्ति हमने अपने को नहीं दी...हम आधे रास्ते में रुके हुए हैं...भलमनसाहत के अपने तकाज़े में अटके हुए हैं। अपने inertia को हममें से बहुतों ने अपनी नियति मान लिया है। मुझे ज़्यादा जो ग़ुस्सा आता है, वह इसी बात पर।

कहा कि अपना-आप कभी-कभी मुझे एक सींगवाले जानवर की तरह लगता है जो कि अपने सींग सीधे किसी चीज़ में गड़ा देना चाहता है...या कि ऐसा लगता है जैसे मेरे सिर पर एक ब्लेड लगा हो, तेज़ धार का लम्बा ब्लेड जिससे सीध में किसी पेड़ को मुझे दो टूक कर देना हो।

रवीन्द्र आया तो लेखकों की बात करते रहे। टॉलस्टाय की, दोस्तोएव्स्की के पैशन की, काफ्का की सिनसिएरिटी की...।

महेन्द्र के जाने के बाद कालिया को भाषण दिया...स्मार्टनेस से बचकर ईमानदारी से चलने के लिए...अपने लिए सोचने और खोज करने के लिए।...

परिसंवाद रद्द कर देने की बात भी उससे कही। उसे काफ़ी निराशा हुई, पर और कोई चारा नहीं था। परिसंवाद की रिपोर्ट का मूल स्वर ही बहुत pretentious था...।

Hindi Premi

कॉफी हाउस में श्रीकान्त वर्मा। बोला, 'साहित्यिक कहानी को मैं बकवास मानता हूँ। साहित्यिक कहानी नाम की कोई चीज़ नहीं होती। मैंने पहले जो कुछ कहा है इस बारे में, वह ग़लत है। मैं तो इस बारे में लेख लिखने को तैयार हूँ। फिर सफ़ाई देता रहा 'रानी' वाले प्रकरण और रस्तोगी की बात को लेकर। 'कमलेश्वर लेखक बेहतर है, पर ईमानदार नहीं है...उसने अपने सम्पादकीय से सबसे ज़्यादा घपला किया है...राजेन्द्र लेखक अच्छा नहीं है पर ईमानदार है।'

तभी राजेन्द्र आ गया, फिर अशोक वाजपेयी। श्रीकान्त का आधा इंसपिरेशन खत्म हो गया।

रमेश गौड़। केन्द्र वाली परिचर्चा से मुद्राराक्षस को साथ लेने पर उसकी धुनाई की। बाक़ी बात उससे सोमवार को होगी।

8-11-64

कालिया का लेख उसकी बातचीत से ज़्यादा बचकाना है...दो बार लिखे जाने पर भी उसका कोई अर्थ नहीं बना। परसों वह तीन घंटे बैठा रहा। जो बात मन में थी, उससे कह भी दी...कि आधारभूत ईमानदारी लेकर न चलने से वह साल-दो साल के लिए एक भ्रम तो पैदा कर सकता है, पर वह भ्रम जब टूटेगा, तो वह बहुत तकलीफ़देह स्थिति होगी। वह कहता रहा कि अब इस तरह की स्थिति से बचकर चलना चाहता है...जब शुरू-शुरू में दिल्ली आया था, तो ज़्यादा ग़ैर-जिम्मेदार था...अब उतना नहीं है...कि विमल जैसे व्यक्ति का उस पर कोई प्रभाव नहीं है।

जब वह मासूम बनकर बात करता है, तो मन में बहुत हमदर्दी जागती है। पर साथ ही कहीं यह भी लगता है कि उसकी मासूमियत सिर्फ़ एक लबादा है...वह हर ऐसे व्यक्ति के साथ मासूम बन जाता है जो कहीं किसी तरह का प्रभाव रखता हो...

कभी-कभी यह भी सोचता हूँ कि ऐसा सोचना मेरा कमीनापन है...वह कहीं सचमुच मुझसे 'इमोशनली अटेच्ड' है...या कम-से-कम उन दिनों की इज़्ज़त तो उसके मन में है ही जब डी.ए.वी. कॉलेज जालन्धर में मुझसे पढ़ता था। पर उसकी कही या लिखी हर बात का 'अंडरकरेंट' इसके विपरीत जाता है।

ज़ुकाम, खाँसी। हल्का-सा बुख़ार। घर से बाहर वैसे ही बहुत कम निकलता हूँ...आज दिन-भर मजबूरन पड़े रहना पड़ा। बिना कुछ किए-धरे। हाँ, छींकते और रूमाल ख़राब करते हुए कुछ चिट्ठियाँ लिख डालीं। बेमतलब की चिट्ठियों की सफ़ाई भी कर दी।

...यह स्वीकृति कैसी है, नहीं जानता। सच, मुझे लगता है कि मुझे मौत से डर नहीं लगता...जो ख्याल आता है वह यहीं कि बहुत-सा काम अभी करने को पड़ा है।

Hindi Premi

अनीता का ख्याल भी आता है। वह अभी बहुत छोटी है...उसे बीस-तीस साल की ज़िन्दगी मिलनी ही चाहिए, इतना। मगर अपनी वजह से, अपने शरीर की वजह से, डर नहीं लगता। दूसरों की तरह अपनी तरफ़ से भी मन काफ़ी हद तक तटस्थ है उस दृष्टि से। हो सकता है कि यह 'स्वस्थ' दृष्टि तब तक ही हो जब तक कि स्वास्थ्य ठीक है, उसके बाद न रहे। किसी ने कहा था कि यह दृष्टि स्वस्थ नहीं है। पराजय की स्वीकृति है। मैं नहीं जानता। मुझे इस एहसास से कहीं पराजय नहीं लगती। कुछ वैसा ही लगता है जैसे क्षण-भर के इरादे से एक अच्छी ख़ासी लगी-लगाई नौकरी छोड़ देना।

9-11-64

पूरा दिन आज भी घर में बीता। रात जागते छटपटाते कटी थी, दिन ऊँघते-जम्हाते हुए। चौखाना नीले मेज़पोश पर लम्बी तानकर लेटे हुए अपना-आप एक पाले-पोसे जानवर की तरह लगता रहा। माँ और अनीता...दो-दो स्त्रियों के बीच पड़े हुए एक लम्बा, उदास, बीमार दिन...शाम को छह बजे से ही अँधेरा और खामोशी...जैसे कि किसी पहाड़ की तराई में एक अलग-से गाँव में हों।

बिजली की रोशनी भी मद्धिम लगती रही...शायद बुख़ार की वजह से...।

:

10-11-64

शामियाना कॉफी हाउस में सुरेन्द्र चतुर्वेदी। "गुरु, कहो तो लखनऊ के शहीद स्मारक पर नई कहानी की गोष्ठी करें। अब तो सब लोग शहीद हो गए। नहीं?"

"नहीं, सब नहीं। पर तुम गोष्ठी करो। हम शहीदों को साथ ले आएँगे।"

14-11-64

ग्यारह की रात को भीष्म के यहाँ खाना था।

सेरेब्रेयाकोफ को भीष्म ने निमन्त्रित किया था। यादव-मन्नू को, हमें, महेन्द्र भल्ला को। कमलेश्वर इलाहाबाद से लौटा नहीं था—यूँ निमन्त्रण उसके लिए भी था।

भल्ला ने सेरेब्रेयाकोफ से ब्राडस्की के ट्रायल और उसकी कविता के बारे में सवाल शुरू किए। बदमजगी हो जाती। किसी तरह बात दूसरी पटरी पर आई। बाद में सेरेब्रेयाकोफ काफ़ी खुल गए। मज़ाक होने लगे। खाना खाया गया। कल्पना ने प्यानो सुनाया।

उससे पहले राजकमल में—बन्ने भाई, रज़िया सज्जाद ज़हीर, यादव—दो और व्यक्ति, बन्ने भाई से सम्बद्ध।

Hindi Premi

...विषय—चौहान। चौहान का सम्पादकीय। कमलेश्वर का सम्पादकीय। बम्बई में हुई बातचीत का हवाला।

...पीस कांफ्रेंस में सम्मिलित होने की बात...बाद में एक अन्तरंग मीटिंग बुलाने का फैसला।

12 को यादव ने हमारे यहाँ अपनी 'एक दुनिया समानान्तर' की भूमिका पढ़ी। भीष्म और कमलेश्वर भी थे। पहले कुछ पन्ने ठीक लगे, मगर बाद में वही बोरियत। तीस पन्ने तक सुनने के बाद लगा कि आगे सुनना बेकार है।

कल दिन-भर रेखा चमन के साथ। बाद में मदन के घर। रात को पालम पर कॉफी।

आज सुबह अमरेन्द्र अमर। बेचारा बिना बिस्तर या रिहायश की जगह के दिल्ली आ पहुँचा था। 'मिलने! साहित्यिकों से।' बोला, 'पब्लिक सर्विस कमीशन का इम्तिहान दिया था साल भर पहले। उसके रिजल्ट का भी पता करना था। अभी तक कुछ पता नहीं आया।'

और एक कस्बाती शहर की सब धारणाएँ यन्त्रणाएँ लिए हुए।

दो घंटे उससे बात की। कहा कि पत्रिकाओं के कार्यालयों में कुछ लोगों से मिले—कुछ से हम शाम को मिला देंगे। कमलेश्वर से नीचे मिला दिया। कहा, उसे ठहराने के लिए राजेन्द्र अवस्थी को फ़ोन कर दे। 'तुम भी फ़ोन कर देना', कमलेश्वर बोला।

शाम को अवस्थी को फ़ोन किया कि कमलेश्वर से बात करके उस लड़के को रात को अपने यहाँ ले जाए। यह भी कि उसे शामियाना कॉफी हाउस में बुला ले—वहीं मैं भी मिल जाऊँगा।

शाम को कॉफी हाउस पहुँचा तो अवस्थी इन्तज़ार कर रहा था।

उसने बताया कि कमलेश्वर ने उससे तय कर लिया था, पर बाद में यादव का फ़ोन आया कि वह लड़का कह रहा है, रात की गाड़ी से वापस चला जाएगा।

समझ में नहीं आया कि क्या करूँ। कमलेश्वर से बात करने का मौका नहीं था। उसका राजेन्द्र यादव के यहाँ खाना था। रात को उसे जाने कब लौटना था।

अवस्थी ने ही बताया, बैनेट कोलमैन में भारती की स्थिति बहुत नाज़ुक है। वहाँ मिस्टर कपूर, नए चेयरमैन, को भारती के खिलाफ 53 आदमियों ने पेटीशन दे रखी है। अधिकारी अंग्रेज़ीवालों के साथ हैं।

अवस्थी के साथ बैठा चुगद, 'आपकी कहानी 'मवाली' बहुत अच्छी लगी थी। उसके बाद कोई कहानी आपकी नहीं पढ़ी। जिस लेखक की कोई कहानी बहुत अच्छी लग जाती है, उस लेखक की कोई चीज़ उसके बाद मैं नहीं पढ़ता।'

Hindi Premi

श्रीकान्त वर्मा—बेनेट कोलमैन पुराण को लेकर—'अब लगता है कोई खतरा नहीं है। वात्स्यायन के अपने कांटेक्ट हैं—वे लालबहादुर शास्त्री को, डॉ. रामकृष्णन को, वरच्युअली सभी को जानते हैं। मेरा ख्याल है पेपर निकलेगा...हालाँकि शान्तिप्रसाद जैन और रमा जैन अब इस पेपर के खिलाफ हैं।'

कल मदन के यहाँ—रेखा ने पिछले कमरे में अलग से बात की—अपने और इन्दर के सम्बन्ध के बारे में। 'आइ एम थ्रू विद हिम।'

चमन आया, तो दोनों ने एक-दूसरे को चूमा।

शीला को बताया, तो वह बहुत खुश हुई। 'आई एम सो हैप्पी।'

शीला पालम पर, 'कॉफी के पैसे मैं दूँगी। आइ इन्वाइटिड एवरीवन।'

देने नहीं दिए, तो नाराज़ हो गई।

जल्दी लौटने के सिलसिले में, एक बार बोली, "I am further late, I may be thrown out of Queensway Lane tonight."

इशारा शारदा के बरताव की तरफ़ था।

15-11-64

कांग्रेस फॉर वर्ल्ड पीस एंड इंटरनेशनल कोऑपरेशन। विज्ञान भवन। हॉल में हाज़िरी बहुत कम। अरुणा आसिफ अली का भाषण कि चीन के हमले के बाद भारत को अपनी शान्ति नीति में परिवर्तन करना पड़ा है।

बाहर—जोशी डेलिगेशन। कुछ अपनी अजीब-अजीब पोशाकों में। अमरीकन (रिपोर्टर), रूसी, यूगोस्लाव!

हरिशंकर परसाई। भोपाल के मथुरा बाबू। संसद सदस्य मिश्र। टोली के साथ पान-चाय की खोज। एक जगह निराशा। दूसरी जगह (सामने की गली में) दो आना कप चाय। पान।

वापसी पर नवतेज, सेरेब्रेयाकोफ।

परसाई का कहना, 'वही अश्क के उपन्यास वाला प्रीतनगर...?'

नवतेज का सुर्ख होना।

परसाई से बातचीत—चौहान और बन्ने भाई के बारे में।

लौटते हुए बस स्टॉप पर अकेले ठिठुरना।

16-11-64

सप्रू हाउस। पीस कांफ्रेंस। लालबहादुर शास्त्री का भाषण। बेजान।

कृष्ण मेनन शास्त्री को एस्कार्ट करते हुए।

Hindi Premi

लाबीज़ में परसाई, नरेन्द्र, बन्ने भाई। कल की मीटिंग के बारे में बातचीत। चौहान टोप-कोट में दुरुस्त-चुस्त।

कनॉट प्लेस। थियेटर कम्यूनिकेशन्ज़ बिल्डिंग में पी.आर.आर.एम. के कॉफी हाउस का उद्घाटन। हबीब, गुजराल। टी हाउस—राजेन्द्र यादव। एक बेमतलब बैठक। गे-टाइम—कॉफी, हॉट डाग।

17-11-64

जनपथ होटल के कांफ्रेंस रूम में वर्ल्ड पीस कांफ्रेंस का लेखकीय सेमिनार।

लॉन में ड्राफ्ट पर बातचीत। बन्ने भाई, परसाई, चौहान, रजिया आपा।

आना दारासिंह और स्टंट हीरोइन ताजी का। सब लोग राइट अबाउट टर्न।

चाय पीने वहाँ से कमलेश्वर के साथ डबल मार्च अन्नपूर्णा तक और वापस।

सेमिनार में डॉ. आनन्द की आनन्दियत। यू.ए.आर. के श्री मकसूद का ओजस्वी और अर्थपूर्ण भाषण। उसके बाद आधा दर्जन लोगों की व्यक्तित्वहीन उद्घोषणाएँ। एक सरदार साहब की सरदारियत।

बुलाहट मोहन राकेश की।

भाषण! अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार से पहले राष्ट्रीय स्तर पर लेखकों को संगठित करने के बारे में। जातीय साहित्य से आलोचकों के अलगाव की बात।

डॉ. आनन्द की तिलमिलाहट।

बाद में लाबीज़ में...

चौहान, आनन्द, जाफरी...एक-दूसरे के बारे में। अधिकांश युवा लेखकों द्वारा मोहन राकेश का समर्थन!

कॉफी हाउस होते हुए वापसी।

20-11-64

18 को चमन वापस गया...भिलाई। स्टेशन पर रेखा, अनिल और इन्दर आए थे। गाड़ी लेट थी, इसलिए इन्दर पहले ही चला गया।

सीट बुक नहीं थी। रेखा जाकर थर्ड का टिकट लाई। चमन को उसने कुछ रुपए भी दिए। दोनों एक-दूसरे से कहते रहे, 'तुम रखो, तुम्हें ज़्यादा ज़रूरत होगी।'

'बहुत-सी ख़ूबसूरत लड़कियाँ तुम्हारे साथ सफर कर रही हैं', रेखा ने कहा।

'सबसे ख़ूबसूरत लड़की को तो यहीं छोड़ जा रहा हूँ' वह बोला।

रेखा भीगी हुई हँसी हँसी। 'अरे यार, अब तो बूढ़ी हो गई हूँ।'

इन्दर का कमरा—स्टेट्समैन हाउस में। इन्दर अपने सम्पादक के साथ। हम लोगों के पहुँचने पर दोनों दूसरे कमरे में चले गए। इन्दर ने चाय मँगवाई।

Hindi Premi

इन्दर को आठ बजे तक काम करना था। वह कहता रहा कि आठ बजे के बाद जाकर उसे निज़ामुद्दीन छोड़ आएगा।

'मैं चली जाऊँगी,' रेखा बनाने की कोशिश करती रही।

मगर ज़्यादा देर कोशिश नहीं कर सकी।

घर आए अनीता को लेने। वह कमलेश्वर का कमरा गायत्री के साथ मिलकर सेट कर रही थी।

उसे लेकर चले गए—कॉफी हाउस।

कॉफी हाउस में सरदारों की टेबल!

क़िस्से—

गोपाल सिंह कैसे एम.पी. हो गया। 'बस मन में फैसला कर लेना चाहिए कि हमें यह करना है...। उसने फैसला कर लिया कि मुझे एम.पी. बनना है—फिर उसके बाद, बस! फिर खुद अपने लिए हर एक से कहता रहा।'

'तीन मूर्ति और राष्ट्रपति भवन जा-जाकर...।'

'कहता है मेरा काम तो हरि (पंडितजी का नौकर) जानता है।'

'धर्मवीरा को खाना खिलाकर खुद उसने उससे सिफारिश की कि मेरी बीवी को आनरेरी मैजिस्ट्रेट लगा दो।'

'दो महीने पहले कहता था, एम्बेसेडर बनने का लोभ नहीं रहा क्योंकि शास्त्री के खिलाफ मैंने काम किया था। पंडितजी के गुज़रने के बाद...और फलाँ स्कैंडल की वजह से और लोग भी नाराज़ हैं...।'

'कल पता चला है कि वह जल्दी ही एम्बेसेडर या गवर्नर लगकर जा रहा है।'

'उसका भाई बन्द दूसरा—जो मुझे पटासकर के ले गया था।...पटासकर ने अन्दर तक नहीं बुलाया।'

'हो-हो-हो!'

'बस विल पावर होनी चाहिए।'

फिर रेखा से एक सरदार बोला, 'अब कोशिश करके आप भी एम.पी. हो जाइए।'

रेखा वहाँ से चलने के बाद काफ़ी देर बात करती रही। 'यह आज तक किसी ने नहीं सुझाया था...एम.पी. बनने के बारे में। सचमुच क्या कोशिश नहीं की जा सकती?'

आर्थिक समस्या के उसे तीन ही हल सूझ रहे थे—एक बड़ा-सा घर लेकर किसी को पेइंग गेस्ट रख ले...नौकरी कर ले...या एम.पी. लग जाए।

Hindi Premi

कल वेद खन्ना और विमल मरवाह की बड़ी बहन। वेद नीचे कार में थी–पैर प्लास्टर में था, इसलिए।

घंटा-भर वहीं चहकती रही। विषय बम्बई में बासु के साथ शूटिंग देखना।

...मोहन स्टुडियो, अशोक कुमार, मीना कुमारी, पद्मिनी...।

उसने घर पर बुलाया। शाम को मानो की बर्थडे चाय के बाद गए। उसकी सासजी आई हुई थीं। बेबी रो रहा था। बिस्तर पर बैठे हुए उसका जिस्म इतना फैला हुआ और थल-थल लग रहा था कि जी मितलाने लगा।

कुत्तों का ज़िक्र उठने पर बोली, 'अकेली होती हूँ, तो इन्हीं की वजह से घर भरा-भरा-सा लगता है।'

22-11-64

कल–शाम को कॉफी हाउस। महेन्द्र भल्ला ने बताया, 'एक्सप्रेस' वालों का विज्ञापन निकला है। किसी साप्ताहिक के लिए सम्पादक चाहिए। अफवाह है–विज्ञापन तो ऐसे ही निकला है–मोहन राकेश सम्पादक नियुक्त हो चुके हैं।

अन्दर श्रीकान्त, प्रबोध वगैरह से भी लगभग यही बात सुनने को मिली। अशोक सेक्सरिया सिर हिलाता रहा। 'सिवाय ऐसी कमीनी बातों के लोगों के पास करने को और बात ही क्या है?'

वह रवीन्द्र कालिया की भी निन्दा करता रहा। रमेश बक्षी और 'ज्ञानोदय' के विशेषांक की भी। एक तरह से पूरे हिन्दी साहित्य की। बल्कि साहित्य मात्र की। कहता रहा, 'सब बकवास है। दुनिया-भर में आज लिखा ही क्या जा रहा है? जो कुछ लिखा जाता है, सब जला दिया जाना चाहिए, या कूड़े के ढेर में फेंक दिया जाना चाहिए।'

उठते हुए सुरेश अवस्थी से भेंट हुई। बात हुई कलकत्ता चलने के बारे में। वापसी पर 'ज्ञानोदय' का विशेषांक। कुल मिलाकर सारा प्रयत्न बचकाना लगा। यादवियन।

आज अचानक रमेश पाल। फिर उसी तरह पिए हुए। माफ़ी माँगने और उसी तरह अभियान चलाने के बीच झूलता हुआ। उससे काफ़ी तलख बातें कहीं। लखनऊ के दिनों से आज तक के बारे में। जैसा जब उसके बारे में महसूस होता रहा, सब कहा। बातचीत हँसी, ग़ुस्से और अभियोग प्रत्याभियोग के दौरों में से गुज़रती रही।

खाना खाया, उसे टैक्सी तक छोड़ने गया। वह टैक्सी में छोड़ने आया। टैक्सी ख़राब हो गई। उसका रिवर्स गियर लग ही नहीं रहा था। आगे तक घुमाकर भी गियर नहीं लगा। इस बीच आपस में फिर तलखी हो गई। उससे कहा कि आजकल में

Hindi Premi

अपने को बन्द रखकर काम कर रहा हूँ क्योंकि मेरी आर्थिक स्थिति बहुत नाज़ुक है, तो वह बोला, "यह तुम जालन्धर में भी कहा करते थे।"

उस पर बिल्कुल बेकाबू हो गया। कहा कि अगर वह ह्यूमन प्राब्लम को उसी केज्यूअलनेस से उड़ा सकता है, तो दोस्ती यहीं खत्म कर देना अच्छा है। उसके जाते हुए अलबत्ता कुछ शान्ति हो गई थी।

'तुमने अपने घर के दरवाज़े मेरे लिए बन्द कर दिए हैं, उसका मुख्य कारण यह था। तब तुममें और दूसरे लोगों में फ़र्क़ ही क्या है? तुम भी मुझे अपने घर के लिए अनडिजायरेबल एलीमेंट समझते हो?'

कमरे में चहलक़दमी। एक अजीब-सी बेचैनी।

31-12-64

एक नया सिर दर्द—टेलीफ़ोन।...अभी-अभी कमलेश्वरजी की दो काल्ज़ की वजह से मन काम से उखड़ गया। अब दिन-भर सिर भन्नाया रहेगा।

रेखा और इन्दर का आना-जाना बहुत रहा। उस दिन मदन के घर में रेखा ने जो बात कही थी, वह बेईमानी थी। सबकुछ उसी तरह चल रहा है। उस दिन जिस तरह इन्दर...वह बहुत 'डिस्गस्टिंग' था।

पर कई बार उनके साथ बाहर जाना हुआ...मैडोना, अशोका, प्रेस क्लब और यहाँ-वहाँ। प्रेस क्लब की शाम ख़ासतौर से याद है।

मोमबत्तियों के उजाले में आसपास के पियक्कड़ों की वजह से।

शशि की आँखों में एक अजीब-सा भाव रहता है...अपनी उम्र से काफ़ी बड़ा-बड़ा। लगता है, वह दो साल में चार-छह साल बड़ी हो गई है।

रमेश पाल। चक्कर स्वर्ण मरवाह का। इसी बीच वह कई बार आया है। पहले एक दिन अपने व्यवहार के लिए माफ़ी माँगने, फिर स्वर्ण मरवाह के साथ, फिर परम के साथ, फिर हरबंस बेदी के साथ।

स्वर्ण मरवाह की कार उसे चमत्कृत किए है।

ए.आइ.आर. होस्टल से निकलकर वह कुछ दिन बिड़ला मन्दिर धर्मशाला में रहा। वहाँ से चार रोज़ के लिए भारतभूषण अग्रवाल के यहाँ शिफ्ट कर गया है।

उस दिन कान्ति चन्द्र सौनरेक्सा और श्रीमती सौनरेक्सा से मिलने कॉफी हाउस गया, तो अचानक उससे मुलाक़ात हो गई।

काफ़ी देर साथ रहे। ला बोहीम में बैठे रहे।

स्वर्ण मरवाह के साथ शादी की बात बेतुकी लगी...यह उससे कह भी दिया।

Hindi Premi

स्वर्ण मरवाह ने उसके लिए साउथ पटेल नगर में एक कमरा ठीक किया है–125 रुपए महीने पर।

उस दिन कहता था अब वहाँ नहीं जाऊँगा...दूसरा कमरा ले दो। पर बाद में वह आया नहीं। आज शाम अग्रवाल परिवार के साथ हमें उसने 'वेजिटेरियन' में डिनर पर बुला रखा है। सुबह फ़ोन आया कि स्वर्ण मरवाह भी आ रही है।

उससे पहले दोनों को शेक्सपियर सेमिनार में जिस तरह साथ-साथ देखा था, उससे लगता था जैसे पति-पत्नी ही हों।

कम बोलना चाहिए...रवीन्द्र कालिया के उस दिन रो देने की बात से बार-बार यह अपने से कहता हूँ। वह तकलीफ़ ऐसी थी कि अब तक मन से नहीं गई।

1-1-65

निज़ामुद्दीन में चमन के घर की छत से (पार्क व्यू की बरसाती से)–

ढलता दिन। आसमान की सिहरन। अपने अन्दर की एक उदास कँपकँपी। पेड़ों की खामोश रेखाएँ।

बात शहर की...चमन के ड्राइव करके दिल्ली आने की...रास्ते के प्रदेशों के लोगों की, लैंडस्केप्स की...

'हमारे इंटलेक्चुअल्स अपने इमोशंज़ से अलग ऊपर दस मन का रावण का सिर जो फिट किए रहते हैं...' चमन!

रास्ते में–

चमन, 'सम्पर्कों से प्राप्त सफलता कलाकार को क्या सन्तोष दे सकती है? सोचता हूँ, एक दिन जब यह टूटकर लौटेगी, तब क्या इसे सँभाल पाऊँगा?'

और दर्द से ज़्यादा तकलीफ़ सोच-विचार के दोहरेपन से होती है। अपने काम से हटकर ध्यान इस तरफ़ चला जाता है। इधर की बात सोचता हूँ, तो ध्यान काम में भटक जाता है।

मदन के घर में शक्ति–अचानक आकर, 'भई, आज लोग बात की तरह बात करें। सुबह राजू का टेस्ट है।'

गाड़ी पंक्चर।
रेखा, 'राकेश जब भी गाड़ी में बैठता है, इसे धक्के लगाने पड़ते हैं।'

ऊपर लगे भोंपूवाली टैक्सी। अन्दर घुटन–जैसे कि अभी-अभी किसी तहखाने से निकालकर लाई गई हो।

Hindi Premi

30-9-67

फिर एक बार और कोशिश डायरी लिखने की। इन दिनों अपने पहले की डायरियों को सम्पादित करने से पैदा हुआ उत्साह। एक कारण अकेलापन भी। अनीता को बम्बई गए 36 दिन हो गए। पहले कुछ दिन अटपटा लगता रहा, अब आदत हो गई है। आज मन्नू से यह बात करते हुए यह एहसास डरावना लगा कि आदमी को हर चीज़ की आदत हो जाती है। इस शहर में हैं, तो इस शहर की आदत है। कहीं और होते तो वहाँ की आदत हो गई होती। लेकिन कुल बात आदत होने की तो नहीं है। अपनी मानसिक व्यवस्था के अनुसार आदत होने की है। नहीं तो जालन्धर में रहते वहाँ की आदत हो सकती थी। शीला के साथ रहते उसकी। मगर मन ने उन दोनों में से किसी आदत को स्वीकार नहीं किया। नौकरी की तो आदत कभी हो ही नहीं पाई। मतलब किसी दूसरे की नौकरी की। वरना रात-दिन ये काग़ज़ अपने चारों तरफ़ बिखेरे रहना भी तो एक नौकरी ही है।

आज तीन पत्र लिखे हैं। चार। एक के. के. को। दूसरा श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन को। तीसरा और चौथा भारती तथा कमलेश्वर को। चारों पत्र तीन अलग-अलग विषयों पर लिखे गए हैं, पर एक ही मनःस्थिति से। बेलिहाज़ होकर स्थितियों का सामना करने की। के. के. को लिखा कि मेरे लिए आज का सन्दर्भ जीवन का निश्चित सन्दर्भ है। ऐसे में मैं उससे सिवाय इसके कुछ कहने की स्थिति में नहीं कि लखनऊ, इलाहाबाद या पटना—वह जो भी चुनाव अपने लिए करे, उसमें मुझे कुछ कहना नहीं है। यह भी कि मैं अपनी ओर से चुप कर जाऊँ, शायद यही बेहतर है। इशारा था कि इस पत्र-व्यवहार से अब मुझे कोफ़्त होती है, मैं इसे बन्द कर देना चाहता हूँ। उसके दुख-से-दुख होता है, पर उसका दुख कम कर सकने के लिए मैं किसी और के लिए दुख के कारण क्यों जुटा दूँ? अब अच्छा ही है, अगर वह उत्तर न दे तो।

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन को उनकी कल की बात को लेकर लिखा। उन्होंने कल 'यात्रिक' के बाहर कहा था, ''भई, 'बीज नाटक' तो हमारे यहाँ चलेंगे नहीं। आप हमें कोई पूरा नाटक दीजिए।'' गुस्सा उसी वक़्त चढ़ आया था। क्योंकि मैंने भारतीय ज्ञानपीठ से एडवांस ले रखा है, इसलिए ये अपने को इस स्थिति में पाते हैं कि मुझे बताएँ कि क्या इनके यहाँ नहीं चलेगा। इसलिए कि 'तीन बीज नाटक' शीर्षक पुस्तक ये लोग प्रकाशित कर लें, यह प्रस्ताव मेरा था। उस समय चुप कर गया। मगर इंटरवल में एक कोकाकोला उन्हें पीने को देकर कहा कि अगली बार वे धुआँधार लड़ाई के लिए तैयार होकर आएँ। वे थोड़ा अचकचाए। शायद प्रसंग उनकी समझ में नहीं आया। आज उन्हें लिख दिया कि किसी भी पुस्तक के प्रकाशन की बात मैं प्रकाशक के निर्णय पर नहीं छोड़ता उन्हें मेरे प्रस्ताव से अगर ग़लतफहमी हुई है, तो

Hindi Premi

दूर हो जानी चाहिए। "आप प्रकाशित करना चाहें, तो..." की औपचारिक पंक्ति को उन्हें शब्दशः नहीं लेना चाहिए। वे लेते हैं, तो उसका अर्थ है लेखक-प्रकाशक के रूप में हमारे सम्बन्ध की समाप्ति। उस स्थिति में मिलकर बात कर लेंगे, कि अग्रिम की जो शेष राशि मेरे ऊपर है, उसे लौटाने की क्या व्यवस्था करनी चाहिए।

भारती और कमलेश्वर के पत्रों में पारिश्रमिक की बात थी। 'धर्मयुग' से 150 रुपए का चेक आया था। हालाँकि छह महीने पहले इन्हें लिख दिया था कि आगे से प्रकाशित होनेवाली रचनाओं के लिए 250 रुपए से कम पारिश्रमिक मुझे स्वीकार नहीं होगा। चेक भारती के पत्र के साथ लौटा दिया। दोनों को लिख दिया कि कम्पनी की आज की स्थिति में यदि इस प्रकरण को लेकर कुछ कर सकना उनके लिए सम्भव नहीं है, तो मेरा इतना प्रोटेस्ट तो रहेगा ही कि 'सारिका' और 'धर्मयुग' में इन दिनों प्रकाशित चारों रचनाओं के चेक लौटा दूँ। बिना प्रोटेस्ट के स्थिति को स्वीकार कर लूँ, यह सम्भव नहीं। समझ में नहीं आता कि छह साल पहले की पारिश्रमिक की दरों को आज दोहरवा सकने के लिए ये लोग मिलकर स्टैंड क्यों नहीं ले सकते। ख़ैर, नहीं ले सकते, यह उनकी मजबूरी है। स्थिति को स्वीकार न कर सकना मेरी मजबूरी है। कम्पनी उचित पारिश्रमिक देना एफोर्ड नहीं कर सकती पर एक लेखक तो पारिश्रमिक न लेना एफोर्ड कर ही सकता है।

कल 'परम्परा के सर्जनात्मक उपयोग' पर भाषण देना है। ये ज़बर्दस्ती के भाषण बहुत बोर करते हैं।...छोड़ो, मियाँ। यह तो ऐसे ही चलता है। लेट्स प्ले द गेम ऑफ़ लव—विदाउट थिंकिंग वॉट इज़ लव।

नई दिल्ली : 1-10-67

'आलोचना' द्वारा आयोजित आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का षष्ठिपूर्ति महोत्सव। हाईलाइट—आचार्यजी का मिथक-सम्बन्धी भाषण। 'सर्वनाम' से आरम्भ करके सामान्य मानव सम्बन्धी दृष्टि। सचमुच द्रष्टा हैं आचार्य द्विवेदी, कितनी सूक्ष्म बात किस तरह हँसते-हँसाते उन्होंने कह दी। कितना गहरा साक्षात्कार है जीवन के सूक्ष्म से उनका।

शीला सन्धू के यहाँ खाने के बाद यह उद्घाटन कि सचमुच कलकत्ता प्रकरण के कारण वात्स्यायन ने गोष्ठी में भाग नहीं लिया। लगा कि आचार्य जी का एंटी-थीसिस खोजना हो, तो इतना अच्छा और दूसरा नहीं मिल सकता। एक ओर आन्तरिकता और उन्मुक्तता, दूसरी ओर केवल कुंठा।

उद्घाटन गोष्ठी और विचार गोष्ठी के बीच जल-पान में काफ़ी हँसा। अपने असली फार्म में। स्टीम-रोलर की तरह पूरी गैलरी में घूमता रहा। किसी ने कहा, "तुम जब

Hindi Premi

साठ के होगे, तो...।" उसे बीच में ही काटा। "तुम्हारा ख़याल है, मैं मानूँगा तब अपने को साठ का? कोई अगर मुझे कह देगा साठ का, तो मैं उससे कहूँगा, साठ के होगे तुम। मुझे तुम साठ का कहते हो?"

विचार गोष्ठी में अपना भाषण...स्मार्ट था बस!

नई दिल्ली : 3-10-67

...यह क्या हो गया पीछे से! आई.सी.सी.आर. के डिनर में गया था, इनाम रहमान के यहाँ। यूकियो मिशिया आया है, उसके लिए। वहीं पोर्टिको में थे जब बहुत तेज़ हवा चलने लगी थी–आँधी जैसी। ऐसी कि नीरद चौधरी को भी उसने चुप कर दिया था–कुछ देर के लिए। घर आकर ऊपर छत पर पहुँचा, तो कमरे के अन्दर देखता रह गया। दरवाज़े खुले छोड़ गया था। एक खिड़की का काँच टूटकर नीचे बिखरा है। और पिछले छह हफ्ते में लिखे नाटक के काग़ज़–कुछ पता नहीं। कुछ काग़ज़ अभी छत से बटोरे हैं। एक ढेर खिड़की के नीचे है–टूटे काँच के टुकड़ों के बीच। ऊपर से लगता है, ज़्यादातर पुराने वर्शन के काग़ज़ हैं, जो नीचे थे। नए वर्शन के ज़्यादातर काग़ज़ उड़ जा चुके हैं, ऐसा लगता है। इस वक़्त हिम्मत नहीं पड़ रही सहेजकर देख लेने की। सुबह से पहले इन्हें हाथ नहीं लगाऊँगा। अगर सो न सका, तो शायद रात को ही देखूँ।...अगर उड़ ही गए होंगे वे काग़ज़, तो...?

आधी रात, दो बजे : 4-10-67

एक भी वर्शन पूरा नहीं है। पहले तीनों वर्शन के आध-आधे पन्ने बचे हैं और नए वर्शन के चालीस में से कुल नौ...। इसके अलावा दो अधूरी कहानियों और एक लेख की भी यही स्थिति है...!

नई दिल्ली : 4-10-67

भयानक दिन गुज़रा है आज।

रात को दो बजे के बाद भी काफ़ी देर नींद नहीं आई। सुबह उठने पर सिर भारी था, मन भी। नाश्ते के बाद कुछ भी करने को मन नहीं हुआ। थोड़ी देर लेटे रहने के बाद चाय की एक और प्याली पी लेने के लिए नीचे चला गया।

नीचे आते ही फ़ोन की घंटी बजी। उठाने पर पहली आवाज़ सुनाई दी, 'योर ट्रंक कॉल फ्रॉम बाम्बे।' उसके बाद दूसरी आवाज़ : 'दिस इज़ डॉक्टर त्रेहन फ्रॉम बाम्बे हास्पिटल। आई एम सॉरी टु इन्फार्म यू सर कि आपका जो लड़का होनेवाला था, उसकी डेथ हो गई।' दिमाग़ एकदम सुन्न हो गया। 'क्या?' उससे पूछा। 'माँ का नाम क्या है? अनीता?' 'यस सर,' वह बोला। 'आई एम वेरी सॉरी, सर।' पूछा,

Hindi Premi

'बट हाऊ इज़ द मदर?' 'शी इज़ वेल,' जवाब मिला। 'आर यू श्योर?' पूछा। 'यस सर,' वह बोला, 'आई एम वैरी सॉरी फॉर द चाइल्ड, सर।' तभी पहली आवाज़ आई, 'टाइम इज़ ओवर।'

रिसीवर रख दिया। दीवार से टेक लगाए पगलाया-सा बैठा रहा। दिमाग़ में उभर रहा था अनीता का पेट, उसकी इतने महीनों की उत्सुक प्रतीक्षा, 'गूकी होएगा।' और अब बॉम्बे हॉस्पिटल में पड़ी हुई वह—ख़ाली पेट। मैं भी पास में नहीं कि वह छाती से लगकर रो ही सके, 'गूकी नहीं है।' माँ टेलीफ़ोन की बात से कुछ अन्दाज़ा लगाकर पास आकर बैठ गई थी। 'क्या हुआ?' पूछ रही थी। 'ठहरो, ठहरो, बोलो नहीं...' कहकर चुप हो रहा। वहीं, बोलता रहा अपने से, 'हाऊ कैन इट बी? नो, नो इट कान्ट बी...'

तभी दूसरी बार घंटी बजी। वही पहली आवाज़। वही दूसरी। 'दिस इज़ अगेन डॉक्टर त्रेहन फ्रॉम बाम्बे हास्पिटल, सर। योर चाइल्ड इज़ नॉट डेड।' 'आर यू श्योर?' फिर पूछा। 'यस सर।' 'विल ही सर्वाइव?' 'यस सर!' 'मदर इज़ पर्फेक्टली ऑल राइट?' 'यस सर।' और पहली आवाज़ : 'टाइम इज़ ओवर।'

अटपटा लगा। पहली कॉल के दो मिनट के अन्दर-अन्दर दूसरी कॉल कैसे? फिर पहली आवाज़ लड़की की नहीं, किसी बारह साल के लड़के की-सी थी। फिर अनीता को बाम्बे हास्पिटल में तो एडमिट होना नहीं था। फिर भाभी या राज ने फ़ोन क्यों नहीं किया? फिर वक़्त से पच्चीस दिन पहले डिलिवरी कैसे हो गई? फिर अभी-अभी डाक से अनीता का एक पैकेट मिला है। फिर एक-एक मिनट से ज़्यादा बात न होने पर भी दोनों बार 'टाइम इज़ ओवर' कैसे कह दिया गया?

मगर ये सब बातें नीचे दबी रह गईं। ऊपर था केवल एक एहसास—अनीता के बच्चा हो गया है। डिलिवरी नार्मल नहीं हुई। शायद एमर्जेंसी केस होने की वजह से ही उसे बाम्बे हास्पिटल ले जाया गया है। हो सकता है, भाभी से खुद टेलीफ़ोन करते न बना हो, इसलिए डॉक्टर से कह दिया हो...!

माँ पूछती रही, 'क्या हुआ है? क्या खबर आई है? अनीता कैसी है?'

दस मिनट और चुप बैठा रहा। फिर एक झटके से अम्माँ को दोनों बार फ़ोन पर सुनी बात बता दी। "मैं पहली फ्लाइट से बम्बई जा रहा हूँ" कहकर टेलीफ़ोन लिए ऊपर भागा। ऊपर आकर कुछ देर चुँधियाया-सा खड़ा रहा। क्या करना है मुझे?

कुछ चीज़ें रखीं, उठाईं। अलमारी खोली, बन्द की। पतलून, बुश्शर्ट पहन ली। पैसे निकालकर ज़ेब में रख लिए। अब?

माँ को आवाज़ देकर कहा कि ऊपर आकर मेरा अटेची केस तैयार कर दे। खुद फ़ोन करने लगा। एयरलाइन्ज, एंगेज्ड। ओंप्रकाश, एंगेज्ड। शीला सन्धू, एंगेज्ड। फिर एयरलाइन्ज़। श्यामानन्द। नेमि। एंगेज्ड या घर पर नहीं हैं। फिर एयरलाइन्ज। रात सवा नौ से पहले फ्लाइट नहीं है। ओंप्रकाश दफ़्तर में नहीं है। शीला सन्धू—

Hindi Premi

'हाँ, राकेशजी?' शीला सन्धू से बात करते हुए बाँध टूटने लगा। 'मुझे किसी भी तरह एक सीट करा दीजिए—पहले प्लेन से।' "मैं अभी आ रही हूँ वहीं," उसने कहा। माँ आकर सामान अटेची में रख रही थी। इस बार खुलकर रो लिया। वह भी रोने लगी।

ऐसी ही स्थिति थी जब शीला सन्धू आई। उसने दिलासे की दो बातें कहीं और फ़ोन करने लगी। सीता ट्रेवेल। मर्करी ट्रैवेल। इन्डियन एयरलाइन्ज। विंडसर प्लेस। एक सीट जैसे भी हो पहली फ्लाइट से चाहिए। मर्करी से टेलेक्स मेसेज। एक्सप्रेस तार। अर्जेंट ट्रंक कॉल। तार देने के तुरन्त बाद ही ट्रंक काल मिल गई। उधर से आवाज़ आई अनीता की—बहुत खुश।

"हलो...!"

"इज़ इट यू, राकेश?"

"हाऊ आर यू?"

"फाइन। इट इज़ नाइस टू हियर योर वॉयस।"

"अभी डिलिवरी नहीं हुई न?"

"अभी तो बहुत दिन हैं डिलिवरी में।"

उसे बताने की कोशिश की कि यहाँ सुबह से किस टार्चर में से गुज़र रहे हैं, मगर वह बिना समझे कहती रही, "ओह, हाऊ वंडरफुल टु हीयर योअर वॉयस।"

"तुम वंडरफुल किए जा रही हो, यहाँ बुरी हालत है उस कॉल की वजह से।"

"बट आई डिडंट डू इट।"

"यह कौन कहता है तुमने की है, मगर वह कॉल..."

"आई डिडंट डू इट।"

"वह तो ठीक है, मगर...।"

वह वहीं राज से, "ही इज़ डिप्रेस्ड फॉर समथिंग।" फिर मुझसे, "रियली इट इज़ वंडरफुल टु हियर योर वॉयस।"

ट्रंक कॉल के बाद हम तीनों इस खुशी में और भी स्तब्ध। किसने की होंगी वे कॉल्ज? किसी साहित्यिक महारथी ने? मेडम पुष्पा के किसी सहयोगी ने?

शीला सन्धू फिर व्यस्त हो गई। बुक की हुई सीट्स केंसिल करने में। उसके बाद अचम्भे और खामोशी के कई मिनट। वह वहाँ से इतनी खुश-खुश बात कर रही थी। पता नहीं इस बीच यहाँ क्या मुर्दनी छाई रही है।

"पर कौन हो सकता था वह?"

"ऐसा भी कोई इन्सान हो सकता है कि पैदा होने से पहले एक बच्चे के बारे में ऐसी बात...?"

"कितने-कितने दुश्मन बना रखे हैं, तुमने, राकेश?"

Hindi Premi

"आई स्टिल कांट बिलीव इट। ओ गॉड! मेरे मन में अन्धविश्वास जाग रहा था कि रात को जो काँच टूटा, कागज़ बिखरे, उस सबका कुछ ताल्लुक था इसके साथ।"

"थैंक गॉड, इट वाज़ जस्ट ए डर्टी ट्रिक।"

नीचे पहुँचकर शीला सन्धू चलने लगी, तो होश हुआ पौने तीन बज गए हैं।

"खाना..."

"नहीं, खाना मैं नहीं खाऊँगी।"

शीला सन्धू के जाने के बाद ऊपर आकर तीन घंटे बिस्तर पर औंधा पड़ा रहा। ओ गॉड! कौन हो सकता है यह...कौन? यह क्या सिर्फ़ शरारत थी? या सिर्फ़ टार्चर करने की कोशिश? या सुननेवाले का हार्ट फेल हो जाए, इसके लिए आजमाया गया एक फार्मूला? मर्डर बाई फ़ोन कॉल—अपने परिचितों में से किसके दिमाग़ की लहर हो सकती है यह?

नई दिल्ली : 6-10-67

कमलेश्वर का पत्र :

प्रिय राकेश,

तुम्हारे दोनों खत मिले। पारिश्रमिक के सम्बन्ध में अभी कुछ होता नहीं दिखाई देता। 'सारिका' में बराबर तुम्हारा पेमेंट इसीलिए पेंडिंग रख रहा था कि बात तय हो जाए तो पेमेंट भिजवाऊँ—पर बात बनी नहीं। राय साहब भी अजीब घपले में हैं। वे आजकल कोई भी निर्णय लेते कतराते हैं—सारी चीज़ें इस बुरी तरह लटक और खिंच जाती हैं कि चिढ़ होने लगती है। असल में यहाँ कोई भी सुरक्षित (हायर अप्स) महसूस नहीं कर रहा है। एक ज़ोर और मारा है, अगर इस धक्के में भी कुछ न हुआ तो प्यारे, तुम्हें अभी वही पुराना रेट स्वीकारना ज़रूरी हो जाएगा। क्या किया जाए?

चौधरी का खत आया था। सब हाल मालूम हुए थे। देखो क्या होता है।

अनीता से तुम्हारे कारनामों (बकौल अश्क) का पता चला था। मुझे यहाँ यह भी पता चला है कि 'कल्पना' (सितम्बर) में सुरेन्द्र चतुर्वेदी के नाम से श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने खत लिखा है (तुमने पढ़ ही लिया होगा)। चूँकि वह खत उन्होंने लिखा है और वे अपने पक्ष-विपक्ष में लिखनेवालों को मेहनताना देते हैं अतः मैंने बतौर मेहनताना अश्क को 5/- रुपए का मनीऑर्डर भिजवा दिया है ताकि उन्हें यह न लगे कि दूसरे लोग उन्हें मेहनताना नहीं देते।

तबीयत यार अब भी ठीक नहीं है। पर अब इस प्रकरण से ऊब होती है। अतः यह प्रकरण बन्द।

'नई कहानियाँ' अमृतराय ने खरीद ली है, यह सूचना कहाँ तक सच है? मनोहर श्याम जोशी 'सा. हिन्दुस्तान' कब ज्वाइन कर रहा है?

Hindi Premi

तुम्हारे आने का इन्तज़ार है। चौधरी और ओं जी को भी साथ लेते आओ तो मज़ा रहेगा।

और हाल लिखना।

नेमिजी की सलाह ठीक नहीं है—जो सलाह उन्होंने दी है वह कवियों को ज़्यादा मुआफिक आती है। तुम्हारे मुआफिक ग़ुस्सा आता है। तो प्यारे?

तुम्हारा, कमलेश्वर

उत्तर :

डियर,

तुम्हारे पत्र की अन्तिम पंक्ति है—'तुम्हारे मुआफिक ग़ुस्सा आता है।' मगर ग़ुस्से के बाद समझौता तो नहीं? इन दिनों सब पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशन तथा रंग-संस्थाओं, विश्वविद्यालयों पर एक-साथ गुस्सा आ रहा है। आज तक समझते रहे हैं कि लेखक के शुल्क और रॉयल्टीज़ इनके निर्णय पर हैं। ऐसी की तैसी इनकी! हम लिखना छोड़ देंगे लेकिन निर्णय इनका रहे, यह स्थिति स्वीकार नहीं करेंगे?

...स्थितियों की उलझनें तो प्यारे, सब जगह हैं और बनी रहेंगी। कम्पनी के लोग सुरक्षित महसूस न करते हों, या निर्णय लेने की स्थिति में न हों—मगर तुम्हारा दोस्त बहुत सुरक्षित है और अपनी ओर से निर्णय ले सकने की स्थिति में भी है। अभी पुराना रेट स्वीकारना ज़रूरी हो जाएगा—इस बात को मानने को वह बिलकुल तैयार नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि तुम्हारे या भारती के लिए लिखने में कोई बाधा पड़ेगी। लेकिन वह लिखना तुम दोनों के लिए होगा—बिना पारिश्रमिक। जहाँ तक कम्पनी का सवाल है, उसके निर्णय-अनिर्णय से बँधकर पारिश्रमिक स्वीकार करना—हरगिज़ नहीं। यह निर्णय उभयपक्षीय है, एकपक्षीय नहीं। यदि आज तक लेखकों ने अपने अधिकारों के लिए एसर्ट नहीं किया, तो हम क्यों अपनी ज़िन्दगी बिना एसर्ट किए निकल जाने दें? जो चेक एक बार लौटा दिया है, वह अब वापस आकर मेरे हिसाब में तो जमा होगा नहीं—और चाहे जो हो। तुमने अच्छा किया है जो पेमेंट रोके रखा है। वह दस साल और रुका रहे, मुज़ायका नहीं। बेनेट कोलमैन एंड कम्पनी फिलहाल या तो मेरी हर प्रकाशित रचना पर कम-से-कम 250 रुपया पारिश्रमिक देगी, या कुछ भी नहीं। इस स्थिति में किसी तरह की रद्दोबदल स्वीकार करने को कहकर मुझे बदलने के लिए मजबूर करोगे? तब फिर कैसे कह सकोगे, 'तुम्हारे मुआफिक ग़ुस्सा आता है?'

प्यार के साथ तुम्हारा,
राकेश

पी.एस. : मिस्टर राय को भी पत्र लिखना चाहता हूँ। धुआँधार।

Hindi Premi

नई दिल्ली : 8-10-67

अपने-आपकी यन्त्रणा। जो चाहता हूँ, वह सब न कर पाने, न लिख पाने की। जिस रूप में आसपास की ज़िन्दगी अपने अन्दर घटित होती है, जिन उलझे हुए बिम्बों, ध्वनियों और ग्राफों में मन उसके प्रभावों को ग्रहण करता है, उनको उन्हीं की आन्तरिक अन्विति में व्यक्त करना—यह एक चुनौती नहीं, विवशता-सी लगती है। पर परिणाम के रूप में जो कुछ लिखकर सामने आता है, वह इतना क्रूड, स्थूल और खंडित होता है कि अपना सारा प्रयत्न केवल अपने को व्यस्त रखने या बहलाए रखने का बहाना जान पड़ता है। एक ओर अपना अहं अपनी असमर्थता को स्वीकार नहीं करने देता, और दूसरी ओर अपना आत्म इस अस्वीकार पर लानत भेजता है—जब तुम हर दूसरे की असमर्थता की खुलकर और आवेश के साथ आलोचना करते हो, तो अपनी असमर्थता से चुपचाप कतराकर उसकी प्रताड़ना से बचे कैसे रह सकते हो? और आलोचना केवल बोलकर ही तो नहीं होती, चुप रहकर भी तो होती है—अगर अपनी असमर्थता को तुम चुप रहकर दर-गुज़र कर दो, तो भी क्या वह चुप्पी अन्दर-ही-अन्दर तुम्हें और नहीं छीलती? ऐसे में आदमी सिवाय इसके क्या करे कि घड़ी देखे और यह सोचकर कि रात बहुत हो गई है, सिर थक गया है, आनेवाली सुबह के लिए कुछ आशा मन में लिए चुपचाप सो रहे?

नई दिल्ली : 11-10-67

बासु से बातचीत के बाद डायरी के ये दो पन्ने (1948) के निकाल लिए ताकि अगर डायरी छपने के लिए दी जाए, तो उसकी शुरुआत सन् 49 से हो, मगर छपने दे दूँ या नहीं, इसका फैसला अब तक नहीं कर पाया। यूँ शरद देवड़ा से हुई बात के बाद से ही डायरियों के वे अंश जिनमें कुछ अर्थ या संगति है, टाइप कर रहा हूँ। सोच रहा हूँ कि जितना हिस्सा कवर कर लिया है, उतने को या जला दूँ या फाड़कर फेंक दूँ। जो लेना था, उसे लेने के बाद बाक़ी कूड़ा भी क्यों भरे रखूँ जिससे कल को कोई उस कूड़े को भी 'डायरी-शेष' के रूप में छाप दे? (कमेंट : तो आप समझते हैं कि जो आपने चुना है, वह कूड़ा नहीं है?)

14-10-67

कल बीस मिनट एम.एस. के साथ बिताने के बाद इतना सख़्त अस्थिरता का दौरा क्यों पड़ा?...या कि अस्थिरता का सम्बन्ध उससे न होकर सिर्फ़ घर में इन दिनों अकेले होकर रहने की अनुभूति के साथ था?...'एब्नोरमेल्टी बहुत है अपने में, इसमें सन्देह नहीं। अपनी इन एब्नोरमेल्टीज़ से डर भी लगता है। मगर किया क्या जा सकता है?'

Hindi Premi

15-10-67

कल झुनझुनवाला के यहाँ डिनर में बासु ने बहुत टॉल टॉकिंग की। अच्छा नहीं लगा। हो सकता है, वह जल्दी इससे उबर जाए और ठीक से काम करने लगे। मगर खतरा यह भी है कि अपने ही ट्रैप में उलझकर ज़िन्दगी-भर एडोलेसेंट फ़िल्में बनाता रहे।

नई दिल्ली : 18-10-67

हेराल्ड विंटर! हेराल्ड विंटर!

आज रात शरत् पूर्णिमा है। उससे पहले सुबह-सुबह यह बारिश!

बासु रिंकी आज शाम जा रहे हैं। पर अनीता ने लिखा है कि इन्हीं दिनों अब कमलेश्वर आनेवाले हैं।

क्यों सोच रहे हो यह सब? तुम्हारे चाहने से तो लोगों का आना-जाना रुकेगा नहीं। इस सम्बन्ध में कुछ करना है, तो तुम्हीं को करना है।

यह निश्चित है कि मिलने आनेवालों का अब पूरा ब्लैकआउट कर देना है। सिवाय काम के किसी से मिलना नहीं। यूँ मिलना भी एक काम हो सकता है अगर आनेवाला सिर्फ़ खोखली बातें करने के लिए न आए। पर आनेवाले समुदाय में अधिकांश लोग आते हैं सिर्फ़ रहने की सुविधा के लिए, सतही मित्राचार के लिए और खोखली बातें करने के लिए...!

कम-से-कम दो-एक साल का ब्रेक तो देना ही है।

दिन कितना अच्छा है! काश कि ये पाँच महीने सर्दी और बसन्त के इसी तरह बीतें!

नई दिल्ली : 19-10-67

एल.बी. से पहले–

जनपथ पर श्यामानन्द के यहाँ–'लहरों के राजहंस' पर बहस। भाभी, शिवपुरी, श्यामानन्द, मैं। एक रचना के बार-बार लिखे जाने पर शिवपुरी का कमेंट, और उससे पैदा उत्तेजना।

खाने के बाद–श्यामानन्द ड्राप्ड एट ओडियन!

अकेले कॉफी। दरार से आगन्तुक। वह। नॉट टुडे। टैक्सी। गन्तव्य। मैन हू रिस्पेक्ट। बग बनी टीथ। येस, थ्री फोर टाइम्ज, बट नॉट दैट। डोंट टैल मी दैट यू आर ए...। इजंट वन कम टु नो?...इफ़ सो, देन आई वोंट। बट आई वांट इट।....बट डजंट इट गो विद मास्टर–? अदर देन? आइ लाइक सच पर्सन्ज़।...इज़ ए कावर्ड।...इज़ एफेक्शनेट। क्या? अच्छा हाँ...हाँ...आई सी। दन्तक्षत। आई'ल मैरी आफ्टर फाइव ऑर सिक्स इयर्स। आफटर डुइंग वट आई वांट टु डू। देन वाई नाट सेव योरसेल्फ?

Hindi Premi

ओ नो– आई बिकेम यंग एट फोर्टीन ऑर सिक्सटीन। सिंस देन एट इयर्ज़। आई डोंट वांट टु वेट फॉर एनदर सिक्स इयर्ज़ फॉर एन अननोन पर्सन। हूम आई मे नॉट लव। आईल बेयर चिल्ड्रेन फॉर हिम। बिकाज़ आई वांट टु बेयर चिल्ड्रेन। यू आर ए ब्लडी आर्टिस्ट इन दिस।

नेवर हैड इट बिफोर बिकाज़ ऑफ़ फियर। नॉट जस्ट बीइंग टाक्ड अबाउट। नर्व ऑफ़ बोल्डनेस। आई टोल्ड अबाउट मिस जैन–व्हाई डोंट यू रेप हर? बट बेसिकली आई एम ए कावर्ड। आई टेल, आई डोंट बेयर। बट आई बेयर। आई टेल व्हाई शुडंट ए गर्ल डू इट? बट आई डोंट डू इट।

कांट हेल्प गिविंग लुक्स। बीइंग काकेटिश। आई नो पीपल मिसअंडरस्टैंड। जेट आइडियाज, बट आई डोंट नो एनी अदर वे ऑफ़ लुकिंग, बिहेविंग। अदर गर्ल्ज़ इन द इंस्टीट्यूशन–हू डज़ इट।

होम? नो फादर। ब्रदर्स? ओनली सिस्टर। बड़ा भाई–माँ का चमचा।

फॉर बीइंग एबल टु टॉक टु वंस हस्बेंड इन द लैंग्वेज ऑफ़ लव, वन मस्ट लर्न द ए बी सी फ्रॉम समवन।

टुमारोज़ वर्क बिकाज़ ऑफ़ स्लीपलेसनेस? आई एम यंग एंड एनर्जेटिक।

नई दिल्ली : 20-10-67

दूसरों की अपेक्षाओं के अनुसार अपने को ढालना–यह केवल आत्मघात की प्रक्रिया है जो जीवन-भर चलती रह सकती है। परन्तु कुछ ऐसा क्रम है रोज़ की ज़िन्दगी का कि यह सब अनजाने में होता चलता है। रोज़ एक निश्चय कि आनेवाले कल से ऐसा नहीं होने देंगे–और रोज़ अपने को अगले दिन तक की मोहलत। अपने इस संस्कार को जैसे भी हो, बदलना होगा। चिट्ठियाँ लिखना और लिखकर पोस्ट न करना, यह क्रम भी अब और नहीं चलेगा। आज अनीता के पत्र में तो साफ़ लिख ही दिया है–बम्बई जाकर सब लोगों से ज़बानी और कह दूँगा। अब तक अढाई बजे से पहले लोगों से न मिलने और टेलीफ़ोन रिसीव न करने का कार्यक्रम जितना रिजिड किया जा सका है, उतना ही रिजिड इसके बाद का ब्लैक आउट रखना होगा। बिना उसके कोई चारा नहीं, कोई रास्ता नहीं। यह तो ऐसे हुआ कि घोड़े की चाल चल सकने की टाँगें लिए हुए आदमी हर टाँग-पर-टाँग के चार-चार प्रशंसकों को साथ रखे रहने दे–ऐसे में स्थिति-सुख तो बहुत है, पर गति सुख का कोई उपाय नहीं रह जाता।

आज श्यामानन्द से हुई बातचीत के बाद निश्चय है कि नए नाटक के प्रस्तुतीकरण से पहले कलकत्ता जाकर नहीं रहूँगा। अपनी ओर से बहुत आगे बढ़कर अपनी ही

Hindi Premi

कीमत पर दिए गए सुझाव का अर्थ दूसरे तक पहुँचकर बिलकुल दूसरा हो जाता है। यह अतिरिक्त उत्साह भी एक बवाल है जिससे अपने को बचाना ज़रूरी है। अपने को अपने केन्द्र पर रखा जाए, दृष्टि यही रहनी चाहिए। व्यक्ति का मान भी इसी में है और वह काम भी इसी तरह कर सकता है। दूसरे के केन्द्र पर जाने से न काम होता है, न ही वह मान रह जाता है–विशेष रूप से जबकि प्रस्ताव अपनी ओर से हो।

नई दिल्ली : 22-10-67

कल सारी रात श्यामानन्द से नए नाटक के सम्बन्ध में बात हुई। लौटने में सुबह हो गई। आकर सवा दो बजे तक सोया रहा। नींद खुली चौधरी के आने से। दो घंटे घर में बैठे, एक घंटा स्टैंडर्ड में। फिर शाम नेमि और श्यामानन्द के साथ–अनामिका कला संगम और 'नटरंग' के विषय में बात करते हुए।

जब किरण भाभी करवा चौथ का चाँद देखने की प्रतीक्षा में थीं, तो अम्माँ की बहुत याद आई।

...सिर अब भी नींद से भारी है। अच्छा है, सो जाऊँ।

नई दिल्ली : 29-10-67

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन का पत्र। उत्तर बम्बई से लौटकर दूँगा।

...कल सूचना मिली थी–बच्ची के जन्म की। एक राहत-सी मिली। क्यों–इसका विश्लेषण फिर कभी।

परसों का क़िस्सा भी लिखना चाहता था। वह भी बम्बई से लौटकर आने पर ही।

कल डिलक्स से जाना है। अनीता से 'हेलो' कहने के लिए। जितने काम अधूरे हैं उन्हें आने के बाद फिर हाथ लगाऊँगा।

वातानुकूल एक्सप्रेस : दिल्ली से बम्बई : 30-10-67

कितना फ़र्क़ है तब के थर्डक्लास और आज के इस डिलक्स थर्डक्लास में। विभाजन से पहले तक थर्डक्लास में सफर करने का मतलब था गाली-गलौज़ का अभ्यास और पुट्ठों का व्यायाम। लकड़ी की सीधी सपाट सीटों पर दस की जगह तीस-तीस आदमी...सफलतापूर्वक यात्रा कर लेने को ज़िन्दगी की एक विजय मानते हुए...फिर भी उन तपती ठसाठस गाड़ियों में कुछ था जो इस वेस्टीब्यूल के वातानुकूलित थर्ड क्लास डिब्बों में नहीं है...बाहर के बदलते रंग और तेज़ी से दौड़ते परिदृश्य का साक्ष्य...तपा हुआ आकाश और उसके नीचे ठहरी रुकी हुई आकृतियाँ...गुजरती गाड़ी को देखती हुई...हाथ में टहनी लिये एक लड़का...मैली रंगी चुनरियों से सिर ढके लड़कियाँ...एक पोखर से पानी पीता कुत्ता...खेत, खेत, खेत...पका धान, कटा धान,

Hindi Premi

भूसा...इश्तिहार...डोगरे का बालामृत...गुप्त रोगों का इलाज...सिद्ध मकरध्वज...दूर सड़क पर गाड़ी के साथ-साथ दौड़ती कार...एक धक्का गाड़ी कच्चे रास्ते पर अपने से आड़ी तरफ़ को जाती...पुल...डंग-डग-डंग-डग आवाज़...बिजली के तारों पर बैठे पक्षी...दूर से पास आती बत्तियों का जगमग आभास...गाड़ी की रफ़्तार से अनदेखा गुज़रते घरों का सामान्य...क्रासिंग पर रुका हुआ ट्रैफिक...गाड़ी के मुकाबिले में उड़ता एक पक्षी...।

वह सब यहाँ खिड़की के पास बैठकर भी वैसा नज़र नहीं आता। सुरमई शीशे के आभिजात्य में हर चीज़ का रंग ही और नज़र आता है—ध्यान अक्सर जाता ही नहीं बाहर...जाता भी है तो जैसे एक कैनवस पर छपा-छपा-सा लगता है सब कुछ...स्वयं ही अपनी एक अनुभूति जैसी। हम जैसे एक बन्द शहर में हैं जहाँ आसपास के गाँवों-कस्बों की हवा का दखल नहीं है...हर हफ्ते दिल्ली से बम्बई की यात्रा करनेवाले वेस्टीब्यूल के आठ सौ छिहत्तर यात्रियों की एक अलग ही दुनिया है...हफ्ते के आठ सौ छिहत्तर...एक दिन के दो सौ चौरानवे...हर डिब्बे में तिहत्तर आदमी...गाड़ी में चार डिब्बे...हफ्ते में तीन गाड़ियाँ...आठ सौ छिहत्तर बिल्कुल दो सौ चौरानवे जैसे...दो सौ चौरानवे तिहत्तर जैसे...और तिहत्तर के तिहत्तर एक-दूसरे जैसे...साथ की सीट पर बैठे व्यक्ति की दृष्टि में यही इस गाड़ी की ख़ूबसूरती है कि इसमें सब एक से 'बेल ड्रेस्ड' आदमी सफर करते हैं। वेल-ड्रेस्ड...हाँ...विशेष रूप से वेस्टीब्यूल-ड्रेस्ड...खाने, चलने और सिगरेट पीने का एक-सा अन्दाज़ लिए हुए...ब्रा-साइज़ अलग-अलग होने पर भी 'जटिंग आउट ऑफ़ द बेस्ट' का एप्रोच...। "फर्स्ट क्लास से कहीं बेहतर है यह गाड़ी" मेरा सहयात्री कई बार कह चुका है। वह शायद पहली बार डीलक्स में सफर कर रहा है। पुराने, गन्दे, दकियानूसी फर्स्ट क्लास को गालियाँ देते उसका जी नहीं अघाता...ख़ासतौर से वहाँ के संडास की वजह से। वह डीलक्स की एक-एक चीज़ को हैरत और प्रशंसा के भाव से देख चुका है। इसमें ड्रेसिंग रूम भी है। यह एश ट्रे देखो। और संडास—। आपने एक चीज़ पर गौर नहीं किया—उसकी सीट के ये गैजेट...

डाइनिंग कार में वह खाना खाने इसलिए गया (गेस्ट्रिक ट्रबल के बावजूद) कि वहाँ क़ी सीटें बहुत अच्छी हैं, सर्विस बहुत अच्छी है और खाना गर्म मिल सकता है। "ब्लडी फर्स्ट क्लास की तरह नहीं कि...।" उसकी बातों से लगता है जैसे इतने दिन फर्स्ट क्लास की सुविधा देकर उसे रखा गया है। "मैंने इस हफ्ते पाँच हज़ार किलोमीटर की यात्रा की है फर्स्टक्लास में, पर उस सबसे प्लेजेंट सफर यही है।"

अब क्या करूँ? बत्तियाँ बुझा दी गई हैं। नीली बत्तियों की रोशनी इतनी नहीं कि ठीक से लिखते रहा जा सके तो बाक़ी कल सुबह। गुड नाइट।

Hindi Premi

वातानुकूल एक्सप्रेस : बम्बई से दिल्ली : 8-11-67

फिर एक शाम सफर की।

बम्बई में आठ दिन हमेशा की-सी अस्थिरता में बीते। बल्कि और हर बार से कुछ ज़्यादा ही। जब तक अपने तकल्लुफ़ को 'सहज' मानकर चलता था, तब तक निभ जाता था। मगर अब नहीं निभता। सबके मुँह पर कह देने को मन होता है कि मुझे बहुत बोरियत होती है वही घिसी-पिटी बातें सुन-सुनकर। परन्तु कितने सन्तुष्ट हैं सब लोग—अपने से, एक-दूसरे से। मतलब एक-दूसरे की खामियों से। गिरधारी की ज़िन्दगी उस बन्द बोतल की तरह है जिसका कॉर्क अन्दर की सड़ाँध से उड़ गया हो। उसे यह एहसास ही नहीं है कि उसकी नज़र में जो उसका 'खुलापन' है उसमें से अभी तक उस सड़ाँध की बास आती है। आजकल इस सारे सर्कल का वह 'हीरो' है—हिन्दी फ़िल्म—हीरो की तरह बबुआ-बबुआ, गोल-गोल। क्योंकि इन सबके लिहाज़ से 'अमीर' भी है, इसलिए सफलतापूर्वक सबको अपने सेटेलाइट्स बनाए हुए है—सिवाय राज के।

राज और भाभी की सबसे बड़ी दुर्बलता उनकी अच्छाई है। भाभी की अतिरिक्त दुर्बलता है उनका 'सही' का मोह। 'सही' की जो एक निश्चित धारणा उनके मन में बनी है, उसकी कसौटी पर वे सारी ज़िन्दगी अपने को तथा दूसरों को कसती रहेंगी। क्योंकि और कोई उतना 'सही' और उस अर्थ में 'सही' हो नहीं सकता, इसलिए दुखी भी रहेंगी। उनके अन्दर का हर भाव नियागरा फॉल्स की तरह उमड़ता है। उसे समेट सकने और ग्रहण कर सकने की शक्ति दूसरे में है या नहीं—इसका जायजा लेने के लिए वे नहीं रुकतीं। प्यार 440 वोल्ट्स। ग़ुस्सा 440 वोल्ट्स। बाहर 'सावधान' का बोर्ड भी नहीं। 440 प्यार में सारी दुनिया वे आपको दे देंगी। फिर भी असन्तुष्ट कि दुनिया इतनी छोटी क्यों है? दूसरे के पास उस दुनिया या सब दुनिया को रख सकने की जगह हो या न हो। दूसरे को कुदरत ने सिर्फ़ चोंच-भर या कटोरी-भर ही ले सकने की सामर्थ्य दी है, इस वास्तविकता के प्रति बिल्कुल उदासीन। बटन दबा और दुनिया उँडेली जाने लगी उसके ऊपर—वह तिलमिलाए, छटपटाए या भरकर टूट जाए, डूब जाए—इससे मतलब नहीं। जब वे पूरी दुनिया दे सकने की हिम्मत रखती हैं, तो दूसरे में भी इतनी हिम्मत होनी ही चाहिए कि वह पूरी दुनिया ले सके। वरना, 'अच्छा नहीं लगता, भाई साहब।' आप ठीक कहती थीं, 'यह तो आलू और टमाटर भी 15-15 किलो से कम नहीं खरीदतीं—इसके ग़ुस्से और प्यार का वजन भी उसी अनुपात से रहता है।'

राज एक ऑटोमेटिक मशीन की तरह काम करने में विश्वास रखता है। सुबह उठने के साथ ही उसके तमाम गैजेट एक साथ काम करने लगते हैं। यहाँ जाना है, वह करना है, यह देखना है, इससे मिलना है, इसे रिसीव करना है, इसके साथ खाना

Hindi Premi

खाना है, इसे घर बुलाना है, इसे-इसे पत्र लिखने हैं, यहाँ-यहाँ सामान भेजना है, यहाँ-यहाँ लेबर को देखने जाना है, यहाँ-यहाँ सोशल कॉल्ज़ करनी हैं—फिर इस सबके बीच ठहाकों और विटामिन की गोलियों के लिए भी वक़्त निकालना है। इस सारे प्रयत्न से लगातार वह दुनिया तैयार करता रहता है जो भाभी के हाथों बँटती रह सके। उसे ग़ुस्सा आता है, तो वह फौरन गैजेट बदलकर हँस देता है। 'सब चलता है, ठीक है।' अबकी पहली बार उसके चेहरे पर उम्र की लकीरें नज़र आईं। फिर भी उत्साह में फ़र्क़ नहीं। 'बस दो-तीन साल में सब सेट हो जाए, तो...।' यही वह 1959 में भी कहता था। 1979 में भी कह रहा होगा।

राज से क...के बारे में बात न करता, तो अच्छा था। शायद उसे लगा हो कि मैं ख़ामख़ाह उस बेचारे पर तोहमत लगा रहा हूँ। मगर लगा था कि यह रिस्क उठाना ही ठीक होगा—और अफसोस इसके लिए अब भी नहीं है। उसका ख्याल है कि सारी दुनिया की आँखों में वही लेंस लगे हैं जो उसकी आँखों में हैं—कुछ आँखें बाहर से मासूम और अन्दर से बहुत खुर्राट हो सकती हैं, यह उसकी समझ में नहीं आता। बहरहाल, वह अब सतर्क तो रहेगा ही—बात करने की बुराई का इतना भी अच्छा परिणाम काफ़ी है।

क...इस बार की कुल प्रतिक्रिया है वितृष्णा। एक-एक बात को लेकर। उसकी बढ़ती तोंद, चकले चेहरे की बेहूदा हँसी, झूठे संवेदों की गहरी कोटिंग के पीछे से झाँकता फ़रेब और ओछापन। एक तरफ़ क...का सेटेलाइट, दूसरी तरफ़ उस पर छुरी चलाने में लगा हुआ। उसके माथे पर लिखा लगता था, 'मेरे लिए किसी चीज़ की कोई कीमत नहीं है, सिवाय अपने स्वार्थ के।'

य...उतरा हुआ लगा। अपने को एसर्ट करने के लिए प्रयत्नशील, फिर भी असमर्थ। घर के कलह-क्लेश से थका हुआ। रिज़ाइंड। कांशस की बातचीत का विषय वही होता है।

नया-नया मछलियों का शौक पाला है। अब तक तो यही लगता है कि एक ओर कोने में अपना मरा हुआ उत्साह उसने दफ़न कर रखा है। पिछली बार ऐसा ही लगा था रिकार्ड प्लेयर को देखकर।

...का कोना देखकर दहशत हुई। एक तरफ़ पेंटिंग्ज़ (उपहार की) और दूसरी तरफ़ वह लड़की...।

प...क्यों लकड़ी की एक डरावनी मूर्ति की तरह लगती है? सिर से पैर तक आर्टिफिशियल? हँसी हँसी नहीं, बातचीत बातचती नहीं। और क्यों सब लोग इतनी

Hindi Premi

बात करते हैं उसके बारे में? जैसे कि इस सारे वर्ग की ज़िन्दगी उस औरत के इर्द-गिर्द ही जी जाती है। टिपिकल कैरेक्टर है। उसकी जिसके बारे में जो राय बनती है, धीरे-धीरे सारे वर्ग की वही राय बन जाती है।

उ...स्वस्थता का पोज़ लिए अपनी बीमारियों से परेशान औरत। 'ऑल फाउंड' अरेंजमेंट में सबसे कुशल गृहस्थिन।

अनीता को लेकर इस बार बहुत क्रिटिकल थी। कारण?—अनीता की मूर्खताएँ और अपना फ्रस्ट्रेशन।

ग...की बात करना ही बेकार है। वह कभी एक औरत के रूप में ग्रो कर पाएगी, इसी में सन्देह है।

बासु, रिंकी। बासु के चेहरे पर कुछ पश्चात्ताप। रिंकी के चेहरे पर समझदारी, कोमलता।

अनीता।

उतनी ही मूर्ख, अड़ियल। लगता है राज, भाभी और अम्माँ को ख़ासा परेशान किया है उसने। इसे हज़ार नसीहत दे दी जाए, इस पर कुछ असर होगा, लगता नहीं।

बेबी—पुरवा।

अपने रोने-धोने के बावजूद औरतों में एक वही है जिससे फिलहाल कोई शिकायत नहीं।

वातानुकूल एक्सप्रेस : 9-11-67

बहुत दिनों के बाद गाड़ी की खिड़की से सूर्योदय देखा। मगर उदासी दूर नहीं हुई।

नई दिल्ली : 11-11-67

दो दिन ज़्यादातर समय सोकर बिताया।

शाम को हंगेरियन आलोचक तथा साहित्यिक इतिहासकार Peter Nagy आए। I.C.C.R. की मिस बैनर्जी के साथ। डेढ़ घंटा उनसे बात होती रही। Collin Wilson से रासलीला तक। अपने यहाँ के नाटककारों के सम्बन्ध में उनकी भी वही धारणा थी जो यहाँ के आलोचकों की यहाँ के नाटककारों के सम्बन्ध में है। मुझे सबसे ज़्यादा पसन्द आई उस आदमी की मुस्कुराहट। लगा कि यह आदमी खुलकर हँसता भी होगा जो कि एक आलोचक के लिए असामान्य गुण है।

Hindi Premi

रेखा ने अपने तथा चमन के सम्बन्ध को लेकर बात की। 'बाँकुड़ा' से उसके साथ निज़ामुद्दीन चला गया था।

Hungarian Charge de Affairs के यहाँ cocktail party—Peter Nagy के लिए। सोशलिस्ट कैम्प के लेखक, including बलवन्त गार्गी। बाहर बलवंत गार्गी की अमरीकन गाड़ी।

गार्गी बोला, "मैं सक्सेसफुल इसलिए हूँ कि मैं बड़ों की चिलमें भरता रहा हूँ।"

"तुम ज़िन्दगी-भर चिलमें ही भरते रहोगे," उससे कहा।

वहाँ से लौटे उसी की convertible में।

Soviet Land Award. सबसे दुखदायी थे भाषण—जो सब सतही थे। फिराक से कुछ उम्मीद थी, पर उन्होंने भी निहायत बोसीदा बातें कहीं।

उज़बेक नृत्यों में, हाँ, कुछ आकर्षण लगा—जहाँ-जहाँ उनमें 'नवीनता' का स्पर्श नहीं था। संगीत में भी यही बात थी। कार्यक्रम कहीं अच्छा होता अगर सस्ती अभिरुचि की ओर उन लोगों ने इतना ध्यान न दिया होता।

आज शाम चौधरी के साथ लम्बी बैठक हुई। बम्बई के सब क़िस्से उसे बता दिए।

नई दिल्ली : 19-11-67

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन के पत्र का उत्तर :

प्रिय भाई जी,

आपके पत्र का उत्तर कुछ देर से दे पा रहा हूँ। इस बीच अनीता को देखने बम्बई चला गया था। वहाँ हमारी बेटी ने जन्म लिया है।

आपने अपने पत्र में 'अनुबन्ध पत्र की शर्तों' पर विशेष बल दिया है। अनुबन्ध पत्र (या पत्रों) की प्रतियाँ हस्ताक्षरित होकर मेरे पास वापस नहीं आई थीं। कृपया मेरे वाली प्रतियाँ भिजवा दें।

खेद है कि आपने मेरे पत्र को बिलकुल दूसरे ही अर्थ में लिया है। पर इस पर कुछ कहने से पहले आप द्वारा उठाए गए पाइंट्स पर अपनी दृष्टि से थोड़ा प्रकाश डालना चाहूँगा।

आपको शायद वह बातचीत याद होगी जो हम लोगों में पिछले वर्ष आपके घर हुई थी। तब तय हुआ था कि ज्ञानपीठ की प्रकाशन-योजना के अनुसार एक-एक पुस्तक के प्रकाशन का समय आने पर आप मुझे सूचना भेजते जाएँगे और मैं महीना दो महीने के अन्दर उस पुस्तक की पांडुलिपि आपको भेज दूँगा। क्रम होगा—निबन्ध संग्रह, 'आख़िरी चट्टान तक' नाटक और उपन्यास। परन्तु 'परिवेश' के प्रकाशन के

Hindi Premi

बाद इस मई तक आपकी ओर से दूसरी पुस्तक 'आख़िरी चट्टान तक' के लिए माँग नहीं आई। तब मैंने ही अपनी ओर से आपको उस सम्बन्ध में लिखा था। उन दिनों आए आपके पत्रों में यह स्पष्ट आभास था कि आप 'आख़िरी चट्टान तक' को अब दूसरी की जगह तीसरी पुस्तक के रूप में लेना चाहते हैं। इस पर मैंने उसे अन्यत्र प्रकाशित करा लेने की बात लिखी, तो आपकी ओर से सूचना मिली कि उसका प्रकाशन ज्ञानपीठ ही करेगा। हालाँकि नए रूप में 'आख़िरी चट्टान तक' की पांडुलिपि मेरे पास इस मई-जून से तैयार रखी है, फिर भी मैंने सोचा कि शायद आप यह अधिक पसन्द करेंगे कि मैं उससे पहले आपको एक नई पुस्तक दे दूँ। इसलिए मैंने 'तीन बीज नाटक' शीर्षक पुस्तक के प्रकाशन का सुझाव देने की ग़लती की। कहीं मन में यह ख्याल भी था कि इस तरह के प्रयोगात्मक लेखन का प्रकाशन शायद ज्ञानपीठ के उद्देश्यों के अधिक निकट होगा। फिर भी, मैंने यह निर्णय आप पर छोड़ा था कि आप चाहें, तो इसे नाटक के स्थान पर ले लें, और चाहें तो इसके लिए नया अनुबन्ध पत्र भिजवा दें। आशय था कि नाटक का अनुबन्ध आप ज्यों-का-त्यों रहने देना चाहें, तो इसे मैं एक अतिरिक्त पुस्तक के रूप में आपको दे सकता हूँ। परन्तु बहुत दिनों तक मुझे इसका उत्तर नहीं मिला। उत्तर मिला, व्यक्तिगत रूप से भेंट होने पर 'यात्रिक' के बाहर। हालाँकि क्रमशः एक-एक पुस्तक को प्रकाशन-शिड्यूल में लेकर उसकी पांडुलिपि की माँग आपकी ओर से नहीं भिजवाई गई, फिर भी यह आरोप मेरे ऊपर है कि मैंने 'अनुबन्ध पत्र के अनुसार' समय पर पांडुलिपियाँ नहीं दीं।

ख़ैर, 'तीन बीज नाटक' के प्रकाशन की व्यवस्था मैंने कर ली है—राधाकृष्ण प्रकाशन से। यूँ यह व्यवस्था कहीं से भी हो सकती थी। अब इसके बाद यह दूसरा आरोप मुझ पर हो सकता है कि मैं प्राथमिकता दूसरे प्रकाशकों को देता हूँ। मुझे लगता है कि अग्रिम की राशि तथा अनुबन्ध पत्रों के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियाँ आपके मन में हैं जिन्हें यहाँ दूर कर लेना चाहिए।

जिन दिनों आपसे इन पुस्तकों की बात तय हुई थी, उन्हीं दिनों मैंने आपको बतलाया था कि दो नाटकों ('पैर तले की ज़मीन' तथा 'आधे-अधूरे') तथा दो उपन्यासों के मेरे अनुबन्ध पहले के हैं। अगले छह-आठ महीनों में इन पुस्तकों के अन्यत्र से प्रकाशित होने पर यह निराधार आरोप फिर मुझ पर न लगे कि 'अनुबन्ध के अनुरूप कोई कृति तैयार होने पर भी उसे ज्ञानपीठ के पास भेजने न भेजने का अधिकार लेखक का है'—इसलिए स्थिति का स्पष्टीकरण बहुत आवश्यक है। एक नाटक या उपन्यास का लिखा जाना ऐसी प्रक्रिया नहीं है जिसे पूरी तरह समय से बाँधा जा सके। मैं अपना पूरा समय लेखन को देता हूँ, फिर भी जब तक किसी रचना से पूरा सन्तोष नहीं होता, तब तक उसे प्रकाशन के लिए धकेल देने में विश्वास नहीं रखता। इसी कारण अपने 63 तथा 64 के अनुबन्ध पत्रों के अनुसार दी जानेवाली

Hindi Premi

सब रचनाएँ मैं अब तक भी नहीं दे पाया। ज्ञानपीठ से लिए गए 2,500 रुपए में से 'परिवेश' के खाते के 600 रुपए निकाल देने के बाद मेरे ऊपर जो 1900 रुपए शेष हैं, उनका बोझ भी कुछ हद तक 'तीन बीज नाटक' के प्रकाशन का सुझाव देने के मूल में था। मगर एक ग़लत धारणा अपने मन से निकाल दें। अग्रिम राशि केवल ज्ञानपीठ ही नहीं, अन्य सभी प्रकाशन देते हैं। राजपाल, राजकमल तथा राधाकृष्ण—इन तीनों प्रकाशन-गृहों से मैं जब-तब आवश्यकतानुसार दो-दो, तीन-तीन हज़ार रुपए लेता रहा हूँ और अब भी लेता रहता हूँ। अनुबन्ध पत्रों पर अग्रिम के साथ ही हस्ताक्षर हो जाते हैं और पांडुलिपियाँ तैयार होने पर मैं उन्हें देता रहता हूँ। 'हमारा इतना अग्रिम आप पर निकलता है'—ऐसा हवाला देकर आज तक उनमें से किसी ने मुझसे बात नहीं की। यह और बात है कि वे हर साल बिक्री इतनी कर लेते हैं कि साल के अन्त में हज़ार-बारह सौ से अधिक का अन्तर हिसाब में नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त कोई और चीज़ पहले तैयार हो जाने पर मैंने उनसे उसे छाप लेने को कहा, तो भी उन्होंने 'अनुबन्ध पत्र' का हवाला देकर बात नहीं की। यह सवाल पहली बार ज्ञानपीठ के सन्दर्भ में ही उठा है।

मैं सचमुच नहीं सोच पा रहा कि मैं इस सम्बन्ध में क्या निर्णय लूँ। आपको आपना मित्र और हितैषी जैसे मैं पहले समझता था, वैसे ही आज भी समझता हूँ और आगे भी समझता रहूँगा। हम लोगों के व्यक्तिगत सम्बन्ध इस तरह के मतभेदों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अपने आत्मसम्मान, व्यक्तिगत सम्बन्धों और रुपए-पैसे से मैं किसे कितना महत्त्वपूर्ण समझता हूँ, यह सब 'सारिका प्रकरण' से ही स्पष्ट हो जाना चाहिए था। यदि उसके बाद मैंने व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं बिगड़ने दिए, तो आज क्यों बिगड़ने दूँगा? 1900 रुपए की राशि इतनी बड़ी नहीं है कि उसे लेकर सम्बन्धों को कसौटी पर रख दिया जाए—और इस लिहाज़ से तो कोई भी राशि बड़ी नहीं होती। इस समय दो ही विकल्प सामने हैं। या तो 'अनुबन्ध पत्र' की शर्तों के अनुसार पांडुलिपियाँ भेजकर मुझे इस दायित्व से मुक्त होना चाहिए, या यह राशि लौटाकर। आप इनमें से जो भी बात चाहें, मैं उसके लिए तैयार हूँ। आप पहली बात चाहें तो मुझे तीनों पुस्तकों के सम्बन्ध में अभी से लिख दें कि वे कब तक प्रेस में दी जाएँगी ताकि उनकी पांडुलिपियाँ आपके पास भेजने की निश्चित तिथियाँ मैं आपको लिख सकूँ। मैं यह पसन्द नहीं करूँगा कि आपके कार्यालय से छह-छह महीने पत्र न आने पर भी यह तोहमत मेरे ऊपर रहे कि मैं पांडुलिपियाँ नहीं भेजता। और अगर आप दूसरी बात ज़्यादा पसन्द करें, तो 1900 रुपया मैं या तो जनवरी और अक्टूबर के बीच दस किस्तों में आपको लौटा सकता हूँ, या अगस्त-सितम्बर में यकमुश्त अदा कर सकता हूँ। आपको इनमें से जो भी बात ठीक लगे, वह मुझे स्वीकार होगी। हाँ, एक अनुरोध अवश्य करना चाहूँगा। आगे से कृपया 'अग्रिम की राशि' और 'अनुबन्ध

Hindi Premi

पत्र की शर्तों' का हवाला देकर न लिखें। ऐसी बात तो 'व्यावसायिक' प्रकाशक भी नहीं करते—फिर ज्ञानपीठ का तो अपना एक स्थान और स्तर है।

आशा है, प्रसन्न हैं। कुन्थाजी से नमस्कार कहें।

सस्नेह,
मोहन राकेश

नई दिल्ली : 3-12-67

परसों शाम की फ्लाइट से अनीता-पुरवा बम्बई से आ गईं। दो दिन पुरवा को देखने-दिखलाने में ही बिता दिए। बच्ची के साथ मेरे लगाव को देखकर अनीता हैरान होती है। 'तुम इतना बदल गए हो,' वह कहती है। पर मुझे ऐसा कुछ नहीं ल़गता। वरीन जब इतना छोटा था, तब उसे भी तो इसी तरह खिलाया करता था। नीते भी जब-जब मेरे पास आता रहा है, तब-तब उसे भी इसी चाव से खिलाना चाहता रहा हूँ। परन्तु वह परिस्थिति ही ऐसी रही है कि बीच के अन्तराल को हम दोनों ही भर नहीं पाते रहे। पर हो सकता है, पुरवा के साथ कुछ अतिरिक्त लगाव उम्र के तकाज़े के कारण हो, या बरसों से मन में बनी रही भूख के कारण, या ज़िन्दगी में पहली बार घर में खेलाने लायक एक 'लड़की' के होने के कारण। पर गिरधारी ने भी तो अपने पत्र में लिखा है कि 'मैं इस एक साल में दस साल जितना बदल गया हूँ।' क्या सचमुच इस बात में कुछ सच्चाई है? मैं अगर अपने अन्दर कोई परिवर्तन पाता हूँ, तो इतना ही कि सब फालतू चीज़ें काटकर काम करने की मेरी इच्छा इधर एक निश्चय में बदलने लगी है। यह अपने में एक ऐसी प्रक्रिया है जिसने रोज़ की ज़िन्दगी तथा प्रायः सभी के साथ अपने सम्बन्धों में काफ़ी रद्दोबदल करने के लिए मजबूर किया है। यह शहर एक अज़दहा है जो आदमी को पूरी तरह निगल ले सकता है, अगर वह सावधान न रहे तो। अपने आसपास प्रायः सभी को इस अज़दहे के मुँह में गुम होते देखा है, देखता हूँ। उस देखे की दहशत ने ही शायद एकाएक एड़ी गाड़कर रुक जाने के लिए मजबूर किया—वरना हश्र अपना भी वही होने को है—एक-एक इंच कर अज़दहे के मुँह में गायब। लेकिन पुरवा के साथ लगाव का इस निश्चय के साथ क्या ताल्लुक है? अनीता जो मेरे बदलने की बात कहती है, उसका तो सन्दर्भ ही दूसरा है।

नई दिल्ली : 9-12-67

हल्के से अर्धविराम के बाद वापस वही रफ़्तार ज़िन्दगी की। सिवाय इसके कोई चारा नहीं कि इस तेज़ ज़िन्दगी के तेज़ बहाव के बीच ही जीते रहते हुए जो लिखना हो, लिखा जाए। जिस तरह के लम्बे विराम की बात मैं चाहता-सोचता रहा हूँ, वह आज क्या, कभी भी सम्भव हो सकेगा, इसमें सन्देह है।

Hindi Premi

आठ दिन अधिकांश समय पुरवा के साथ। उसे खेलाते हुए, सुलाते हुए, चुपाते हुए। 31 साल पहले के वे दिन याद आते हैं जब वरीन इतना ही छोटा-सा था। तब उसे भी इसी तरह बाँहों में लिये-लिये घूमता था। फिर भी दोस्तों को, और काफ़ी हद तक अपने को भी यह विश्वास रहा है कि मुझे बच्चों से चिढ़ है। रेखा अनीता से कहा करती थी, 'देखना, कहीं बच्चा-अच्चा न पैदा कर लेना, नहीं तो यह तुझे भी छोड़कर भाग जाएगा।' अनीता को इस पर विश्वास भी था। इसलिए आज वह कहती है, 'मुझे सचमुच बहुत हैरानी होती है। मेरा ख्याल था, तुम बहुत कुढ़ा करोगे बच्चा हो जाने से। पर यहाँ तो बिलकुल ही उलट बात लगती है।'

अनीता काफ़ी मुटिया गई है—पेट से और पीछे से। पहले-सी लड़की नहीं रही। देखकर मन में वैसी कामना नहीं जागती। परन्तु कोई और ही भाव है यह—सेक्स से अलग—जो उसे चूमने के लिए मज़बूर करता है। उसके होंठों-से-होंठ मिलाए रहने पर शरीर में सेक्स की जुम्बिश महसूस नहीं होती। फिर भी कोई अभाव है जो भर जाता है उसे बाँहों में लेकर साथ सटा लेने से। यहाँ आकर लगता है कि स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध का आधार सेक्स ही नहीं, उससे हटकर भी कुछ है—ऐसा कुछ जो उम्र और शरीर की ढलान के साथ जुड़ा नहीं है, जो राजनीति, एटम बम और अर्थशास्त्र द्वारा लाई गई सारी तोड़-फोड़ से अलग और ऊपर है—फ्रायड और मार्क्स से परे—मिट्टी के रूप में मिट्टी के होने का-सा कुछ।

नई दिल्ली : 11-12-67

कल श्रीकान्त वर्मा द्वारा आयोजित हिन्दी विधेयक सम्बन्धी गोष्ठी में भाग लेकर बहुत पश्चात्ताप हुआ। पता नहीं, यह गोष्ठी उसी रूप में आयोजित थी जिस रूप में श्रीकान्त वर्मा ने पहले बतलाया था—या वास्तव में जनसंघ, संसोपा तथा हिन्दी सेना के तत्वावधान में किया गया एक आयोजन था जिसका मात्र उद्देश्य हिन्दी साहित्यकारों को ब्लैकमेल करना तथा उन पर कीचड़ उछालना था। जिस रूप में सारी कार्यवाही सामने आई, उससे तो यही लगता था कि यह पहले से निर्धारित एक रूपरेखा थी जिसके अनुसार कुछ व्यक्तियों को हाल में यहाँ-वहाँ छितराकर बिठा दिया गया था जिससे वे पूरे समय की कार्यवाही में एक अवरोध पैदा करके अपनी मनमानी करवा सकें। इसके विपरीत जो साहित्यकार नाम के प्राणी वहाँ उपस्थित थे, वे केवल असहाय दर्शक मात्र थे—वे सारा समय शायद इस बात का जायज़ा ही लेते रहे कि बात का रुख क्या है और कौन क्या कहना चाह रहा है। और साहित्यकारों की इस दुविधा का लाभ उठाते हुए हिन्दी सेना वालों ने श्रीकान्त वर्मा के कन्धे पर सवार होकर अपना प्रस्ताव पास करा लिया। जिस रूप में यह सब हुआ, वह हम सब लोगों

Hindi Premi

के लिए लज्जास्पद तो था ही, साथ ही इस बात का सूचक भी कि किसी भी तरह के रेजिमेंटेशन के समक्ष स्वतन्त्र चिन्तन की क्या दुर्दशा हो सकती है। यूँ रेजिमेंटेशन के लिए साम्यवादी दल बदनाम है—परन्तु उसके पीछे कम-से-कम एक विचारधारा तो है। दूसरी ओर यह समस्या तथा जनसंघ ब्रांड रेजिमेंटेशन—इसका तो कोरी अवसरवादी राजनीति तथा सामयिक दुराग्रह के अतिरिक्त और कोई आधार भी नहीं। कल जिस बात का सबसे अधिक डिप्रेशन रहा वह थी कि उस पूरे वितंडावाद में अकेला पड़कर मैं भी उस सबका साक्षी बना—और दूसरे इस बात का कि क्या आनेवाले कल को हम इन तीसरे दर्जे के राजनीतिज्ञों के हाथों अधिक बेबस और अधिक प्रभावहीन नहीं होने जा रहे?

उसके बाद चौधरी के यहाँ चला गया। हम लोग जामा मस्जिद की तरफ़ घूमने निकल गए। कबाड़ी बाज़ार की सैर करते रहे। फिर एडवर्ड पार्क और परेड ग्राउंड होकर चाँदनी चौक में निकल गए। चौधरी पुरानी दुनिया और वास्तविक ज़िन्दगी वाली अपनी प्रिय थीम पर बात करता रहा। हालाँकि बहुत चाव के साथ उसके साथ घूमने का कार्यक्रम बनाया था, पर मन उस सबमें रमा नहीं। यहाँ तक कि रोज़ा उतारने के समय वह जामा मस्जिद में जो दृश्य दिखाना चाहता था, उसे देखने के लिए भी नहीं रुके। कबाड़ी बाज़ार के अलावा पूरी शाम यह इम्प्रेशन दिमाग़ में इतना ही रहा—काली मस्जिद (मस्जिद कलाँ), मोहल्ला कब्रिस्तान, रज़िया सुल्ताना की कब्र, बुलबुलीखाना और रमज़ान का बाज़ार—कुछ ऐसे ही लगा जैसे दिन-भर एक मेले में घूमते रहे हों। शुरुआत एक दंगल से—फिर इमारतें, स्टॉल और डुगडुगियाँ।

हमारी पूरी सभ्यता क्या एक कबाड़ीखाने की सभ्यता नहीं है जिसमें हमने न जाने कितने बेहूदा बेकार कलपुर्ज़े न जाने कल के किस उपयोग के लिए सजा रखे हैं?

—कबाड़ी बाज़ार में एक ख़ास चीज़ देखी—साँडे का तेल। पहले चुटकुलों में सुना ही था। यह मालूम नहीं था कि साँडा गिरगिट की शक्ल का एक जानवर है और यह तेल उसी को काटकर तथा पकाकर बनाया जाता है। अगर किसी तरह अपनी सारी बोसीदगी पर साँडे का तेल लगाकर इस कबाड़ीखाने की ऐसी की तैसी की जा सके? सच, इस सारी कौम के दिमाग़ पर साँडे के तेल की मालिश होनी चाहिए।

रात को घर पर लड़ाई। वह भी क्या दिन-भर की उलझन का ही परिणाम नहीं थी?

नई दिल्ली : 12-12-67

सतीश ने बहुत बोर किया। हर चन्द सालों के बाद आप अचानक अफ्रीका से आ नमूदार होते हैं। हर बार बात इस तरह करते हैं जैसे पन्द्रह साल पहले शिमला

Hindi Premi

की माल रोड पर हुई बातचीत अभी हमारे दिमाग़ में ताज़ा हो। कभी-कभी किस हद तक बदल जाता है आदमी पन्द्रह सालों में—और कभी-कभी किस हद तक नहीं बदलता। कुछ तो वह नशे में था, इसलिए उसकी बातें असम्बद्ध और बचकाना लगीं—पर असल बात यही थी कि यहाँ से जाने के बाद उसने इतने साल बाहर गुज़ारे हैं, चेहरे पर मांस चढ़ाया है, शादी की है, चार बच्चे पैदा किए हैं, पर रहा वह वही-का-वही है—उतना ही एब्रप्ट और उतना ही असंगत। जीता वह आज भी शिमला की माल पर ही है—'तुम्हें याद है एक दिन जब हम लोग' के आधार पर। इससे एक तरफ़ उम्र का बहुत एहसास होता है, दूसरी तरफ़ बिलकुल नहीं होता। वह सबकुछ जो मुझे इतना पीछे रह गया लगता है, उसकी ज़बान से कल का सा लगने लगता है। 'पर दोज़ वर द डेज़, पार्टनर, दोज़ वर द डेज़' कहकर वह ख़ुद भी उम्ररसीदा हो जाता है, दूसरे को भी कर देता है।

जहाँ-जहाँ भी वह मेरे साथ बैठा, वहीं-वहीं चल रही बातचीत के बीच अपनी फुलझड़ियाँ छोड़ता रहा। 'पिछले पन्द्रह साल से मैं उसे बुला रहा हूँ कि यह वहाँ आए पर यह आता ही नहीं।' 'इस अप्रैल में इसे वहाँ आना ही है और एक बुक लिखनी है। मैंने इससे कहा है कि पार्टनर एक ऐसी बुक लिखो कि बस मज़ा ही आ जाए।' 'भाषा का झगड़ा—यह क्या नानसेंस है यहाँ? आप लोग इंटेलेक्चुअल्ज हैं, पार्टनर, आप लोगों को कुछ करना चाहिए। एकदम रेवोल्यूशन ले आना चाहिए। वरना इस मुल्क का कुछ नहीं होने का। सब लोग स्टुपिड हैं यहाँ। मेरे बच्चों को चंडीगढ़ में एडमिशन ही नहीं मिल रहा। यह भी कोई मुल्क है?' 'मैं हिन्दुस्तान में रहता, तो कुछ बन भी जाता—अब मेरा क्या हो सकता है?'

और चलते वक़्त आप कह रहे थे कि कल की शाम अपने लोगों को ज़रूर साथ बितानी है—'कहीं बैठकर पिएँगे'—और साथ ही यह बता रहे थे कि कल शाम उन्हें फ़ुरसत नहीं है—'मैं कल बिस्मिल्ला खाँ की शहनाई सुनना चाहता हूँ। पच्चीस का, पचास का, जितने का टिकट मिलेगा, लेकर जा बैठूँगा। अपनी तो म्यूज़िक में जान है, पार्टनर। तुम्हें तो पता ही है।'

नई दिल्ली : 15-1-68

पहली तारीख़ को बलवन्त गार्गी के यहाँ बैठे हुए सोचा कि ऊपर-नीचे के दोनों फ़्लैटों का किराया भरना मुश्किल पड़ रहा है, इसलिए नीचे का फ़्लैट छोड़ दिया जाए। दो तारीख़ को अनीता से बात की। तीन तारीख़ को मिस्टर चोपड़ा को कहला दिया कि शायद अप्रैल से हमें निचला फ़्लैट छोड़ देना पड़े। पाँच को फिर कहा कि छह हफ़्ते बाद इस सम्बन्ध में निश्चित बता दूँगा। सात को अनीता, पुरवा को ऊपर बुला लिया—ट्रायल के लिए। सात की रात बिना रुई के और आठ की रात कानों में रुई

Hindi Premi

डालकर सोया। नौ को सुबह तय कर लिया कि अभी नीचे का फ़्लैट ख़ाली कर देंगे। नौ की दोपहर को मुख्य सामान ऊपर मँगवा लिया। शाम को अनीता को कुछ दिनों के लिए लोधी कालोनी भेज दिया। दस, ग्यारह और बारह को सामान सेट किया। तेरह, चौदह को बिजली की फिटिंग्ज़ एडजस्ट कराईं। अब बाक़ी हैं किताबें और फालतू सामान की पेटियाँ नीचे से मँगवाना, किचन के शेल्फ़ नीचे से उठवाकर ऊपर लगवाना और फ़ोन का साकेट बदलवाना। सब सेट हो जाने के बाद पुरवा को बुला लाऊँगा। तब ठीक से पता चलेगा कि सही किया है या ग़लत।

21-3-68*

The train journey from Delhi. Discussion about Theatre of the spoken word.

22-3-68

Calcutta; lunch had been at Blue Fox; Bam; visit to Sangam office and then to Shri Shambhu Mitra, Sangam office; Anamika Rehearsal; to Rabindra Sadan; Play 'Man of all Seasons'. Left after the 1st Act; Sangam office; to Punjab Club; drinks and dinner; discussion about the Sangam activities; returned to Sureka's place; so are...slept after 2 am.

23-3-68

Jai Ratan at 8.30 am. Shastriji (Vishnukant Shastri) and others, rested after breakfast for an hour, lunch at Sureka's (Shyamanand Jalan); reached for the Seminar at 2.30 pm. Speakers: Shyama, Kanodia; V.K. Shastri; N.C. Jain; Suresh Awasthi; Coffee Break; Girish Karnad; myself; Shambhu Mitra; close; to Hindi High School for 'Hatya Ek Akar Ki'. After the play to Sambhu Da for discussion on his letter to Alkazi, Dinner at Shyamanand's. Aftermath of the Seminar' returned at 11.30. An intimate take on the problem between Awasthi, Nemi, self. slept after 1.30 am.

24-3-68

Got up early. Early breakfast to reach at the Seminar at 9 am. Reached at 9.30 am. The question session; V.K. Shastri, Lodha (Kalyanimal Lodha); Shyamanand; then Rajindra Nath started. Speakers Pratibhaji, Kanthi Jain, Nemi, Awasthi, V.K. Shastri's younger brother; another youngman, Girish.

---

* अनामिका कला संगम कलकत्ता द्वारा मार्च-अप्रैल 1968 में आयोजित 'हिन्दी रंगमंच शताब्दी समारोह के सहभागी मोहन राकेश की एक अन्य डायरी की प्रविष्टियाँ।

Hindi Premi

myself; break, then Rajinder Paul; M.M. Thakore; a girl; Smt. Gyan Bai; Shyamanand; myself; last Lodha.

After Seminar with Basu. Booking tickets, bought a pen; lunch at Kanodia's. Sangam meeting after lunch till 3.20 pm. Went with Basu to his place; returned to London Street at 4.35 pm. went for Tea party at Hindustan Club; Gopal Haldar at the party; back at London Street 6 pm. Packed up and left for 'Tear'. Left after the 1st Act. Puri Express. Talked till 12 pm. No comfortable sleep in the train.

25-3-68

Reached Bhubaneshwar. Mr. M.D. Patnaik joined at Cuttack. Lodged at Tajmahal Hotel. Met Shri Mohapatra and Shri Mahatab at the Secretariat. Then went and saw same temples. Rajrani and Brahma...came back to hotel for lunch. Rested till 4 pm. Then went to the caves. On way back stopped at the emporium and left for Cuttack. At Kala Bikash Kendra met Shri. Das, Kali Babu and Kumkum Das. Also others... . Kumkum danced a few Ashtapadis. Talked of her career. Returned from Cuttack at 10.30. Had late dinner with beer and went to sleep. Slept well.

26-3-68

To the lake after breakfast. Saw Dr. Awasthi off at the airport. No tea at the Airport. Returned to Shri Patnaik's office and left for the temples with Panditji. Saw Parashurameshwar and Mukteshwar and Kedar Gram temples before going to Linga Raj temple. Found the sculpture of Linga Raj temple fascinating. Returned to the hotel and had a nap after beer and lunch.

In the evening set off for Cuttack. Stop first on Mr. Das's house. A cup of tea then on to Kali Babu's. The playwright's sweet. Later an hour and a half with Kali Babu. Geeta Govindam, while leaving the lady in white Mrs. Das is the companion on way back.

27-3-68

Got up early to go to Konark. Picked up Mr. Das from his place and walked Konark at 8.30 am. Konark a marvel in stone. Our guide and his humour. The two American girls. Dhab at Konark. Tea on way to Puri. Puri, the old actor Master Manik of Annapurana Theatre. The temple and the Pandas. Mr. Das's bangla, with Master Manik again. Returned to Bhubaneshwar by 9.30 pm. Beer and early lunch. Two separate berths in two different compartments. The Rupakar actor.

Hindi Premi

28-3-68

Reached Calcutta early morning. Coffee with Pratibhaji at Kwality (Kwality via Dalhousie). A sitting with Sambhu Da. Met Badal Sircar then late lunch and a nap. In the evening to Anthony Katiyar. Taxi trouble. Then to second half of 'Tear'. Back at London Road, Party, stayed away. After dinner talk with Shyamanand and over to bed.

29-3-68

Phone from Kamleshwar. Badal Sircar at 9 pm. Talk about his work. Kamleshwar at 10 am. After Badal Sircar left over to Blue Fox. After lunch a nap for them at London Road. Kamleshwar left at 4.30 pm for his ticket. He returned at 6.15.

A cup of tea with B.D. Sureka. Left for Muktangan. Saw Shyamanand's 'Shuturmurg'. Dinner and drinks with Shyamanand at 'Saqi'. A sitting in the room till about 12.30 am. Good bye to Kamleshwar.

30-3-68

Pratibhaji came to pick up for the talk at Shikshayasan till 12 pm. Then lunch with Pratibhaji. Back in the room. Nap, Girish left to meet his relations etc. R. Paul came at about 5.10 pm. got ready and left for 'Agantuk'. Taxi trouble again. Rajinder Nath also came. Two acts of Agantuk for drinks at Olympic. Missed each other. Late night dinner at Nizam. Back in the room and the session till 1.30 am.

31-3-68

After breakfast to New Empire for 'Ra Chakra'. Dropped at Sangam office for a while and over to M. Thakore's lunch. A 'Goshthi' after lunch at Swadesh Bharati's. After goshthi Alok Sharma came along to the room. An hour's talk with him and over to Rabindra Sarovar for 'Kobi Kahini'. Two and a half an hours of boredom. Dinner at Calcutta Club with Bhandaris. A little talk at night. Over to bed at 12.30 am.

1-4-68

Girish left in the morning. AT 12, Shri V.K. Shastri took me for lunch at Kwality. He read out his article. At 2 pm went to Shri Sambhu Mira. A long talk with him till 4.30 pm. Returned to London Street from there; had a little wash and went to Shri L.C. Jain for tea. Started feeling very much exhausted. At 6.30 left for Shyamanand's rehearsal. Could not stay here. Came back to London Street and relaxed for half an hour and went to

Hindi Premi

Kiran Jain's dinner. Managed to spend there three hours with a great difficulty. Took two anacins before going to bed.

2-4-68

Got up early, still very much exhausted. Shri Jai Ratan came at 8 am. Sat with him till 9.30 am but could not work. Relaxed again after he left. Cancelled all appointments for the afternoon and the evening—except a meeting with Jai Ratan from 5.30 pm and going to Shyamanand's rehearsal at 7 pm. Took lunch more anacins. Shri Jai Ratan did come at 5.30 Read a few portions of translation with him. On the whole did not find the translation very satisfactory. At 7 pm. went to Hindi High School. Sat through Shyamanand and remained with him till 12.30 am. Returned and went to bed at 1.00 am.

3-4-68

On a call from Shambhu Babu went to him at 10 am. We came out together. Saw Rabindra Sadan stage with him. Walked over to Victoria memorial and sat in the canteen there. A statesman chap Dipankar (Ghosh) joined in there. A 11 am. came to London street.

Babu sat there till 1.15 pm. Then leaving him at Nasiruddin Road, went to Thakur and with him to Sabita Bannerji's house for lunch. Came to Thakur's office from there and after 45 minutes to London Street. At 4.45 pm discovered that the journey ticket is missing. Searched at Sangam office to no avail. Rushed to the station. Had to purchase a fresh ticket. Was seen off by Thakur and Swadesh Bharati.

4-4-68

A day of boredom in train. Heat. Self critical about attending seminars and all.

नई दिल्ली : 19-5-68

रेखा चमन की घटना इतवार 28-4-68 को हुई थी। उस दिन रेखा आई। इन्दर के साथ। पहले घंटा-भर यहाँ। फिर कॉफी हाउस में। वहाँ शीला के सामने बातचीत। फिर रेखा शीला दोनों यहाँ। शाम छह बजे तक बातचीत।

रात को चमन आया। गोर्डन का खाना था। उसके बाद एक बजे तक उससे बातचीत।

29 को फिर बात रेखा से फ़ोन पर। उस 30 की रात चमन फिर आया। फिर देर तक उससे बातचीत। उस रात मन्नू का खाना था।

Hindi Premi

1 की रात को रेखा शीला से लम्बी बातचीत। रेखा को dissuade करने की कोशिश। असफलता।

2 की शाम को वह फ्लाई कर गई। बाद में चमन के साथ रात को। उसका कहना, 'बुइ कहती है कि...।'

बीच में दो-एक बार वह आया। घंटों बैठकर rambling करता रहा।

रेखा 14 को लौट आई। आकर उसने फ़ोन नहीं किया।

12 को चमन, शीला आए थे। उस दिन घर पर नहीं था। कल चमन फिर आया। रात को देर तक बैठा रहा। कल फिर उसने वैसी ही एक बात कह दी। 'सन्तोष ने शीला से कहा है कि...।'

तब से जो मूड ऑफ़ हुआ, अब तक ठीक होने में नहीं आया।

चमन के नाम पत्र लिखा है, पर पोस्ट नहीं करूँगा।

My dear Chaman,

I am writing this after an extremely agonising night. You had said a similar thing on the 2nd night and it has taken me all these days to get over the pain. As all such pain has s stupefying effect on me and paralyses my capacity of work, I think the best thing to do under the circumstances will be to avoid meeting each other till the things get resolved into some shape and you feel better organised mentally.

Sincerely–Rakesh

Hindi Premi

स्पॉट नोट्स

Hindi Premi

Hindi Premi

स्पॉट नोट्स एंड अदर नोट्स* : बॉम्बे

11.7.1964 से 5.8.1964

11-7-64

1.

"रात को दस के क़रीब एक पारसी की कार चर्चगेट स्ट्रीट पर आती है। वहाँ से जिस किसी ख़ूबसूरत लड़के को एम्प्लॉय करके ले जाती है। पारसी मालाबार हिल के अपने फ़्लैट में जाकर पहले उससे अपनी औरत को गर्म कराता है। जब वह तैयार हो जाती है, तो खुद उसके साथ सम्भोग करता है।"

2.

"एक सिन्धी परिवार ने एक व्यक्ति पर दावा किया कि उसने उनकी लड़की का रेप किया है। लड़की ने खुद भी स्वीकार किया। पर जब कोर्ट की तरफ़ से मैडीकल टैस्ट का आदेश हुआ तो समस्या उठ खड़ी हुई क्योंकि असल में लड़की तब तक वर्जिन ही थी। अपनी बात की सच्चाई साबित करने के लिए लड़की को उसके चचेरे भाई से रेप कराया गया। पर काम उससे भी नहीं बना। मैडीकल रिपोर्ट यही मिली कि लड़की का रेप दो दिन पहले ही हुआ है—उस समय नहीं जबकि शिकायत की गई है।"

3.

"श्रीमती अ. के हाथ से सौ का एक नोट उड़ गया। कालबा देवी उनके घर की छत से। श्री अ. ने श्रीमती से कहा कि वह परेशान न हों, वे अभी उस नोट को ढूँढ़कर ला देते हैं। उन्होंने तुरन्त दूसरा सौ का नोट लेकर उसके साइज़ का टिशू-पेपर काटा और बीवी से कहा कि जब वे नीचे पहुँच जाएँ, तो वह उसे भी उड़ा दे। नीचे से उन्होंने टिशू पेपर का पीछा करना शुरू किया—और थोड़ी ही देर में अपना नोट एक जगह दीवार से चिपका हुआ पा गए।"

---

* एकरूपता और सुविधा के लिए (हिन्दी इबारत के बीच में आए) अंग्रेज़ी शब्दों और वाक्यों को देवनागरी में कर दिया गया है। —सं.

Hindi Premi

7.

"श्री ज. ने कोलाबा के एक दलाल को लिया। कहा 'यहाँ का सब माल दिखाओ'। उसने सब तरह की लड़कियाँ दिखाईं। ये सबको टटोल-टटोलकर देखते रहे। फिर बोले, 'यहाँ का माल पसन्द नहीं, बाँदरा ले चलो।' वह बाँदरा तक ले जाकर वहाँ के ब्रोकर के सुपुर्द कर आया। उन्होंने उसी तरह बाँदरा की लड़कियाँ देखीं। उस दलाल से कहा कि उनमें कोई पसन्द नहीं, कोलाबा ले चलो। वह उन्हें कोलाबा छोड़ आया। इस तरह उन्होंने पचास लड़कियों को टटोलकर देख लिया और पैसा एक ख़र्च नहीं किया।"

8.

"यहाँ दलालों की भी यूनियन है। उसके प्रेज़िडेंट सेक्रेटरी चुने जाते हैं। सबका अपना-अपना एरिया है। एक दलाल एक एरिया के ग्राहक को दूसरे एरिया में ले जाए, तो सब-ब्रोक्रेज लेता है। मकानों की दलाली की तरह। एक दलाल का रिग्रेट "साहब मकानों का भाड़ा दो साल में दुगुने का चौगुना हो गया, पर औरत का भाड़ा अब भी उतने का उतना है।"

12-7-64

15.

पपा और आंटी–

"पपा अपनी आख़िरी साँसों पर हैं।" –आँसू।

"पपा, देखो कौन आया है!"

"पपा इज़ ए स्काउंड्रेल।"

"पपा बदमाश है। रिंकी, गुलनार और मेहर को साथ सटाकर बैठाता है।"

"पपा व्यस्त है बापू बंगाली डाकू है।"

"उस दिन पपा थोड़ा-थोड़ा बोल उठा, "यू आर ए डर्टी लाउट।"

"आई हैव अरेंज्ड फॉर सर्जिकल बैड फॉर पपा!..."

"यही दुआ करो बच्चा कि ईश्वर इसको जल्दी बुला ले। "आई कांट सी पपा सफर सो मच।" पपा का हाथ आंटी को तलाशता हुआ।

आंटी का रिस्पांस!

–घर–ऊँचे मसहरीवाले बड़े, पुराने कबर्ड, मेज़, शीशियाँ तथा लकड़ी का फ़र्श–

पापा के जिस्म की गली हुई खाल–

Hindi Premi

"कहता था मैं रिटायर होकर तुम्हें सारी दुनिया में घुमाने ले जाऊँगा। और अब बुढ़ापे में यहाँ इस तरह लेटा है। गेट अप यू लायर! यू हेव टु टेक मी एराउंड द वर्ल्ड।"

"अच्छा।"

"कहो मेरी जान! कहो डार्लिंग! कहो माई स्वीट।"

16.

भारती का घर–पुष्पा की बातें–

"आपको पता है वात्स्यायनजी ने खुद अपने को इस नौकरी के लिए ऑफ़र किया था?" "आपको मालूम है प्रेमलता वर्मा का क़िस्सा?"

"शमशेर के साथ न?"

"नहीं, भाई साहब–वात्स्यायन जी के साथ! उसी के पास, सिर्फ़ उसी के पास तो पत्र आया है कि 10 जुलाई को वापस आ रहे हैं।"

"विद्यानिवास मिश्र को लिखा है 'जानता हूँ नौकरी मेरे लिए बहुत छोटी है, पर सोचता हूँ कि मेरे कर लेने से सात-आठ हिन्दीवालों का भला हो जाएगा। और यूँ तो अपने ग्रहों का नियन्ता मैं स्वयं हूँ, फिर भी मेरी जन्मपत्री देखकर लिखिए कि यह नौकरी करनी चाहिए या नहीं।' और कि कपिलाजी को मैंने बुलाया है यह परामर्श करने के लिए कि नौकरी करूँ या नहीं?

"इंटरव्यू के लिए आए, तो 50 पेज की स्कीम लेकर आए थे। चन्द्रगुप्त जी के चपरासी से कहा, 'मैं वात्स्यायन हूँ।' उसने अन्दर जाकर कहा कोई दाढ़ीवाले साहब हैं। उन्होंने कहलाया अभी फुर्सत नहीं है, इन्तज़ार करें। अब वात्स्यायन जी पन्द्रह मिनट कॉरीडर में ऊपर-नीचे टहल रहे हैं।"

"चन्द्रगुप्त जी ने अपने लेख में संशोधन किया–अनुमानित उम्र से बहुत बड़े की जगह बहुत...।"

"अधिकारी (महावीर) ने कहा, "भाई राकेश वगैरह के कोई सिद्धान्त हैं जिनका विरोध कर रहे हो? विरोध ही है तो डार्विन के सिद्धान्तों का करो।"

17.

मॉडर्न स्टूडियो में–'तीसरी कसम' का मेले का सेट। दुकानें, गाड़ीवानों का कटरा, पेड़, सड़क। "दो पेड़ और मिल जाएँगे?"

"कहो तो खरीद लाएँ।"

"एक पेड़ को रंग करो।"

लौटते हुए–

Hindi Premi

कमाल (अमरोही) का भट्ठा बैठ जाएगा वह 'पाकीज़ा' पूरी कैसे करेगा?

मीना (कुमार) ने शर्त रखी है कि वह उसे तलाक दे दे और '67 तक का जो कांट्रेक्ट है महल पिक्चर्ज़ के साथ, उससे मुक्त कर दे तो वह 'पाकीज़ा' पूरी कर देगी।

"क्या कमाल फिर डायरेक्ट कर पाएगा?"

"यू थिंक एज़ इफ़ ए फ़िल्ममैन इज़ ए पर्सन ऑफ़ नार्मल इमोशन्ज! क्यों नहीं कर पाएगा?"

18.

रेणु शराब पीकर रोते हुए शैलेन्द्र से—"दद्दा 'मैला-आँचल' तुम्हीं को बनाना है।"

दूसरे दिन बाशु से—"आप समझते हैं बाशु कि भाई शैलेन्द्र अकेला बना सकता है? मैंने तो यही सोचकर कहा था कि आप डायरेक्ट करेंगे।"

बाशु सुब्रतो के बारे में—उसने रेणु को हलो तक नहीं किया। उसने नमस्कार का जवाब तक नहीं दिया। बोला, "यह आदमी है जिससे मैं बात करूँ?"

19.

श्री राजवंशी उर्फ श्री राज—

आप इंडस कोर्ट में पाँचवें माले पर रहते हैं। कैरेक्टर हैं।

"पुलिस इंस्पेक्टर को फ़ोन किया। घर पहुँचने पर उसे मैसेज मिला, तो रोटी छोड़कर चला आया। बीवी उसकी कहती ही रह गई कि खाकर जाओ। वह बोला कि नहीं राज साहब ने बुलाया है, तो इतनी देर कैसे लगा दूँ। आया। हमने कहा कि भाई यह मामला है—देखो हमारा नाम कहीं न आए, पर उसकी पिटाई हो जाए। फिर क्या था? वह सेवा हुई उस आदमी की कि याद करता होगा।"

और "इस बिल्डिंग की वाइस प्रेसिडेंटशिप क्या चीज़ है। मैं मेरीन ड्राइव फ़्लैट ओनर्स एसोसिएशन का वाइस चेयरमैन हूँ। मुझे यूनेस्को की डिफेंस कौंसिल का मेम्बर चुना गया है। कमांडर इन-चीफ भी मेम्बर नहीं है। अब देखिएगा, साल में दो बार मुझे जिनीवा जाना पड़ा करेगा।"

"मैं तो यहाँ गटर में पड़ा हूँ बेदी साहब। मेरी जगह तो प्राइम मिनिस्टर के केबिनेट में होनी चाहिए। पर इस मुल्क में आदमी की कद्र नहीं है।"

इस आदमी के लड़के की एक तस्वीर राज की अनुपस्थिति में...ने एल.आई.सी. को बेच दी। उसके पोस्टर बन गए। इस पर उसने काफ़ी हो-हल्ला किया। बोला तुम लोगों ने उसके दस हज़ार ले लिए हैं, मुझे पैसा नहीं दिया। पचास ले भी लिए और नोटिस दे दिया। एल.आई.सी. के पी.आर.ओ. ने पेमेंट कन्फर्म की। फिर उसे फ़ोन

Hindi Premi

पर बुलाकर कहा, "नहीं, नहीं, कोई बात नहीं। पोस्टर आप रीइशू कर दीजिए। सिर्फ़ एक कॉपी पोस्टर की मुझे भी भेज दीजिए।"

अब पोस्टर जड़ा कर कमरे में लगाए हैं। "सी, कितने ख़ूबसूरत बच्चे हैं मेरे। एल.आई.सी. वालों ने पोस्टर निकाले हैं।"

ख़ुद यू.पी. का है—शादी एक पंजाबिन से की है। लड़की बहुत ख़ूबसूरत थी। मगर गरीब। एक बहिन विधवा थी, दो अनब्याही। भाई शादी करके लाया, तो उसे बाहर से ताला लगाकर जाया करता था।

बच्चे हो गए, तो ताला लगाना बन्द करना पड़ा, पर चार-चार बार टेलीफ़ोन कर दिया करता।

उस औरत के यहाँ पुरी (पर्सनल ऑफीसर बैनेट कोलमैन) का काफ़ी आना-जाना था। शायद रिलेशंस भी हों। महाबलेश्वर एक बार इनकी लड़ाई हो गई। यह गाली देकर कार स्टार्ट करके चला आया (जो करना है कर ले हरामज़ादे)—पुरी 200 गज़ पीछे-पीछे दौड़ा। बाद में बोलचाल बन्द हो गई।

इस आदमी ने राज के ऑफिस इंडस कोर्ट से उठवाने और इन्हें इस फ़्लैट से निकलवाने के लिए कई करतब किए क्योंकि राज ने इसके कहने से किसी और के गोदाम रखने की शिकायत के लिए उसकी फोटो उतारना या इसके चुनाव के लिए अपनी मालिक मकान को गाड़ी में ले आना मंजूर नहीं किया।

इसका लड़का टोनी तुषार का दोस्त है।

20.

सैर करते हुए भाभी ने बताया कि पुरी उनकी मदर का भी धर्मभाई था।

फादर की मौत के बाद दो महीने और अढाई साल की दो बच्चियों को छोड़कर वह औरत किस तरह छह-छह महीने घर से गायब रहती थी, यह सब भी बतलाया।

यह भी कि किस तरह पुरी रमा (इनकी छोटी बहन) की शादी इस जगह नहीं होने देना चाहता था। इन्होंने चोरी से अरेंज करके चुपचाप उसकी शादी कराई।

कि किस तरह मदर के इन लक्षणों से दोनों भाई आवारा हो गए थे।

एक दिन वह औरत हिस्टीरिया के दौरे में ऐसे पड़ी कि पड़ी ही रही। ये लोग डरे।

इनके दादा ने कहा, "देखो बच्चो, जब मैं शादी से पहले लाहौर इसे देखने गया, तो मुझे किसी ने बताया था कि इसे हिस्टीरिया के दौरे पड़ते हैं। इस पर यह झट उठ बैठी और बोली, "शादी के बाद पड़ने शुरू हुए हैं दौरे या पहले से पड़ते थे? ख़ूब बात कहते हैं?"

Hindi Premi

इस पर बोले, "देखा, इसका दौरा छुड़ा दिया।"

दादा ख़ूबसूरत थे, ख़ूब मॉडर्न—मुर्गा-मटन के शौकीन, ताज में डिनर-डांस के शौकीन। पर फिरोजपुर से इसलिए भाग आए थे कि घर के लोग उनकी दूसरी शादी करना चाहते थे। लड़का तब बहुत छोटा था। पर उनका कहना था कि इसी को बड़ा करके ब्याहूँगा तो मेरा घर फिर से बसेगा।

लड़के की मौत के कुछ ही रोज़ बाद उसके गम में वे भी चल बसे।

13-7-64

22.

जय हिन्द कॉलेज के लड़के-लड़कियों में जो ज़्यादा सम्पन्न घरों से हैं, वे जाकर नेपाल में बैठते हैं—प्रायः मिक्स्ड। जो लोअर-मिडिलक्लास हैं वे सत्कार में जाते हैं—लड़के अलग, लड़कियाँ अलग। हाँ, सिन्धनें किसी भी क्लास की हों, वे मिक्स्ड क्राउड में ही घूमती हैं और प्रायः बड़े होटलों में ही जाती हैं।

24.

इस्मत आपा की लड़की सीमा एयर होस्टेस हो गई है। अभी दूसरे ट्रिप पर ही वह गई है कि इस्मत (अपने सारे मरदानेपन के बावजूद) घबरा रही है। कहती है कि नहीं, लड़की को और यह नौकरी नहीं करने दूँगी। इस बार लौट आए तो बस छुड़ा ही दूँगी।

25.

दो चरित्र हैं—

बाई और रंगू।

बाई का बार-बार छोड़कर जाना और लौट आना।

रंगू का हर तीसरे महीने शादी कराने के लिए नौकरी छोड़ना।

दोनों का आपस में लड़ना। कभी एक के छोड़ देने पर दूसरी का बनी रहना, कभी दोनों का साथ-साथ छोड़ देना। फिर नीचे नौकरों में प्रचार करना—"साहब को तो दूसरे काम के वास्ते छोकरी माँगता है।" कोई और नौकरानी काम करने लगे तो उसे धमकाना, पीटने तक को तैयार हो जाना।

फिर नीचे अपने बॉय फ्रेंड्स के लिए खाने-पीने का सामान ले जाना। बॉय फ्रेंड्स का ऊपर चले आना।

और इन दोनों के बीच इस्मत की नमकीन आया।

Hindi Premi

27.

दूसरा पक्ष–

गिरधारी के सामने के फ़्लैट में एक आदमी की चार रखैलें!

गिरधारी की अपनी (मुफ़्त की) माशूकाएँ–एक गुजरातिन, एक पंजाबिन।

(जुहू-सी. सी. आइ) एक फ़िल्म एक्ट्रेस जो हर छह महीने बाद किसी और की रखैल हो जाती है। (वन्दना)

और भाभी का रिमार्क : ''आजकल उससे ज़्यादा डिमांड उसके भाई की है।''

29.

बन्द फ़्लैट जहाँ पहले एक पेशा करनेवाली औरत रहती थी। अब वहाँ एक आदमी अपनी ख़ूबसूरत बीवी के साथ आया है। लोग अब भी ग़लती से वहाँ आते, घंटियाँ बजाते और चिटें भेजते हैं। वह औरत रिसीव करे, तो लोग लौटकर नहीं जाते, उसी से सौदा पटाना चाहते हैं। उसका खाविंद अन्दर से उन पर शाउट करता है। जब वह रिसीव करता है, तब तो अल्लाह ही मालिक है।

31.

कुर्रतुल-ऐन-हैदर। किसी ज़माने की ख़ूबसूरत लड़की, आज फ्रस्ट्रेटेड स्पिंस्टर पाकिस्तान की सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखिका ('जमीला हाशिमी वगैरह मेरी चेलियाँ हैं') यहाँ की सेकेंड रेटर। (चेहरे का भाव सत्येन्द्र शरत् जैसा!)

क़िस्सा मियाँ अब्बास का।

पहले वह पीछे पड़ा था, तब यह नहीं मानती थी। कहती थी अभी नहीं। जब इसने चाहा, तो अब्बास तैयार नहीं हुआ।

बीमारी–दुबली होती जा रही थी।

विभू सान्धवी, रमेश सान्धवी तथा रेखा रेवरी से दोस्ती लन्दन के दिनों की। उन दिनों की यादें।

रेखा की तस्वीरें।

'आग का दरिया' में सुरेखा।

रेखा द्वारा सजेस्ट की गई दवाइयाँ...वगैरह।

उपनिषदों से कम बात ही नहीं करती। 'वैष्णवाज़', 'छान्दूगिया'।

उसके साथ कुछ बैठकें उसके घर में–अपने यहाँ।

''सरदार के यहाँ जाती हूँ, या रमेश के यहाँ।''

''रूसी लड़की मुझ पर रिसर्च कर रही है।''

उसकी माँ जो अन्दर के कमरे में बीमार पड़ी रहती है।

Hindi Premi

"कौन आया है?"

"कौन हो तुम? क्या नाम है? क्या करते हो? शादीशुदा हो? बीवी कहाँ है? उसे साथ क्यों नहीं लाए?"

–यह कहाँ जाती है? किस-किससे मिलती है? वह हिन्दू है या मुसलमान?

सलमा–अब तो कहती है कोई हो–हिन्दू या मुसलमान।

"दिस कंट्री हैज़ लैट मी डाउन।"

नौकरी–फ़िल्मालय में (फ़िल्मालिया)

फ़िल्म डिवीज़न में।

अब–इम्प्रिंट में

32.

कमला और सरस्वती–(सरसू)

दोनों कोलाबा के एक फ़्लैट में रहती हैं। रीडर्ज़ मैगज़ीन निकालती हैं। कमला पहले किसी की पत्नी फिर किसी की मिस्ट्रैस रह चुकी है।

चमन कभी इसका प्रशंसक था। फिर इसके खिलाफ बात करने लगा।

हरकृष्ण और जयदेव भी काफ़ी दिन इनके चक्कर में रहे। "आती हैं, शराब पीती हैं, चली जाती हैं।"

कमला की ड्रेस–खादी की सलवार कमीज़ और–दोपट्टा। बाल भूरे-कटे हुए।

एक दिन कार में लम्बी बातचीत।

"मैं फ़िल्म बनाना चाहती हूँ।"

"यू सी–दिस...ये जमादार सामने बैठते हैं, इन पर।"

बीच में वह स्टेट्स गई थी।

थोड़ा पेंट करती है, थोड़ा लिखती है। कुछ-कुछ स्विडलिंग भी कर लेती है।

रामन के बारे में उसकी राय–'बीवी के मरने पर मेरे कन्धे पर सिर रखकर रोने लगा। बोला, "कमला अब क्या होगा?' "

रामन–'हैड ए गुड टाइम विद हर?"

फ्लैट में रहन-सहन!

"आई वांट ग्राउंड फ़्लोर।"

33.

विजय लक्ष्मी–"जी मैं जाऊँ?"

"मेरी कहानी..."

"सत्यकामजी ने कहा था...।"

Hindi Premi

गोल-गोल आँखें...

मोटा महल से ग्रांट रोड स्टेशन...फिर अवस्थी को फ़ोन (त्यागपत्र दे चुकने पर) फिर कमलेश्वर को (उसके सम्पादक 'नई कहानियाँ' के रूप में बम्बई आने पर)। चर्चगेट स्टेशन पर सत्यकाम के साथ—"मैं किसी दिन फ़ोन कर सकती हूँ?"

34.

रानी बाला। वार्डन रोड का कमरा। मास्टरजी (जालन्धर के)। दूसरा प्रेमी जो अभी पटना से (या कोलम्बो से?) ख़र्च भेजता है। "मैंने उससे कहा है कि...।"

कमरा और किचन। पहनावा। पैंडिंग। मॉडलिंग की कोशिश। "उम्र देखते हैं लोग, आर्ट को कोई नहीं देखता।"

"राज कपूर से मिल रही हूँ।"

"आई एम इन वैरी बैड...।"

"पाल साहब से...बट ही इज़ ए मैन यू सी...।"

"आई नीड मनी।"

प्रेम कपूर के साथ सड़क पर शर्त।

बाद में आनन्दम् के शोज़ में—अकेली।

35.

नारीमन गैस्ट हाउस का मैनेजर लड़का जो अपनी बहन को एक्ट्रेस बनाने लाया था और अपने चाचा या मामा की फ्री नौकरी कर रहा था—अगेंस्ट बोर्ड एंड लौजिंग। जाते हुए "वी विल कम हेअर अगेन" गैलार्ड और दूसरी जगहों पर वह लड़की अलग-अलग पोशाकों में। पहले हबीब तनवीर के साथ।

15-7-64

41.

Satyadev Dubey—The haunted individual always seems as if his hair is standing on end...as if he is about to plunge head forward into something...with piercing eyes and flashing broad teeth.

Chetan Anand—The man at ease both at Bombelli's. Chetan always talking about language—The 1940's idea of language.

43.

इंडस कोर्ट का लिफ़्टमैन (यंगर) मोम के चीनी पुतले जैसा—अनकंसंर्ड बटन दबाने, दरवाज़ा खोलने, बन्द करने के अलावा जैसे कोई काम ही न हो... लड़के-लड़कियों के मैसेज पास करते हुए भी वही चाबी के खिलौने की-सी मुद्रा।

Hindi Premi

44.

दूबे ने 'तोता मैना' खेला था।

टेपरिकॉर्डर पहले दिन फेल हो गया।

(गायक-वादक मिले नहीं—मैना एक दिन पहले भाग गई जिससे एक ऐल्डरली लेडी ने सब्सीच्यूट किया।)

डॉ. लाल के कमेंट्स—दूबे को तो एंट्रीज़-एग्ज़िट्स तक का कोई ज्ञान नहीं। दूबे-''मुझे क्या है? 'आई विल जस्ट डू अडैप्टेशंस। आई कैन आलवेज़ डू दैट।''

49.

अवस्थी—हर एक का चमचा—हर एक दृष्टि से अपना लाभ ढूँढ़ता हुआ—हर जगह एक नकली चेहरा लिए—हर जगह लगभग सफल—उसका कैरियर—

सेटबैक (फॉल्स डिग्री के कारण)—नई नौकरी—हिन्दुस्तान टाइम्स में—फ़िल्मी काम—

चिपकू—हाँ लेंगे, हाँ चलेंगे, हाँ रहेंगे।

50.

मनोहर श्याम जोशी—

हर एक से हर एक के बारे में कहकर, फिर उसके पास जाकर :

''मैंने उससे तुम्हारे बारे में यह कहा, तो वह बोला कि...।''

फिर पहले आदमी के पास जाकर :

''मैंने उसे जाकर बोल दिया कि तुम यह कहते हो, तो वह बोला कि...''

रोटी की तरह गोल चेहरा—छोटी-छोटी आँखें—बात करने का अन्दाज़ अपने में रस लेते हुए—मगर आँखें खोजती हुई कि उस पर बात का क्या असर होता है—और कि क्या एडवांटेज उस आदमी से मिल सकता है।

व्हिस्की मजलिस हो तो अनइन्वाइटेड भी शामिल हो जाए और सोचता कि मेरे आ जाने से साले कुढ़ रहे हैं और मैं कैसे इन्हें चूतिया बना रहा हूँ।

52.

मैरीन ड्राइव की शाम...

बैंचों पर बैठे पारसी—इस तरह उदास उजड़ी हुई आँखों से देखते हुए जैसे उनकी दुनिया उनके देखते-देखते दूसरों ने उनसे छीन ली हो...। कई परिवार घर से फ़ोल्डिंग कुर्सियाँ, स्टूल और मेज़ लेकर आए हुए।

मुँडेर पर के लोग जिन्हें उम्मीद है कि इस शहर के कल के वारिस वही हैं...

Hindi Premi

और बीच में चलते हुए लोग...
इस शहर के आज के मालिक...

53.
गणेश सिंह...ऑन द बिगनिंग ऑफ़ नारीमान पाइंट रोड
नीचे मिल्क बार...
पीछे कॉयर बोर्ड का स्टॉल...
नारियल बेचनेवाले...
मूँगफली बेचनेवाले...
गँडेरी बेचनेवाले...
पानी बेचनेवाले...
और
बातें बेचनेवाले...!

57.
सी.सी.आई. का पुराना पार्कर...(पी.एन.बी. के बाहर)

''साहब आपको उधर देखा है...।''

''हाँ, वैद साहब के साथ। वैद साहब बहुत अच्छा आदमी है।''

''हम बीमार पड़ा था साहब! दो महीना का रज़ा पर गया। साहब लोग बोला कि इधर पार्कर है, वह काम करेगा। हम इधर भूखा मरता है साहब।''

''कुछ खाने को नहीं है। भूखा मरता है। उधर आएँगा तो आपका ख़िदमत करेगा साहब!''

58.
रोचक पंडित!

पी. एन. बी. के बाहर वह अचानक सामने आ खड़ा हुआ। बढ़े हुए सफ़ेद बाल...बढ़ी हुई सफ़ेद दाढ़ी...(लगा) कि कोई फुटपाथ का ज्योतिषी है जो अभी कोई भविष्यवाणी करने जा रहा है।

उसने परिचय दिया—बताया—पृथ्वीनाथ पुष्प का 'अनुज' है।

ब्रिस्टल में चाय पीने चले गए।

वह नर्वस जल्दबाज़ी में अपने बारे में बात करता रहा।

'26 दिसम्बर सन् उनचास से यहाँ हूँ...'

'10 जून सन् 56 को उन्हें कहानी भेजी थी...।'

'27 अगस्त सन् 59 को उनका पत्र आया...।'

Hindi Premi

'10 मई सन् 63 से 12 जून सन् 63 तक अपने कमरे में बन्द रहा। वह जगह आप देखेंगे? बिलकुल वैसी ही है जैसी जगह बैठकर दोस्तोवस्की ने अपने 'नोट्स फ्रॉम द अंडरग्राउंड' लिखे होंगे...।

ओंप्रकाश (राजकमल) और एस. चाँद को उपन्यासों की पांडुलिपियों के विषय में लिखा था। ...ओंप्रकाश ने उत्तर नहीं दिया। बाद में लिखा कि 'बहुत पांडुलिपियाँ जमा हैं।' एस. चाँद ने कहा, 'भेज दो।' तीन महीने कुछ भी नहीं लिखा। 13 नवम्बर, 63 की रात को मैंने उठकर एक लाइन लिखी—'प्लीज़ रिटर्न माई मैन्यूस्क्रिप्ट', पर सोचा कि 'उनका क्या जाएगा? मैं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी क्यों मारूँ?' पर अगले ही दिन उनका रजिस्टर्ड पार्सल आ गया। मुझे लगा जैसे मेरा खोया हुआ बच्चा मुझे वापस मिल गया हो! मुझे बहुत-बहुत खुशी हुई।

'भैरव ने कहानी लौटा दी।' उनसे मेरी बहुत पहले ही लड़ाई हो गई थी। कमलेश्वर ने दो कहानियाँ लौटा दीं। पर और माँगीं। फिर तीन भेजीं (कहानियों के नाम बताता रहा जैसे वह उसकी आइडेंटिटी हो)। वे भी लौट आईं। फिर नहीं भेजीं। वापस मिलीं तो बहुत-बहुत खुशी हुई कि आख़िर अपने घर में तो लौट आई हैं, दूसरे के यहाँ तो नहीं पड़ी रहीं।

'सुरुचि एडवरटाइज़िंग' खोला था। अपना सरमाया पाँच हज़ार उसमें खो दिया। मैं वास्तव में सुरुचि चाहता था। वही मेरा लक्ष्य है। पर जीवन में सुरुचि है कहाँ?

(क्या सुरुचि से ही वह रोचक पंडित हुआ? असली नाम है बाँके बिहारी शर्मा।)

फिर भारती जी ने एक चीज़ छापी। पचास रुपया भेजा। तब से चीज़ें छप रही हैं। मैंने भारतीजी को लिखा—'महीने में एक चीज़ छाप दिया करें, तो बहुत है। मैं गुज़ारा कर सकता हूँ।'

रतनलाल जोशी से लड़ाई हुई। पहले मुझे कहा, तुम कश्मीर सेक्शन के इंचार्ज हो। मैंने कई चीज़ें मँगवाईं और उनका अनुवाद किया। पर ली एक भी चीज़ नहीं। मैंने ख़ूब खरी-खरी सुनाई।

'चन्द्रगुप्त ने मेरी 12-13 कहानियाँ लौटा दी हैं—अब मैं उन्हें भी नहीं भेजता।'

'आपको मिलना चाहता था, पत्र भी लिखा, पर बाद में पता चला आप छोड़ गए हैं।'

'पहले फ़िल्म डिवीज़न में था—कश्मीरी में लिखता था। कश्मीरी में...बन्द होने पर उर्दू में लिखता रहा। फिर वह भी छोड़ दिया। मैंने सोचा कमर्शियल काम नहीं करूँगा, समझौता नहीं करूँगा।'

'जब बन्द रहा तो रियलाइज़ हुआ कि मैं तो लिखने के लिए ही पैदा हुआ हूँ। चाहे भूखा मरूँ, पर सिवाय लिखने के कुछ भी नहीं करूँगा। मेरा आइडियल वान गॉग है। उसकी बायोग्राफ़ी मेरे जीवन की गीता है।'

Hindi Premi

'कभी मेरी झोंपड़ी में आइए—देखिएगा बिलकुल झोंपड़ी ही है वह!'

'मेरी उम्र अभी 36 की भी नहीं है। पूरी जवानी मैंने इस शहर में गँवा दी है। (हेअर 90 प्रतिशत ग्रे, बियर्ड 70 प्रतिशत) अब तक बम्बई ने मुझे चूसा है। अब मैं बम्बई को चूसना चाहता हूँ।'

'काँपता हुआ दरिया' बहुत इंट्रेस्ट से पढ़ रहा हूँ।

18-7-64

92.

The daughter-in-law of a rich Marwari family who decided to give a tough fight to the family when jilted and opened a pan shop opposite that house.

Shri K.K. Kapoor—
Film Distributor—
Contact through Shakhal
that failed......
Later through younger brother Jagdish Raj was contacted.
The meeting at Indus Court.
The meeting at Worli Sea Face later in their house—
The courteous leading questions.
The TAPE RECORDER
His insistence of putting us at particular seats. The storm in the other room.

19-7-64

114.

पुष्पा भारती के यहाँ—

कहा पुष्पा से, "आज भारती को बाहर ले जा रहे हैं। सब महिलाओं से कहा है कि वे घर पर रहकर सत्यकथाएँ लिखें।"

वह हँसी, पर कुछ फीकी पड़ गई। चलने लगे, तो भारती से बोली, "कब तक आएँगे? इसलिए पूछ रहे हैं कि हम खाना बनाएँ या नहीं?"

"आ जाएँगे बारह बजे तक...तुम खाना बनाना, पर हमारे आने तक खा लेना..." भारती दिखावटी मज़ाक करने लगा, "अच्छा ग्यारह तक आ जाएँगे, पर तुम तब तक खा लेना।"

"नहीं बताकर जाओ," वह बोली, "तुम घर पर नहीं खाओगे, तो हम खाना नहीं बनाएँगे।"

Hindi Premi

"नहीं, तुम बना लेना...और खा भी लेना... ।"

"नहीं, तब हम भी आज छुट्टी करेंगे। आज नहीं बनाएँगे।"

दो-चार बार यह बात दोहराई जा चुकी तो मैंने भारती से कहा, "उनका बनाने को मन नहीं है, तो क्यों मजबूर करते हो? तुम सचमुच हमारे साथ बाहर ही खा लेना।"

इस पर एकदम चमककर वह बोली, "वाह भाई साहब! तो हम भूखे रहेंगे क्या!"

और एक ठहाका लगा और पुष्पा को आश्वासन देकर वहाँ से चले कि भारती को जल्दी ही खाने के वक़्त से पहले—घर भेज देंगे।

20-7-64

130.

पवनकुमार जैन...

उम्दा फ़्लैट...के यहाँ से टेलीफ़ोन...उसकी पत्नी द्वारा बंग्ला कहानियों का अनुवाद...लोक भारती प्रकाशन...से दोस्ती। "कृशनजी, अब आपकी सब चिन्ताएँ दूर हो जाएँगी..." (प्रकाशन खोलने पर)

...कुछ ऐसे ही थी मेहरा (नीहारिका)—कमलेश्वर से कही गई बात, "राकेशजी का और आपका महीने का जितना भी ख़र्च है मुझसे लीजिए... ।"

134.

गिरधारी की ख़ास बातचीत—

(कल उसने कहा था, ख़ास बात करनी है—रुपए-पैसे का मामला है।)

"कि वह प्रेस है न...सोचता हूँ कि कुछ पब्लिकेशन का सिलसिला शुरू किया जाए। मॉडरेट स्केल पर...प्रोफेशनल नहीं...पत्रिका नहीं...पुस्तकें नहीं...और कोई क्वार्टरली या हाफ ईयरली—साल में 10-15 हज़ार का घाटा भी हो, तो ऐसे लोग हैं जो पूरा कर सकते हैं...भारती इज़ वैरी मच इंट्रेस्टिंग...मेरी दोनों तरफ़ बात हुई है...जो पैसा लगाएँगे उनसे भी और लिट्रेरी साइड पर इनसे भी...सोचता हूँ कि इस तरह एक न्यूक्लस बन जाए, तो हो सकता है उससे थोड़ा बहुत प्रकाशन भी शुरू किया जा सके...यूँ एक कल्चरल न्यूक्लस।"

135.

बासु का लोन फ़िल्म फ़ायनेंस कॉरपोरेशन से—

बासु और गिरधारी—

बासु का ग्राउज़...

Hindi Premi

गिरधारी की फ़िलासफ़ी

"मैं तो टैक्सी में छोड़कर गाड़ी में चढ़कर हज़ार मील चला जाऊँ अगर तीन-चार लाख रुपया 9 प्रतिशत पर मिलता हो...।

21-7-64

137.

मारवाड़ी सेठ की शिकायत : प्राइस लेवल के बारे में :

"क्या करें? इधर बाई लोग का प्राइस इतनी बढ़ गई है कि जो बाई पहले हज़ार बारह सौ रुपए महीने में मिल जाती थी, अब वह पाँच हज़ार से कम में बात ही नहीं करती।"

(वन्दना को एक पंजाबी ने एंगेज किया है—पाँच हज़ार रुपए महीने और फ़्लैट के किराए पर। डेढ़-दो लाख रुपया उसने पहले दिया है।)

सेठों के पास ऑफ़र आते हैं—

फ़लाँ बाई ख़ाली है—जनवरी से वह...रुपए महीने में मिल सकती है।

गिरधारी ने सेठ को सुमित्रा का ऑफ़र दिया था इसी तरह का। (बहुत ब्यूटीफुल लड़की थी वह—कपूर। अब उसने कानपुर के किसी अमीर आदमी से शादी कर ली है।)

गिरधारी सेठ और एक्ट्रेस...।

जब वह एक्ट्रेस नहीं थी, सेठ उसके चाल में जाया करता था।

कृष्णा एक लड़की एंगेज करने के बारे में—"मैंने उससे पूछा, 'ख़ाली है?' तो उसने कहा, 'नहीं।' फिर छह महीने बाद उसने कहा, 'मैं अब ख़ाली हूँ।' तो मुझे इनकार करना पड़ा। मैं तब तक दूसरा इन्तज़ाम कर चुका था।"

139.

झुनझुनवाला (इन्कम टैक्स ऑफीसर)

उसका दोस्त—और दोनों की बीवियाँ।

रिट्ज़ में काफ़ी-शेरो-शायरी—

गाना-मुज़रा—नाटक-थियेटर—

भारती और झुनझुनवाला।

नाइट ड्राइव—बरसात की रात जब गाड़ी ख़राब हुई—पेट्रोल पम्प पर प्रतीक्षा—

मज़ाक—औरतों और मोटरों के बारे में—

पहले भारतीय विद्या भवन में जाना—फिर शायद कालबा देवी में मिलेंगे।

हमारे फ़्लैट पर भारी पार्टी क्रिसमस की रात को।

रिमार्क्स अबाउट द लैंडलेडी—कॉन्सीक्वेंसी।

Hindi Premi

145.

The room at Sheikh Memon Street. Mrs. Bhatia and the rest (Tuteja, Sham, Gopu Mal and Munshi)

The day we had a sumptuous lunch after 72 hours fast.

146.

That boy S.P. who later joined a commercial shipping concern.
The day we didn't have an anna for the train.
The food cooked at Sheikh Memon street. Bhatia's grandfather who ate with us.
That man (Maruti?) who lived in a guest house near Taj—
He was a journalist—
The life of that intellectual.

153.

The psychology of a protege
Hari Krishan for example
The psychology of the one
Who has a protege
Sanghvi for example...

Between Mahim and
Bandra Slum areas
extend right up to
the boundary of Bandra station

154.

Shashi Bhushan then and now...
His story and story...
His brother Kulbhushan and he---!

Both having respective grouses against me while dismissing each other as writers.

156.

The night on the footpath in Bombay...! The morning...
The bottom of people's feet.

160.

The day Gandhiji died
The play Kalinga Vijay...
The journey on foot to
Walkeshwar Road

Hindi Premi

The cousin of B. G. Arora
The brother and sisters.

167.

Last Station on W.R.
Church Gate
Marine Lines
Charni Road
Grant Road
Bombay Central
Maha Laxmi
Lower Parel
Elphinstone Road
Dadar
Matunga Road
Mahim
Bandra

Khar Road
Santa Cruz
Vile Parle
Andheri

Slums are to the East of Rly. Line

Vareen—On the boredom of married life this boys disinter ested attitude on life : it is alright as it is!!

171.

An allegedly haunted house in the vicinity of Mount Mary's Church–almost next to Shri Bimal Roy's house. Another house said to be haunted – overlooking the beach–

— The Irani Restaurant — The basement. Sea view from the basement — The horrible wall decoration.

203.

Powai lake...

The boats in the lake. Colourful panorama. The bund-water trickling down to the other side... . The crowd on the narrow bund ....Mr. & Mrs. Majrooh Sultanpuri with fishing rods... . The creeper hanging on a swing—as thick as a tree... . Children trying to swing on it. The buses and cars going on the side of the lake — the boat club.

Hindi Premi

22-7-64

179.

Basu told Raj that a friend of his named Mohan Rakesh does not like his acting—and was apprehensive that he may not do justice to the role of Hiraman

"I said it, of course, while paying compliments to him, for the work he is doing is fantastic."

Raj asked him, "which of my films has this man seen? Has he seen 'Jagte Raho?'

"I don't know that, I said," Said Basu.

180.

The two girls. Swetlana and her friend who had come from U.S.S.R. for research in Hindi and Urdu respectively.

Dr. Nagendra told them : "You may see other people on your list but not Mohan Rakesh—He is not a good man."

185.

This man Ravi Shanker short statured good natured child like...Complexion, wheatish. Head growing baldish in Kurta and Dhoti Kurta Greenish, Stays at Malabar hill.

23-7-64

189.

The official parties of Shri S.P. Jain,
at Taj Mahal Hotel
(Huge gathering)
another at Volga.

28-7-64

208.

Evening walk and corruption

Bedi's solution—shouting at the top of his voice...

Prem contradicting him.

Prem talks about the conduct rules of government servants. They have to declare their assets before joining and give a statement every year. But who gives? and who can check?...

Corruption at ministerial level—accepting and expecting gifts, entertainment, free guest house stay-helplessness—

One firm man at the top can remove corruption in no time.

Hindi Premi

The major malady is the mixed bastard economy. We are all party to it by accepting the company of friends who are corrupt...

2-8-64

243.

The sun bathers at Juhu house...the glorious evening with the silver living of sunshine on the fringes of dark waters.

The rough waves overlapping each other...the water in true colours...khaki and dark...the palm trees in the wind...this dream like...sequence of clouds. Rain far away at Versova beach...

5-8-64

252.

The walk onto the Nariman Point at late dusk. The solitary lamp post and the narrow road leading to eternity...The shimmering waves and the distant storm signal...The hazy outline of the houses on Cuffe Parade...The hazy humdrum figures walking towards you..becoming more and more solid. The voices of men and women muffed by the noise of the waves...The feel of the concrete slabs below...The moment you belong to eternity and eternity belongs to you. W hen the touch of wind is the touch of time and space. The drizzle from the clouds your communion.

Hindi Premi

Hindi Premi

ध्वन्यालोक

(साउंड एंड लाइट)

Hindi Premi

Hindi Premi

विजन्स : 1919

(जलियाँवाला बाग़)

अंश-1

(समय : 1 मिनट)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
मैं तवारीख़ हाँ हिन्द दी	अँधेरा	आरंभिक संगीत	after
मेरी लऊ विच भिज्जी बात।		कंठ : स्त्री-ए	House
मेरे सिर तो पई सी			off...
इस सौ सालाँ दी रात।			'B'

अंश-2

(समय : 2 मिनट 30 सैकेंड)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
मैं तवारीख़ हाँ हिन्द दी	क्षेत्र बी की	वही धुन	
मेरे वरके लहूलुहान।	दीवार	वही कंठ	
दिल दे सारे जख़्म हन			
एह शहीदाँ दे अस्थान।			
एह यादगार मेरे लहू दी	फ़ेड आउट	वही	
एह जलियाँवाला बाग़।	दीवार। फ़ेड इन		
एह कंदाँ ते एह गोलियाँ	स्मारक का		
मेरी हड्ड बीती दे दाग।	ऊपरी भाग।		
बातशाह मैं दिला दे	कुछ बाद : समाधि	वही	
दित्ते इस तो घोल।	का कुछ हिस्सा भी।		

Hindi Premi

अज्ज दे दिन नूँ वणजिया			
मैं लहू दी तकड़ी तोल।			
पीराँ जागण चोतियाँ	वही	वही	
नैण वैण मेरे रो।			
इस परताँ वरका पिछानूँ			
जे कोई सुणदा हो।			

अंश-3

(समय : 3 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
धरणी अंगण मोकला	एरिया डीप सी	पुरुष कंठ	D.C.
लोक वड्डा परिवार।	के झाड़-झंखाड़।	ए तथा स्त्री	Volume
भारत पीराँ राँगला	कुछ बाद उड़ते	कंठ बी।	
अंगण दे विचकार।	रंगीन दोपट्टे।		
अंगण दे विचकार।		अलगोज़ा।	
(Pause)			
धरती देस पंजाब दी			
हूराँ विचों हूर।			
वाहवाँ झोलण पक्खियाँ			
मत्था चुम्में नूर।			
		अलगोज़ा	
अंबर लहँगा भेजिया			
धरत लुआई तौण।			
पैरीं तारे बन्ह को			
राँता झुम्मर पौण।		अलगोज़ा	
धरती काज रचाउँदी		कुछेक चुनिंदा	to c
चेतर आवे मेल।		पेड़ों पर रोशनी	with
गिद्धा माहिया भंगड़ा			music
बूहे चोंदा तेल।		अलगोज़ा	

Hindi Premi

अंश-4
(समय : 4 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
निक्का मोटा बाजरा माही वे मेरा कौण चुगेसी ढोला, निक्का मोटा बाजरा सइयों नी मेरा ढोला परदेसी, ढोला।			Pause 1 'e'
सूआ मेरा चरखा माही वे रंग लाया मुन्निआ ढोला। ढोल परदेसी सइयों नी की बणदा ए रूनिआ, ढोला।	एरिया सी। नाचती लड़कियाँ	पिछले स्वर को फ़ेड आउट करते हुए सुपर इंपोज़ कीजिए।	
वगदा ए पानी, माही वे विच खंड पई घुलदी ढोला। इंज ना रोली माही वे जिन्द महँगी मुल्ल दी, ढोला।			
वगदा पाणी माही वे विच बूटा कपाई दा ढोला। कोई ना जाणे माही वे साडा हाल जुदाई दा, ढोला।			last time in dark- ness

अंश-5
(समय : 30 सैकेंड)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
		फ़ेड आउट	केवल साज़

Hindi Premi

अंश-6
(समय : 1 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
बल्ले बल्ले बई सावा पट्ट किन्ने रंगिया मेरे खेत निरी फूलकारी। बल्ले बल्ले नी मोतियाँ दा हार गुन्द लै मेरे सिट्टयाँ नूँ पे गए दाणे। बल्ले बल्ले बई होले-होले पव धरदी मेरी कणक झाझराँ पाईयाँ।	फ़ेड इन। नाचते स्त्रियाँ-पुरुष।	बोलियाँ	'C'

अंश-7
(समय : 2 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
	छठे अंश का दृश्य धीरे-धीरे फ़ेड आउट हो चुकने के बाद धीरे-धीरे फ़ेड इन एरिया बी की दीवार।		B
सुग्गड गइयाँ बरकताँ छन्ना गइयाँ फैल। रोइयाँ अज्ज अटारियाँ मेरे जूठे हो गए मैल।		स्त्री कंठ ए एरिया बी दरवाज़े पर दी जा रही दस्तक की आवाज़	E
		पहले एरिया	D
		डीप सी फिर	D.C.
		एरिया सी फिर	C
		एरिया बी	

Hindi Premi

सुनवे जीया मेरिया मैनूँ वाजाँ मारे पौण। मेरे अन्दर उट्ठण कल्लयाँ मेरा दर खड़कावे कौण?			'B' change to 'C'

अंश-8

(समय : 3 मिनट)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
मनदा पंछी बेहवल होया अग्ग दी चोग चुगे। एह तन अपणा एह मन अपणा अपणा नाहिं लगे।	फ़ेड आउट दीवार फ़ेड इन एरिया सी से डीप सी की ओर जाती स्याह सी बूढ़ी आकृतियाँ। फ़ेड आउट बूढ़ी आकृतियाँ। फ़ेड इन डीप सी से सी की ओर आती लाल चेहरोंवाली चार-पाँच युवा आकृतियाँ	 पुरुष कंठ ए धुन दार्शनिक एरिया सी।	 'C'
सोचाँ दा हर फुल कुम्हलावे एह केहि पौण वगे। अपणी धरती हक्क न अपणे दीवा किंज जगे।		कंठ वही धुन वही मगर उत्साह का स्पर्श लिए।	
मन दा पंछी बेहवल होइया अग्ग दी चोग चुगे एह तन उसदा एह मन उसदा			

Hindi Premi

जो मेरा वतन लगे।
बंदी घराँ दा घुप्प अँनेरा
दीवे रत्त जगे।

अंश-9

(समय : 2 मिनट)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
	फ़ेड आउट युवा आकृतियाँ। फ़ेड इन एरिया बी का पेड़		
किक्करा वे कंडियालिया अज कौण पछाणें हक्क। रोई गुलामी देस दी रौ पये चारे चक्क।		स्त्री कंठ ए। धुन अन्दर का दर्द व्यक्त करते हुए भी दिलों को उकसाती हुई।	
किक्करा वे कंडियालिया उत्तों चड़िया चेत। जग पइयाँ अज पैलिया जाग पये अज खेत।		एरिया बी। स्वर उत्साह पकड़ता।	Fast change to E
लक्ख आवाजाँ बोलिया होके इक्क आवाज। दे के सोहण सिराँ नू लइये देस विहाज।		स्वर में और उत्साह। एरिया डीप सी से आहिस्ता आहिस्ता फ़ेड इन इन्कलाब ज़िन्दाबाद	

अंश-10

(समय : 30 सैकेंड)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
इन्कलाब! ज़िन्दाबाद!	फ़ेड आउट पेड़ अँधेरा	डीप सी से भीड़ के स्वर	Deep 'C'

Hindi Premi

अंश-11

(समय : 3 मिनट)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
टुट्टी इक्क पत्ती	फ़ेड इन पेड़	पुरुष कंठ बी	'C'
किसे टाहण नालों,	एरिया ई	धुन हीर	
वणां वणां चों रोणियाँ		एरिया ई	
बोल पइयाँ।			
		दो एक बम	D
रोईयाँ चूड़ियाँ ते	फ़ेड इन एरिया	फटने की आवाज़	
छन्ने विलक उट्ठै,	सी। खुले बालों	एरिया डी।	D.C.
बेले बेले चों दमड़ियाँ बोल	वाली तीन-चार		
पइयाँ	लड़कियाँ।		
जलाँ थलाँ तो इक्क आवाज़			
होके कइ सस्सियाँ सोहणियाँ			
बोल पइयाँ।			
इन्कलाब! ज़िन्दाबाद!	फ़ेड आउट	स्त्री कंठों से।	
इन्कलाब! ज़िन्दाबाद!	एरिया सी।	एरिया डीप	
	फ़ेड इन	सी।	
	एरिया डीप सी।	पुरुष कंठ बी।	
	एक के बाद	एरिया सी।	
	एक झंडा।		
इक्कौ वाज मेरी नइयों			
वाज इक्को		अंश 12 के स्वर	D.C.
वाज वाज चों होणियाँ		फ़ेड इन करना	
बोल पइयाँ।		शुरू कर दीजिए।	C

Hindi Premi

अंश-12
(समय : 3 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
पगड़ी सँभाल जट्टा	फलोस्पॉट	झुंड का समूह गान।	D.C.
पगड़ी सँभाल ओये।	डीप सी से	स्वर पुरुष	
पगड़ी सँभाल जट्टा	बी की तरफ़	कंठों के।	
पगड़ी सँभाल ओये।		धुन उस ज़माने की	
		एरिया डीप सी।	
लुट्ट लिया माल तेरा			
कीता बेहाल ओये।			
इन्कलाब!		बीच में स्वर रोक	
ज़िन्दाबाद!		कर नारे-पुरुष कंठ।	
इन्कलाब!			
ज़िन्दाबाद!			
महात्मा गांधी की जय!			
टोडी बच्चा, हाय हाय!			
राज फिरंगी,			
हाय हाय!		फिर समूह-गीत	
नई-रहणीं सरकार ए ज़ालिम			
नईं रहणीं।			
हिन्द दे मालिक हिन्दुस्तानी			
तुसी आये सी खाण मेहमानी।			
हुण बैठा लत्तां पसार, ज़ालिम			
नईं रहणी।			3 Sc.
सरकार ए ज़ालिम			Pause
नईं रहणी।			

Hindi Premi

अंश-13
(समय : 1 मिनट 30 सैकेंड)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
	एरिया ई समाधि की पृष्ठभूमि में हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पहने छः-सात लोग किसी तरह चलते और अपने आपको छुड़ाने का संघर्ष करते हुए।	स्त्री कंठ सी। एरिया ई। कविता पढ़ने का स्वर।	
इक्क बेड़ियाँ दा गीत सी हथकड़ियाँ दा गीत सी। ते ओह वी वक़्त सी आवाज़ नज़रबन्द सी। ए हुक्माँ दे हुकम मोड़दा पैराँ दा लोहा तोड़दा ते गौण सुणन वालेयाँ दे			E
मुँह ते लाली तोड़दा सारे देश विच विचरदा रिहा गलियाँ दे विच फिरदा रिहा। ते गरम सुच्चा लहू बणके रगाँ विचे तुरदा रिहा।	आकृतियों के चेहरों पर लाल रोशनी।		

Hindi Premi

अंश-14
(समय : 3 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
	फ़ेड इन कनस्तर बजाकर मुनादी करता आदमी। एरिया सी।	टीन का कनस्तर बजाने की आवाज़ एरिया सी।	ऐलान
सुनो भाइयो! सुनो! आप सब इससे वाकिफ़ हैं कि हमारे प्यारे नेता डॉ. सत्यपाल और डॉ. किचलू इस वक़्त अंग्रेज़ सरकार की क़ैद में हैं। अमृतसर और पंजाब की ही नहीं, सारे हिन्दुस्तान की जनता अंग्रेज़ सरकार के काले कारनामों की वजह से सख़्त बेक़रारी महसूस कर रही है। इस बेक़रारी का इज़हार करने के लिए और रोलेट बिल के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद करते हुए अपने नेताओं की रिहाई की माँग करने के लिए आज बैसाखी के रोज़ शाम के चार बजे जलियाँवाला बाग़ में एक अज़ीमुश्शान पब्लिक जलसा होगा। इस जलसे में अमृतसर के बहुत से मुअज़्ज़िज़ नेता और दूसरे शहरीन तकरीर फ़रमाएँगे और कई एक शायर अपनी नज़्में			

Hindi Premi

पेश करेंगे। आप सबसे प्रार्थना है कि ज़्यादा से ज़्यादा तादाद में जलसे में शरीक होकर जलसे की रौनक बढ़ाएँ और अंग्रेज़ सरकार के ख़िलाफ़ उठनेवाली आवाज़ों, में अपनी आवाज़ शामिल करें।

सुनिए हज़रात। बाहुक्म जनाब डिप्टी कमिश्नर साहब बहादुर, अमृतसर, आप सबको इतला की जाती है कि आज 13 अप्रैल बैसाखी के रोज़ अमृतसर शहर के सब इलाकों में दफ़ा एक सौ चवालीस नाफ़िज़ रहेगी। इसके अलावा शाम के आठ बजे से सुबह के छह बजे तक कर्फ़्यू ऑर्डर भी जारी रहेगा! आप से उम्मीद की जाती है कि आप अपनी हिफ़ाज़त की ख़ातिर कहीं भी चार से ज़्यादा आदमियों के बीच जमा नहीं होंगे। और शाम के आठ बजे के बाद घरों के बाहर नहीं निकलेंगे।	नगाड़े पर मुनादी करता आदमी। एरिया ई।	टीन के कनस्तर की आवाज़ पर नगाड़े की मुनादी की आवाज़ सुपर इंपोज़ कीजिए। एरिया ई।	C/C B/B DC DC
—आज बैसाखी के रोज़ शाम के चार बजे जलियाँवाले बाग़ में एक अज़ीमुश्शान पब्लिक जलसा होगा...	अब कनस्तरवाला और नगाड़ेवाला आदमी दोनों नज़र आते हैं।	एक के बाद एक एरिया से कभी कनस्तर और कभी नगाड़े की आवाज़ के साथ कभी इस मुनादी और कभी उस मुनादी	'D'

Hindi Premi

—शाम के आठ बजे से सुबह के छः बजे तक कर्फ़्यू आर्डर भी जारी रहेगा...		के शब्द। अंतिम बार कनस्तर की मुनादी के शब्द एरिया ए से। उसके बाद ही बाग़ के अन्दर आती भीड़ के स्वर।	
—आप सबसे प्रार्थना है कि ज़्यादा से ज़्यादा तादाद में जलसे में शरीक होकर जलसे की रौनक बढ़ाएँ...			
—आपसे उम्मीद की जाती है कि अपनी हिफ़ाज़त की ख़ातिर कहीं भी चार से ज़्यादा आदमियों के बीच जमा नहीं होंगे...			
	फ़ेड आउट दोनों मुनादीवाले।		

अंश-15
(समय : 3 मिनट)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
		भीड़ की आवाज़ें सभी एरियाज़ से आने लगती है।	'C'
	एरिया सी में झंडा लहराता नज़र आता है।	एरिया सी जलसे की कार्यवाही के स्वर। पहले एक वक्ता।	
जनाबे सद्र और हाज़रीन। आप सब इस बात से आगाह हैं कि हम सब आज यहाँ किसलिए जमा हुए हैं। आज			

Hindi Premi

बैसाखी का दिन है—हमारे बहुत बड़े त्योहार का दिन। हम लोग हर साल नाच-गाने और खुशियों के साथ ये त्योहार मनाते हैं। मगर आज साम्राज्यवादी सरकार ने हमारी खुशियाँ हमसे छीन ली हैं। हमारे नाच-गानों पर पहरे लगा दिए हैं—हमारे नेताओं के साथ जैसे हमारे त्याहारों को भी अपने कैदख़ाने में बन्द कर लिया है। रोलेट बिल के ज़रिए हम पर नए जुल्म ढाने के इस सरकार के इरादे लाठियों और संगीनों के साथ हमें घेरे हुए हैं। हम इस नापाक घेरे को तोड़ने के लिए कमरबस्ता है, ये पिछले कुछ दिनों में इस शहर में हुए वाक़यात से ज़ाहिर है। आज दफ़ा एक सौ चवालीस है। इसके बावजूद आप सबका यहाँ जमा होना भी इस बात का सबूत है। हम अमन-पसंद इंसान हैं। मगर सम्राज्यवादी सरकार को यह नहीं भुलना चाहिए कि अपनी इंसानियत को कायम रखकर ही हम अमन-पसंद रह सकते हैं। इसीलिए हमारे इन्सानी हुक़ूक़ को कुचलने की उनकी कोशिश हरगिज़ हरगिज़ कामयाब नहीं होगी। इससे

Hindi Premi

पहले कि और हज़रात इस बारे में अपनी तक़रीर फ़रमाएँ, मैं पंडित बृज गोपीनाथ बेकल साहब से दरख़्वास्त करूँगा कि वोह आपके सामने अपनी एक नज़्म पेश करें! बेकल साहब— —हाज़रीन! नज़्म अर्ज़ है—ए अंदलीब साथ दे, तू ही मेरी फरियाद का हम तमाशा देख लें घर फूँककर सैयाद का। या सिरोही दस्ते क़ातिल में नहीं या हम नहीं या...		बेकल के कड़कदार स्वर	

अंश-16
(समय : 16 मिनट)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
		नज़्म की दूसरी पंक्ति से ही एरिया ए में फ़ौजी जूतों के स्वर 'हम नहीं या' पर उधर से आवाज़।	
-हाल्ट। (भीड़ की फुसफुसाहटों में) **-फ़ौज आ गई। आ गई फ़ौज**		ऐरिया सी में भीड़ की हलचल के शब्द।	
-हाज़रीन डरने और भागने की ज़रूरत नहीं।		उसी एरिया में एक आदमी की आवाज़।	
ये सिर्फ़ ख़ाली बंदूकें हैं। इनमें गोलियाँ नहीं हैं!		एरिया ए। कमांड की आवाज़। गोलियाँ चलने का	

Hindi Premi

शब्द। भीड़ की ज़्यादा
हलचल। एरिया सी में
फिर वही आवाज़।

—फ़ायर! फ़ायर! फ़ायर!

एरिया ए से कमांड
की आवाज़ : दो-एक
क्षणों का सक्ता। फिर
एरिया ए से लगातार
गोलियाँ चलने की
आवाज़। दो-एक
क्षणों का सक्ता।
फिर एरिया सी में
लोगों के गोलियाँ
खाकर चीख़ने का
शब्द। फिर एरिया
ए से गोलियाँ। एरिया
डी से चीख़-पुकार।
एरिया ए से गोलियाँ।
एरिया ई में चीख़-पुकार।
एरिया ए से गोलियाँ।
उसके साथ ही सभी
एरियाज़ से चीख़-पुकार।
भाग-दौड़ के शब्द।
हो-हल्ला और
कोहराम। कोहराम।
के बीच आवाज़ें :

—भई आगे कुआँ है, देखकर
कुएँ से बचकर। कुएँ से बचकर।

एक के बाद एक कई लोगों
के कुएँ में गिरने का शब्द।
गिरते लोगों की आह!
ओह!
सब आवाज़ें फ़ेड आउट
करके सिर्फ़ गोलियों
की आवाज़।

Hindi Premi

—फ़ायर		सक्ता। गोलियाँ	

अंश-17
(समय : 1 मिनट)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
	फ़ेड इन कुएँ के इर्द-गिर्द जमा लाशें।		
ए बात है दुनिया दी दुनियावालो। ए लाश है फुल्लाँ दी मोड़्ढा दे दियो!	एरिया बी	बैण का सा स्वर। स्त्री कंठ बी। एरिया बी।	B.

अंश-18
(समय : 3 मिनट)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
वेखो कि जिंदा महँगियाँ वेखो कि मौताँ सस्तियाँ। छाती च ज़ख्म खुल गए। अक्खाँ च अथरू भर गए। उट्ठो वे अणखाँ वालयो। जावो लियावो मोड़ के महबूब मेरे देश दे जित्थे वी किधरे टुर गए। महबूब मेरे देश दे।	फ़ेड आउट लाशें। फ़ेड इन कुएँ की अंदर की खिड़कियाँ।	एरिया बी-वन कुएँ के अंदर से डूबते लोगों की हिचकियाँ आदि। स्त्री कंठ बी—की आवाज़ भी कुएँ के अंदर से। बी।	'B1' Male female
	फ़ेड आउट एरिया बी वन। फ़ेड इन कुएँ पर लाशें।		
वेखो कि जिदां महँगियाँ।			

Hindi Premi

वेखो कि मौताँ सस्तियाँ
छाती च ज़ख्म खुल गए।
अक्खाँ च अथरू भर गए
उट्ठो वे अणखाँवालयो
जावो लियावो मोड़ के
महबूब मेरे देश दे
जित्थे वी किधरे टुर गए
महबूब मेरे देश दे।

—बाउकिन जनाब आई.ई. डायर साहब, सी.बी. ब्रिग्रेडियर जनरल, कमांडिंग जलंधर ब्रिगेड-बाशिंदगाने अमृतसर को बज़रिए ऐलाने हज़ा के मुतनब्बा किया जाता है कि अगर वो नवाए अमृतसर में कोई माली नुकसान करेंगे या किसी और किसिम की सीनाज़ोरी का इस्तिक्वाब करेंगे तो ये समझा जावेगा कि ऐसे अफ़ाल के इस्तिक़वाब का इस्ताल शहर अमृतसर से पैदा हुआ है। और हम बाशिंदगाने अमृतसर को फ़ौजी कानून के मुताबिक सज़ा देने का तदारूख़ करेंगे। तमाम जलसों और मजमों की बज़रिए ऐलाने हज़ा के मुमानियत की जाती है। और हम जुमला ऐसे मजमों को फ़िलफ़ौर मुल्तशिर करने के वास्ते फ़ौजी कानून के मुताबिक अमल करेंगे।

फ़ेड आउट लाशें। फ़ेड इन कुएँ पर बैठे गिद्ध।

इस बार पुरुष कंठ से। स्वर बैण का नहीं। एरिया सी।

कनस्तर की मुनादी के स्वर

Hindi Premi

अंश-19
(समय : 4 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
जीवन दियाँ दुशवारियाँ	लाशों को फ़ेड	पुरुष कंठ-सी	
मजबूरियाँ लाचारियाँ।	आउट करते हुए तथा	स्त्री कंठ-सी।	
एह ज़िल्लताँ ए ख़्वारियाँ।	फ़ेड इन रेंगते हुए	एरिया सी।	
मिट्टी च रीगण हसरताँ।	लोग। सिलैहट।		
गुलामी दियाँ एह लाणता।	एरिया-सी पहले		
ग़ुलामाँ दियाँ एह किस्मताँ।	पुरुष		
		एरिया ई से फ़ौजी	
		जूतों का स्वर।	
		एरिया डी से लाठी	
		चार्ज की आवाज़।	
		एरिया सी से	
		चाबुकों का शब्द।	
इक्क कहर सी जो जर लिया			
इक्क सबर सी जो कर लिया।			
इक्क ज़हर सी जो पी लिया	फ़ेड आउट रेंगते लोग।	पुरुष-कंठ एरिया	
इक्क मौत नूँ असाँ जी लिया।	फ़ेड इन उड़ते काले	सी	
छाती च अग्ग बलदी पई।	दुपट्टे एरिया डीप		
अक्खाँ चो पाणी बह-रिया।	सी।	स्त्री कंठ।	
सुणों-सुणों-सुणों-सुणों	फ़ेंड आउट काले		
एह् वक़्त की कुज कह रिहा।	दुपट्टे। फ़ेड इन		
एह वक़्त की कुज सह रिहा।	रेंगते लोग।	पुरुष-कंठ	

Hindi Premi

अंश-20
(समय : 1 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
मैं वक़्त इक्क सवाल हाँ इन्हाँ कंदाँ ते खूहाँ चो उट्ठिया सवाल। लक्खाँ मासूम रूहाँ तों उट्ठिया सवाल। ते इन्हाँ तड़पदे मुँहाँ तों उट्ठिया सवाल।	फ़ेड आउट रेंगते लोग। फ़ेड इन मेमोरियल एरिया डी।	पुरुष कंठ बी। एरिया डी।	

अंश-21
(समय : 30 सैकेंड)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
जलियाँवाला बाग़ में जो कुछ हुआ, क्यों हुआ? मासूम निहत्थे लोगों पर गोलियाँ क्यों चलाई गईं?	प्रकाश मेमोरियल के ऊपरी भाग पर केन्द्रित होता।	समूह के शब्द। गूँजती आवाज़ में।	

अंश-22
(समय : 3 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
—जवाब दो डायर, तुमने गोली चलाने का हुक्म क्यों दिया?	अँधेरा	एक पुरुष कंठ से। अदालत में सवाल करने के लहज़े में।	
—मैं यह फैसला करके आया था कि अगर मीटिंग चलती रही, तो मैं सारे जमा लोगों को मौत के घाट	एरिया-सी में डायर की आकृति रोशनी में	डायर किरदारः	

Hindi Premi

उतार दूँगा।	आती है।
—गोली चलाने में तुम्हारा मकसद भीड़ को तितर-बितर करना था?	अँधेरे की आवाज़ :
—हाँ।	डायर।
—कोई और भी मकसद था?	अँधेरा।
नहीं। मुझे सिर्फ़ भीड़ के —तितर-बितर होने तक गोली चलाते रहना था।	डायर :
—तुम्हारे गोली चलाने पर भीड़ फ़ौरन तितर-बितर होने लगी थी?	अँधेरा :
फ़ौरन।	डायर :
—फिर भी तुम गोली चलाते रहे?	अँधेरा :
—हाँ।	डायर :
—अगर भीड़ तितर-बितर होने लगी थी, तो तुमने गोली चलाना बन्द क्यों नहीं किया?	अँधेरा :
—मेरा ख्याल था कि जब तक पूरी भीड़ तितर-बितर न हो जाए, तब तक गोली चलाते रहना मेरा फ़र्ज़ है। कम गोली चलाने से लोगों पर काफ़ी असर न होता। कम गोली चलाने पर मेरा गोली चलाना ही ग़लत साबित होता।	डायर :
—गोली कितनी देर चलती रही?	अँधेरा :

Hindi Premi

डायर :

—जितने राउंड फ़ायर किए गए, उनके हिसाब से गिना जाए, तो शायद दस मिनट...या उसके आसपास।

अँधेरा :

—तुम्हारे पास यह मानने की कोई वजह थी कि अगर तुम बिना गोली चलाए...देर तक गोली चलाए...जमा लोगों से बाग़ से चले जाने को कहते, तो वे ऐसा न करते?

डायर :

—मैं समझता हूँ, यह मुमकिन था कि मेरे गोली न चलाने पर भी लोग तितर-बितर हो जाते।

अँधेरा :

—तो तुमने फिर वैसा क्यों नहीं होने दिया?

डायर :

—मुझे उन्हें सिर्फ़ थोड़ी देर के लिए तितर-बितर नहीं करना था। उस हालत में वे सब वापस आकर मेरा मज़ाक उड़ाते। मुझे लगा कि वह रास्ता अपनाने से मैं सिर्फ़ अपने को बेवकूफ़ बनाऊँगा।

अँधेरा :

—और दूसरा रास्ता अपनाने से? दूसरा रास्ता अपनाने से क्या हुआ डायर?

अंश-23

(समय : 3 मिनट)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
लाशें ही लाशें थीं चारों तरफ़। लाशों के अंबार इस	फ़ेड आउट डायर।		

Hindi Premi

तरह लगे थे कि उनमें से रास्ता बनाना मुश्किल था।	फ़ेड इन कुरते पाजामे में एक
—कोई लोग लाशों को रौंदते हुए भाग रहे थे। कितनी लाशें थी...हज़ार... दो हज़ार...पता नहीं।	आदमी।
अचानक एक लाश पर से पाँव फिसल जाने से मैं गिर गया और लोग मुझे रौंदते हुए मेरे ऊपर से गुज़रने लगे। मेरी साँस घुटने लगी। और मुझे लगा कि मैं मर रहा हूँ...	एरिया डी।
	फ़ेड आउट वह आदमी। फ़ेड इन पतलून-कमीज़ में एक सरदार। सरदार :
—एक मरते आदमी ने मुझसे पानी माँगा। मगर पानी उस वक़्त वहाँ कहाँ मिल सकता था? अचानक मुझे ख़याल आया कि मैं हँसली से पानी ला कर उसे दे सकता हूँ...मैं चहबच्चे की तरफ़ बढ़ा। मगर चहबच्चे में झाँकने पर पाया कि वहाँ भी कितनी ही लाशें तैर रही हैं। कुछ ज़िन्दा लोग भी वहाँ छिपे हुए थे। उन्होंने डरते-डरते मुझसे पूछा कि क्या फ़ौजी चले गए हैं? मैंने उन्हें बताया कि चले गए हैं, तो वे बाहर निकलकर अपने घरों की तरफ़ भागे।...चारों	एरिया वही।

Hindi Premi

तरफ़ से रोने-कराहने और छटपटाने की आवाज़ें आ रही थीं। लग रहा था कि यह पूरा बाग़ ही एक बहुत बड़ा श्मशान है...।

फ़ेड आउट
सरदार।

फ़ेड इन धोती कुरते में एक आदमी।	धोती-कुरते वाला आदमी। सिर पर पगड़ी।

—चीलें और गिद्ध लाशों की दावत उड़ाने के लिए बहुत नीचे आकर मँडरा रहे थे। वो इस तरह झपट रहे थे कि लगता था, ज़िन्दा आदमियों का भी मांस नोचकर ले जाएँगे।

फ़ेड आउट धोती-
कुरतेवाला आदमी।
फ़ेड इन पाजाम दूसरा सरदार :
कमीज़ में एक
सरदार।

—ज़िन्दा आदमियों और लाशों में फ़र्क़ करना मुश्किल था। मुझे अपने भाई और बहनोई को ढूँढ़ना था। मैं सैकड़ों लाशों को पलट-पलटकर देखता रहा। अँधेरे में चेहरों को पहचानना मुश्किल था। यूँ भी मरने के बाद बहुतों के चेहरे एक-से लग रहे थे। मुझे बहुत बार शक होता था कि यह मेरा भाई है। यह मेरा बहनोई है। मेरी बहन और भौजाई मेरे साथ थीं। वे सोच नहीं पा रही थीं कि

Hindi Premi

वे विधवा हो गई हैं या अभी सुहागिनें हैं। पागलों की तरह वे मुझे कोंच रही थीं कि मैं अपने भाई और बहनोई के नाम ले-लेकर ज़ोर-ज़ोर से पुकारूँ। मैंने कई बार ऐसा किया भी। मगर मेरी आवाज़ से किसी लाश में हरकत नहीं हुई। किसी ने सिर उठाकर नहीं कहा कि मैं ये यहाँ हूँ। मैं बड़ी मुश्किल से अपनी बहन और भौजाई को किसी तरह समझा-बुझाकर घर वापस ले गया।

फ़ेड आउट दूसरा सरदार।
फ़ेड इन
एक अधेड़ औरत।

रोते-बिलखते

—मैं अपने घर में थी। हमारा घर जलियाँवाला बाग़ के पास है। मुझे अचानक गोली चलने की आवाज़ सुनाई दी। मैं लेटी हुई थी। उठकर बैठ गई। मेरा दिल धड़कने लगा क्योंकि मेरा घरवाला जलियाँ-वाले बाग़ की मीटिंग में गया हुआ था। मैं दो औरतों को साथ लेकर रोती हुई बाग़ में आई। सारा रास्ता लहू से चिपचिपा हो रहा था। जिधर देखो लहू से रँगी लाशें। जिधर देखो पानी को तरसते रेंगते लोग। एक जगह

Hindi Premi

पहुँचकर मेरे पैर सुन्न हो गए। सामने मेरे घरवाले का मुरदा शरीर पड़ा था। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं क्या करूँ। उसे कैसे घर ले जाऊँ। मैंने दो लड़कों से कहा कि वे मुझे एक चारपाई ला दें। अपने साथ की औरतों को भी मैंने वापस भेज दिया। मगर तब तक आठ बज गए, कर्फ़्यू का वक़्त हो गया। वे लड़के चारपाई लेकर नहीं आ सके। मैं रोती-बिलखती इंतज़ार करती रही। वह जगह लहू से भीगी थी। एक सरदार की मदद से मैं अपने घरवाले की लाश वहाँ से परे एक सूखी जगह पर ले गई। वहाँ उसे एक लकड़ी के तख़्ते पर लिटा दिया। रात के दस बज गए थे। मैं खुद वहाँ से निकल पड़ी कि कुछ लोगों को मदद के लिए साथ ले आऊँ। मगर रास्ते में जो भी मिला, उसने यही कहा कि कर्फ़्यू लगा है, कोई मेरे साथ नहीं चल सकता। एक बुड्ढ़े ने अपने साथियों से कहा भी कि वे चलकर मेरी मदद कर दें। मगर सबने टाल दिया कि दस बजे बाग़ में जाकर वो गोली का निशाना नहीं बनना

Hindi Premi

चाहते। मैं वापस आकर अपने घरवाले की लाश के पास बैठ गई। हाथ की छड़ी से कुत्तों को परे हटाती रही। मेरे पास ही तीन आदमी तड़प रहे थे। एक भैंस दम तोड़ रही थी। एक बारह साल का बच्चा छटपटा रहा था। वह बार-बार मुझसे कहता, "माई, मुझे छोड़कर मत जाना, मुझे छोड़कर मत जाना" मैंने कहा, "बेटे, तुझे कुछ ओढ़ने को दे दूँ?" पर वह बोला, "मुझे पानी ला दो।" पानी मैं कहाँ से लाकर देती? चुपचाप बैठी उसकी और अपने घरवाले की लाश की रखवाली करती रही। रात के दो बज गए। दीवार की तरफ़ से कोई कराहता हुआ मुझे आवाज़ें देने लगा। वह एक सुलतान विंड का जाट था जो बैसाखी का मेला देखने आया था। उसकी टाँग दीवार में उलझी थी। उसने कहा, "माई, मेरी टाँग छुड़ा दे।" मैंने जाकर उसकी टाँग छुड़ा दी। मेरे हाथ उसके लहू से तर-बतर हो गए। उसके बाद...उसके बाद सुबह तक मैं जिं न्दा चेहरों को मुरदा चेहरों में बदलते देखती रही। उस तरह बैठी

Hindi Premi

मैं बिलकुल अकेली ही थी वहाँ। आवाज़ भी कोई नहीं सुनाई दे रही थी। लगता था, आदमी दुनिया में रहे ही नहीं। रह गए हैं सिर्फ़ कुत्ते जो रह-रहकर भौंकने लगते हैं...।

अंश-24
(समय : 30 सैकेंड)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
	फ़ेड आउट अधेड़ औरत। अँधेरा।	सन्नाटे में कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें। एरिया डीप सी।	

अंश-25
(समय : 3 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
हम उजड़ते हैं तो उजड़ें वतन आबाद रहे। मर मिटे हम कि अब वतन आजाद रहे। वतन की ख़ातिर जो जान दिया करते हैं। मरते नहीं वो हमेशा ही जिया करते हैं। यह अब वो पहला-सा जलियाँवाला बाग़ नहीं।	फ़ेड इन मेमोरियल एरिया डी।	पुरुष कंठ सी। एरिया डी।	

Hindi Premi

वतनपरस्तों का है यह
शिवाला बाग़ नहीं।

अंश-26
(समय : 5 मिनट)

शब्द	**दृश्य विवरण**	**ध्वनि विवरण**	**तकनीकी नोट्स**
	एरिया सी।		
एह ज़र्द चेहरे, एह सर्द लाशाँ	कंधों पर और	स्त्री कंठ बी।	
हणेरा हणेरा ते होठाँ दे उत्ते	बाँहों में लाशें		
संगीनाँ दा पहरा।	उठाए गुज़रते	एरिया सी।	
एह कायल उम्मीदाँ	लोग।		
एह ज़ख्मी-आवाज़ाँ			
एह ख़ूनी सवेरा			
एह कालीआँ दोपहराँ		एरिया ए से गुज़रते	
	अँधेरा	फ़ौजी जूतों	
		की आवाज़।	
		स्त्री कंठ बी।	
		एरिया सी।	
आवो आवो एह हणेरा जलावो।	एरिया ई में	फ़ौजी जूतों की आवाज़	
बादशाहियाँ दे अग्गे	इधर-उधर से	एरिया सी से।	
शहनशाहियाँ दे अग्गे	निकलकर आते	वह स्त्री कंठ	
एह सिर नहीं झुकेगा, सिर नहीं	लोग। आपस में	की आवाज़	
झुकेगा एह जवानी दा दावा,	बात-बहस करते	एरिया ई से।	
एह छाती दा लावा,	और जमा होकर		
	एरिया डी के		
एह हुण नहीं रुकेगा, नहीं	पीछे की तरफ़	फ़ौजी जूतों की	
रुकेगा।	जाते।	आवाज़ एरिया	
	फ़ेड आउट कीजिए	ई से वही स्त्री आवाज़	
एह कंदाँ एह कूचे एह बरबाद	करके एरिया सी	कंठ की आवाज़।	
गलियाँ कक्खाँ च रुलियाँ	डी में इन्हीं के	एरिया डीप सी से।	
दुक्खाँ च पलियाँ ते वेखो एं	प्रोफ़ाइल		

Hindi Premi

गलियाँ गुलामी दी दुनिया नूँ अग्ग लाण चलियाँ।	फ़ेड इन कीजिए। अँधेरा।	फ़ौजी जूतों की आवाज़ एरिया डीप सी से। एरिया डीप सी से। बम फटने की आवाज़।
	वही लोग कुएँ के पास से होकर एरिया बी की दीवार की तरफ़	वही स्त्री कंठ की आवाज़ एरिया बी से।
—आवो आवो एह तख़्त ढावो इक ताज लाहवौ हणेरा जलाबो।	तरफ़ बढ़ते हुए।	
	अँधेरा।	एरिया बी से बम फटने की आवाज़। फिर एरिया सी से एक गाड़ी के उड़ाए
—इन्कलाब! ज़िन्दाबाद।		जाने का शब्द। फिर एरिया डी से लूट-मार के स्वर। उन पर सुपर-इंपोज़ फ़ौजी जूतों के स्वर। बीच में डायर की
—कुचल दो इनको। कुचल दो सबको।		आवाज़ : लूट-मार की आवाज़ें।
—इन्कलाब! ज़िन्दाबाद।		फ़ेड आउट।

Hindi Premi

अंश-27
(समय : 4 मिनट)

शब्द	दृश्य विवरण	ध्वनि विवरण	तकनीकी नोट्स
अज हत्थ देवो साथियो!	फ़ेड इन		
	एरिया डी का	समूहगान।	एरिया
	निचला भाग।	डी।	
	कुछ हाथ ऊपर		
एह ख़ून है इनसान दा नाड़ाँ च	उठ जाते हैं।		
खौल जाएगा।			
डुल्लेगा मिट्टी चुम्म के			
उग्गेगा मौल जाएगा।			
अज हत्थ देवो...।			
एह वाशना इतिहास दी	कुछ और हाथ		
साँवाँ चौं औंदी रवेगी	उठ आते हैं।		
एह ख़ून दी है वाशना			
वारिस है साडे वक़्त दी।			
अज हत्थ देवो...।			
	कई और हाथ		
	उठ आते हैं।		
एह हत्थ पाणी पौण ते			
अगनी नूँ बन्न सकदे ने।			
सूरज दा चुल्ला बाल के हाँडी			
नूँ रिन्न सकदे ने।			
एह हत्थ जो धरती दीयाँ जुल्फाँ			
सँवार सकदे ने।			
एह ओही सोहणे हत्थ ने जो			
दुनिया उसार सकदे ने।			
अज हत्थ देवो साथियो।			
हत्थाँ दी राखी वास्ते		अब उस एरिया में	
ओह हत्थ जो जाबर बणे		हाथ ही हाथ नज़र	
अज मोड़ दित्ते जाणगे।		आते हैं।	

Hindi Premi

ओह हत्थ जो कातिल बणे
अज तोड़ दित्ते जाणगे।
अज हत्थ देवो साथियो...।

अंश-28

(समय : 8 मिनट 30 सैंकेंड)

	फ़ेड आउट। एरिया बी की किसी खिड़की में एक कच्चा।	
—इन्कलाब!		बच्चा :
ज़िंदाबाद!		पूरा एरिया डी।
—इन्कलाब!		बच्चा :
ज़िंदाबाद!	एरिया सी में खुले बालोंवाली एक लड़की। झंडा हाथ में।	पूरा एरिया डी।
		लड़की :
कौमी नारा!		एरिया डी।
वंदे मातरम्!		लड़की :
कौमी नारा		एरिया डी।
वंदे मातरम्!	एरिया ई में समूह।	
सरफ़रोशी की तमन्ना		लड़की :
अब हमारे दिल में हैं।		समूह :
देखना अब ज़ोर कितना		लड़की :
बाजुए क़ातिल में है।		समूह :
वक़्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमाँ, हम अभी से क्या बताएँ, क्या हमारे दिल में हैं। आज फिर मकतल में कातिल कह रहा है बार-बार क्या तमन्नाए शहादत भी किसी के दिल में है।	अलग अलग एरियाज़ में समूह नज़र आने लगते हैं।	गीत इसी तरह चलता रहता है।
ऐ शहीदे मुल्को मिल्लत हम तेरे ऊपर निसार अब तेरी हिम्मत का चर्चा ग़ैर की महफिल में है। अब न अगले वलवले हैं और न	फ़ेड इन मेमोरियल।	अंत तक आते-आते सभी समूह एरिया सी में जमा

Hindi Premi

होकर जनता की तरफ़
बढ़ने लगते हैं।

अरमानों के मोड़
सिर्फ़ मिट जाने की हसरत
अब दिले बिसमिल में है।
सरफ़रोशी की तमन्ना
अब हमारे दिल में है...

—इन्कलाब! ज़िंदाबाद!

फ़ेड इन दीवार।
एरिया बी।

एक जगह आकर समूह रुक जाता है। स्त्री कंठ ए।
एरिया बी।
प्रकाश ऑडिटोरियम की जनता पर फैलने लगता है।

एही जनता कि जिसने सुपणियाँ दी बात छोई सी।
एह रोई सी तो मेरे वक़्त दी वी अक्ख रोई सी।
सरफ़रोशी दी तमन्ना जद कदीं गाई सी
एही जनता कि जिसने ख़ून दी मेंहदी लगाई सी
एही जनता कि जिस गुलामियाँ दे ज़हर पीते सी
एही जनता कि जिसने फाँसियाँ दे सगन कीते सी।
एह चीज़ वी नाचीज़ वी, सवाल वी जवाब वी।
एह चुप्प वी है वक़्त दी ते उसदा इन्कलाब वी।
एही जनता है, एही जनता
एही जनता।

जन गण मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता।
पंजाब सिंध गुजरात मराठा
द्राविड़ उत्कल बंगा
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा
उच्छल जलधि तरंगा
तब शुभ नामे जागे
तब शुभ आशिष माँगे
गाहे तव जय गाथा
जन गण मंगल दायक जय हे
भारत भाग्य विधाता
जय हे जय हे, जय हे
जय जय जय जय हे!

Hindi Premi

फ़िल्म

Hindi Premi

Hindi Premi

The Rent Collector

(Notes on Merchant Ivory Production)

Original Story by Ismail Merchant

Copyright : 1134978

Hindi Premi

Work in the rugged side of the countryside for the impact of its primitiveness and simplicity.

Hindi Premi

A few Comments and Queries

(a) The name 'Neelapuri' sounds a little romantic. Could be made more realistic.

(b) The name 'Prem' can lend itself to allegorical interpretation, could be substituted by some other name as ordinary and with identical rhythm.

(c) The details of the houses and the area to be discovered at the location.

(d) 'The landlord' and 'Sethiji' are two generalised terms of identification. Effort can be made to balance this by particularising them to some extent as definite characters.

(e) Thakur apparently is likeable character. What is the mood of the locality on his retirement? Any initial hostility to the new comer? The boy is acceptable from the very beginning or does his innocent behaviour earn him acceptance?

(f) What is this boy's background? Has he been doing some odd jobs before? What was his scanty education, if any?

(g) The interesting episodes of Thakur's career are they just narrated, or also visually realised?

(h) Will it not be a good idea to introduce the boy to the locality at the working time of the women there? This can add to both his shock and relish. This can also help to bring in a range of visuals and also reveal the gutter whirlpool of existence into which these women are caught.

(i) It may be necessary to select 3-4 women, representing various age groups, to reveal certain intimacies of Thakur's life, all casual and yet consistent and human. This could also introduce a slight tragic note in Thakur's departure.

(j) Women's welcome to the boy could also be a slight sore point for the old veteran; but this remains covered under his ultimate gaiety and acceptance of life as it comes.

(k) Sundari's isolation from other inhabitants of the area can be treated in two different ways:

Hindi Premi

(i) As absolute mystery that remains unrevealed till the end.

(ii) As a particular trait of her character and personality that distinguishes her from the lot.

For the second treatment, it should be necessary to have certain mental notes about the past of this woman who is a 'new comer' here at the age of 34-35.

(l) Thakur's unsuccessful bid to enter Sundari's apartment and his consequent story of her disease are all right. But why had the landlord warned him not to meddle in Sundari's affairs, particularly when at the end he warns the boy that if he did not collect the rent from Sundari, he would be dismissed from the job?

(m) Is it necessary to have 'months' pass? Boy's longer experience of the locality is likely to kill his innocence which is so necessary for the his growth of the particular type of relationship he later has with Sundari.

(n) Rent collecting is not a daily occupation. Does the boy have any other errands to do vis a vis his employer? What is the employer's general attitude towards him? Anything more than employes-employee relationship?

(o) What is mainly at the root of women's jealousy towards Sundari? Her isolation? Or physical charm? or Sethiji's patronage?

(p) What is the boy's personal attitude towards Sundari till such time as he only confronts the closed door? Curiosity? Disgust? Hostility? And how does he feel? Sympathetic? angry? In competent? And did he imagine things?

(q) The crack in the door—was it always there, or has it appeared for the first time that day?

(r) This vision of the semi-nude body being massaged, was it his first vision of the female nude? Had he not confronted any nude in ugliness while moving about the chawls? Is this just to be treated as emergence of first desire, or a line to be drawn between an innocent boy's experience of ugliness and experience of beauty? What is that makes Sundari beautiful in his eyes? Just physical contours and nakedness?

(s) Looking through the crack becomes boy's routine, it means one sided growth of desire and passion. What are its consequences on the boy?

(t) Why does Sundari no pay the rent? A part of her mysterious existence? Or sheer defiance? Or some other crisis?

(u) Boy doubted the landlord's story–what is the landlord's story?

Hindi Premi

(v) What is Buwaji's place in the cobweb around Sundari? Is she just a maid servant who could be dismissed at will, or a relation who controlled her way of living, or an agent of Sethiji who kept her under watch and care on his behalf?

(w) Did Sundari remain confined to her room of her own will and choice or under some outside compulsion?

(x) Sundari's interest in the boy—due to his green years, or her first experience of the eternal flame?

(y) Consumption of love between the two—must it be made real or brought about as imaginative extension of their longings? If it is made real, then much of the power of the last scene, which is the most poignant part of the story, is likely to be reduced.

(z) Her being choked to death by Sethiji—should we it or just let it be implied by the boy's confrontation of the dead body? To my mind, the latter approach should make the end not only very delicate, but also quite meaningful.

Questions about the Scenic build up

(a) There may be room for vocal music in the film the women having singing and dancing as their profession. What could be its total spread out in terms of time?

(b) Is the boy a singing character?

(c) The story is written in a narrative outline. Is the cinematic treatment desired to be in the same style or a dramatic build up is needed?

(d) How many locales are supposedly there in the film in addition to the chawl area?

(e) The film begins with Thakur's narration of his affairs with the women. This part of the film is bound to become episodic. How much footage could be given to this?

(f) How much emphasis should be laid on the symbolic aspect of decadence versus innocence?

(g) How much emphasis on the environmental detail and the rottenness of those women's existence?

(h) Is it a duly licenced area, or is business carried on behind the eyes of law? What is the relation of the local police to the area? Contrivance?

(i) Does Thakur completely vanish from the scene after introducing the boy?

(j) Is the whole thing to be related to Indian reality or an imaginary set up of things?

Hindi Premi

(k) By what time in the film does the boy and Sundari relationship mature? How much footage is supposedly to be given to the details of their relationship?

Again, is this relationship just one straight line in the whole graph, or dos it have its own curves?

(l) In a city like Hyderabad, the decadence that could be highlighted will be of feudal nature. Is it so intended? Should the decadence of the present day not wed the background of a more industrial city?

(m) How much time 'alone' can be given to each one of the main characters after their first meeting?

(n) How much of the past life of the two could flash into their present?

(o) Should the story be revealed in curvatures or one single progression, or could it be built up in several parallel progressions adding up into a whole experience?

(p) What part exactly does the city play in the whole story? Which particular points of the city are more important than the others?

(q) What primarily is our approach to the treatment of love? Romantic? Anti Romantic ? Psychological or Sociological?

(r) What is the highlight of love? Eternal Ecstacy? Defiance? Will to live? or sheer physical compulsion?

(s) Does the story grow in relation to any particular season or seasons? How much of 'nature' is to be contrasted to the life in the chawls?

A few Personal Questions

1. Is the screenplay and the dialogue to be done by me in study at Delhi, or do I have to come and live in Bombay for the purpose?
2. Is it envisaged that I should be present during the shooting of the film at Hydreabad? Roughly for how many shooting days will that be?
3. Will the company make arrangements for my stay etc. when I am called from Delhi? What are the expenses paid by the company? For a longer stay, are arrangements for two?
4. I would want at least 60% of the settled remuneration to be paid to me in expense A/c. Will this adjustment be made?
5. Is it going to be bilingual film? If so, what about the dialogue in English?
6. Who is going to be the Director?
7. In how many instalments will the money be paid to me, and at what stages?

Hindi Premi

8. What will be the actual months of engagements?
9. Who will direct the dialogues?
10. Shall I have an assurance that my language will not be interfered with?

Outline

Sequence I

Subtitle : Initiation

Highlights: The locale; The flower market (phool bazar) and its characters; Thakur, (the old soul) about the market, the boy versus the Pahalwan, The inside of the haveli, the panorama of light and sound, Footsteps on the broken staircase, The old woman with shroud eyes, The various distractions, stumbling in darkness; glimpses of the life within—the tab of the closed door.

Sequence II

Subtitle: Past that is always gay.

Highlights: A pan from the old women; Her narration of the days when Thakur as initiated there; The conflicting versions, Boy's confusion and amusement as the two parallel scenes run before him. Thakur caught in a trap ultimately, His mild efforts to explain it away, Thakur taken away by an old pal for a drink—He woman following him—still instant that he explains himself out—A face behind the chik—a flash of the old story.

Sequence III

Subtitle: Youth takes over

There is warmth for the boy in the whole haveli—He is seen laden with various objects (including balloons) passing room one room to the other (back shot) delivering things and receiving small favours, They joke with him and admire him, he is bashful and exuberant, is teased a onward situation, there is a group laughing around him as he dashes out and stumbles against, Thakur out in the market, complexity of Thakur's reaction, but the boy is feeling simply wonderful as he fast drives his bicycle on the roads.

Hindi Premi

Sequence IV

Subtitle: Breach of Innocence

The strings of music and dance as the whole scene is defocus with girls being bargained for bed, the corridor and staircase with men moving in and out, the boy enters the market on bicycle, with his copybook, his encounter with the chowkidar, talk about the landlord and the rent. His dives in and out of the rooms—The encounter with the closed door, the tapping and the growth, he runs back and into the arms of an old hag and from there into another empty room grumbling. Nobody to? he feels amused in his loneliness, studies the things in the room, is dazzled, the girl appears as he is feeling the softness of her bed, is reduced, then the boy is seen waking up in different bed.

Sequence V

Subtitle: Behind the closed door

It is past midnight and the haveli is quiet, only sign of life is the occasional light put on and off and the sound of flush, the boy drowsing over a bottle of liquor sees the old buagi enter the haveli and enters after her, the closed door creaks open once and is closed again, he stands by the door, there are strange sounds inside, some pieces of dialogue and a few things being shattered, slowly it is all quiet and the light goes off, the boy discovers that some light did filter through. He discovers the hole—but it is all dark inside...

Sequence VI

Subtitle: Pursuing the guard

Cycling down the market the boy notices this old woman there, he tries to keep track of her though she gets lost again and again, Finding the cycle an encumbrance, he entrusts it to a passer by and follows her in the crowd, but discovers that it is some other lady that he has followed, comes back for the cycle and this man is not there, in sheet disappointment as he is about to walk away, a small boy beckons him and takes him inside a small lane where his cycle is lying head down in the gutter, he retrieves it to find that both the wheels had been punctured.

Sequence VII

Subtitle: The hole

Boy wakes up in a big basket as the cock crows early morning. He goes into 'Mardana' comes out and going into the haveli aimlessly wanders in

Hindi Premi

the corridors till he reaches that door and notices the hole; there are strange 'ah! ah!' sounds emerging, he bends down and continuously looks through the hole, There is a young female body being massaged in nude, he can see it only in bits as the postures change, he feels thrilled and excited, he is seen waking up in a shop projection and going to Mardana then coming to the hole, then waking up on a heap of braun and repeating the action.

Sequence VIII

Subtitle: A soul in wilderness

A wide vacant panorama of nature highlighting beauty in ruggedness, the boy is seen just floating in a boat on a lake... there is a drizzle which makes the water pulsate. The boy surrounded by fluttering wings of birds, lies the grass and rolls, every bit of the panorama signifies beauty to him—like the vision seen through the hole. Everything—including the water, is as if making maturing calls. He suddenly gets into a mood to run into the water and splash it all over himself. Then, all wet, he ascends the rocks delicately balanced over each other—from there he gives calls in wildness, hits the stones, throws then in water and ultimately slides downhill into the slushy ground...

Sequence IX

Subtitle: Rumours around an unseen happening

Cartloads of flowers coming into the market. The bulls struggle hard to pull a cart out of the slush. The boy on the bike manages his entry into the market with difficulty. Confronts the woman, half owner, who imparts news of a certain happening the boy can't understand. It is about buagi having been shouted out of the closed door—the old woman repeats tale to him—the girls are amused. The boy is encouraged to go and see. He is reluctant but then makes up his mind. He collects his copy book and proceeds towards the door—the jeering voices behind him. He reaches the door, slowly opens it, looks at the people behind and enters. As he enters the door is closed again to the amusement and excitement of people outside.

Sequence X

Subtitle: The confrontation

The boy stumbles into the apartment awkwardly. There are discorded garments etc. of a woman around and the sound of shower, the woman in semi nude comes out of the bathroom and passes towards the dressing table

Hindi Premi

without noticing him, then she puts on a night robe and goes towards the bed. Gets in and puts her arm on the eyes as if her body is paining. Turns sides and slowly becomes conscious of someone's presence as she hears footsteps: asks 'why are you back' Then notices the boy 'Who are you?' He, wants to bolt out after a stammer. 'Come here'. The boy moves towards her awkwardly, she studies him and asks him to help her with this thing or that thing, the boy moves in a trance: things drop as he helps her. He removes his motive 'for the rent'. She laughs. He is puzzled. Then smiles. 'Today is the first.' 'First', 'Sunday', 'Sunday?' Yes, first Feb. Sunday, 'Feb'? 'You don't know even the month?' 'Not even the year', 'How old are you?' 'I don't know?' The old guard enters and starts working silently. 'You back' She doesn't answer. Asks the boy 'what are you doing here?' 'Nothing...' 'Then go out and do nothing there.' 'But...' Open the door. 'Go out — will you? 'I came for the rent. I have paid it. When? Today. To whom? To the landlord. But...Just motion him to the door. The lady just chuckles and lies in langour. 'You need massage?' 'Yes, I do.' The door is closed again.

Sequence XI

Subtitle : Desire and beyond

The lady ready to leave. Buajis queries , Her defiant replies, leaves, comes across the boy, talks to him with casual intimacy and takes him along, whereto? 'You have a place?' The boy's puzzled 'yes.' Out of the city in a tonga. 'रोको' 'But...' 'Shall I wait?' 'No.' The receding tonga. The empty road. The first..., 'Can you follow me?' 'Where to?' 'Nowhere that is eternity.' Jumping towards uphill. Boys reluctant pursuit the lady's challenge. The boy stops and waits—then with a sprint run up takes over challenge and reaches the top. She is lost... In the temple... in the wild pursuit. The boy runs down...meets her in the wild posture ...The city beyond...The minarette ...A couple after love.. Echoes in the forest... Both there ...The bawadi is death...Boy bows in his life...It is the lake...A boat slowly comes, their eyes turn to see it... where to get the boat? Walking up the mallah...A cup of tea, the boat in a whirlpool...The sunshine in the lake....The green meadows, Animated and lively...Tired bodies on the grass—a wall within hanging typres...a casual confirmation...If...The clasping hands and tired bodies.

Sequence XII

Subtitle: Rebellion of other Nature

The road to eternity by night...'We have lost the way.' 'Thanks heaven!' Looking for a shelter. The dogs in a bash...The leaves — but no! On to the

Hindi Premi

dunes in darkness, catching a glow worm, The threat of rain and running towards a ruin...Shelter under the shadow of history...listen to the jackals. Listen to the bats...listen to the frogs...Rain beats down there for the night...Boy gathers twigs and tries to light.

Sequence XIII

Subtitle: Souls in flesh and blood

Two lost souls in darkness, 'Do you have a ace?' 'A house?' 'People?' No, 'Do you?' 'No' You have 'any mercy?' 'No.' 'You?' 'No.' 'What's your name? 'This', 'Your's?' 'This, ' 'I thought you had another name.' And I thought you had 'none' shall we go back? How? shall we sleep? How? Shall we eat something? How? Shall we go hungry? How? Suppose this was a home...with water, with... with everything and we didn't need to eat...we didn't need money...The rain stops. Shall we move? No, Aren't you hungry? I am . Then shall we move on. No.

Lying together: The camera on the exterior and the submerged sounds lost in darkness.

Why are such that I can't touch you? Why can't you? Do. No—I won't. You are so different—so pure. You sure want to? I want to this Raga—A little later may be tomorrow...th...after a month—I'll have a child for you.

Sequence XIV

Subtitle: Worms in a cesspool

A gutter over throwing with rain waters. The cock crows as the two enter the market and then the haveli, the boy bids her farewell at the gate, she enters and is accosted by a santri for having been on a business errand; has exchange with the man alerts the haveli. It is a raid? A few lights go on, a couple of persons escape from the backyard: a few skeletons are hidden in the cupboards. You came to the court you bitch...! The man's efforts to modest her ...reactions to her resistance inside. She enters the apartment yelling... 'You, go and chalan me and do what you like.' She enters to confront Bua and Sethiji....Bua quietly leaves the house... An exchange and after...The man tries to make her succumb... her resistance... Violence of lowly desire... Her suffocation is bed...

The boy lying in a basket smiles in his dreams.

Hindi Premi

Sequence XV

Subtitle: Life won't wait

It is day when he is woken up with a guilt. The owner of the basket needs it. The boy has a hurried wash up and looks at himself in the soiled toilet mirror. He smiles and arranges himself. Then goes for a slave...He change into a new dress and goes up—Ignores calls by other people...Walks straight to the door. Taps. Then slowly punches the door open and enters. She is lying in bed—as if in sleep. He goes near. Calls her. Then starts caressing her. Then stops to kiss her when her hand falls in a way as to denote death. He is taken aback... Wants to run out... suddenly stops...kneels on the body in tormented form... caresses the dead body with two hands. Then runs out. Is asked 'what' but can't answer fill he reaches a wall and but sobs to the wall 'she is dead!'...She is dead...Dead? Who? How!..She she she! She is dead! People move that but gather upto a point on this side of the door.

Sequence XVI

Subtitle: The abyss

The camera captures a panoramic view of the dunes, the tomb, the lake, the bawadi, the slopes to the fort and the place where the boy could not urn a fire—the lonely road by night with a truck cover turned.. .And the boy coiled in the basket murmurs in his sleep...!

Hindi Premi

Ek Aur Zindagi

Ek Aur Zindagi (Yet Another Life) based on a long short story by Mohan Rakesh unfolds through three main characters a divorcee husband (Prakash), his divorced wife (Bina) and their four year old child (Palash). It is the story of an internal emotional conflict that arises, and a chain of reactions that set in when a chance encounter brings these face to face after a period of separation.

A subject of very contemporary appeal, it is not against the backdrop of Gulmarg (Kashmir).

The point is to capture the complexities of marital life in the Indian Society of today.

SCENE-1
PRAKASH'S ROOM AT GULMARG-OVERLOOKING THE MEADOW

Camera takes in the wooden staircase; the room; the balcony; Prakash comes to the room; picks up an inland letter; pockets it without reading. He sets about making tea for himself.

SCENE-2
SAME ROOM, BALCONY

Prakash in the balcony looking closely at the passing figures outlined in the fog. Could a man's eyes deceive so outrageously? Was he seeing an illusion or a reality?

The figures below skim through the fog like fishes at the depth of the sea. Two figures breezely walk along the road leading to the temple. Till they come right under his balcony he takes these two figures for casual passers-by. A woman of a five year old son. Then recognition comes in a flash.

Hindi Premi

The figure in shorts a child turns to look back as if it was also searching for some one in the fog. Prakash wants to call out to that figure. But no sound comes from his throat. In the glum quiet of the sea of fog his speechlessness is like the silence of a storm bottled up within itself for want of air.

He returns to his room. The room is in disarray. He frowns and makes a half-hearted effort to search for something. His eyes land on the trousers hanging from the wall. Pulling off his pyjama he gets into the trousers and stands undecided for a moment. Should he rush down and follow those figures or go back to the balcony and watch them from there?

His hand falls on the lock lying on the table and that decides it. Quickly locking up the room he descends the stairs. In the stairs he realises that he had forgotten to put on his shoes. But he decides against going back to the room.

SCENE-3
THE ROAD AND THE PONY STAND

As he steps into the street his feet land in mud spoiling his trousers. He peeres into the distance and sees that the two figures have almost reached the pony stand. Asking a passing horseman to run up and stop that child in blue shorts he hurries after him. The horseman brakes into a trot and rushes past the two figures without stopping. He seems to have understood his message for some other party.

Even though walking at a brisk pace Prakash feels as if his knees have gone stiff and he is not walking fast enough. Even the distance seems to have become longer and he fears that those people would go away before he caught up with them.

Then a few yards from them, he suddenly stops. Should he take the plunge?

"Pashi" he calls. The word seems to have escaped his lips despite himself.

The child's big eyes suddenly turn around and with him, his mother's. There is surprise in the child's eyes and he clings against his mother.

"Palash, come to me!" Prakash clicks his fingers as if it's an every day affair with him to accost the child.

The child looks at his mother. But finding her looking away, he clings closer to her. There is a gleam of mischief in his eyes.

Prakash stands there confused, as if he had come all the way just to measure the distance. Then he walks up and lifts the child in his arms. The

Hindi Premi

child perks up and tries to wriggle out of his grasp. But the next moment he throws his tiny arms round his neck and starts hugging him.

"Didn't you recognise your Papa?" Prakash asks him.

"Yes, I did," the child lisps and hugs him again.

"Then why didn't you come to me at once?"

"I didn't." The child suddenly kisses his check.

"Have you come today?"

"No, we came yesterday."

"Will you stay for some days or go back today?"

"No, I'll stay here for three or four days."

"You'll come to meet your Papa–won't you?"

"Yes, I'll."

Pressing the child against him, Prakash kisses his check. Overwhelmed, the child kisses him first on his forehead and then on his cheek.

"What a child!" A Kashmiri labourer who is standing by, looks at them, amused.

"Where are you staying?" The child holds away his face from Prakash to have a better view of him.

"Over there." Prakash points his finger towards the balcony. "When'll you come to me."

"First I'll go and have my milk," the child looks at his mother. "Then I'll come to you."

"I'll sit in the balcony and wait for you." Prakash's eyes meet the mother's for a fleeting moment and then they look away. Getting down from Prakash's lap the child runs up and clings to his mother's legs.

"But are'nt you going to Khilanmarg today?" She asks looking beyond the fog at the hazy outlines of deodars.

"No I won't go to Khilanmarg," the child says in a decisive voice. "I'll go to my Papa after I drink my milk."

SCENE-4
BINA'S HOTEL ROOM

Bina in the room with the child. The indecent noise in the adjacent room; her annoyance; a quiet youngman from a distant room; he offers to change the room with her.

Hindi Premi

SCENE-5
THE OTHER ROOM

After shifting to the other room, she can't trace Palash.

SCENE-6
THE LAWN OUTSIDE

The boy alone in the lawn dancing about in ecstacy.

SCENE-7
A BALCONY OPPOSITE PRAKASH'S

The woman in the balcony a few yards away across; her gay manners; the postman appears on the road.

SCENE-8
STAIRCASE AND EXTERIOR OF PRAKASH'S ROOM

Postman on the wooden staircase. An inland is slipped into the room.

SCENE-9
INTERIOR OF PRAKASH'S ROOM
INCLUDING THE VIEW FROM BALCONY

The sky has remained overcast as if painted over with a thick coat of white sine. At times the fog becomes more opaque and assuming many shapes, billows about, as if trying to find its own depth. The balcony looks suspended in the air, having an isolated existence of its own. In the distance, tops of deodars jut out here and there, forming a green line resembling a hazy script inscribed against the misty sky. Prakash watches it tense, as if trying to save it from getting obliterated. When the line is finally gone, he throws back his head in defeat.

SCENE-10
FLASH BACK PLACE, LUCKNOW, TABLE LAID OUT FOR THE PARTY, GUESTS.

Child's first birth day–the day that drives the final wedge between him and his wife.

Hindi Premi

Despite repeated messanges Bina does not send the child. The guests have to depart disappointed. Meassage comes that Bina is having her own separate party at her father's house. He sends the presents he has brought for the child there.

SCENE-11
FLASH BACK CONTINUED

He has no sleep the whole night. It seems one keeps on paring his head with a chisel.

SCENE-12
THE SAME LAWN IN WHICH PARTY TABLE WAS LAID

This time Bina has turned up with the child and they keep arguing till late in the night.

"Bina, don't forget, I'm his father," Bina replies. "If you had a father's heart you would have come to the party."

"Bina! He looks at her stunned. "I don't understand what you've got on your mind. What is it that you want?"

"I don't want anything. What can you give me, anyway."

"Have you thought what effect this will have on the child?"

"When we can't think straight about ourselves how can we think about the child?"

"I'll keep the child. It will absolve you of your obligations."

"Entrust the child to you?" Bina says in a bitter voice. "What for? I can't leave him to the uncertainties of tomorrow. Thank you. I'm not so stupid!"

"Then I'll have to seek legal redress."

"By all means do. I've no objection. I'll fight to the bitter end. You've no claim over the child."

SCENE-13
THE COURT ROOM

While he is signing the papers in the Court Room the young one of a sparrow strikes against the celling fan and falls on the floor.

"Oh, the sparrow is dead!" Some one cries.

"No, it's not dead; just injured," says another.

"It's not a sparrow. It's the young one of a sparrow," a third one retorts.

Hindi Premi

"No, it's a sparrow."

"No, it's the young one of a sparrow."

"Pick it up and put it outside the room."

"No, let it lie there. It has no chance outside. A cat may devour it."

"But how did it come here?"

"No one knows. It might have come through the sky-light."

"See in what agony it is!"

"Thank God, the blade did not cut it in two."

"Good, if it had been cut in two, with it's feathers damaged, it won't live long."

At that time when the husband and wife are putting their signatures on the papers, the child is merrily running about in the court compound, chasing crows. Dust is blowing about the place and a pale sun is peeping from the sky.

SCENE-14
INTERIOR OF PRAKASH'S HOUSE AT DELHI AND THE STREET OUTSIDE

The child has come to meet him after their divorce. Staying late the child is sitting on his father's knee, eating his dinner. A stranger arrives looking for the child.

"Don't you see he's having his food?" Prakash feels like knocking out the man's teeth.

"Let him finish his meal," the man says jolly. "I'll wait downstairs."

Prakash's hand shakes making it difficult for him to put the food in the child's mouth.

Then the child is gone Prakash discovers that he had forgotten his cap behind. He runs down into the street with the cap. Besides the stranger and the servant there is one more person there the child's mother. They are walking about fifty yards ahead of him. When he calls after them the four of them turn to look. Then the servant comes back to take the cap while the others dismiss him from their minds and walked on, unconcerned. Prakash is deeply hurt.

SCENE-15
MARRIAGE VEDI

Prakash being married to Nirmala.

Hindi Premi

SCENE-16
A MONTAGE-PRAKASH'S HOUSE AT DELHI

Nirmala laughing. The laughter comes without any reason and shows no sign of leaving. Prakash feels peeved. Even kids didn't laugh the way she does. He tries to make her unerstand the fatuity of laughing over trifles but it only provokes more laughter. When he pulls her up, she becomes grouchy, plucks her hair and lying down in the bed, starts kicking her legs, pretending that she is a Devi and has the power to put his whole family under a curse. At times she ripps off her clothes and hides them in the house. She even hides her jewellery in shoes and other unlikely places. At other times she complains that an abscess has formed on her arm and keeps groaning for days at a stretch. Then she suddenly gets well, as if by a miracle, takes to washing the laundry and keeps at it the whole day.

When in her proper mind, her face becomes round, and she starts sucking her thumb.

Prakash sees Nirmala in many garbs, and the more he sees of her the more he feels that he has been pushed into a blind well from which there is no escape. He feels angry at Juneja for having diddled him in such a crass manner. Nirmala's proper place was in the mental hospital. Why did he palm her off on him? He writes Juneja many times but gets no reply. Then he himself goes to meet him he is told curtly that Nirmala was his wife. Her brothers have no business to poke their noses in other's private lives. He must sort it out with Nirmala.

And Nirmala keeps up her laughing and screaming sprees.

"What did you go to my brothers for?" She demands in her 'Devi' temper. "Do you want to divorce me like Bina and take another wife? But I'm not Bina. I'm a devoted wife. If you every take it into your head to desert me I'll reduce your house to ashes. I've even the power to rock your house. Do you want to have an earthquake? Well, look!" She spread out her arms. "Come, earthquake, come, come, come!"

Prakash tries to calm her. "Don't lay your dirty hands on me!" She explodes. "I'm a chaste woman. Did I ever marry you? I'm still a child. No man on earth dare touch me. Touch me and see what happens!"

At his wits end, Prakash shuts himself up in his room. She keeps screaming in her room till mid-night. Then knocks at his door.

"What's it now?"

"I'm feeling stifled. Open the door. I must go to the hospital."

"At this time? Go to sleep. I';ll take you there in the morning."

Hindi Premi

"I say, open the door; I've to go to the hospital," she would start hammering at the door.

When he opens the door, he finds her standing there, laughing.

"Why are you laughing?"

"Am I laughing? Who says I'm laughing. I'm crying."

"Do you want to go to the hospital?"

"Why, what for?"

"But you said so just now."

"I never said anything about the hospital. I only said I was feeeling scared in that room. I'll sleep by your side."

"Look Nirmala, I'm not feeling well. Go back to your room."

"I say I can't sleep alone in that room. Can a small child like me sleep alone?"

"You're not a small child, Nirmala."

"Do I look big to you? Don't you feel ashamed of calling a child, big? I'll sleep by your side. Does a married woman ever sleep in a separate bed! I'm your legally wedded wife. You've not picked me up from the gutters."

SCENE-17
PRAKASH'S BALCONY AT GULMARG

"Papa!"

His meandering gaze, caught in the fog, reverts to the road. Many people, traced against the fog like the outlines of a faded picture are racing their horses along the road to Khilanmarg. Others, equally hazy are coming from the club House towards the bazar. On his left, a snow capped peak suddenly emerges from the fog and momentarily dazzles in the sun. A flock of birds fly past the peak. Caught in the sun, their wings turn golden and are then lost in the fog.

Prakash gets up from his chair and looks below, wondering if it was Palash's voice that he had heard. His eyes travel to the Tourist Hotel in the distance but he sees no one resembling Palash. Disappointed, he again sits down in the chair. Ten, eleven, twelve. Was the episode of the child's first birthday party going to the repeated?

"Papa!"

Prakash looks down startled. It is the same fog and the same quiet road. A Kashmiri is laboriously trudging up the road. Was he imagining things?

Just then a faint sound of footsteps emerges and simultaneously, two tiny arms cling round his neck and soft curly hair brush against his lips.

"Papa!"

Hindi Premi

"May I go, Palash?" It is a forgotten, but familiar voice. Prakash looks around. Bina is standing outside his room, her eyes fixed on some object.

"Oh, you!" Holding the child in his lap Prakash quickly rises from his chair. "Won't you come in?"

"I must go," Bina does not look at him. "I just wanted to know when will you send him back to me?"

"Any time you want him." Prakash comes towards the stairs.

"He has his glass of milk at four."

"Then I'll send him back by four."

"Should I leave a pullover for him. He has only a light sweater on."

"Yes, you may."

Bina holds out a pullover from across the threshold.

"And you...?" Prakash wants her to come into the room but the words die in his throat. He follows her as she walks towards the stairs. "Please don't feed him icecream," she says from the stairs. "It spoils his throat."

For an instant Bina hesitates at the top of the stairs and then quickly walks down.

"Papa! I'll have icecream," the child says throwing his arms round Prakash's neck when Bina was gone.

"Yes, son," Prakash fondles the child. "Eat what you like."

Then as if suddenly getting oblivious of himself and the child he keeps peering into the fog.

SCENE-18
THE ROAD PASSING THROUGH THE MEADOW

The curtain of fog lifts slowly defining the greenery stretching for miles around. They are walking across the golf course towards the club.

"Papa, why has a man two legs? Why not four?"

"Arre!" Prakash looked at him startled.

"Papa, why did you say arre?"

"I didn't know you can talk so distinctly. Why do you speak with a lisp all the time?"

Lifting him in his arms Prakash brings his face near his own. The child starts laughing. It has an echo of his own laughter and he sees in him his own face as it was thirty years ago.

"Mummy likes my talking with a lisp."

Hindi Premi

"Why?"

"I don't know. Better ask Mummy."

"Does your Mummy also object to your laughing loudly?"

He remembers the days when, annoyed at his uprorious laughter, Bina used to put her hands on her ears.

"Yes," the child says, firmly grasping Prakash's neck. "Mummy says good boys don't laugh like that."

Prakash puts him down on the ground and holds his finger.

"Papa," the child says, "Why don't good boys laugh loudly?"

"There's no harm in it. All good boys laugh heartily."

"Then why does Mummy object?"

"She won't object any more. And don't speak with a lisp. Your Mummy wouldn't object to that either. I'll tell her about it."

"Why didn't you tell her before?"

"I forgot. I'll keep it in mind next time."

They walk some distance in silence.

"Papa, why didn't you come to my birthday? Mummy said you didn't come because you were away in England."

"Yes, that's true."

"Don't go to England again."

"Why?"

"I don't like your going away. Your face too has changed."

Prakash gives a hollow laugh. "In what way has my face changed?" he asks.

"I don't know. But it looks different. Previously it was not like that. Now it's different."

"Different how?"

"I don't know. Previously your hair was black. Now it has turned grey."

"You didn't come to live with me. That's why it has turned grey."

"How could I?" The child laughs so loudly that he almost looses his balance." "You were in England. How could I go there? Could I go there by myself?"

"Yes, you could. You've grown big now."

"Ofcourse I'm big. Am I not, Papa?" He claps. "Tell Mummy about that also. She says I'm still very small. I'm not small. Am I?"

"No, you're not small." Prakash starts running.

"Catch me!" he says.

The child runs after him, throwing out his tiny legs. Prakash is again reminded of his childhood. "How the kid throws out his legs!" a neighbour had said. "Doesn't he know how to walk?"

Hindi Premi

SCENE-19
THE BAR ROOM IN THE CLUB

Abdullah the barman greets Prakash with a smile as he enters the bar room of the club, holding the child's hand.

"Two beers for Saheb!" Abdullah says. "Saheb has a guest."

"A glass of water for the child." Prakash stops at the counter. "He's thirsty."

"Only water?" Abdullah caresses the child's check. "To others, Saheb offers beer." He pours water in a tumbler and holds it before the child's lips.

The child takes away the glass from him. "I can hold the glass myself," he says. "I'm not small. I'm big."

Abdullah laughs. "My mistakes," he says. "I should have served you beer. All big people drink beer."

"What's beer?" The child asks, taking away the glass from his mouth.

"Would you like to sample it?" Abdullah kisses him on the check.

"No." the child turns his face away from Abdullah. Prakash leads him towards the lobby. Abdullah follows them.

"Whose child is he, Saheb?"

"Mine," Prakash says, helping the child down the steps.

Abdullah langhs. "Saheb is indeed a lively man."

"Why?"

"You're unique, Saheb," Abdullah rolls his head.

Returning to the counter he keeps laughing and shaking his head.

"What makes you laugh?" Sher Mohammad, the bearer asks him as he comes in.

"Saheb ka bhi jawab nahin!"

"Which Saheb?"

"That Saheb," Abdullah points towards Prakash. "The other day he told me that he had married only a few months ago and today he claims to have a four year old son. Can you beat it?"

SCENE-20
THE ROAD PASSING THROUGH THE MEADOW

"Papa, why is the grass green. Why isn't it red?"

Emerging from the club, Prakash has hired a pony for the child and is now walking by his side on the bridle road to Khilanmarg. The child is watching with keen eyes the scene around him and the velvety vendure under him, on which the fog is heavy like spent passion. As the impulse seizes him, he jumps in the saddle and tuggs at the reins.

Hindi Premi

"Everything has it's own special colour," Prakash says, tenderly pinching the child's thigh.

"Why has everything its own special colour?"

"Because nature has made it so."

"What's nature?"

Prakash bends down and kisses his thigh. "That's what they call nature," he says.

The child laughs. "You're telling a lie."

"What makes you say so?"

"Because you don't know the answer."

"Then you tell me why the grass is green."

"It grows out of the earth. That's why it's green."

"Really! How do you know?"

The child jumped in his saddle and tugged at the rein. "Mummy told me," he replies.

Prakash's lips curl up in a thin smile. He feels as if he is still having a squabble with Bina and she is getting the better of him.

"What else has your Mummy told you?" He asks. "Has she told you why man has only two legs, not four?"

"Yes, Mummy said, man has only two legs because half of him walks on earth end the other half in the air."

"I didn't know it," a faint smile plays across Prakash's face and then he becomes grave.

"Papa, you know nothing about anything,—You've grown so big and yet you know nothing."

SCENE-21
BINA'S HOTEL ROOM. NIGHT

Bina's lonely life in the hotel room. A night of reminiscences and despair. Her life with Prakash from her angle. The same situation, but another view point. Prakash very rigid and stubborn individual incapable of making any compromise.

SCENE-22
EXTERIOR OF THE HOTEL

She is about to go out to the photographer's with the child when the youngman who changed rooms with her is obliged to join them. He was

Hindi Premi

playing in the courtyard with the child and the child did not let him stay back.

SCENE-23
DHABA

Prakash having a hurried breakfast.

SCENE-24
ROAD LEADING TO PRAKASH'S ROOM; THEN VIEW FROM PRAKASH'S ROOM

Prakash sees Bina and the child outside Photographer's shop with the stranger youngman. He calls the child, but instead of coming to him the child disappears into the photographer's studio with his mother. After waiting for sometime Prakash goes back to his room, hoping that the child would come up to him of his own accord. Standing in his balcony he sees that instead of coming to him the child is dragging his mother towards the Tourist Hotel.

SCENE-25
ROAD LEADING TO BINA'S HOTEL

Prakash buys some cherries and proceeds towards the hotel. From a distance he sees the child emerging from the hotel with his mother. As his eyes land on Prakash he runs back into the hotel.

Prakash stops in his tracks. His eyes meet Bina's. Her complexion has gone a shade darker and there are rings under her eyes. She looks thinner than before.

He stands undecided for a moment and then walking up to her holds the bag of cherries before her. "These are for the child," he says.

His throat is parched.

Avoiding his gaze, Bina takes the bag from him.

"Palash!" she calls out in a firm voice. "Look, Papa has brought cherries for you."

"I don't want them!" The child peeps from the lobby and then runs back.

Bina looks helplessly at Prakash and then at the child's receding figure. Prakash goes into the hotel and chasing the child, picks him up in his arms.

Hindi Premi

"I won't speak with you." The child makes frantic efforts to get down from his arms.

"No, child," Prakash says making clucking sounds. "Does one ever get angry with one's Papa?"

"Why didn't you come into the shop to see my photographs?

"Which photographs? I know nothing about them."

"Ofcourse, you knew. You went away without seeing them."

Bina explains that the child, eager to show him his photographs had gone into the studio to fetch them. But before he came back Prakash was gone.

"Alright, I'll see them now." Prakash says. "And then I'll take you for a stroll."

"But Mummy must come with me," the child says, perking up in Prakash's arms.

"Yes, she'll come with us." Prakash looks at Bina. She bites her lip and blinking awkwardly follows them into the studio.

The youngman with whom Bina had changed rooms passes by on a pony. In a casual exchange he tells that he is leaving just then.

SCENE-26
THE PHOTOGRAPHER'S SHOP

The photographer spreads out the photographs on the counter. "Look Papa," the child says, picking up a photograph. "It gives a full view of Kashmir. And this one," he says picking up another, "shows me on horse back."

After having finished their business Prakash comes out of the studio holding the child's finger. He hears Bina calling after them. "Are you taking him for a stroll?"

Prakash looked back at her. "I'll bring him back in a short while."

"I just wanted to say one thing."

"Yes?"

Bina stands thinking for a moment. "Don't tell him anything which may..."

Prakash feels as if something cold had touched his nerves.

"Where are we going, Papa?" the child asks.

"To the club. I'll hire a pony for you."

"I'll not go to that man," The child's voice hardened.

"Which man, child?"

"That man in the club. I'll not accept water from him."

Hindi Premi

"Why?"

"I don't like him."

Prakash looks in the child's face. "I don't like him, either," he says. "We won't go to him."

SCENE-27
PRAKASH'S ROOM

Prakash wakes up from sleep.

The sky is clear and the hills in the distance look brilliant in the sun. His face suddenly darkens like clouds gathering against the horizon and a vague fear clutches his heart. Last evening, the child had dropped a casual hint that if the sky cleared up his Mummy may go away in the morning.

Slowly the morning merges into afternoon and the child does not come. He recoiles at the thought of the child coming to bid him good bye and wishes that the evening should also approach in the same unobtrusive manner and sink into the night. But when the afternoon is also gone and the child does not turn up he feels concerned. Had they left in the morning?

He decides to go to Tourist Hotel and find out for himself.

SCENE-28
DHABA

Prakash having a hurried lunch.

SCENE-29
ROAD, THEN, PRAKASH'S ROOM

He is coming up the road when he sees the child and Bina standing under his balcony. He walks in long strides. When he holds the child's arm he wrenches his arm free and refuses to take notice of him. "I'll not go to your house," he whimpers.

Taken aback, Prakash lets go the child and stands aside, embarrassed.

"Are you angry with me?" He asks without looking at the child or Bina.

"I won't go up unless Mummy comes with me," he cries.

Bina's and Prakash's eyes meet and then they look away.

"Why don't you also come up?" Prakash asks in a matter of fact voice.

"I don't know what's the matter with him," Bina says testily. "He's not himself since morning."

Hindi Premi

"He won't go up without you," Prakash replies in a colourless voice. "Don't you see how adamant he is?"

"Come, I'll leave you in the stairs," Bina says. "And don't take long. The horses are ready."

The words stab Prakash's heart like a dagger, but he immediately regains his composure. "Are you leaving today?" He asks in a staid tone, trying not to give himself away.

"Yes," Bina is still looking the other way. "I wanted to leave in the morning. But this child is getting too much for me. Even now..."

She blinks, and gives Prakash a sharp, troubled look. "Let's go up," she says picking up the child.

The child's scowl suddenly changes into a smile and he throws his arms round his mother's neck. Prakash climbs the stairs ahead of them.

Quickly removing the knick-knacks lying on the chair, he pushes it towards Bina. But she sits down on the edge of the bed. Suddenly something attracts the child's attention and he runs into the balcony.

Prakash stands there holding the back of the chair and Bina withdrawing into herself starts staring at the wall.

Their eyes meet in an unguarded moment. Concentrating all her strength at one point, Bina says, "Yesterday I found some money in the child's pocket. Did you give it him?"

"Yes," Prakash says haltingly. "Buy him something."

Bina is silent for a while.

"What thing?" She asks at last.

"Anything. May be an overcoat."

Another silence.

"What kind of overcoat?"

"Any kind. I leave it to you."

"Any special cloth?"

"Any cloth will do."

"Any cloth will do particular colour?"

"No, ...Well, how about blue?"

Then Prakash suddenly remembers that Bina had no liking for blue and he regrets having mentioned that colour.

The child comes prancing into the room. "Let's go," he says holding his mother's hand.

"You haven't even given Papa a kiss," Prakash lifts him in his arms. The child hastily kisses Prakash and getting down from his lap, tuggs at his mother's sari.

Hindi Premi

Bina gets up from the bed. "Let's go, Mummy." The child drags her towards the door.

"You'll write to your Papa, won't you?" Prakash calls after him.

"Yes, I'll," the child replies without looking back. Then he sees Bina turning to look at him. But she immediately shifts her gaze to hide the tears hovering over her eye lashes.

"Say ta-ta to Papa," She says putting her hand on the child's shoulder.

"Ta-ta, Papa! "The child waves his hand without looking back at his father and starts walking down the stairs. half way down, Prakash again hears his voice. "Papa's house is no good, Mummy, our house is good. There are not many things in Papa's house."

"Keep quiet!" Bina reproved him. "You blurt out whatever comes into your head."

"I won't keep quiet. No, I won't," the child says in a tearful voice. "Papa's house is dirty. Papa's house is thoo."

SCENE-30
LAWNS IN THE CLUB

The lady of the balcony opposite launching in the club. Prakash's eyes hazily follow her movements.

SCENE-31
BAR IN THE CLUB

Sitting on the club bar, Prakash finishes one beer after another. The barman, Abdullah, watches him from the corner of his eye. He has never seen him drinking so heavily. "It appears Saheb has had a windwall," he says to Sher Mohammed. "There's no stopping him."

Sher Mohammed makes a face and gets busy with his work.

Abdullah smiles as he catches Prakash's eye. Prakash stares back at him as if he was not a human being but a blurred apparition. He pushes away the glass and going up places two ten rupee notes on the counter.

"Saheb looks very cheerful today" Abdullah says in an ingratiating tone, handing him back the change.

"Oh, do I." Prakash looks at him with a blank expression as if the apparition was now disappearing behind the clouds. He is about to move away when Abdullah salaams him with a low bow. "Well, Saheb, who was that child–the one who came with you that day?"

Prakash feels as if the apparition was no as longer there–only the clouds. "Which child?" He asks trying to pierce through the clouds.

Hindi Premi

Abdullah gives a loud laugh. "Then what I told Sher Mohammed is true."

"What did you tell Sher Mohammed?"

"I was telling him that Saheb is a great one for such things. He has kingly disposition. Even another's son passes for his own. Well Saheb, in Gulmarg everything goes. I know of another Saheb like you..."

Prakash feels as if the clouds had parted in the middle and a flock of kites tearing through the clouds was gliding along the opening. He wishes that the passage clogged up blotting out the kites. But the aperture keeps on widening till a faint cry escapes his throat. He walks away averting his eyes from Abdullah.

SCENE-32
NIGHT-CARD ROOM IN THE CLUB

The card room has emptied and the fire in the grate has died long ago. Only a few embers shuddering in the cold are fast sinking into the ash. The same lady of the balcony opposite on another table in the card room. She gets up and the table is cleared.

"Just one more game—and that'll be the last." His own voice sounds unfamiliar to Prakash. His friends agree after a half-hearted refusal. The cards are dealt. Prakash picks up his cards. They are again odd cards and he feels like throwing them down in disgust. But having asked to continue the game he studied his cards gloomily.

It is raining in torrents; the down pour is heavier than last night. The rain drops strike against the window panes with a staccato warning and then helplessly slide down the glass pane, making vague patterns. They look like faces set against the glass, shedding incessant tears. The doors rattle in the wind, the faces sob. Then they stop sobbing and from in anger. Behind those faces is thick darkness where something seems to be gasping for life.

"Declare!" Prakash looks up startled. This time again he has to throw down a full hand. Settling back, he starts staring at the faces peering from behind the window panes.

"Prakash, You're a lucky guy–the luckiest of us all!" Prakash shifts his gaze from the window pane. The cards have been put away and heads are bent over the table, adding up the scores.

"Haven't you heard, Unlucky at cards, lucky in love!!" His companion says. "You're the biggest loser. A lucky guy indeed!"

Prakash reads the amount written against his name. His heart starts pounding as he draws the money from his pocket. After squaring up his

Hindi Premi

account he is just left with two small coins and an inland letter which has come by the evening mail. Nirmala's letter. It has got crumpled in his pocket, unread, as he looks at his address serawled across the page many faces leep up before his eyes. Each pen stroke is a face by itself-faces that laugh, cry, shriek. And there are others so gnome–like and hungry that it looks they would gobble him up.

SCENE-33
FLASH BACK-PRAKASH'S HOUSE IN DELHI

He is collecting his things for the journey Nirmala has a row with him.

"Nirmala!" He says in dismay. "Stop it. Women don't wrestle. It's so humiliating."

"What's humiliating about it?" Nirmala laughs. "Men and women wrestle day and night."

At last, he leaves with the clothes he stood in, without even an extra shirt for the journey.

SCENE-34
HIS TRIP

His trip in the train and the bus on way to Gulmarg.

SCENE-35
IN THE MARKET*

He is seen buying shirts, etc.

SCENE-36
A MONTAGE OF SOUNDS AND IMAGES AGAINST THE CRUMPLED LETTER BEING READ BY PRAKASH. VOICE IS NIRMALA'S.

She is terribly ill and is seeking admission to a hospital; that her brothers have lodged a report with the police to trace their missing brother-in-law; that she has decided to become a jogin and live in the jungles; that if she did not hear from him her brothers would despatch her to him on a plane. She also complains that her younger brother had thrashed her for not living with her bed companion.

---

* Scene-35 के नीचे कोई हेडिंग नहीं दी गई थी। एकरूपता को बनाए रखने के लिए 'In the Market' हेडिंग दी गई है। –सं.

Hindi Premi

SCENE-37
NIGHT–FROM THE INTERIOR OF THE CARD ROOM TO THE EXTERIORS

Prakash puts the crumpled letter back into his pocket and rises from his chair. A few people are standing in the lobby waiting for the rain to stop. In a dark corner behind the passage he sees the same lady of the balcony opposite in tight embrace with a man. Edging his way through people he comes on the verandah steps.

"Going out in this rain?" one of them asks.

Ignoring the warning, he quickly steps down the footpath. In front of him the lights of Nedon's hotel shine palely through the surrounding darkness. Walking across the club compound, he comes on to the road. The downpour has become heavier.

SCENE-38
NIGHT–THE LONELY ROAD IN THE DARK

His head is fully drenched and the rain drops trickling down his neck seep into his shirt. His hands and feet are numb with cold. When his mud smeared shoes squelch in the puddles a chill runs through his spine. Then his body tingles with a new sensation. He feels he is not alone on the road. Another person, throwing out tiny legs was plodding by his side. While crossing the wooden bridge he looks back. Walking alongside him is a dog, flapping its ears every now and then. Mute and miserably stupid!

Hindi Premi

Adhe Adhure : Agreement

Agreement made this 10th day of September, 1969 between Shri Mohan Rakesh hereafter described as the Playwright and Messers Anshumali Movie Makers with their Head Office at New Delhi hereafter described as the Producers;

As it is proposed by the Producers to make a film based on Dishantar's stage production of Playwright's play Adhe Adhure with the original stage cast, it is hereby agreed that :

In lieu of Partnership rights in Anshumali Movie Makers, Shri Mohan Rakesh gives the film rights in Hindi language of this above mentioned play Adhe Adhure to the Producers on the following terms and conditions:

(a) That as in the case of Dishantar's stage production of the above play, the playwright will be personally associated with the film version of the above production at all stages of its making;

(b) That in all cases the Playwright's interpretation will be deemed to be final and that any addition, deletion or alteration in the structure and text of the play will be made by the Playwright alone;

(c) And that this fact of the Playwright's association with the making of this film up to its being censored, will be acknowledged, wherever such acknowledgement is due.

Signed this 10th day of Februrary, between the two parties concerned.

Playwright

For Anshumali Movie Makers
Producer Adhe Adhure

Hindi Premi

Rakesh's Letter to Raj Bedi

4.2.70

Raju,

Now I shall be reaching there on the 7th. Basu must have told you. Please try to book the same suite at Bombay International in which I stayed with Mani. Shiv is also coming with me on the 7th.

Delhi shooting is over and let's hope the rest of the work will also be completed with the earnestness if requires.

There is one thing that I am writing to all–to yourself, to Shivpuri and to Basu. It was not my enthusiasm initially they started this project. I collaborated because all the three of you wanted it. So it is really painful for me when I have to coax each one to discharge his responsibility with promptness or efficiency.

(MOHAN RAKESH)

Hindi Premi

A Letter to Om Shivpuri

7.2.70

My dear Shiv,

I came very much depressed from your place last night. Particularly because we were not alone when you were talking. I am in a very peculiar situation today, although it was not my enthusiasm initially that started this project. You wanted it, Rajji and Basu wanted it. So, I collaborated. But I today find myself facing all the responsibility on all the fronts. The most unfortunate thing is that I have to love all the friends, including yourself, to devote themselves more seriously to the work that is pending. I sometimes free like withdrawing completely. I have done, whatever best I could. Differences of opinion and approach will always be there-whosoever may handle a particular department. We are asking for an ideal result which probably is never achieved. I have found failings in everybody, as all my friends must have found failings in me. I have been quite crtical where criticism was due. But the way you talked last night, I felt that I must now give up.

So, I make a friendly offer to you. You take over complete charge of the project I will see to have delivered to you all the accounts and negatives. May be by assoervating a Rectter editor, or shooting some portions with another director, you may not feel the way you do now. Instead of planning another project, the same money could be invested in this one. Please do not hesitate, and go ahead. There will be no liabilities to meet and no dues to pay so far as the present work is concerned. That I can assure you most positively. You have to say one word—'Yes' on telephone and it will be done.

Sincerely

Rakesh

Hindi Premi

Mohan Rakesh
vs
Basu Bhattacharya

To,
Shri Basu Bhattacharya,
Bombay.
Dear Sir,

We have seen the letter dated...written by you alongwith four others to Bombay Lab., and Quality Lab., a copy of which you have sent to us.

We regret to say that you have no title to write such a letter as after the agreement signed between us on the 14th of Feb., 1970. You have already retired from the partnership of Anshumali Movie Makers and have consequently no locus standii to issue any instructions to Bombay Lab., Quality Lab. or any other institution where we may have our work done or keep our stocks. The other four co-signatories of your letter never had any locus standii in the matter and we strongly resent their unlawful instrusion in the matter.

Without prejudice of our right to take any suitable action against your unlawful step, we may state that the above mentioned agreement of the 14th Feb., 1970 was drafted and signed at your request as you brought to our notice much later than was due, that having taken a loan from Film Finance Corporation of India for your project entitled 'Anubhav', you could not hold partnership rights in any film producing concern till you completed that film called 'Anubhav' and rendered fuli accounts to the Film Finance Corporation of India for the loan given by them. We were shocked to know this from you and resented very much your not having told it to us earlier. But having made out the agreement with you as per your desire giving you a title to 25% profits, if any, on the business of Adhe Adhure, our first film, the directorial responsibility of which had been entrusted to you, we were further shocked to learn a few days later

Hindi Premi

that you issued instructions to Bombay Lab., on behalf of Anshumali Movie Makers, to which you did not belong as a partner any more, authorising your assistant Shri Manik Chatterji, to handle the deposit and delivery of our stock, negative, positive, sound, rush print, ect.' On the 4th of March, 1970, i.e. eighteen days after the signing of the above mentioned agreement, and had him remove two tins of print from there without any authority from us. As Mr. Raj Bedi, one of our partners was the only person duly authorised from the very beginning to handle all matters of our stock, negative, positive, sound and rush print, etc. with Bombay Lab., we were obliged to re-assert this position with them and gave another letter to them to this effect, though our earlier letter of authorisation in favour of Shri Raj Bedi was also on their file. Your present letter, therefore, which carried signatures of four other persons alongwith you, raises serious doubts in our minds with regard to your intentions.

We do not really know if your real intention is not to be with us for completing the rest of the work of the film which implies further shooting, some reshooting, final editing, recording of total background sound, optical work and re-recording, etc., or just to hamper the completion of the film under any circumstances, in order to avoid complications with regard to you commitment with Film Finance Corporation of India. As your present attitude is likely to damage both the further work as well as the reputation of the film as well as Anshumali Movie Makers as a film producing concern, we hereby call upon you, without prejudice to our right to have the remaining work of the film completed without you if such a situation is forced upon us, to co-operate with us in completing the said work, the date schedule for which can be sent to you on receiving your affirmative reply. But in case you insist upon your present non co-operative attitude and hinder the progress of work, you will be liable to compensate us for the losses that may accrue to us due to this. Your title to 25% profits if any, on the business of Adhe Adhure could also stand only if you fully discharge the responsibility entrusted to you.

–RAKESH

Hindi Premi

Let's Decide at the Script Stage

Let's face it. We live in a society where sex morality is a morbific form of hypocrisy. Whatever may be happening in witnessed outdoors here, except among the members of the canine tribe. When it is daylight and under the open skies men and women observe a respectabe distance from each other; a religious, moral and ethical distance. Outside the permitted hideouts of sexual conjunction, there is no huddling together even to ward off cold.

Nudity is a licence allowed to the hermits in case they happen to be all males, to the females only when they take a dip in the Ganges as pilgrims. Physical intimacies, open to the public view, are to tolerated only among the stone carvings where even perversities are exonerated due to their antique value. Antiquity is sufficient grounds for permissiveness even in literary expression; there is no Censor Board as yet to suggest blacking out of passages from Kalidas and Surdas. With all our taboos, we are tolerant enough to bear with the intriguing aesthetics of yore; there is no way to reform one's forefather after all.

But the present being a tense under one's living jurisdiction, all the dogma that there is toaday, should remain as it is, in spite of atomic reactors, green revolutions and 'gareebi hatao'. Otherwise why such a furore over an innocuous play like "Sakharam Binder?" Or such a dragged out discussion about how many centimetres of female physiognomy above and below the navel could be exposed to the movie camera lens? Why does any uninhibited use of word or visual outrage our susceptibilities? Is Indian morality really an antonym of sunshine?

As a writer I am vitally realted to my society; vitally and much more intimately than those who pass hypocriticaly moral judgements on works of art, and this relationship is that of a truthful and analytical understanding. It is my no means a neutral relationship, but a highly critical one. I exhist in this society as a part of it; but I also live in it as an observer of its parts,

Hindi Premi

myself included. I partake of its hypocricy and double standards, as also of its integrity and moral core, all in spite of myself.

It is my compulsion as a writer to reveal myself as myself, which is to reveal society both with and without its mask. Treating teh mask as an unreality, or the only reality, is to be misguided by certain idealism, pro or anti. For me the moment of standing face to face with myself is not just teh moment of narcistic satisfraction, but also of Caliban dissatisfaction. It is very much a moment of tension and conflict, a critical mement, and hence a creative one.

The essential liberty I have to have as a writer is the liberty to transfer this conflict, this tension, this criticality to my writing. For this I cannot make any concession as concession means compromise and compromise means mediocrity. I have the right to portray beauty as beauty and ugliness as ugliness, both parts of my being. And it is interference with this right by anybody anywhere that I would strongly protst against both individually and in unison with others.

But clamouring for liberty of expression by those who are in no way concerned with such confrontation with reality, is a highly deceptive phenomenon. Indian cinema, by and large, has seldom been handicapped in its expression at any such critical point as, barring a few cases, it has hardly ever as much as touched the fringes of critical confrontation with reality. The problem of artistic freedom is relevant for the artistic and not the non-artist. The pain of lack of adult expression is genuine for the adult and not the non-adult.

Indian cinema in the hands of the majority of film makers, particulary in Bombay and Madras, is neither art, nor adult. At its best it is a formula of spinning platitudinous tales, at its worst a hotch-potch of comedy and melodrama, both interspersed with sngs and dances. The only pain that the film maker suffers is the pain of failure at the box office; the only confrontation with reality he has is the confrontation with the distribution network. And the freedom of further explitation genital urges of a sexually expressed society. So, while as literature and other art forms, it is necessary to raise one's voice for full freedom of expression on celluloid, it is equally essential to examine how far the possibility of the misuse of such freedom at the hands of the non-artist and the non-adult can be eliminated.

To my mind, the question is not just of having a more liberal and enlightened form of censorship than now obtaining, to ensure teh making of better films. This type of censorship at best can only be expected to take a more lenient view of certain details in whatever is offered before it in the name of a film. And it is not the details that make all the difference.

Hindi Premi

It does not mean that I stand for the sort of conservative censorship we now have; the sooner it is scrapped or drastically remodelled, the better. But to strike at the root of the evil, the whole procedure of film making has to be basically changed. The beginning of a good film can only be looked into in the beginning. The clipping and prunine of a plant when it has come up may have some meaning; but the form it grows into is vitally related to its seed. In cae of a film, this seed is the script, or even just the idea.

Some good films have been possibe recently through the initiative of teh FFC, just because their possibilities had been examined at the script stage. There may be certain thins to say about these films also; I have personal reservations about at least one that has een based on my own play. But any criticism that may be levelled against them, is not because of non-adult handling, but of difference of opinion regarding approach and treatment.

I, therefore strongly feet that for bringing about a qualitative change in our films, they should be processed through a film council at the script stage, and this council should consist entirely of film makers, writers, musicians, painters and others working in allied fields and with a record of excellence in their respective undertaking. I know such an idea may be repugnant to the real artist because he would nto want any fetters on his freedom at any stage, but isn't it still better than having a bureaucratic Censor Board crippling your work at the end by scissoring it here and there? I wish there were a way by which exemption could be given to film makers of calibre, but that may bring in all sorts of squabbling in the name of democracy.

There is no one more convinced of his art than the non-artist. He never suffers from any such self doubt as plagues the real artist. He is always likely to have taller claims to freedom than one for whom it is an essential need. Not that he is really his own judge. But he is a loud spokesman of the dictates of others who happen to finance him. It is because of him that the shoddy film has become our norm.

While fighting for freedom, you cannot but take him into account. He may try to usurp all that you fight for and use it just for his vulgar commercial ends. Because except for the freedom of sexual portrayal, he asks for no other freedom. Illiteracy superstition, rising prices, student unrst and political opportunism are just instrumetns of sloganising for him. He makes use of them so long as he can cash in upon them. They are not in any way related to hsi need of expression.

He is willing to make any sort of compromise where compromise is likely to pay. His fight is not for convictions, but for more money. He is

Hindi Premi

not bothered by the lack of any other type of freedom than has a currency value. And sex, after all, has this value in abundance.

It is due to the painful realities of the prevailing situation that I put forth the above suggestion; maybe after a few years of such self-imposed discipline we may arrive at a stage where we can do away with any such impediment. Otherwise barring the few who even today make good films of international standards and who may use the enlarged freedom to advantage, there is very little hope that otehrs, just with the help of this magic wand, will be able to usher in an era of really adult film.

Before anything else, an adult film needs an adult subject and an adult attitude. Given these two, I stand for complete freedom for the film maker to draw upon whatever resources he has, through experience and imagination, for confronting the realities of his age. And the demand of these realities is that all those taboos in depicting intimacies between men and women should go. There may be compulsive sociological and educational reason for it; it is for the sociologist and the educationist to talk of them. For me here the main reason is the artistic compulsion. That is say where there is such a compulsion. And it cannot be where there is no art.

Hindi Premi

Hindi Premi

समीक्षा

Hindi Premi

Hindi Premi

पुस्तक-समीक्षा

निराशावादी यथार्थ और कल की आशा

(तीन कहानी-संग्रह)

तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ?*

एक-एक करके पन्ने पलटते जाते हैं और जीवन के भिन्न-भिन्न चित्र सामने से निकलते जाते हैं। हर रोज़ तरह-तरह की कहानियाँ आँखों से गुजरती हैं। पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और पांडुलिपियों में बिखरी हुई कहानियाँ—नन्ही मासूम आँखों और नुकीलें दाँतों की, चिपचिपाए हाथों और रेशम में फड़कती हुई छातियों की, शक्ति, संघर्ष, उन्माद, विवशता और प्रवंचना की, संयमित आवेश और अनिरुद्ध पालगपन की हज़ार दास्तानें!

फिर भी बहुत थोड़ी कहानियाँ ऐसी होती हैं जो याद रह जाती हैं और जिन्हें दूसरे को सुनाने को मन होता है, सुनाने से पहले दूसरे की निश्चित प्रतिक्रिया का पता रहता है और सुना चुकने के अनन्तर अपेक्षित प्रभाव की सृष्टि का संतोष प्राप्त होता है। नानी से सुनी हुई कहानियों में कलात्मकता रही हो या न रही हो, पर यह गुण अवश्य था कि उन्हें बार-बार सुनने और सुनाने की कामना होती थी। और यही गुण विश्व-साहित्य की चुनी हुई कहानियों में भी है। देश, युग, कला और कोण की दृष्टि के एक-दूसरी से बहुत दूर और बहुत भिन्न होते हुए भी उनमें यह, एक बात सामान्य है कि वे भूलती नहीं, और उन्हें बार-बार दोहराने को मन हो आता है। कहानी 'कफ़न' और 'बाल शव् फैट' की तरह चरित्र-प्रधान हो या 'हाऊमच लैंड डज़ ए मैन रिक्वायर' की तरह भाव-प्रधान; उसमें 'नेकलेस' की तरह घटना की विशेषता हो या 'बू' की तरह अनूभूति की, उसमें चेखव की सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि झलकती हो या सार्त्र की जुगुप्सात्मकता उसकी सजीवता की पहचान उस छाप की गहराई है जो वह मस्तिष्क पर छोड़ जाती है। हर व्यक्ति कहानियों का कोष संचित करना चाहता है शोर करता है। परन्तु हज़ारों कहानियाँ पढ़ने और सुनने के अनन्तर भी उस कोष में बहुत कम कहानियाँ संचित होती हैं। इसका पता उस कोष को टटोलने से तुरन्त चल जाता है।

---

* तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ?—यशपाल, प्रकाशक : विप्लव प्रकाशन, लखनऊ।

Hindi Premi

परन्तु नई कहानियाँ हाथ में आने पर संचय का चाव फिर जाग उठता है, पन्ने फिर पलटने लगते हैं और आँखें उत्सुकतापूर्वक नई-नई पंक्तियों पर से गुजरने लगती हैं।

'तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ?' और 'पान-फूल' दो नए कहानी-संग्रह हैं। एक में प्रतिष्ठित कहानीकार यशपाल की तेरह नई कहानियाँ संकलित हैं और दूसरे में नए कहानी-लेखक मार्कंडेय की बारह आरम्भिक कहानियाँ दी गई हैं। कहानी के सम्बन्ध में अपनी दृष्टि का परिचय देते हुए यशपाल ने अपने कहानी-संग्रह की भूमिका में लिखा है : "लेखक कभी-कभी विचारों के उद्‌गार में ऐसी भी रचनाएँ लिखते हैं जिसमें तथ्य या भाव को घटना के माध्यम में प्रस्तुत न करके केवल विचारों की शृंखला या शब्द-चित्र के रूप में पेश कर दिया जाता है। अथवा कभी किसी विशेष व्यक्तित्व को उसके जीवन की किसी घटना का आधार लिये बिना ही पाठकों से परिचित कराने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार की घटनाहीन वर्णन-प्रधान रचनाओं की सारगर्भिता और रोचकता के विषय में सन्देह न होने पर भी उन्हें कहानी की व्याख्या और परिभाषा में ही क्यों समेटा जाए? कोई भी परिभाषा वस्तुओं के वर्ग की समता की द्योतक होती है शब्दचित्रों, गद्य-काव्यों, आप बीतियों, विचार-चित्रों या कथात्मक निबन्धों को कहानी न मानने से उनकी रोचकता, कौशल या कलात्मकता से इनकार नहीं किया जा सकता। यह कहानी की कला से प्रेरणा पाकर उत्पन्न हुई कला की नवविकसित स्वतन्त्र शाखाएँ हैं।"

इसका आशय यह है कि लेखक कहानी में घटना को मुख्य तत्त्व मानता है, जिससे विहीन रचना कहानी की परिभाषा में नहीं आनी चाहिए। आज विश्व-भर में कहानी के इतने व्यापक प्रयोग हो रहे हैं कि कहानी की परिभाषा इस तरह संकुचित कर देने में इस श्रेणी की अन्य रचनाओं को न जाने कितनी उपशाखाओं में रखना पड़ेगा और शब्दचित्र, (स्केच) आपबीती और—कथात्मक निबन्ध में भी किसी-न-किसी अंश में घटना रहती ही है, अतः इस आधार पर कहानी को अलग से छाँट लेना बहुत कठिन है। फिर भी इतना तो है ही कि कहानी के नाम से लिखी जाने वाली हर रचना कहानी नहीं होती। उसमें विवरणात्मक प्रबन्धन के अतिरिक्त एक और चीज़ का होना अपेक्षित है और वह है घटनाश्रित या भावाश्रित चरमस्थिति (Climax)। यदि कहानी उस स्थिति की ओर स्वाभाविक ढंग से बढ़ती है और उसकी ग्राहिता बनी रहती है तो उसे कला की दृष्टि से एक सफल कहानी कहा जाएगा, भले ही अन्य विषय, विचार या विश्लेषणगत त्रुटियों के कारण वह एक संरक्षणीय कहानी न बन सके। और यदि कहानी को उस चरमस्थिति तक ले जाने में लेखक को स्वाभाविकता से ज़रा भी हटना पड़ता है तो कहानी कला की दृष्टि से भी कमज़ोर हो जाती है।

Hindi Premi

यशपाल के इस नए कहानी संग्रह में कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें घटना-विकास प्रयत्नसाध्य है—और शायद उसका मूल उद्देश्य दो स्थितियों के वैषम्य का चित्रण ही है। 'चोरबाज़ारी के दाम' की कहानी इतनी है कि एक व्यक्ति जो कभी स्वयं दवाइयाँ चोर बाज़ार के भाव बेचा करता था, विभाजन के बाद स्वयं अपने मरते हुए बच्चे के लिए चोर बाज़ार से दवाई खरीदने के लिए विवश हो जाता है, जिसके लिए उसे अपना सब-कुछ बेच देना पड़ता है, पर फिर भी वह समय पर दवाई नहीं ला पाता और बच्चे की मृत्यु हो जाती है। इसी तरह 'गवाही' और 'तगमे की चोट' में भी स्थिति-वैषम्य का चित्रण करने के लिए ही घटना की कल्पना की गई है। इन सब कहानियों में एक-न-एक निष्कर्ष तो निकलता है, पर जो पाठक 'कला के क्षेत्र में अपना राई-रत्ती उगाहने की आशा' से इन कहानियों को पढ़ता है, उसे निराश होना पड़ता है। बहुत पहले की कहानियों में अवश्य इस शैली का प्रयोग हुआ है, परन्तु उनका स्थान एक विशेष श्रेणी के साहित्य में ही है।

परन्तु इसी संग्रह में 'कोकला डकैत' और 'तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ?' जैसी कहानियाँ भी हैं, जिन्हें अच्छी कहानियों की श्रेणी में रखा जा सकता है। 'कोकला डकैत' में बहुत तीखा व्यंग है, जो नश्तर की तरह हृदय में चुभ जाता है। कोकला को डकैती के अपराध में सज़ा हुई, क्योंकि उसने हँसिए के ज़ोर से कुछ राहगीरों से अठन्नियाँ वसूल कीं, परन्तु अठन्नी के ज़ोर से बीसियों बार कोकला से जो छीना गया, उसके लिए किसी को सज़ा नहीं हुई, क्योंकि कानून की आँखों ने उस डकैती को डकैती नहीं समझा...

'तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ?' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। क्षय की रोगिणी माया के लिए अपनी सुन्दरता का झूठा विश्वास ही ट्रेजेडी बन जाता है। जिस पुरुष ने उसे यह विश्वास दिया है, उसी के प्रति अपने को समर्पित करने के लिए जब वह आतुर हो उठती है तो वह पुरुष उसे स्वीकार नहीं करता और माया उसी क्षण में जैसे निर्मूल होकर रह जाती है। कहानी में फ़ोटोग्राफ़ वाली बात में—अन्य स्त्री के नग्न चित्र के माया द्वारा अपना चित्र मान लिए जाने में—कुछ अस्वाभाविकता अवश्य है, जो खटकती है।

वैसे संग्रह की कहानियों में काफ़ी वैविध्य है—समकालीन जीवन के विभिन्न चित्रों का लेखक ने यथार्थ की भूमि पर कुशलतापूर्वक अंकन किया है। कहानियों के चरित्र सजीव हैं, उनमें मानवीय सन्तुलन भी है, यद्यपि 'घटना का मोह कहीं-कहीं चरित्र की रेखाएँ पूरी तरह उभरने नहीं देता। लेखक की दृष्टि स्पष्ट है और उसकी पहचान निश्चित है—वह ठीक जगह चोट करता है और जहाँ अपेक्षित हो वहाँ अपनी पूरी सहानुभूति भी देता है। 'मिट्टी के आँसू' और 'असली चित्र' ये दो कहानियाँ क्रमशः उदाहरण के रूप में रखी जा सकती हैं। झूठी सामाजिक विडम्बना का एक अच्छा कलात्मक चित्र 'कम्बल दान' शीर्षक कहानी में प्रस्तुत किया गया है। यदि

Hindi Premi

सोद्देश्यता की दृष्टि से ही देखा जाए तो 'अखबार में नाम' शीर्षक कहानी को छोड़कर, जो शायद संग्रह की सबसे शिथिल कहानी है, शेष सब कहानियों में कुछ-न-कुछ स्पष्ट उद्देश्य लेखक के सामने रहा है। जीवन के खोखलेपन को साहस के साथ उघाड़ देना, यह यशपाल की अधिकांश कहानियों की विशेषता रही है, जो इन कहानियों में भी है। परन्तु साथ ही यह भी कहना होगा कि यह संग्रह यशपाल की कहानी-कला के विकास में एक नया मार्ग-चिह्न नहीं बन पाया, इसमें लेखक का कृतित्व उसके पुराने धरातल से आगे नहीं बढ़ा। इसलिए इस संग्रह में हिन्दी की कहानी-परम्परा के लिए कोई नया संकेत नहीं है, ऐसा संकेत जो कहानी को और अधिक परिमार्जित और अधिक भारतीय बनाने में सहायक होता।

पान फूल*

'कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए' मार्कण्डेय के कहानी-संग्रह 'पान-फूल' की अन्तिम कहानी है, जिसे यशपाल की परिभाषा के अनुसार कहानी नहीं मानना चाहिए, क्योंकि उसमें घटना नाम को भी नहीं है। वह एक व्यंगात्मक कथा निबन्ध-मात्र है, फिर भी उसकी एक अपनी विशेषता है। उसमें जीवन के एक सत्य को बहुत स्पष्टता और सादगी के साथ व्यक्त किया गया है और उसका कोण नया है। हिन्दी में पिछले दिनों जिस तरह की 'दीदी प्रेयसियों' की एक परम्परा-सी चल पड़ी थी सामान्य नारी उससे कितनी भिन्न है, इसका चित्रण लेखक इस कहानी के माध्यम से सफलतापूर्वक कर पाया है। वह अपनी कहानी के लिए ऐसी नारी का पता विज्ञापन द्वारा पाना चाहता है 'जो आम्र-वल्लरी की भाँति तन्वंगी हो, मल्हार के कोमल स्वर-सी ध्वनि हो जिसकी और छुई-मुई-सा संकोच। पारलौकिक प्रेम में हर क्षण डूबी रहती हो, तपती हो और कम-से-कम ब्याह के लिए माँ-बाप की आज्ञाकारिणी हो...'

हाँ, एक बात है। ऐसी नारियाँ समकालीन कथा-साहित्य में तो दिखाई देती ही हैं, उनकी कुछ सजीव अनुकृतियाँ–साहित्य के साँचे में ढली हुई मानवी प्रतिमाएँ भी जहाँ-तहाँ नज़र आ जाती हैं, जो साहित्य की भाषा बोलती हैं और एक या दूसरे उपन्यास की नायिका की तरह व्यवहार करती हैं। वे शायद मार्कण्डेय की अनुपलब्धि को झुठला सकती हैं!

मार्कण्डेय की अधिकांश कहानियाँ चरित्र-प्रधान हैं, जिनमें 'गुलरा के बाबा', 'घूरा' और 'मुंशी जी' का उल्लेख किया जा सकता है। इन कहानियों में लेखक की यथार्थ दृष्टि का ही नहीं जीवन के साथ उसके घनिष्ठ सम्पर्क का भी परिचय मिलता है। लगता है कि वह जिस वातावरण को चित्रित कर रहा है उसमें वह स्वयं रहा है–

---

* पान फूल–मार्कण्डेय, प्रकाशक : चेतना प्रकाशन, हैदराबाद।

Hindi Premi

उसकी रेखाएँ मांसल भी हैं और सप्राण भी। मार्कण्डेय ने अभी बहुत थोड़ा लिखा है, यह उसके रचना-काल का आरम्भ ही है, इसलिए कहीं-कहीं उसके उपकरण अधमँजे प्रतीत होते हैं, फिर भी, इन कहानियों को पढ़कर कहा जा सकता है कि उसकी सम्भावनाएँ असन्दिग्ध हैं। उसने अपने समय तक के कथा-साहित्य के अभावों को ग्रहण किया है, पर कहीं-कहीं 'सवरइया' और 'रेखाएँ'—जैसी कहानियों में ये प्रभाव बहुत परिलक्ष्य हो गए हैं, जिससे ये कहानियाँ एक-दूसरी से इतनी दूर जा पड़ी हैं कि एक निश्चित दृष्टिकोण लेकर चलने वाले लेखक की कृतियाँ नहीं जान पड़तीं। जिन कहानियों में लेखक ने घटना को विशेषता दी है, वे कहानियाँ अपेक्षाकृत कमज़ोर हैं, जैसे 'वासवी की माँ', 'रामलाल,' नीम की टहनी' और 'पान फूल'। लगता है कि घटना-विकास के सम्बन्ध में वह किन्हीं परम्परागत धारणाओं को लेकर चल रहा है। 'पान फूल' में नीली का चरित्र जितना स्वाभाविक है, कहानी का वस्तु-संगठन उतना ही अस्वाभाविक है—दो बच्चियों की जिस भावुकता का चित्रण किया गया है, वह उस आयु की भावुकता नहीं हो सकती।

मार्कण्डेय की कहानियाँ इस दृष्टि से सोद्देश्य नहीं हैं कि उनमें से कोई-न-कोई निष्कर्ष निकाला जा सके, परन्तु वास्तविकता के अंकन की अपनी सोद्देश्यता है और इस दृष्टि से उसकी अधिकांश कहानियाँ आज के जीवन के लिए हैं, क्योंकि वे जीवन से ही ली गई हैं। 'गुलरा के बाबा' में चमेली के अंधी हो जाने की बात खटकती है, अन्यथा वह एक याद रहने वाली कहानी है।

हँसते हैं, रोते हैं*

यह हरिशंकर परसाई का पहला कहानी-संग्रह है। संग्रह की अधिकांश कहानियाँ निम्न मध्यवर्ग के जीवन को लेकर लिखी गई हैं। कुछ कहानियाँ प्रतीकात्मक हैं। भूमिका में लेखक ने कहा है कि उसने मनुष्य को जैसे हँसते और रोते देखा है, वैसे ही अपनी कहानियों में चित्रित किया है। परन्तु कहानियों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि उसने मनुष्य को केवल रोते देखा है, हँसते नहीं देखा। हाँ, मनुष्य की परिस्थितियों के वैषम्य में उसने पशु को हँसते देखा है। उसे उसने अपने वर्ग के मनुष्य से अधिक सशक्त और प्रसन्न पाया है—यहाँ तक कि उसके प्रति वह उस वर्ग के मनुष्य की स्पर्द्धा जगाना चाहता है। 'मैं नरक से बोल रहा हूँ' शीर्षक कहानी में इस भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। परन्तु न जाने क्यों लेखक ने जगह-जगह इस भाव को दोहराना उचित समझा है। इसमें जहाँ पुनरुक्ति दोष दिखाई देता है, वहाँ साथ ही लेखक की अपरिपक्वता का आभास भी मिलता है।

---

* हँसते हैं-रोते है, लेखक—हरिशंकर परसाई, प्रकाशक—सुषमा साहित्य-मन्दिर, जबलपुर।

Hindi Premi

प्रभाव की दृष्टि से इस संग्रह की सबसे सफल कहानी है : 'सेवा का शौक़'। इस कहानी का मुख्य पात्र है एक सोलह-सत्रह वर्ष का बाल-नवयुवक, जिसे मैट्रिक करते ही एक गाँव के स्कूल की मास्टरी करनी पड़ती है। अपनी निर्धनता और उससे उत्पन्न हीनमन्यता से दबा यह अकालप्रौढ़ शिक्षक, अपने वय की अपेक्षाओं को दबाए हुए, किसी तरह इस कार्य का निर्वहण किए जाता है। पारिवारिक परिस्थितियाँ उसकी विवशता बनकर उसे घेरे हुए हैं। ऐसे में एक शिक्षा-शास्त्री, जो उस स्कूल के संचालक के सम्बन्धी हैं, वहाँ आते हैं और स्कूल का निरीक्षण करते हैं। उन्हें उसकी पढ़ाने की शैली पसन्द नहीं आती। वे चाहते हैं कि वह शिक्षा-शास्त्र की अपेक्षाओं के अनुसार प्रसन्न भाव से बच्चों को पढ़ाया करे। और जब इस दृष्टि से उसकी परीक्षा होने लगती है, तो वह पढ़ाते-पढ़ाते रो देता है...। कहानी की अन्तिम तीन पंक्तियों में प्रकट की गई भावुकता कहानी के प्रभाव में कुछ बाधा डालती है। अच्छा होता यदि लेखक इन पंक्तियों को लिखने के मोह का संवरण कर सका होता।

इस संग्रह की दूसरी सफल कहानी है–'भीतर का घाव', यद्यपि कहानी के वस्तु-संघटन में कुछ शिथिलता आ गई है। कहानी का केन्द्रबिन्दु वही है जो अश्क के एकांकी नाटक 'लक्ष्मी का स्वागत' का है। फिर भी कहानी हृदय-स्पर्शी है और कहानी की अन्तिम पंक्ति में एक आवेश है, जो हृदय पर चोट करता है। निम्न मध्यवर्गीय नैतिकता का जो कुरूप चित्र इस कहानी में दिया गया है, वह इतना परिचित है कि उसके पुनः सामने आने पर 'पुनः' का भाव गौण हो जाता है और उसकी कुरूपता की ही छाप मस्तिष्क पर रह जाती है।

कुछ कहानियों में लेखक ने शैली के नए प्रयोग किए हैं। इन कहानियों में शैली का प्रयोग ही उसका उद्देश्य जान पड़ता है। वस्तु के गौण हो जाने और प्रयोग की अपरिपक्वता के उभर आने से ये कहानियाँ बहुत हल्की पड़ गई हैं। 'रमता जोगी हूँ', 'सुधार', और 'जीवन की कहानी–इसी श्रेणी की कहानियाँ हैं। 'क्या कहा' और 'साड़ी का रंग' ये अन्त को दृष्टि में रखकर लिखी गई कहानियाँ हैं। ऐसी कहानियों में शिल्प पर जिस अधिकार की अपेक्षा होती है, उसके अभाव में ये कहानियाँ अपेक्षित चमत्कार की सृष्टि तो कर नहीं पाती, और अन्य किसी वस्तु या निरीक्षणगत विशेषता के अभाव में कोरा प्रयास ही होती हैं। 'क्या कहा' शीर्षक कहानी की संघटन-शिथिलता इस बात में भी है कि लेखक ने पाँच पात्रों को एक कमरे में बैठाया है, जिनकी संख्या कहानी का अन्त आने तक अनजाने ही छह हो जाती है। वहाँ उसने निर्मला और शीला के अतिरिक्त चार नाम और गिनाए हैं। ऐसी कहानियों से, निःसन्देह, एक संग्रह का मूल्य बहुत कम हो जाता है।

साधारणतया संग्रह की सभी कहानियों में पराजित मनोवृत्ति की छाप स्पष्ट झलकती है। 'मैं', जो संग्रह की अधिकांश कहानियों का मुख्य पात्र है, एक ऐसा

Hindi Premi

व्यक्ति प्रतीत होता है, जो अपने चारों ओर के वातावरण से निराश होकर हर ओर नकारात्मक भाव से सिर हिला रहा हो। भिन्न-भिन्न नाम और छद्म होते हुए भी उसका अन्तर्व्यक्तित्व एक है। वह मनुष्य में साहस के संचार की कामना करता है, पर मनुष्य को देने के लिए कोई संकेत उसके पास नहीं है। विश्वास भी उसके पास नहीं है। इस तरह, संग्रह की भूमिका को पढ़कर लेखक के जिस दृष्टिकोण की कल्पना मस्तिष्क में बन आती है, वह दृष्टिकोण कहानियों में व्याप्त नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने भूमिका के रूप में जो कुछ लिखा है, वह वाक्य-रचना के मोह में पड़कर ही—अनुभूति के आधार पर नहीं। अन्यथा, 'पड़ोसी के बच्चे' और 'भूख का स्वर'—जैसी कहानियों में जो चेहरे उसने देखे हैं, उसके अतिरिक्त मनुष्यों की भीड़ में उसे कुछ और भी चेहरे दिखाई देते—अबोध, चंचल, स्मयमान या आवेशयुक्त चेहरे। वह मनुष्य को अवसाद और प्रतारणा के अतिरिक्त और भी स्थितियों में देख पाता।

कहानियों की भाषा के विषय में भी कुछ कहना अपेक्षित है। लेखक ने कहा है कि उसने कहानियों में अपने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। पात्रों के चरित्र-चित्रण के उद्देश्य से या स्थानीय रंग लाने के लिए क्षेत्र-विशेष के मुहाविरे का प्रयोग करना एक बात है। परन्तु बिना ऐसे किसी उद्देश्य के जब बोलचाल की भाषा के नाम पर कोई भाषा में अनगढ़ वाक्यों की भरमार कर देता है तो उसे केवल प्रयोग की दृष्टि से भी स्वीकार्य नहीं समझा जा सकता। ''उन्हें क्या मालूम कि दवा अलमारी में पड़े-पड़े असर थोड़े ही कर सकती है,'' ऐसे-ऐसे वाक्य लेखक के भाषा पर ठीक अधिकार न रखने का ही परिचय देते हैं।

Hindi Premi

'नूरजहाँ' काव्य–एक परिचयात्मक दृष्टि

नूरजहाँ वह नाम है जिसे सुनते ही गुले-लाला के गुच्छों, दूर-दूर तक फैली हुई रंगीन उपत्यकाओं और मरुभूमि को पार करती हुई ऊँटों की पंक्तियों का दृश्य सामने आने लगता है। जैसे असीम की पर्दे खुल जाते हैं और उनके पीछे से रूप की उस महारानी की मुस्कराती हुई आकृति सामने प्रकट हो जाती है। उस आकृति पर मुग्ध होकर अनेक कवियों ने–विशेषतया हिन्दी और उर्दू के कवियों ने उसके प्रति भावों की अंजलियाँ अर्पित की हैं। गुरुभक्त सिंह के महाकाव्य 'नूरजहाँ' की रचना भी ऐसी ही एक भावांजलि के रूप में हुई है।

नूरजहाँ एक प्रेमकाव्य है। हिन्दी के अधिकांश महाकाव्यों का आधार इतिहास का वह युग है जो अपनी दूरी के कारण बहुत कुछ पौराणिक-सा हो गया है। 'नूरजहाँ' का युग हमारे बहुत पास का युग है, अतः यह अपने ही समय का महाकाव्य प्रतीत होता है।

अभावग्रस्त ग़यास की ईरान से भारत की ओर यात्रा से इस महाकाव्य का आरम्भ होता है। अपनी पत्नी की प्रेरणा से उसे साथ लिए वह एक काफिले के साथ रेगिस्तान पार करने लगता है। तपती हुई बालू के खुले निर्जन प्रदेशों का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है :

''जहाँ भू से मिलता नभछोर।
शीघ्र चल पड़े सभी उस ओर॥
और होता जाता वह दूर।
हुए जाते सब थक कर चूर॥
चतुर्दिक् बालू का संसार।
देख कर हिम्मत जाते हार॥'

मार्ग की अनेक विपत्तियों में से होकर निकलते हुए उस दंपति के जीवन में एक नई विपत्ति कन्या के रूप में जन्म लेती है। परन्तु वह विपत्ति नई ओस की तरह सुन्दर है :

Hindi Premi

"क्षितिज गर्भ से नव ऊषा का
जन्म हुआ ज्यों ही नभ पर।
ओसबिन्दु सी लगी खेलने
तृणदल पर कन्या सुन्दर॥"

वह बालिका जंगल में अकेली छोड़ दी गई। वहाँ एक सरदार की दृष्टि उस पर पड़ी जो उसे अपने घर ले गया। वहाँ वह बालिका—मेहरुन्निसा धीरे-धीरे बढ़ने लगी और शैशव यौवन के संधिकाल तक पहुँच गई।

"वासंती मृदु समीर खा खा
ललिका यौवन बढ़ता जाता।
है मेहरुन्निसा सुन्दरी पर
दिन दिन पानी चढ़ता जाता॥"

और :

"कितनी आँखों के जाल बिछे,
कितनों ही ने डोरा डाला।
संसारजाल में पानी सी
छन जाती थी वह सुखबाला॥"

और एक दिन वाटिका में जब उसने अपने भोलेपन से शाहज़ादा सलीम के पकड़े हुए दो कबूतर उड़ा दिए तो सलीम उसकी मुग्धता पर न्योछावर हो गया। परन्तु राजमन्त्री की लड़की ज़मीला के भड़काने पर अकबर ने सरदार अली कुली—शेर अफ़गन के साथ मेहर का निकाह पढ़ा दिया। मेहर ने चुपचाप इस स्थिति को स्वीकार कर लिया। परन्तु सलीम चैन से नहीं बैठ सका। वह शेर अफ़गन की हत्या कर मेहर को पाने के इरादे से आधी रात के समय मेहर के शयनकक्ष में पहुँच गया। परन्तु मेहर अब अपने को पराई समझ चुकी थी। वह सलीम को देखकर कह उठी :

"कौन कौन, क्या तू सलीम है?
क्या सलीम शहज़ादा?
पर घर जाकर तस्कर बनकर
ऐसा नीच इरादा?"

और :

"नहीं तुम्हारा राज चाहती अपने घर की रानी।
ऐसे नहीं गिराना होता कभी आँख का पानी॥"

और सलीम उसका उग्र भाव देखकर यह कहता लौट आयाः

"अंतिम विदा! चूक सब मेरी करना क्षमा दया कर।
रमणी क्या रहस्य है भगवन्! सोचूँगा घर जाकर॥"

Hindi Premi

शेर अफ़गन'ढाका का हाकिम नियुक्त होकर चला। मेहरुन्निसा ने अपने जीवन के वासंती सपनों की भूमि से इन शब्दों के साथ विदा ली :

"यमुना का कलकल नाद बिदा,
आँखों का वह उन्माद विदा।
आमोदों का प्रासाद विदा,
वह जीवन का आह्लाद विदा॥"

जो नहीं आ सके पुनः बाग़ में
मेरे विहग वसंत विदा।
घेरे घेरे जो फिरता था
मुझको ओ दिव्य दिगंत विदा॥

छू नहीं सकूँगी तुमको अब
मेरे भविष्य के चाँद विदा।
सब तार नियति ने तोड़े हैं
मोदक सरोद के नाद विदा।
लंगर खींचे सब पाल खुले,
जाता विदेश जलयान विदा।
हृदयाम्बुधि के उर्मिल थपेड़
तट ले जाते नहिं मान विदा॥"

और :

"ओ भ्रांति विदा, ओ शांति विदा
ओ अपनी भोली भूल विदा।
ओ मेरी मुरझाई आशाओं
की समाधि के फूल विदा।"

ढाका पहुँचकर मेहर का हृदय कुम्हलाने लगा क्योंकि उसे शेर अफ़गन से वह स्नेह और आदर नहीं मिला जिसकी उसे आशा थी। माँ बनकर भी उसके हृदय की अशांति बनी रही। उसे :

"नहीं और कुछ की इच्छा थी मानवता की आशा थी।
शांतिमयी दंपतिजीवन सुख पाने की अभिलाषा थी–"

जो पूरी नहीं हुई। उधर अकबर की मृत्यु हो जाने से सलीम शहंशाह जहाँगीर का नाम धारणकर सिंहासन पर आसीन हो गया। उसने शेर अफ़गन के स्थान पर

Hindi Premi

कुतबुद्दीन को ढाका का हाकिम बना दिया। बाद में बर्दवान में रहते हुए शेर अफ़गन ने अपनी पत्नी की मान-मर्यादा के लिए अपने प्राण दे दिए।

और :

"बड़े ही धूमधाम से मेहरुन्निसा बेचारी
बाहशाह के राजमहल में सादर गई उतारी।"

राजमहल जाकर मेहर बीमार हो गई। सलीम अब उसके लिए उसके पति का हत्यारा शहंशाह जहाँगीर था। जहाँगीर ने उसके पैरों पड़कर अनुनय की :

"दोषी हूँ, पर प्रेम अंध हूँ या तो मुझे क्षमा दो।
यो यह लो तलवार, ख़ून के बदले ख़ून बहा दो।"

मेहर का हृदय पिघला, पर उसका निश्चय यही रहा कि :

"इस पवित्र रेखा से बाहर पग नहीं धरूँगी।
दूर-दूर से ही पूजा दिनकर की किया करूँगी।"

उसका स्वास्थ्य सुधारने के लिए जहाँगीर उसे अपने साथ काश्मीर ले गया। वहाँ वह एक बार नदीतट पर पाँव फिसल जाने से बेहोश-सा हो गया। मेहर व्याकुल हो उठी। उन व्याकुलता के क्षणों में उससे अपनी एक बात मानने का वचन लेकर जहाँगीर ने कहा :

"अच्छा तो अब नहीं मुकरना,
इच्छा है मेरी यह आज—
अपने नूर जहाँ के सिर पर
रख दूँ केवल अपना ताज।"

मेहन स्नेह और आभार से भर उठी। जहाँगीर ने उसकी आँखों में संकोच की झलक देखकर फिर कहा :

"तुम केवल यह ताज पहन कर
मेरे सम्मुख खिली रहो।
मैं अपनापन तुम में खो दूँ
तुम मुझ में ही मिली रहो॥"

और मेहर जहाँगीर की नूरजहाँ बनकर उसके प्रति समर्पित हो गई।

कवि गुरुभक्तसिंह ने साधारण शब्दों में जगह-जगह मानवीय भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। परन्तु जहाँ तक भावभूमि का सम्बन्ध है, इस काव्य के पात्र मुस्लिम-संस्कृति में पोषित न होकर हिन्दू-संस्कृति में पोषित हुए प्रतीत होते हैं। यह अस्वाभाविकता बहुत खटकती है।

Hindi Premi

तुलसी की भक्ति

तुलसी की भक्ति की विवेचना करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि उनके हृदय में अपने आराध्य की क्या कल्पना रही है। तुलसी ने राम को अनादि, अनन्त, परब्रह्म मानते हुए भी भक्तों के कारण शरीर धारण कर लेने वाला माना है। राम अणु-अणु में भासमान व्यक्त रूप ईश्वर हैं। वे सर्वव्यापक होते हुए भी अपनी इच्छा से भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए एक शरीर में प्रकट हो जाते हैं। उनकी सर्वशक्तिमत्ता के कारण यह संभव है। वैसे दृश्यमान जगत् में सर्वत्र भक्त को राम के दर्शन होते हैं। राम की विश्व-व्यापिनी सत्ता को देख कर भक्त का हृदय उसके रूप पर मुग्ध हो उठता है। सारी प्राकृत सुषमा उसी के रूप की एक झलक है। जीवन की नाना दशाओं में वह जो मर्यादा देखता है, वह उसे अपने प्रभु की मर्यादात्मकता या शील का परिचय देती है। जीवन को संचालित करने वाली आतप मारुत आदि शक्तियों में वह उसकी शक्ति का साक्षात्कार करता है। और जब वही व्यापक ईश्वर शरीर धारण करके भक्त के सामने प्रकट होता है तो उसमें उसे वे तीनों गुण अपनी पराकाष्ठा में मिलते हैं। इसीलिए तुलसी के राम शील, शक्ति और सौंदर्य के आदर्श हैं। सगुण रूप आराध्य में इन तीनों गुणों की आवश्यकता है जिससे आराधक के हृदय में आकर्षण, आस्था और विश्वास बना रहे। सौंदर्य के अभाव में अरुचि, शील के अभाव में संशय और शक्ति के अभाव में संदेह के उत्पन्न होने की संभावना रहती है। क्योंकि राम में हर प्रकार की पूर्णता है, अतः उनमें इन तीनों गुणों की पूर्णता का निदर्शन गोस्वामी जी ने किया है। परन्तु विशेषता यह है कि उन्होंने इस निदर्शन में कहीं स्वाभाविकता का बलिदान नहीं किया। निम्नलिखित पद्य में राम के इन तीनों गुणों का सुन्दर चित्रण हुआ है :

सीस जटा उर बाहु बिसाल विलोचन लाल तिरीछी सी भौहैं।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं।
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यौं हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम बधू सिय सों कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं?

'उर बाहु बिसाल' में राम की शक्ति की ओर संकेत है, और 'सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यौं हमरौ मन मोहै' में उनके शील एवं सौंदर्य का। सीता के प्रति

Hindi Premi

ग्रामवधुओं की यह उक्ति वैसे काव्य की दृष्टि से भी कितनी कलात्मक है! राम के सौंदर्य का वर्णन अन्यत्र इस प्रकार हुआ है :

काम कोटि छवि स्याम सरीरा। नील कंज वारिद गम्भीरा।
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छवि छाई ॥

उनके शील का वर्णनः

सुनि सीता पति सील सुभाउ।
कहत राम बिधु बदन रिसौहैं सपनेहु लखेउ न काउ।

और शक्ति का वर्णन :

लव निमेष परमान जुग काल जासु कोदंड!

जहाँ भी संभव हुआ है गोस्वामी जी ने अपने आराध्य के इन तीन गुणों की ओर संकेत कर दिया है। राम सदा सुन्दर हैं, अखंड शक्ति के भंडार हैं और अनिवार्यतः मर्यादा का पालन करते हैं। वे व्यक्ति-विशेष के ईश्वर नहीं, निखिल ब्रह्मांड के ईश्वर हैं। उनसे पूरी मानवता को परित्राण मिल सकता है। वे शरणागत वत्सल और लोक-रंजनकारी हैं।

तुलसी ने ईश्वर के निर्गुण रूप का कहीं खंडन नहीं किया। उन्होंने तो उस निर्गुण अलक्ष्य अज को ही भक्त-प्रेमवश सगुण रूप में अवतरित माना है :

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बधु वेदा।
अगुन अरूप अलख अज होई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥

इस तरह राम दशरथ-सुत भी हैं और परब्रह्म भी। ये दोनों स्थितियाँ परस्पर विरोधी नहीं हैं। यह तो व्याप्त सत्ता का अपना केन्द्रीकरण मात्र है। अतः जहाँ राम शब्द से धनुषधारी राम का बोध होता है वहाँ सम्पूर्ण जड़-चेतनमई सत्ता का भी। राम नाम के दो अक्षरों में जैसे वह पूरी सत्ता बँध गई है। राम शब्द ही उसका प्रतीक हो गया है :

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।

तुलसी की दृष्टि राम को संपूर्ण विश्व में और संपूर्ण विश्व को राम में देखती थी। सर्वं राममयं जगत् देखने वाले उस भक्त हृदय के लिए वह दो अक्षरों का नाम ही मन्त्रराज था जिसके उच्चारण से भी भवसिन्धु को पार करना संभव था।

उनका विश्वास था कि इस संसार की सृष्टि राम अपनी माया का आश्रय लेकर करते हैं। उन्होंने स्वयं राम के मुख से ही कहलाया है :

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा।

माया संभव होते हुए भी जगत् में राम के रूवरूप का ही प्रकाश है :

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना।
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।
जगत् प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ज्ञान गुन धामू ॥

Hindi Premi

राम को केवल साधारण राजपुत्र न समझ लिया जाए, इसलिए गोस्वामी जी ने स्थान-स्थान पर राम के ईश्वर-रूप का प्रतिपादन उचित समझा है। इसीलिए कथाप्रसंग के बीच भी वे राम के ईश्वरत्व का निर्देश करने लगते हैं और राम के राक्षस-नाश आदि करने पर देवताओं से पुष्पवर्षा करवा देते हैं। वे यह स्पष्ट छाप पाठक के मस्तिष्क पर बैठा देना चाहते हैं कि :

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करइ करम बिधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।
तत बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।
जेहि इमिगावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान् ॥

यह आश्चर्य का विषय नहीं कि इस रूप में राम की कल्पना करने वाले उस कवि ने राम को सर्वोच्च सत्ता का प्रतीक मानते हुए उन्हें 'विधि हरि शंभु नचावन हारे' भी कह दिया। इसके पीछे तुलसी का सांप्रदायिक भाव नहीं, उनकी राम शब्द को परम सत्ता का प्रतीक मानने की दृष्टि ही है।

जहाँ तक भक्ति और ज्ञान के क्षेत्र का सम्बन्ध है, तुलसी ने इन दोनों को परस्पर विरोधी नहीं माना। इन दोनों मार्गों से भगवत्प्राप्ति संभव है, परन्तु ज्ञानमार्ग दुर्गम है और भक्तिमार्ग सुगम। ज्ञान मार्ग का अवलम्बन करने वाला अपने प्रयत्न से राम का प्रिय बनने की चेष्टा करता है तो भक्त स्वयं राम से प्रेम करने लगता है। एक में उस द्वारा अपना लिए जाने का भाव है तो दूसरे में उसे अपना लेने का। कै तोहि लागहिं राम प्रिय कै तू प्रभुप्रिय होहि।

भक्ति का मार्ग न केवल सुगम है, अपितु उसमें निर्बाध रूप से प्रभु की प्राप्ति होती है। ज्ञान पुरुष-रूप है और भक्ति स्त्री-रूप। माया भी स्त्री-रूप है। अतः ज्ञान पर माया के छा जाने की संभावना है, भक्ति पर नहीं। स्त्री स्त्री के मोह में नहीं पड़ती। इसका आशय यह है कि ज्ञान की बौद्धिक प्रक्रिया में भ्रान्ति की संभावना रहती है—भक्ति के रागात्मक क्षेत्र में यह संभावना नहीं है। हमने प्रायः देखा है कि ज्ञानी पथ से विपथ पर भटक जाता है—और वह विपथ से लौटता है तो भक्त के रूप में ड़ी। ज्ञानी विपथगामी हो सकता है और विपथगामी भक्त बन सकता है। अतः भक्ति का मार्ग सुगम भी है और निरापद भी। इसीलिए तुलसी ने भक्ति की प्रतिष्ठा का वर्णन किया है। ज्ञान-मार्ग के प्रति उनके हृदय में विद्वेषभाव नहीं रहा।

Hindi Premi

पंत और नवीन : जीवन-दर्शन

रंगों, ध्वनियों और कोमल भावनाओं के कवि पंत के नवीन जीवन-दर्शन का यह अर्थ नहीं है कि पंत ने अपनी जीवन सम्बन्धी जिज्ञासा का कोई ऐसा समाधान पा लिया है जिसे आज तक की मानव-चेतना प्राप्त नहीं कर सकी थी और न ही यह कि वह जीवन-दर्शन अपने में पूर्ण जीवन की एक नई व्याख्या है। यह ठीक है कि पंत की नवीनतम रचनाओं में उनका झुकाव कोमल भावुकता से उत्तरोत्तर प्रौढ़ चिन्तन की ओर अधिक होता गया है, परन्तु वह चिन्तन भावुकता से मुक्त निःसंग चिन्तन नहीं है जो एक दार्शनिक को किसी निष्कर्ष की ओर ले जाता है, प्रत्युत अपने मन की रागात्मकता में लिप्त एक कल्पनाप्राण व्यक्ति का चिंतन है जिसकी परिणति सहज विश्वास में होती है। पंत का हृदय सहजविश्वासी है, इसलिए एक स्थिति पर उन्होंने जीवन के भौतिकवादी दर्शन को भी विशेष आग्रह के साथ अपना लिया था। परन्तु वह आग्रह अधिक देर नहीं रहा और उनकी सन् चवालीस के बाद की रचनाओं में मानव की भौतिक प्रगति के स्थान पर उसके आध्यात्मिक कल्याण का स्पष्ट आग्रह प्रतीत होने लगा। पंत की चिन्तनधारा का नया मोड़ ही उनका नया जीवन-दर्शन है—इस नवीनता का सम्बन्ध विषय से नहीं, व्यक्ति की स्वीकृति से है।

पंत के मनोलोक में हुआ यह परिवर्तन उनकी 'चिन्तन' शीर्षक कविता में इस रूप में व्यक्त हुआ है :

क्या यह सामाजिक संघर्षण
केवल रे मानव का जीवन?
सुन्दरता आनन्द प्रेम के स्वप्न चिरंतन
क्या केवल प्रभाव के उड़गण?
        रिक्त शरद घन?
क्या यह उचित
कि यह सामाजिक साधारणता
मूल्य व्यक्ति को करे नियन्त्रित?

Hindi Premi

जंगम जीवन ज्वर की जड़ता
करे मनुज आत्मा मर्यादित?

यह उनके अन्तर के व्यक्ति का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की सामाजिकता के प्रति विद्रोह है या यूँ कहें कि जिस स्वीकृति को उन्होंने एक खोल के रूप में अपना लिया था उससे मुक्त होने का उपक्रम है। वे खुलकर उस दर्शन पर आक्षेप करना चाहते हैं जो इकाई की महत्ता को स्वीकार नहीं करता :

मानव जीवन नहीं अकूल
अतलता में ही सीमित।
वहाँ बूँद का मान उदधि से
कहीं अधिक है निश्चित!
बिन्दु सिन्धु? बूँदों का वारिधि
बूँदों पर अवलम्बित,
व्यक्ति समाज? व्यक्ति में रहता
अखिल उदधि अन्तर्हित!

और भौतिक उपलब्धियों पर आश्रित सामाजिक समता को उन्होंने जड़ समता का नाम दे दिया :

आज चतुर्दिक् घृणा द्वेष
स्पर्धा से जगजीवन परितापित,
आज एकता के मन्दिर में
अहम्मन्य जड़ समता स्थापित!

और इस समता की दौड़ में उन्हें मानव जीवन का स्वरूप ऐसा दृष्टिगत होता है :

आज प्रतीति न प्रीति हृदय में
औ' उल्लास न आशा,
प्रतिहिंसा तृष्णा संशय भय
नयनों की शर भाषा!
आत्मा में सौंदर्य नहीं निज
मानव गरिमा मुख पर,
सृजन प्राण चेतना वाष्प सी
उड़-उड़ जाती ऊपर!

पंत के मनोलोक में आए इस परिवर्तन का कारण उनके जीवन की परिस्थितियों को माना जाए या उनके व्यक्तित्व के कोमल निर्माण को, पर इसमें संदेह नहीं कि इससे उनके कृतित्व में दो अन्तर्विरोधी विचारधाराओं को प्रतिनिधित्व मिल गया है।

Hindi Premi

यद्यपि उन्होंने जीवन के भौतिक सत्य के साथ इस रूप में समझौता भी करना चाहा है :

वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन,
भूतवाद हो जिस का रजतन प्राणिवाद जिस का मन,
औ' अध्यात्मवाद हो जिस का हृदय गम्भीर चिरंतन।

फिर भी स्वर्णधूलि और स्वर्णकिरण में व्याप्त ध्वनि व्यक्तिवाद और जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों की एकांत स्वीकृति की ही है। यह स्वीकृति कवि को भारतीय अद्वैतवाद और अरविंद दर्शन के अध्ययन-मनन से ही प्राप्त हुई है। वह मानवात्मा का उत्कर्ष चाहता है और सामान्य भोगलिप्सा से हटकर एक उच्चतर मानवीय भूमि की कल्पना करता है, जिसमें

दीप शिखा सी जगे चेतना
मिट्टी के दीपक से उठ कर,
तैल धारवत् मर्म स्नेह पा
स्वर्ग विभा से दे भूतल भर।
फिर श्रद्धा विश्वास प्रेम से
मानव अन्तर हो अन्तःस्मित,
संयम तप की सुन्दरता से
जग जीवन शतदल दिक्प्रहसित!
प्राणों के स्तर-स्तर में पुलकित
अमर भावनाएँ हों विकसित,
प्रीति पाश में बँध सुन्दरता
काम भीति से हो अकलंकित!

दीपशिखा या स्वर्ण-किरण के रूप में अणु-अणु को आलोकित करती हुई दिव्य चेतना के सहज प्रसार की कामना ही इस बात का प्रमाण है कि बौद्धिक स्तर पर जीवन की परख करता हुआ भी कवि भावुकता से मुक्त नहीं हो पाया। जब वह चाहता है कि

देव वृत्तियों के संगम में
डूबें चिर विरोध संघर्षण,
जीवन के संगीत में अमित
परिणत हो धरती का क्रंदन!

तो इसके लिए किस प्रयत्न का सापेक्ष्य है, यह जानने-सोचने के लिए वह नहीं रुकता। केवल कामना मात्र से जीवन में सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती, इसलिए यदि हम किसी विशेष लक्ष्य की ओर संकेत करें तो साथ यह भी आवश्यक है कि साथ

Hindi Premi

उसकी दिशा और मार्ग का भी संकेत करें। परन्तु जैसा पहले कहा गया है, पंत मुख्यतया कवि हैं दार्शनिक नहीं, इसलिए उनकी आध्यात्मिक उपलब्धि कामना के स्तर से आगे नहीं जा सकी। जिस भूतवाद को उन्होंने मानव जीवन का रजतन स्वीकार किया है उसका कम से कम कार्य-कारण की श्रृंखला में बँधा हुआ एक निश्चित मार्ग तो है, जिस पर चलकर उस रजतन को स्वस्थतर और सुन्दरतर बनाने का प्रयत्न किया जा सकता है। यह ठीक है कि वह रजतन ही सब कुछ नहीं है परन्तु उसके आपेक्षिक महत्त्व को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। हमारी सर्वभूत हितकामना मानव की जिस सुख-समृद्धि की कल्पना करती है उस सुख के कुछ उपादान हैं और उन उपादानों को जुटाने के कुछ साधन हैं। व्यक्ति के स्तर पर उन उपादानों को जुटा देने से हमारा सर्वभूत हितकामना का स्वप्न पूरा नहीं हो सकता। इसलिए वह विश्वजनीन प्रयत्न भी अपेक्षित है जो हमारी कामना का स्वर्ग धरती पर उतार लाए। उस प्रयत्न की बात अनकही रह जाए तो केवल कामना की ज्योति से जीवन की नीराजना का विशेष प्रयोजन न होगा। यही मानववाद की सब से बड़ी दुर्बलता रही है और यही कवि पंत की दुर्बलता भी है। मानवदेह या वह मिट्टी का दीया जिसमें ज्योति बलती है, वह ज्योति का देवालय भी तो पूज्य है और कि वह टूटे-फूटे खँडहर-सा न दिखाई दे इनके लिए किया जाने वाला प्रयत्न भी तो श्लाघनीय है। बिना निश्चित प्रयत्न के हमारे कितना भी चाहने और कहने पर कि

खुला अब ज्योति द्वार
उठा नव प्रीति द्वार,
सृजन शोभा अपार।
कौन करता भिसार,
धरा पर ज्योतिभरण
हँसी लो स्वर्ण किरण।

ज्योति-द्वार नहीं खुलेगा और स्वर्ग-किरण धरती पर हँसती हुई नहीं उतरेगी। आध्यात्मिक स्तर पर मानव-मानव की समता को जाना और समझ लेना और चीज़ है और कबीर की तरह उस समता को लाने का व्यापक प्रयोग करना या उसकी दिशा देना अलग चीज़ है।

संक्षेप में, यहाँ हम पंत की आध्यात्मिकता का स्वरूप भी समझ लें। यह आध्यात्मिकता किसी रहस्यमय सत्ता के प्रति वैयक्तिक आस्था के रूप में प्रकट नहीं हुई है, अपितु यह जड़ जगत् के कण-कण में व्याप्त उस स्पंदमान तत्व के प्रति आस्था है जो जड़ता को नाना रंग-बिरंगे रूप दे देता है। जो बादल में विद्युत् और विद्युत् में द्युति बनकर छिपा आँख से दिखाई भी देता है। दूसरे शब्दों में, पंत ने उसे दृष्टिमान

Hindi Premi

जगत् के अन्तर्हित सुक्ष्म तत्व के रूप में स्वीकार किया है जो उस जगत् से बाहर नहीं है। परन्तु जिससे जगत् को गति, आंनद और उल्लास मिलता है :

यह नीला आकाश न केवल
केवल अनिल न चंचल
इनमें चिर आनन्द भरा
मेरी आत्मा का उज्जवल!
हलकी गहरी छाया के जो
घिरते ये रंग बादल
मेरी आकांक्षा की विद्युत्
बहती इनमें प्रतिपल!

इस तरह चिदानन्दस्वरूप आत्मा के साथ अपने 'मैं' का तादात्म्य स्थापित करके कवि विश्व-भर के साथ व्यक्ति का नाता जोड़ देता है और इसी नाते के आधार पर जगजीवन के सुखमय सामंजस्य का अपना समपना खड़ा करता है :

व्यक्ति विश्व में व्यापक समता
हो जन के भीतर से स्थापित,
मानव के देवत्व से ग्रथित
जन समाज जीवन हो निर्मित।

दार्शनिक स्तर पर पंत के काव्य की यह उपलब्धि भले ही कुछ एकांकी प्रतीत हो, परन्तु इसमें जो सहज विश्वास, आशा और उल्लास की ध्वनि है वह समकालीन साहित्य में एक विशिष्ट महत्त्व रखती है। जबकि युग की परिस्थितियों ने सामान्य रूप से साहित्य में निराशा, उलझन और अविश्वास और अनास्था की ध्वनि ला दी, जबकि साहित्य अधिकाधिक जिए जा रहे जीवन की प्रतिच्छाया-सी बनकर रह रहा है, कुछ अलग और बहुत स्फूर्तिदायक-सा प्रतीत होता है :

हँसी लो स्वर्ण किरण,
शिखर आलोक वरण!
विचरती स्वर्ण किरण
धरा पर ज्योति चरण!
जगे तरु नीड़ सकल
खगों की भीड़ विकल
पवन में गीत नवल
गगन में पंख चपल!
अधलिखे स्वप्न नयन
चूमती स्वर्ण किरण!

Hindi Premi

और :

जयति प्रथम जीवन स्वर्णोदय
रक्त स्फीत लो दिशा का हृदय!
काल तमस व्यवधान चीर कर
किस ने मारा यह स्वर्णिम शर?

और :

स्वर्ण किरण स्वर्ण किरण
विचरतीं धरती पर
स्वप्नों की तूलि धर
चेतना रंजित कर
जगती के रजकण!
स्वर्ण किरण स्वर्ण किरण
नभ से परियों-सी उतर
स्वप्न नयन कर अन्तर
जीवन सौंदर्य के
बरसाती स्मित निर्झर!

Hindi Premi

दायरे से हट कर दायरा*

चॉक के दायरे में खड़ा एक बच्चा और उसे अपनी-अपनी ओर खीचने का प्रयत्न करती दो स्त्रियाँ—बहुत पुरानी कहानी है। कई और रूप भी हैं कहानी के। जैसे। कि बच्चे को काट कर उसके दो टुकड़े कर दिए जाएँ। दोनों में से एक स्त्री हार जाती है। वह यह बरदाश्त नहीं कर सकती कि बच्चे का नाजुक शरीर उस खींचतान में ऐंठा और झिझोंड़ा जाए। दो बार मौक़ा दिए जाने पर भी वह उसे अपनी तरफ़ नहीं खींच पाती। लेकिन यह हार ही उसकी जीत है। क्योंकि इससे साबित हो जाता है कि बच्चे की माँ चाहे वह न हो, पर उसे पालने की हक़दार वही है।

ब्रेख्त का नाटक 'काकेशियन चॉक सर्कल' इसी आख्यायिका के बिन्दु पर आकर समाप्त हो जाता है। तब यह प्रश्न मन में उठता है कि क्या यह इतनी लम्बी यात्रा इस आख्यायिका को रूपायित करने के लिए ही थी?

परन्तु नाटक की प्रस्तावना और उपसंहार इससे अलग एक संकेत देते हैं। उस संकेत के अनुसार यह आख्यायिका केवल एक प्रतीक है। नाटक का उद्देश्य इसी प्रतीक के माध्यम से कुछ और ही बात कहना है। यह बात उस समय-सन्दर्भ से जुड़ी है जिसमें इस नाटक की रचना हुई है। अर्थात् युद्धोत्तरकालीन जर्मनी में नए सिरे से भूमि के बँटवारे और उसकी वैज्ञानिक देख-रेख के प्रश्न से। इसके अतिरिक्त उन सब परिस्थितियों से जिनमें से वह समाज हाल ही में गुज़रा था और तब भी गुज़र रहा था। इसका अर्थ है कि नाटककार की परिकल्पना में उसकी इस रचना का मूल धरातल से बिलकुल हट कर था जिस पर कि इसकी घटनाओं और चरित्रों की सृष्टि की गई थी। घटनाएँ और चरित्र, सभी का अर्थ प्रतीक रूप में ही था और नाटक का पूरा संयोजन एक विशेष प्रभाव के सम्प्रेषण का साधन।

ब्रेख्त एक समाजचेता कलाकर थे—उनके प्रयोगों की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि रचना के इस पक्ष को विशेष रूप से रेखांकित करती है। परन्तु ऐसे किसी भी प्रयोग में दो

---

* कॉकेशियन चॉक सर्कल : नाटककार-बर्तोल्त ब्रेख्त, निर्देशक—कार्ल वेबर, प्रस्तुति-राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली, 1968 में प्रदर्शित। —सं.

Hindi Premi

तरह के खतरे हमेशा रहते हैं—एक, उसके उपदेशात्मक हो जाने का और दूसरा, वस्तु के साथ अर्थ के समन्वित न हो पाने का। इस नाटक को पढ़ते हुए भी यह प्रश्न मन में था और देखते हुए भी—कि क्या ब्रेख़्त इसमें अपने को इन दोनों खतरों से बचा पाए हैं?

यूँ इस अर्थ से हट कर भी नाटक की मूल यात्रा अपने में काफ़ी अर्थवान है। समाज के वर्गों को नाटककार ने लिया है, उनका बाह्य और आन्तरिक यथार्थ स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों में—बौद्धिकता तथा संवेदनात्मकता इन दोनों स्तरों पर—नाटककार की निजी प्रभावोत्पादक शैली में इसमें अभिव्यक्त है। नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा की ओर से कार्ल वेबर के निर्देशन में प्रस्तुत इसका रूप काफ़ी हद तक हमें उस अनुभव के नज़दीक ले जाता है जो इस महाकाव्यात्मक नाट्स-रचना में अन्तर्हित है। कार्ल वेबर की पूरी परिकल्पना की एक सीमा ही शायद इस अभिनय की एक बड़ी विशेषता भी थी—कि उन्होंने अपने प्रस्तुतीकरण को अधिक से अधिक उस स्वरूप के निकट रखना चाहा था जो नाटककार द्वारा अपने जीवन-काल में किए गए प्रस्तुतीकरण का था। इसका कारण निर्देशक द्वारा नाटककार की निजी परिकल्पना को एक रूढ़ि के रूप में स्वीकार करना उतना नहीं था जितना यहाँ के दर्शक को नाटककार के अपने प्रयोगशील मानस की सही-सही झलक दे सकना—और इस दृष्टि से यह प्रयोग केवल अभिनय से आगे भी एक उद्देश्य लिए था। कार्ल वेबर की मंच-सज्जा, चरित्रण, रीति-विधान तथा उपकरणों का प्रयोग, ये सब उस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक थे। कई-एक स्थानीय कठिनाइयों के बावजूद, जिनमें भाषा की कठिनाई सब से बड़ी थी, उनकी इस उद्देश्य में सफलता की सचमुच प्रशंसा की जानी चाहिए।

परन्तु भाषा की कठिनाई बहुत बड़ी थी। यह कठिनाई उनके भाषा से परिचित न होने के कारण ही नहीं थी, अनुवाद की अपनी सीमाओं के कारण भी थी। अनुवाद की भाषा का पूरा ढाँचा काफ़ी अनिश्चित-सा था। लगता था कि अनुवादिका को मूल के साथ अपनी एकात्मता स्थापित करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाया। शायद यह निर्णय भी वे नहीं कर पाई कि इस तरह के नाटक के लिए गद्य की सही लय क्या होनी चाहिए। शब्दों और वाक्य-खण्डों के चुनाव में जो झोल-झटके थे, उनसे थोड़ा और प्रयत्न करने से बचा जा सकता था। एक निश्चित नाट्य-परम्परा न होने के कारण यूँ भी नाटक की भाषा एक बहुत बड़ी चुनौती है हमारे लिए—जब किसी दूसरी नाट्य-परम्परा की रचना को अपनी भाषा का कलेवर देने का प्रश्न हो, तब तो यह चुनौती और भी बढ़ जाती है। नाटक के गेय अंशों में भाषा की यह अनिश्चितता और भी खटकती थी। यह निर्णय कर सकना कठिन था कि पूरी संगीत-रचना कहाँ तक भाषा की सीमाओं से निर्धारित है। जहाँ वनराज भाटिया का संगीत नाटक की मनःस्थितियों के अनुसार अपने में एक प्रवाह ले जाने के लिए संघर्ष

Hindi Premi

करता प्रतीत होता था, वहाँ शब्दों के स्तर पर कोई चीज़ निरन्तर उस प्रवाह को तोड़ती महसूस होती थी। वनराज भाटिया की धुनें कहाँ तक ब्रेख़्त-संगीत के नज़दीक पड़ती थीं, यह प्रश्न अधिक प्रासंगिक नहीं है। क्योंकि कार्ल वेबर के उद्‌देश्य से स्वतन्त्र वे अधिक रूढ़ि-मुक्त हो सकते थे। ब्रेख़्त स्वयं अपनी रूढ़ियों को तोड़ने में विश्वास रखते थे—परन्तु रूढ़ि को तोड़ना कला की एक माँग भी हो सकती है और उस माँग को पूरा न कर सकने की विवशता भी। यहाँ विवशता, मेरे विचार में, संगीतकार की उतनी नहीं, जितनी उसे दिए गए शब्दों की थी।

फिर भी पूरा प्रभाव एक नए नाट्य-अनुभव में से गुज़रने का था जोकि अपने जातीय सन्दर्भ में सर्वथा अपरिचित न होते हुए एक ताजगी का स्पर्श देने वाला था। साथ मन में कई-कई प्रश्नों का जन्म देने वाला कि हम लोग जो प्रायः दर्शक वर्ग के रंगमंच से कट होने की शिकायत करते रहते हैं, क्या सचमुच अपने 'दर्शक वर्ग की दृष्टि से,' उसकी सीमाओं और अपेक्षाओं को सामने रखते हुए, उसके जातीय संस्कारों की पहचान-परख के साथ, उसे 'उसी का' रंगमंच दे सकने के लिए भी कुछ प्रयत्न कर रहे हैं? क्या हमारी रंगमंच की खोज से मीनारों में दिए जाने वाले भाषणों से हटकर और कुछ अनुकरणात्मक उपलब्धियों की दावेदारी से परे अपने सम-सामयिक परिवेश और उसकी सम्भावनाओं से जुड़ पा रही है? और कि क्या हमारी दृष्टि उत्तरोतर संश्लिष्ट होकर सामने आती रंगमंचीय रूढ़ियों के बीच से ही नए रंगमंच को पा सकने की नहीं है? उन सब रूढ़ियों को तोड़कर, अर्थात आज तक के अपने-आप से बाहर आकर, नए सिरे से रंगमंच के विषय में सोच सकना—एक ऐसी शुरुआत के लिए इस तरह का रंग-प्रयोग हमें अवश्य उकसा सकता है, बशर्ते कि इस बात को ध्यान में रखकर चला जाए कि वह शुरुआत इसके भी अस्वीकार के साथ ही सम्भव हो सकती है।

Hindi Premi

Hindi Premi

काव्य

Hindi Premi

Hindi Premi

दुनियाँ

दुनियाँ है यहाँ कोई नहीं हमदर्द किसी का
बनती है बिगड़ जाती है उम्मीद की दुनियाँ
वोह चमन वोह बुलबुलें वोह आशियाना भूल जा
कह रहा है आसमाँ...फसाना भूल जा
यूँ गिराया फलक से दम में दम बाक़ी रहा
तड़पते देखा तो बस सय्याद ने इतना कहा–
हुए हैं... तू अब चहचहाना भूल जा।*

---

* डायरी संख्या-1 के अन्तिम पृष्ठ पर उर्दू में लिखी कविता। नीचे का आधा पन्ना फटा हुआ है और रिक्त स्थानों के शब्द पानी की बूँदों से मिट गए लगते हैं। मदन मोहन 'राकेश' भी उर्दू में ही लिखा गया है। क़ोने में तारीख़ है : 7-8-46. –सं.

Hindi Premi

चाबुक

'क्यों नहीं?'
यह बात
उस एक से ही नहीं,
हर एक से
एक-एक बार कही;
उत्तर के मौन की
विरक्त भाषा—एक-सी
अपनी अधूरी कामना
पीठ पर हर बार
उसी तरह...उसी तरह...
उसी तरह
सही।

Hindi Premi

जो हमें नहीं मिला

आओ
हम जूझें!
मिट्टी के
महामना को पूजें!
बूझें वह सब
जो हममें नहीं है,
जो हमें नहीं मिला,
उस सबसे सूझें!*

* यह शब्द स्पष्टतः पढ़ा नहीं जाता। –सं.

Hindi Premi

उन्नीसवाँ सिगार

दिन का
उन्नीसवाँ सिगार—
पी लिया।
अपने आत्मदाह में
फिर एक बार जी लिया।

Hindi Premi

समय-सारथी

(किशोर साहित्य)

Hindi Premi

Hindi Premi

दो शब्द

इस संकलन में दी गई जीवनियाँ केवल कुछ व्यक्तियों का इतिहास नहीं, एक तरह से पिछले अढ़ाई हज़ार वर्षों की प्रमुख मनःस्थितियों का भी इतिहास है। सुदूर अतीत में गौतम बुद्ध के मन में उठे प्रश्नों से लेकर वर्तमान में मार्टिन लूथर किंग की हत्या तक कहीं एक 'शृंखला है जिसे यहाँ जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। इसीलिए ये जीवनियाँ अपने ऐतिहासिक क्रम में हैं। हर काल की विशेष मनःस्थिति के अनुसार उनका चुनाव किया गया है। पुस्तक का खंडों में विभाजन भी उसी आधार पर है। भारतीय मनःस्थितियों के अध्ययन के साथ-साथ हर समय की समानान्तर विश्व-मनःस्थितियों का भी अध्ययन सम्भव हो सके, उसके लिए हर खंड में दो भारतीय जीवनियों के साथ एक जीवनी विदेश से ले ली गई है।

Hindi Premi

Hindi Premi

गौतम बुद्ध

एक बच्चा जब बड़ा होने लगता है, तो उसके मन में बार-बार प्रश्न जागता है, 'यह क्या है?' बड़े होने पर यह प्रश्न एक दूसरे प्रश्न में बदल जाता है, 'यह क्यों है? अपनी चेतना के विकासकाल में मनुष्य ने कितनी ही बार कितनी ही तरह से इस प्रश्न का सामना किया है। उत्तर ढूँढने के प्रयास में कभी अपने भौतिक अस्तित्व को नकारा है और कभी उसी के रहस्यों का उद्घाटन किया है। फिर भी उसे सालनेवाला यह प्रश्न किसी-न-किसी रूप में उसके लिए चुनौती बना ही रहा है।

इतिहास के पूर्व-काल में इस प्रश्न से साक्षात्कार करनेवालों में से थे गौतम बुद्ध। वे उन महान व्यक्तियों में से थे जो किसी भी प्रश्न का समाधान केवल अपने लिए नहीं खोजते। पूरे विश्व-जीवन का हित और कल्याण उनका उद्देश्य रहता है।

आज से लगभग अढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व कपिलवस्तु के महाराजा शुद्धोदन के घर में इनका जन्म हुआ। वैशाख पूर्णिमा के दिन बालक का जन्म होने के साथ कई ऐसे शगुन हुए कि उसका नाम सिद्धार्थ रख दिया गया–सिद्धार्थ अर्थात् सभी अर्थ सिद्ध करनेवाला।

परन्तु ज्यों-ज्यों सिद्धार्थ बड़े होने लगे, पिता के मन में एक आशंका भी व्याप्त होने लगी। वे साधारण बालकों की तरह खेल-कूद में व्यस्त न रहकर प्रायः अपने में ही खोए रहते। जहाँ एक ओर उनकी असाधारण प्रतिभा विकसित होकर सामने आ रही थी, वहीं दूसरी ओर उनका यह गम्भीर रूप था जो उनकी अवस्था के साथ बिलकुल मेल नहीं खाता था। कुछ ज्योतिषियों ने भी बतलाया था कि यह बालक बड़ा होकर संसार से विरक्त हो सकता है। महाराजा शुद्धोदन का यह विशेष प्रयत्न रहने लगा कि जैसे भी हो सिद्धार्थ को हर तरह के आमोद-प्रमोद के वातावरण में रखा जाए।

कुमार की शिक्षा आरम्भ हुई। कुशाग्र बुद्धि होने से बहुत शीघ्र उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन कर लिया, साथ ही शस्त्रास्त्र-विद्या में भी निपुण हो गए। परन्तु उनकी प्रतिभा से बड़ी थी उनकी संवेदना। किसी भी जीव का दुख उनसे नहीं देखा जाता था। राज्य के एक उत्सव में बैलों की पीठ पर चाबुक पड़ते देख उन्हें लगा जैसे वह

Hindi Premi

मार उन्हीं के शरीर पर पड़ रही हो। वे पसीना-पसीना हो गए। उनकी आँखों में आँसू भर आए।

कुछ समय बाद एक और घटना हुई। वे वन में टहल रहे थे जब एक आहत हंस छटपटाता हुआ उनके पैरों के पास आ गिरा। हंस का तीर से बिंधा शरीर और उसकी छटपटाहट देखकर उनका हृदय उसी तरह छटपटाने लगा। हंस को उन्होंने बाँहों में ले लिया। तीर उसके शरीर से निकालकर अपने शरीर में चुभाया, ताकि उसकी वास्तविक पीड़ा का अनुभव कर सकें। लहू की तड़पती बूँदें बाहर फूट आईं। तभी उनका चचेरा भाई देवदत्त पास आ गया। हंस उसके बाण से आहत हुआ था। देवदत्त ने हंस की माँग की, तो सिद्धार्थ ने देने से इनकार कर दिया। कहा कि उस पर मारनेवाले का उतना अधिकार नहीं है जितना बचानेवाले का है। विवाद महाराजा शुद्धोदन के सामने पहुँचा। उन्होंने सोच-विचार के अनन्तर निर्णय दिया कि दोनों आमने-सामने खड़े हो जाएँ और पक्षी को बीच में छोड़ दिया जाए। वह उड़कर जिसके पास चला जाए, वही उसका अधिकारी होगा। जब ऐसा किया गया, तो पक्षी तुरन्त उड़कर राजकुमार सिद्धार्थ की बाँहों में लौट आया। उन्होंने उसका उपचार करके उसे खुले आकाश में छोड़ दिया।

कुमार युवा हो चुके थे, परन्तु कोई भी आमोद-प्रमोद उनके मन को नहीं बाँध पाता था। उनकी उत्तरोत्तर बढ़ती गम्भीरता और विरक्ति से पिता की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। आख़िर इसका कारण क्या है? क्या ऐसा कोई भी उपाय नहीं हो सकता जिससे कुमार का मन सांसारिक आकर्षणों में रुचि लेने लगे? क्यों ऐसा है कि कुमार का मन वसंत के बाद पतझड़ आते देखा है, तो पहले से कहीं गहरी उदासी में खो जाता है?

महाराजा शुद्धोदन ने हर तरह से सावधानी बरतनी शुरू की। कुछ भी ऐसा कुमार की आँखों के सामने नहीं पड़ना चाहिए जो असुन्दर हो। कुछ भी ऐसा नहीं जो जीर्ण-शीर्ण या सूखा-मुरझाया हो। कुमार की आँखें केवल सुन्दरता को देखें और सुन्दरता के सारे साधन उनके आस-पास जुटा दिए जाएँ। कुमार की इच्छाओं का बहुत ध्यान रखा जाए। वे जो भी इच्छा प्रकट करें, वह तुरन्त पूरी कर दी जाए।

और एक दिन कुमार ने इच्छा प्रकट की नगर-भ्रमण की। महाराज की आज्ञा हुई कि पूरे नगर को फूलों से सजा दिया जाए। स्थान-स्थान पर संगीत-नृत्य का आयोजन हो। कुमार की नगर-यात्रा में ऐसा कुछ भी उनके सामने न पड़े जो विकृत या कुरूप हो।

यात्रा आरम्भ हुई। प्रजा में बहुत उत्साह था। सब-कुछ वैसे ही था जैसा महाराज ने चाहा था। कुमार शान्त रहकर देखते रहे। परन्तु लौटते समय सहसा उनकी दृष्टि एक जगह अटक गई—लाठी पर झुका एक वृद्ध...जर्जर शरीर...काँपती हुई अस्थिर टाँगें।

Hindi Premi

सारथी से पूछा, ''वह कौन है?''

उत्तर मिला, ''एक बूढ़ा व्यक्ति।''

''व्यक्ति बूढ़ा क्यों होता है?'' कुमार ने जानना चाहा। परन्तु इसका उत्तर सारथी के पास नहीं था।

रथ तेज़ी से राजभवन की ओर लौटने लगा। पर कुछ ही दूर जाकर कुमार की आँखें फिर रुकीं। रुक-रुककर साँस लेता, तड़पता, एक व्यक्ति। पूछने पर सारथी ने बतलाया कि वह एक असाध्य रोगी है। ''वह रोगी क्यों है?'' कुमार ने जानना चाहा। परन्तु इसका उत्तर सारथी के पास नहीं था।

नगर की सजावट के बीच से कुमार विक्षुब्ध मन लौटे। रोग और बुढ़ापा—यदि इनसे बचा नहीं जा सकता तो अपने शरीर की सुन्दरता का मान किसलिए? यदि अन्त में उनके शरीर के साथ भी यही होना है, तो...?

राजभवन में लौटकर कुमार की अस्थिरता बढ़ती गई। जो प्रश्न मन में उठे थे, वे और कई-कई प्रश्नों को जन्म दे रहे थे। व्यक्ति जन्म क्यों लेता है? जन्म लेकर युवा क्यों होता है? युवा होने के बाद जराजीर्ण क्यों होता है? रोग-ग्रस्त क्यों होता है? जीवन की इस सारी भूलभुलैया का अर्थ क्या है?

अगले दिन सारथी को लेकर कुमार फिर भ्रमण को निकल गए। नगर की सीमा पर पहुँचकर जो दृश्य देखा, उससे उनके मन में जड़ता-सी घिर आई। चार व्यक्ति एक शव को उठाए जा रहे थे। कुमार देखते रहे, देखते रहे। ''ऐसा क्यों है कि चार जने एक शरीर को ढोकर लिए जा रहे हैं?'' इस बार फिर उन्होंने सारथी से प्रश्न किया। उत्तर मिला कि उस व्यक्ति की मृत्यु हो गई है। उसके शव को दाह के लिए ले आया जा रहा है।

मृत्यु? दाह? अर्थात्, एक दिन आता है जब व्यक्ति की साँस रुक जाती है और वह जीवित नहीं रहता! तब उसी शरीर को, जिसे रात-दिन सँवारा जाता है, जलती लकड़ियों को सौंप दिया जाता है! वह शरीर राख हो जाता है? तो फिर उसके होने की सार्थकता ही क्या है? व्यक्ति को शरीर मिलता ही किसलिए है? और शरीर पाकर वह जो 'सुख' प्राप्त करना चाहता है, वह सुख-सुख किस तरह है? यदि वह सुख नहीं है तो वास्तविक सुख क्या है? शान्ति क्या है? वह शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है?

कुमार अन्तर्मुख रहते...रहते सोचते रहते। विलास के साधनों के बीच उनका मन उचाट रहता। महाराजा शुद्धोदन देखते और अधीर हो उठते। कोई-न-कोई तो उपाय होना ही चाहिए जिससे कुमार के मन विरक्ति दूर की जा सके। शायद गृहस्थ-जीवन के सुख में कुमार का मन रम जाए; सुन्दर-सी पत्नी पाकर उनके सोचने की दिशा बदल जाए। और इसी विचार से शीघ्र ही उन्होंने राजकुमारी यशोधरा से कुमार का विवाह कर दिया।

Hindi Premi

सुन्दर पत्नी। पति का मुँह देखकर बात करनेवाली। गृह-कार्यों में दक्ष। पति की सेवा में अपने जीवन की सार्थकता माननेवाली। कुमार का मन कुछ-कुछ बँधा। उनके होठों पर हल्की मुस्कराहट दिखाई देने लगी। यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया। राहुल के प्रति स्नेह एक और आधार बन गया। महाराजा शुद्धोदन को आशा होने लगी, अब कुमार के मन से अन्दर की चिन्ताएँ हट् जाएँगी। वे व्यर्थ के प्रश्नों में न उलझकर जीवन को जीवन की तरह स्वीकार करने लगेंगे। परन्तु...एक दिन कुमार सामने आ गए। पिता से कहा कि उन्हें घर से जाने की आज्ञा चाहिए। पिता ने पूछा, "क्यों?" तो उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें मोक्ष और शान्ति की खोज है। तब तक एक संन्यासी से उनकी बात हो चुकी थी। अपनी आशंकाएँ संन्यासी के सामने रखने पर उन्हें यही सुझाव मिला था कि जीवन के कष्टों के निवारण का एक ही उपाय है—मोक्ष की साधना। और उस साधना की पहली सीढ़ी है—गृह-त्याग।

पिता ने रोका। कहा, मोक्ष की साधना यौवन बीतने के बाद करनी चाहिए। परन्तु संन्यासी ने कहा था—यौवन ही समय है; अंगों में शक्ति रहते ही साधना की जा सकती है। सिद्धार्थ अपने संकल्प को लेकर अविचल रहे। जब शरीर ज़रा-जीर्ण हो जाएगा, तब क्या साधना होगी?

आषाढ़ पूर्णिमा का प्रथम प्रहर। राजभवन में सब लोग सो चुके थे। कुमार की आँखों में नींद नहीं थी। वे धीरे-से उठे। यशोधरा को देखा—निश्चिन्त भाव से सो रही थी। राहुल पर दृष्टि पड़ी। माँ से सटकर नींद में खोया था। मन हुआ, पुत्र के माथे को सहला दें। एक बार गाल चूम लें, परन्तु आशंका ने रोक लिया। यशोधरा जाग गई, तो? मन की आतुरता पर वश पाकर बाहर निकल आए। सारथी छंदक से घोड़ा निकलवाया और अपनी खोज के अनिश्चित मार्ग पर निकल पड़े। छंदक दूसरा घोड़ा लेकर पीछे गया। कई योजन निकल जाने के बाद कुमार नदी-तट पर रुके। राजसी वेश उतार दिया, तलवार से केश काट लिए। छंदक तथा घोड़े चेतक से विदा लेकर वे गम्भीर वन की गहराइयों में आगे बढ़ गए।

मन भटक रहा है। उसे समाधान चाहिए। लेकिन कैसे? कहाँ? किस रूप में?

राजा बिम्बसार से भेंट हुई। अनेक सिद्ध और तपस्वी मिले। मोक्ष का मार्ग क्या है? जीवन की यातनाओं से छुटकारा कैसे पाया जा सकता है? सिद्धार्थ ने एक-एक विचार-विमर्श किया। उनसे प्रश्न पूछे। उनकी साधना का बीज जानना चाहा। परन्तु कहीं भी मन को सन्तोष नहीं हुआ। कालाभ की शिष्यता की। रुद्र की शिष्यता की। पर लगा कि नहीं, अपना मार्ग स्वयं खोजना होगा। मुक्ति केवल मार्ग पूछने से नहीं, अपनी तपस्या से प्राप्त हो सकती है। बिना अपने शरीर को तपस्या की अग्नि में तपाए कुछ भी सम्भव नहीं। उन्होंने तप आरम्भ किया। सात वर्ष। सर्दी-गर्मी और भुख-प्यास से उदासीन वे सत्य के बिन्दु तक पहुँचने के लिए अपने शरीर को सुखाते

Hindi Premi

रहे। पाँच जिज्ञासु भक्त उनके शिष्य भी बन गए। परन्तु उनका मन अब भी शान्त नहीं हुआ। लगा कि जिस सत्य की उन्हें खोज है, वे अभी उस तक नहीं पहुँच पाए। मोक्ष की साधना में शरीर निर्बल हो गया है, बस। उन्हें तप-व्रत भी निस्सार लगने लगा। सोचा, यह भी छोड़ देंगे। पास ही निरंजना नदी बहती थी। नदी में स्नान किया। फिर वहीं एक पेड़ के नीचे बैठ गए। तभी सुजाता नाम की एक युवती उनके पास आई। वह एक कटोरी में उनके लिए खीर लाई थी। खीर खाकर सिद्धार्थ का शरीर कुछ स्वस्थ हुआ। परन्तु उनके शिष्यों को यह बात अप्रिय लगी और वे उन्हें छोड़कर चले गए। सिद्धार्थ वहीं बैठे रहे। बैठे-बैठे ही उनका मन समाधि की स्थिति में चला गया। शरीर से हटकर मन की साधना। और इसी साधना, इसी समाधि में उन्हें उसी बोधिवृक्ष के नीचे सत्य का साक्षात्कार हुआ।

एक नया जीवन। मन में अब संशय नहीं थे। शंकाएँ नहीं थीं। उन्हें बोध हो चुका था, इसलिए वे बुद्ध थे। सुख-दुख से ऊपर। राग-विराग से दूर। मन में एक प्रकाश था—अपने भौतिक अस्तित्व से आगे की स्थिति को पा लेने का। और इस प्रकाश को उन्हें केवल अपने तक नहीं रखना था; दूसरों तक फैलाना था। उनके पहले के पाँचों शिष्य अब फिर उनके साथ आ गए। उन्हें साथ लेकर वे सारनाथ की ओर चल दिए।

जीव-जीव के लिए मोक्ष। जीव-जीव का कल्याण। अपनी अमृतवाणी से ये उपदेश देते हुए उन्होंने अब कई शिष्य बना लिए। ये शिष्य भिक्षु कहलाते थे। उनका मार्ग धर्म का मार्ग था। उसके प्रचार के लिए जो भिक्षुओं का संगठन था, वह संघ कहलाता था। संघ में स्त्रियाँ और पुरुष सभी सम्मिलित हो सकते थे। जाति और वर्ण का भी कोई भेद नहीं था। चारों ओर अब यह समवेत स्वर गूँजने लगा: 'बुद्धं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि।' वर्षा ऋतु को छोड़कर शेष सभी महीने बुद्ध और उनके शिष्य धर्म-प्रचार में व्यतीत करते। मोक्ष, आर्य, सत्य, अमरत्व—जन्म-दुख, ज़रा-दुख, व्याधि-दुख तथा मृत्यु-दुख इन सभी से बचाव का उपाय। दुखों का कारण व्यक्ति की लालासाएँ हैं। विषयों में आसक्ति तथा अतृप्त वासनाएँ, इन्हीं के कारण व्यक्ति यातनाएँ भोगता है। इनसे बचा जा सके, तो स्वतः सब दुखों का नाश हो सकता है। आत्मा का निर्वाण चाहिए। व्यक्ति का कर्तव्य है, निर्वाण के लिए साधना करना। मूलतः यही बुद्ध की दृष्टि थी, यही दर्शन था। जन- कल्याण के लिए उन्होंने अष्टांग मार्ग का प्रतिपादन भी किया, अर्थात्—अच्छी दृष्टि, अच्छे विचार, मधुर वाणी, शुभ कर्म, शुभ प्रयास, सावधानता, एकाग्रता, पवित्र मन-वचन-कर्म।

उनके दर्शन का एक और पक्ष था अहिंसा। हिंसा बहुत-से दुखों को जन्म देती है, इसलिए उसका परित्याग दुख-निवारण का एक बड़ा उपाय हो सकता है। यह बुद्ध का बताया सत्य और अहिंसा का मार्ग ही था जिसे बाद में चलकर अधिक क्रियात्मक रूप से महात्मा गांधी ने अपना लिया।

Hindi Premi

बौद्ध धर्म का प्रचार बड़ी तीव्रता से हो रहा था। साधारण-से-साधारण व्यक्ति से लेकर राजा-महाराजा तक महात्मा बुद्ध की शिष्यता स्वीकार कर रहे थे। वे स्वयं स्थान-स्थान पर जाकर लोगों को उपदेश देते थे, उन्हें दीक्षित करते थे। जहाँ स्वयं नहीं जा पाते थे, वहाँ अपने शिष्यों को भेज देते थे, इस आदेश के साथ कि वे सबके मन में जीव-करुणा का भाव संचारित करें। उन्हें सत्य और अहिंसा का मार्ग दिखलाएँ। महात्मा बुद्ध के विचारों में कुछ ऐसी शक्ति भी थी कि शीघ्र ही उनका दर्शन समुद्र-पार की सीमाओं को छूने लगा। आज भी बौद्ध-धर्म के जितने अनुयायी भारत में हैं, उससे कहीं बड़ी संख्या में बर्मा, लंका, थाइलैंड तथा जापान जैसे देशों में हैं।

बुद्ध जीवन-भर अपने विचारों की सान पर अपने को तथा अपने शिष्यों को कसते रहे। अहंकार और मलिनता से मन को बचाए रखने की दृष्टि से उन्होंने अपने साथ कई प्रयोग किए। एक प्रयोग था आम्रपाली के यहाँ भोजन के लिए निमन्त्रण स्वीकार करना। आम्रपाली वेश्या थी, पर उसके जीवन की गति जैसे बुद्ध-वाणी की ही राह देख रही थी। बुद्ध के अनुग्रह के बाद वह भी संघ की शरण में आ गई।

उनके जीवन में चुनौती का एक और अवसर आया जब उन्हें अपने पिता की ओर से कपिलवस्तु आने का निमन्त्रण मिला। पुत्र की ख्याति से परिचित होते हुए भी उन्हें भिक्षु-वेश में देखकर पिता का हृदय सन्तप्त हो उठा। उनका घर-घर जाकर भिक्षा माँगना—यह पिता को अपने क्षत्रिय गर्व के अनुकूल नहीं लगा। पिता के सन्ताप को देखते हुए बुद्ध ने उन्हें भी उपदेश दिया। महाराजा शुद्धोदन भी इस तरह संघ की शरण में आ गए। उन्हें राज-परिवार में उपदेश देने ले गए। वहाँ सब लोग आए, यशोधरा नहीं आई। यशोधरा के पास बुद्ध स्वयं गए। यशोधरा के शरीर पर कोई आभूषण नहीं था। वह पैर छूने के लिए झुकी, तो सिर से आँचल सरक गया। केश कटे हुए थे। बुद्ध अवाक् भाव से उसे देखते रहे। फिर उसकी सच्ची साधना के लिए उसकी सराहना कर वहाँ से चलने को हुए, तो यशोधरा ने राहुल से कहा, "पुत्र, वे भिक्षुओं के अग्रणी तुम्हारे पिता हैं। तुम इनसे अपना स्वत्व माँगो।"

राहुल की माँग पर बुद्ध उसे साथ अपने न्यग्रोधा ग्राम ले गए। वहाँ उसे पीले वस्त्र पहनाकर तथा उसके केश कटवाकर उसे भी संघ में सम्मिलित कर लिया।

80 वर्ष की अवस्था में महात्मा बुद्ध ने अपने प्रमुख शिष्य आनन्द को बुलाकर उपदेश दिया, "जैसे गंगा-यमुना आदि नदियाँ अलग-अलग प्रदेशों से निकलकर भी एक ही सागर में मिल जाती हैं, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र—इन सभी वर्णों को एक संघ में मिल जाना चाहिए।"

और इस तरह धर्म-मार्ग के साथ-साथ एक सामाजिक दृष्टि देकर बुद्ध महा-निर्वाण प्राप्त कर गए।

Hindi Premi

सुकरात

सुकरात क्या आत्मवीर थे? यह प्रश्न एथेन्स की जनता में तब चिन्तन का विषय बना जब सुकरात को दफ़ना दिया गया। यही जनता सुकरात को कोसती रही थी। उस व्यक्ति से उसने एक अलगाव बनाए रखा था। परन्तु उस व्यक्ति के न रहने से यह प्रश्न एक सलीब की तरह बाँहें फैलाए उस जनता के सामने आ खड़ा हुआ था। सुकरात क्या थे? एथेन्स की जनता ने यह काम लेस्सीपीस नामक व्यक्ति को सौंपा कि वह खोज-बीन करे कि सुकरात के जीवन का मुख्य उद्देश्य क्या था।

वस्तुतः बहुत कम लोग सुकरात के जीते-जी जान सके थे कि सुकरात का जीवन उनके आदर्शों का सजीव उदाहरण था। जिस तरह प्लेटों ने सुकरात के दर्शन-पक्ष की व्याख्या की है, उससे पता चलता है कि सुकरात का जीवन मानव के दार्शनिक चिन्तन का एक आधार-बिन्दु था। सुकरात ने दार्शनिकता को जैसे आकाश से उतारकर धरती पर ला स्थापित किया था।

यों सुकरात की बाहरी आकृति को देखकर किसी को उनके दार्शनिक या साधारण विद्वान, तक होने का विश्वास नहीं हो सकता था। मोटे होंठ, चपटी नाक और घूरती हुई आँखें। एक बार एक आकृति-विशेषज्ञ ने उनका चेहरा देखते ही कह दिया था कि वे एक भ्रष्ट, कपटी, धूर्त, निर्लज्ज और चरित्रहीन व्यक्ति है। विशेषज्ञ के इस कथन पर सुकरात के प्रशंसक अत्यधिक उत्तेजित्त होकर उस विशेषज्ञ पर टूट पड़े थे। सुकरात उन्हें रोक न लेते, तो विशेषज्ञ की हड्डी-पसली एक हो गई होती। परन्तु सुकरात ने कहा कि 'विशेषज्ञ ने जो कुछ कहा है वह गलत नहीं है। मैंने अपनी बुरी प्रवृत्तियों के कार्य-कारण का विश्लेषण करते हुए उन्हें सुधारा है।'

सुकरात के इस कथन का वास्तविक अर्थ यह था कि व्यक्ति स्वयं ही अपने हर कार्य के लिए उत्तरदायी है। उसके जीवन की सार्थकता इसी में है कि वह अपने कार्य-कलाप को समझे, जाने और एक-एक क्षण की परतें उठाकर अपना जीवन-दर्पण देखने की कोशिश करे। अपने पूरे जीवन में सुकरात इसी तथ्य की खोज करते रहे। यह आत्म-दर्पण की खोज ही उन्हें सालती रही। व्यक्ति की आत्मा महान् कैसे हो सकती है? जीवन को सुधारा कैसे जा सकता है? प्लेटो के कुछ लिखित सम्वाद हमें

Hindi Premi

सुकरात को समझने में सहायता देते हैं। प्लेटो ने सुकरात की युक्तियों तथा उनके जीवन-दर्शन को कुछ प्रश्नोत्तरों के माध्यम से हम तक पहुँचाया है।

लेखक जेनोफीन भी सुकरात के उन इने-गिने साथियों में से था जिसने सुकरात के अन्तिम भाषण लिपि-बद्ध किए। उन भाषणों की प्रतिध्वनि आज भी 469 ई.पू. यूनान के उस स्वर्णकाल की याद दिलाती है जब एथेन्स नगर में सुकरात का जन्म हुआ। सुकरात के पिता एक साधारण शिल्पकार थे। माँ एक साधारण दाई थी। सुकरात भी अपने को 'अर्धरात्रि के विचारों की धाय' कहते थे, क्योंकि रात-रात-भर जागकर सोच में डूबे हुए वे अच्छे और बुरे का विश्लेषण करते रहते थे। एक विचारक होने के साथ-साथ वे वीर भी थे। सामाजिक जीवन के कई संघर्षों में उन्होंने निर्भय आत्मवीर के रूप में भाग्य लिया। नागरिक जीवन के आपातकाल में वे डेलियम और एम्फ़ीपोलिस नामक नगरों में निर्भीकतापूर्वक डटे रहे।

परन्तु इस निर्भीक व्यक्तित्व से हटकर उनके जीवन का मुख्य पक्ष था जीवन व्यतीत करने की विधि के सम्बन्ध में सोचना, उपदेश देना। अपने समय के वे सबसे बड़े ज्ञानी थे। बहुत सवेरे उठने की जैसे उन्हें सनक थी। उठते ही भ्रमण के उद्देश्य से घर से निकल पड़ते। खुले में नंगे बदन या नाम मात्र के वस्त्रों में घूमते रहते। फटेहाल इस व्यक्ति को पहनने-ओढ़ने या खाने-पीने से कोई सरोकार ही नहीं था। उन-जैसा बदशक्ल या बदहाल कोई भी व्यक्ति एथेन्सवासियों को दीख जाता, तो वे कहते, 'देखना, सुकरात चले आ रहे हैं।' सुकरात अपनी यह ख्याति जानते थे, परन्तु लोगों की ऐसी बातों की वे चिन्ता नहीं करते थे। बाहर गर्मी है या सर्दी, गले में कोट है या कमीज़, पाँव में जूता है या नहीं, इस सबकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता था। उन्हें लगता था कि मनुष्य का यदि कोई महत्त्व है, तो मनुष्य-रूप में ही है—बाहर के उपकरणों से कोई मनुष्य अच्छा या बुरा नहीं बनता।

और अपनी इस जीवन-दृष्टि के कारण वे एथेन्सवासियों में बदनाम थे। लोग उन्हें फूहड़ कहते थे। उनकी पत्नी से यह सब सहन नहीं होता था। वह कभी उन पर झल्लाती, कभी लोगों पर चिल्लाने लगती। सुकरात उसे शान्त करने के लिए समझाते कि उसका पति दूसरे एथेन्सवासियों जैसा कहाँ है? वह अगर भौतिक पदार्थों में रुचि लेनेवाला होता, और उसे अच्छा खाना, अच्छा पहनावा और अच्छा व्यवहार मिलता, तो वह कब का एथेन्स छोड़कर भाग गया होता।

इस तरह एथेन्सवासी चाहे सुकरात की कितनी खिल्ली उड़ाते, उन्हें तिरस्कृत करते, सुकरात सब-कुछ चुपचाप सह लेते। यहाँ तक कि वे शारीरिक कष्ट को भी उतनी ही शान्ति से झेल लेते जितनी शान्ति से मान-अपमान को। न तो सुकरात को अपनी देह से कोई लगाव था, न उनके मन में देश-विदेश में पर्यटन की इच्छा थी और न ही यह जिज्ञासा कि देश में कहाँ क्या हो रहा है। इन निरर्थक बातों से अपने

Hindi Premi

को अलग-थलग रखकर वे केवल अपने उद्देश्य की साधना में डूबे रहते थे। और उद्देश्य यह था कि लोगों में आत्म-जागृति पैदा हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे सोच में डूबे, गलियों-बाज़ारों में चक्कर काटते रहे। जहाँ अवसर मिलता, लोगों को समझाने की कोशिश करते और लोगों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देते। पूछनेवाले लोग कौन हैं, कैसे हैं, इसकी वे चिन्ता न करते। जहाँ जैसी भी भीड़ मिल गई, उसी से बातें करने लगते। इस तरह छोटे-बड़े तथा उच्च-नीच, सभी वर्गों के लोग सुकरात को सुनते। कई बार जन-समुदाय बेसिर-पैर के सवालों से सुकरात को बेहद परेशान करता, परन्तु सुकरात के पास हर सवाल का कुछ-न-कुछ जवाब होता। लोग उत्तर-प्रत्युत्तर का ढोंग रचते, सुकरात को झूठा और मक्कार साबित करने की चेष्टा करते, लेकिन सुकरात अपने पक्ष का प्रतिपादन करते रहते। दूसरों के षड्यन्त्रों से वे अपने को अनजान बनाए रखते। और सरल-से-सरल उदाहरण प्रस्तुत करके हर वाद-विवाद में लोगों को चकित कर देते। बहुत बार उनके शब्दों में तीखा व्यंग्य भी रहता—सुकराती व्यंग्य। और व्यंग्य की तीखी धार के सहारे वे लोगों को अपने मंतव्य की ओर खींच लाते। उनका कहना था कि 'आन्तरिक अच्छाई' के बिना आदमी दो कौड़ी का है। सुकरात जानते थे कि उनके अधिकांश श्रोता उनकी बातों पर ध्यान नहीं देते, परन्तु उन्हें यह विश्वास भी था कि जिस किसी के अन्दर 'अच्छाई' का बीज है, वह उनकी बात सुनकर सही मार्ग पर चल निकलेगा। वे मानते थे कि भलाई का ज्ञान अपने में ही वरदान है। अतः उनकी कही बातें व्यर्थ कदापि नहीं जातीं। वे लोगों को ज्ञान देना चाहते थे, क्योंकि उनके अनुसार अज्ञान विष है और ज्ञान वह औषधि जिससे मनुष्य अपने पर तथा दूसरों पर श्रद्धा रखना सीख सकता है।

परन्तु एथेन्सवासियों को सुकरात को पीड़ित करने में सुख मिलता था। इसका कारण यह भी था कि वे लोग सुकरात की युक्तियों की ताब नहीं ला सकते थे। वे सुकरात पर झुँझलाते और उनसे अशोभनीय व्यवहार करते थे। कई बार सुकरात को लोगों से लातें और चपतें खानी पड़तीं, परन्तु वे सारी शारीरिक यन्त्रणाओं को चुपचाप सह जाते। एक बार एक व्यक्ति ने उनके सिर के बाल नोंच लिए, परन्तु वे तब भी पूर्ववत खड़े अपनी बातें कहते रहे। इस तरह के शारीरिक त्रास से जो स्वास्थ्य की क्षति होती, उसे वे व्यायाम से पूरी कर लेते। यों उनका स्वास्थ्य अच्छा था—उतना ही जितना कि इच्छा-शक्ति प्रबल थी। वे निर्भीक भाव से बड़े-बड़े निर्णय ले लेते और उनका पालन अक्षरशः अपने कथनानुसार करते।

जिस समय वे एथेन्स की परिषद् के सदस्य चुने गए उस समय दस सेनापतियों को अधिकारियों ने एक अपराध के सिलसिले में दंड दिया था। अकेले सुकरात ने अपना मत दंड के विपक्ष में दिया। एथेन्सवासियों ने सुकरात का भारी विरोध किया कि सुकरात का विधि-विरोधी न्याय ग़लत है। लेकिन वे दस सेनापति जीवन-भर

Hindi Premi

सुकरात की अच्छाई को नहीं भूले। एक बार 404 ई.पू. में सुकरात को परिषद् की ओर से कुछ गिरफ्तारियों की आज्ञा मिली, तो उन्हें कानून-विरोधी मानकर उन्होंने वैसा करने से इनकार कर दिया। वे जानते थे कि इसका परिणाम मृत्यु से भी भयंकर हो सकता है। परन्तु जो बात गलत थी, उसे ठीक मान लेने के लिए उन्हें कैसे विवश किया जा सकता था?

और उन्हीं सुकरात को जब स्वयं दंडित किया गया तो उन्होंने औरों के विरोध करने पर भी दंड को स्वीकार करते हुए कहा, ''विधि-विधान जो ठीक समझता है, सुकरात उसके आगे सिर झुकाने को तैयार है।'' यह सुकरात के चरित्र का दूसरा पक्ष था।

उस समय सुकरात के एक मित्र ने उसे दंड का लिखित प्रत्युत्तर देने को कहा, तो सुकरात ने स्वीकार नहीं किया। उससे पहले उसी मित्र ने सुकरात को घर बनाने के लिए ज़मीन का टुकड़ा देना चाहा था, व्यवसाय के लिए धन देना चाहा था, किन्तु सुकरात ने वह सहायता स्वीकार नहीं की थी। बहुत-सी दूसरी उपयोगी वस्तुओं के लिए भी कहा था कि वे उन सब वस्तुओं के बिना भी निर्वाह कर सकते हैं। परन्तु बाहर जो व्यक्ति इतना दृढ़ था, घर में वह अपनी बात नहीं चला पाता था। घर में पत्नी के अतिरिक्त एक पुत्र भी था। पत्नी पर उनकी अच्छाई की उलटी ही प्रतिक्रिया हुआ करती। एक सौत पहले संसार छोड़ चुकी थी, इसलिए वह उन्हें कोसती कि तुम्हारे साथ नरक भोगने को मैं ही बची हूँ। इस पर सुकरात मुस्करा देते और अत्यन्त सहज भाव से समझाते, ''तुम्हें तो केवल जीवित रहने के लिए खाना चाहिए, लेकिन मुझे तो हर चीज़ की ज़रूरत है। समाज की भी और उससे मिलनेवाले आदर-सत्कार की भी।''

एक बार उनकी पत्नी ने एक धनाढ्य परिवार को अपने घर पर खाने के लिए निमन्त्रित किया और सुकरात से अच्छे भोजन की व्यवस्था के लिए धन माँगा। सुकरात ने उत्तर दिया, ''कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति अच्छे भोजन से तृप्त नहीं होता। अच्छा व्यवहार ही सबसे बड़ी तृप्ति है। और यदि तुम्हारे अतिथि निकृष्ट कोटि के हैं, तो उनकी तृप्ति-अतृप्ति से हमें वास्ता ही क्या?'' इस तरह वे गृहस्थी में भी अपने ज्ञान से ही काम चलाना चाहते। पत्नी प्रायः उनकी बातों को अनसुनी करती, पर जब उसकी अपनी बात सुकरात की ओर से अनसुनी कर दी जाती तो वह धीरज खो देती। लोग कहते हैं कि वह स्त्री बहुत झगड़ालू थी और प्रायः सुकरात पर बरस पड़ती थी। एक बार गुस्से में उसने सुकरात के सिर पर पानी की बाल्टी उँड़ेल दी, तो सुकरात शान्तिपूर्वक बोले, ''मैं जानता था, गरजने के बाद अब तुम बरसोगी भी। तुम्हारे बरसने का भी मुझे अभ्यास हो गया है।'' उसी समय सुकरात के जाने-माने मित्र ने प्रवेश किया और सुकरात की बात का विरोध करते हुए कहा कि सुकरात

Hindi Premi

को अपनी पत्नी के साथ कड़ाई बरतनी चाहिए। किन्तु सुकरात ने उत्तर दिया कि पत्नी के विद्रोही स्वभाव से उन्हें उलटे लाभ होता है। "अड़ियल घोड़ों से जूझने का अभ्यास होने से ही व्यक्ति सामान्य घोड़ों पर सहज क़ाबू पा सकता है। इसके झगड़ालूपन को सहकर मैं दूसरों लोगों से आसानी से निबट लेता हूँ। मेरे लिए इसकी चीख़-पुकार सिर्फ़ चर्खे की घों-घों, चक्की की खरड़-खरड़ या मुर्गे की बाँग की तरह है। मैं इस सबका आदी हो गया हूँ। एक व्यक्ति के विवाहित या अविवाहित होने में अब मुझे कोई अन्तर ही नहीं जान पड़ता।"

परन्तु, अन्तर सुकरात को जान पड़ा था जब सुकरात को विष दिया जानेवाला था और उससे पहले पत्नी बच्चों को साथ लेकर रोती हुई सामने आई थी, तो उन्होंने उधर से मुँह फेरकर कहा था, "इसे वापस घर पहुँचा दो।" अन्दर का कोई बहुत ही कोमल तार था जो उस समय झनझना गया था।

यही थे सुकरात। अपने युग के विज्ञ पुरुष। तत्व-ज्ञाता। विचारक। वे मृत्यु से नहीं डरते। आत्मा के अनन्त काल तक अमर रहने में विश्वास रखते थे। गुण-ग्राहकता को ही एकमात्र ठोस सौदा समझते थे। उनकी आचार-विचार संहिता ईसा की ऊँचाईयों को छूती थी। परन्तु वह अवसर ही ऐसा था।

काफ़ी रहस्यमय व्यक्तित्व था उनका। जो लोग ढोंग रचाकर अपने को बड़ा सिद्ध करने का प्रयत्न करते, वे उनके मुँह पर उन्हें मूर्ख कहकर प्रसन्न हो लेते। एक बार एनिटस को, जो अपने को बहुत मानता था, सुकरात ने बिना आडम्बर के मूर्ख सिद्ध कर दिया। इस पर एनिटस ने लोगों को सुकरात के विरुद्ध भड़काना शुरू किया। एथेन्स के बहुत-से लोग उत्तेजित होकर सुकरात को 'मूर्ख-मूर्ख' कहकर आवाज़ें कसने लगे। बात बढ़ती गई। अन्ततः एनिटस और उसके साथी मैलेटस ने सुकरात को धर्म-विरोधी घोषित कर दिया। सुकरात के प्रशंसक नौजवान भी तब भड़क उठे। उन्होंने इस आक्षेप का विरोध किया। मैलेटस ने अब सुकरात पर नौजवानों को पथ-भ्रष्ट करने तथा उन्हें नास्तिक बनाने का आरोप लगाया। सुकरात के अनुयायियों ने इसे निराधार प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। अन्त में मैलेटस ने अधिकारियों पर ज़ोर डाला कि सारा एथेन्स चाहता है कि सुकरात को दंडित किया जाए। राज्य को चाहिए कि सुकरात को प्राण-दंड दे।

सुकरात के एक अन्य मित्र ने उक्त अभियोग का उत्तर लिखा और सुकरात को दिखलाया। सुकरात ने मज़बून की प्रशंसा की, किन्तु उसे अपने उपयुक्त नहीं माना। जब सुकरात को प्राण-दंड की आज्ञा हुई, वे सत्तर वर्ष के थे। जीवन के पचास से अधिक वर्षों से निर्बन्ध भाव से लोगों को 'अच्छाई' के मार्ग का उपदेश देते रहे थे। बताना चाहते रहे थे कि मनुष्य साधारण भोग-विलास से ऊपर उठकर आत्मवीर बन सकता है। 399 ई.पू. में जब प्राण-दंड की जगह उन्हें देश से निर्वासन की सज़ा सुनाई

Hindi Premi

गई, तो उन्होंने कहा, ''देश से निर्वासन मृत्यु-दंड है। निर्वासन केवल देश-द्रोही को ही दिया जाता है।'' बाद में जब मृत्यु-दंड की जगह उन्हें तीस 'माईन्स' का जुर्माना देने को कहा गया, तो सुकरात वह देने को तैयार न हुए। सुकरात के बौद्धिक आग्रह का यह एक निराशाजनक पक्ष था। उनका शिष्य क्राइटो भी यहाँ पहुँचकर हताश हो गया। अधिकारी सुकरात से और रुष्ट हो गए। सुकरात तब भी जेल में अपने शिष्यों तथा प्रशंसकों से घिरे उन्हें शान्ति का उपदेश दे रहे थे। उनकी पत्नी उन लोगों से कह रही थी कि यह अन्तिम भाषण है। शाम के पाँच बजे राज्य की ओर से कर्मचारी हथकड़ियों-बेड़ियों से कसे सुकरात को विष पिलाने के लिए आए, तो वे मित्रों से वार्तालाप कर रहे थे। मुड़कर उन्होंने पत्नी और बच्चों को देखा और मुँह दूसरी ओर करते हुए कहा, ''इसे वापस घर पहुँचा दो।''

विष का प्याला जेलर के हाथ से लेकर वे गटागट पी गए। घुटनों के पास जहाँ बेड़ियाँ कसी थीं, वहाँ हाथ से थोड़ा मला और इधर-उधर टहलने लगे। शिष्य लोग उन्हें घेरकर अमरत्व के सम्बन्ध में उनका अन्तिम भाषण सुनते रहे। धीरे-धीरे विष चढ़ने के साथ सुकरात बेसुध होने लगे। तब क्राइटो को बुलाकर उन्होंने कहा, ''क्राइटो, बलि के एक मुर्गे का उधार मेरे ऊपर है। तुम क्या मेरा यह ऋण चुका दोगे?''

क्राइटो ने विश्वास दिलाया कि वह ऋण चुका देगा।

प्लेटो के इतिहास में इतना ही वर्णन है। इसके बाद का वर्णन है एथेन्सवासियों के विषय में—कि इस महान् व्यक्ति की मृत्यु के बाद उन्होंने कितना पश्चाताप किया। परन्तु वह न्यायप्रिय व्यक्ति तो सदा के लिए प्रस्थान कर चुका था—मन में कहीं यह प्रश्न लिए कि 'अच्छाई' चाहना यदि मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, तो उस स्वाभाविकता की ओर उसकी सहज प्रवृत्ति क्यों नहीं होती?

Hindi Premi

अशोक

स्तम्भ, स्तूप, शिलालेख—देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा का कहना है कि...। राजा के मन में बहुत व्याकुलता जाग उठी थी। बहुत-सी बातें थीं जो उसे अपनी प्रजा के मन में बैठानी थीं। बहुत कुछ था जो उसे प्रजा के लिए करना था और उसकी घोषणाएँ उस तक पहुँचानी थीं। समाज में व्याप्त कुरीतियों और अन्धविश्वासों का उसे नाश करना था। लोगों को परस्पर दया-भाव और संवेदना का सन्देश देना था। एक युद्ध-क्षेत्र में उसकी विजय ने उसे इस तरह हरा दिया था कि पूरा जीवन ही उसके लिए हिंसा, अनाचार और कुरीतियों से लड़ने का युद्ध-क्षेत्र बन गया था। उसे वह सबकुछ करना था जिससे आस-पास का जीवन अधिक सुन्दर और व्यवस्थित हो सके। उसने चिकित्सालय खुलवाए—मनुष्य के लिए ही नहीं, पशुपक्षियों तक के लिए। उद्यान लगवाए, कुएँ खुदवाए। पेड़ रोपे, जड़ी-बूटियाँ उगवाईं। सड़कें बनवाईं, धर्मशालाओं की स्थापना की। पशु-वध पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगा दिए। शिकार बन्द कर दिया तथा उपयोगी पशुओं के वध का सर्वथा निषेध कर दिया। प्रजापालन के कड़े नियमों के अनुशासन में स्वयं अपने को जकड़ लिया। इस तरह प्रजा के लिए उसके ये विशेषण सार्थक हो उठे—देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा।

राजा का नाम था अशोक। मौर्य-सम्राट् अशोक।

अशोक के अन्दर जिस व्याकुलता ने उनसे ये सब कार्य कराए, उसका एक अपना इतिहास था। उन्होंने एक ऐसी भयानक वास्तविकता को प्रत्यक्ष देखा था जिसने उनके मन-प्राणों को अन्दर से हिला दिया था। यह वास्तविकता थी कलिंग के युद्ध में हुआ नर-संहार तथा उसके परिणाम। पराक्रमी वे अन्त तक रहे। परन्तु वह पराक्रम संहार का नहीं, सहानुभूति का था।

पहले इस पराक्रम का रूप दूसरा था। चुनौतियों से लड़ने की उद्दाम कामना उनके अन्दर सदा से रही थी। राज्य-भार सँभालने से लेकर चालीस वर्ष तक यह कामना किसी-न-किसी रूप में उनमें बनी ही रही। सम्राट चन्द्रगुप्त ने मौर्यवंश को जो कीर्ति दी थी, उसे निखारकर उन्होंने एक नए ही शिखर पर पहुँचा दिया।

Hindi Premi

224 ई.पू. उत्तर में तक्षशिला तथा मध्य-भारत में उज्जैन तक एकक्षत्र राज्य करनेवाले सम्राट् चन्द्रगुप्त ने सैल्यूकस की यूनानी सेनाओं को वापस खदेड़ दिया था। चाणक्य-नीति के आश्रय से उन्होंने अपने राज्य को एक नए एकता-सूत्र में बाँध लिया था। राज्य की सीमाओं की रक्षा के लिए छः लाख वीर सैनिक नियुक्त थे। इससे प्रजा में सुरक्षा की भावना आ गई थी। अपने चौबीस वर्षीय राज्यकाल में उन्होंने लोगों को अन्य विषयों के अतिरिक्त राजनीति की भी शिक्षा दी, उन्हें शस्त्रास्त्र विद्या में भी निपुण बनाया। उनके पुत्र बिन्दुसार ने अपने पच्चीस वर्षीय राज्यकाल में राज्य-विस्तार को प्रमुखता दी। बिन्दुसार के बाद आए अशोक। यह स्वाभाविक ही था कि पिता की तरह वे भी राज्य-विस्तार की भावना से प्रेरित होते। इस भावना का ही परिणाम था कलिंग का युद्ध।

परन्तु मार-काट का इतिहास कलिंग से पहले का था। कहा जाता है कि अशोक ने अपने भाई सुमन तथा अन्य भाइयों को सदा के लिए अपने मार्ग से हटाकर राज्य-भार सँभाला था। इस तथ्य का कोई प्रमाण नहीं मिलता, तो भी इतिहासकारों की धारणा है कि अशोक के बड़े भाई सुमन बुद्धि और पराक्रम में अशोक की समानता नहीं कर सकते थे। सुमन की माँ रानी धर्मा राजकन्या थीं, जबकि अशोक की माँ सुभद्रांगी एक दरिद्र ब्राह्मण की बेटी थीं। बेटे के पैदा होने से ही उसके मन का शोक दूर हुआ था, इसलिए उन्होंने उसका नाम अशोक रख दिया था। प्रारम्भ में सम्राट् बिन्दुसार अशोक को उतना नहीं चाहते थे। वे बड़े बेटे सुमन को ही राजगद्दी देने के पक्ष में थे। परन्तु समय के साथ-साथ अशोक की कुशाग्रता अधिक खुलकर सामने आती गई थी। अन्ततः जब सम्राट् बिन्दुंसार के सौ पुत्रों का बुद्धि-परीक्षण हुआ, तो बड़ा लड़का सुमन अशोक के सामने टिक नहीं सका। बिन्दुसार ने अपने प्रधानमन्त्री से प्रतिभा-परीक्षण का परिणाम पूछा तो पता चला कि उनका जो पुत्र सबसे अधिक वीर, सबसे अधिक राजनीति-निष्णात तथा सबसे अधिक विवेकशाली है, वह है अशोक। बिन्दुसार ने मन्त्रिमंडल के परामर्श से अशोक को युवराज घोषित कर दिया।

कुछ समय बाद तक्षशिला से विद्रोह के समाचार आने लगे। बिन्दुसार ने विद्रोह को दबाने के लिए सुमन को भेजा। परन्तु सुमन को सफलता नहीं मिली। वह ऐसे ही तक्षशिला से लौट आया। उसके बाद अशोक को भेजा गया। अशोक ने न केवल विद्रोह को शान्त कर दिया, साथ ही तक्षशिला की प्रजा का प्रेम और विश्वास भी जीत लिया। उसके बाद अशोक को दूसरी बार तक्षशिला और फिर उज्जैन भेजा गया। वह बहुत अच्छा प्रशासक सिद्ध हुआ। उन्हीं दिनों अशोक को पिता के अस्वस्थ होने का समाचार मिला। उनके उज्जैन से पाटलिपुत्र पहुँचने के बाद सम्राट् बिन्दुसार की मृत्यु हुई।

Hindi Premi

अपने राज्य के आरम्भिक दिनों में अशोक की राजनीति उग्र थी और राज्य-विस्तार की इच्छा प्रबल। सिंहासन पर अधिकार रखने में अनेक बाधाएँ थीं, परन्तु उन सबको समाप्त करने में वे सफल रहे। विरोधियों को दबाने में चार वर्ष लगे और अन्ततः अशोक का राजतिलक हो गया, सम्राट्-पद सँभालने के साथ ही अशोक ने अपने पिता की तरह प्रतिदिन हज़ारों ब्राह्मणों को भोजन कराना आरम्भ किया। प्रजा को प्रसन्न तथा सुखी रखने के कई और भी उपाय किए। फिर भी उनकी दृष्टि मुख्यतः इस पर रहती थी कि राज्य-व्यवस्था त्रुटिहीन हो और हर तरह से अनुशासन बना रहे। अपने राज्यकाल के आठवें वर्ष तक सब-कुछ व्यवस्थित कर लेने के बाद उनकी दृष्टि अपनी भौगोलिक सीमा से आगे देखने लगी। मन में स्वप्न जागा कि "जो कुछ है, उसे बनाए रखना ही एक सम्राट् के लिए पर्याप्त नहीं; उसकी वास्तविक सफलता उसे प्राप्त करने में है जो नहीं है।"

कलिंग एक छोटा-सा राज्य था—गोदावरी और महानदी के बीच—बंगाल की खाड़ी के निकट। उसके तीन ओर मौर्य साम्राज्य की सीमाएँ थीं। कलिंग की भूमि बहुत उपजाऊ थी। प्रजा वीर थी। नन्दवंश को उखाड़कर जब मौर्यवंश ने अपना राज्य स्थापित किया, तो कलिंग को स्वतन्त्र रहने दिया गया था। कुछ ही वर्षों में कलिंग ने खेती-बाड़ी, उद्योग तथा शिक्षा आदि में पर्याप्त प्रगति कर ली थी। इस समय तक आकर कलिंग की सैनिक शक्ति भी काफ़ी दृढ़ हो चुकी थी। कलिंगवासियों का अपने पर मान—यह मौर्यवंशी सम्राट् की अपनी अवहेलना की तरह लग रहा था। वह छोटा-सा राज्य अपने छोटेपन के बावजूद अपनी समानता का दावेदार था। यह आशंका भी थी कि वह छोटा-सा राज्य विदेशी शक्तियों से मिलकर कभी उनके लिए एक चुनौती भी बन सकता है। अशोक ने कलिंग पर अधिकार करने का निर्णय कर लिया। उस प्रदेश को तीन ओर से सेनाओं द्वारा घेर लिया गया तथा समुद्र की ओर से समुद्री यान आगे बढ़ा दिए गए। तब कलिंग की राजधानी में दूत भेजा गया कि मौर्यसाम्राज्य उनके साथ मित्रता का सम्बन्ध चाहता है। उन्हें अपने शासन में लेना उसका उद्देश्य नहीं है।

कलिंग के राजा ने अपनी मन्त्रि-परिषद् तथा सेना-नायकों का मत लिया। युद्ध की विभीषिका तथा अनिष्ट की सब सम्भावनाएँ उनके सामने रखीं। परन्तु कलिंगवासियों का स्वाभिमान स्थिति से समझौता करने को तैयार नहीं हुआ। उन्हें मौर्य-साम्राज्य द्वारा घेरा डालकर मित्रता का सन्देश भेजना सर्वथा असह्य लगा। उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए युद्ध करने का निश्चय कर लिया। युद्ध छिड़ गया। मौर्य सेनाओं ने पूरी शक्ति के साथ कलिंग पर आक्रमण कर दिया। कलिंग के सैनिक कई दिनों तक उनका सामना करते रहे, परन्तु अन्ततः उनकी सीमित शक्ति चुकने लगी। कलिंगराज वीरगति पा गए। बचे हुए योद्धाओं का साहस

Hindi Premi

टूट गया। उनके लगभग एक लाख सैनिक जान दे चुके थे, उससे कहीं अधिक बन्दी बना लिए गए थे। उन्हें पराजय स्वीकार करनी पड़ी।

अशोक ने जो विजय का स्वप्न देखा था, वह पूरा हो चुका था। परन्तु उस स्वप्न का दृश्य बहुत कुरूप था। चारों ओर मरे-अधमरे शरीर। दम तोड़ते लोगों की कराहें...चीलें और गिद्ध...हड्डियाँ और लहू। अशोक ने रणभूमि में आकर अपनी आँखों से विजय का दृश्य देखा। उसे लगा कि उसके स्वप्न को किसी ने चीर-फाड़ दिया है; पैरों से कुचलकर मिट्टी में गाड़ दिया है। क्या यही था उनका राज्य-विस्तार? यही थी वह उपलब्धि जिसके लिए इतनी बड़ी योजना बनाई गई थी?

अशोक जड़ होकर देखते रहे। वह दृश्य आँखों में उतरता गया—बिना बाँहों के शरीर...बिना शरीरों के बाँहें...मनुष्यों का एक खेत...बुरी तरह रौंदा गया। मनुष्य पर मनुष्य की बर्बरता और उसके बिखरे परिणाम। स्वप्न एक दुःस्वप्न में बदल गया। यह सब क्यों किया उन्होंने? कोई भी यह सब क्यों करता है? युद्ध और विध्वंस का अर्थ? उससे प्राप्ति?

अशोक का मन अपने प्रति ग्लानि से भर गया। लगा कि पूरा उत्तरदायित्व स्वयं उन्हीं का है। इसका प्रायश्चित क्या होगा? यह प्रश्न उनके मन को मथने लगा। अब क्या किया जाए? किस तरह अपने मन में स्थिरता और शान्ति लाई जाए? किस तरह यह अपराध सिर से उतरे? किस तरह यह दुःस्वप्न आँखों से दूर हो?

हृदय में निरन्तर एक पीड़ा। एक दंश। मैंने यह सब किया है तो मुझी को इसके विपरीत कुछ करना होगा। वह कुछ क्या हो? कैसे हो?

उन्होंने प्रण किया कि जीवन-भर तलवार को नहीं छुएँगे। किसी भी जीव की हत्या नहीं करेंगे। कलिंग में हुई नर-हत्या का प्रायश्चित उन सब कार्यों से करेंगे जिनसे सभी प्राणियों का हित हो, कल्याण हो और उसकी व्याकुलता शिलालेखों में बाहर आने लगी—देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा का कहना है कि...।

युद्ध के बाद के दो वर्ष। एकान्तवास तथा धार्मिक कार्य-कलापों में बिताए गए इन दो वर्षों में अशोक बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का अध्ययन करते रहे; उनका अनुसरण करने का भरकस प्रयत्न करते रहे। अहिंसा के मार्ग से सत्य की उपलब्धि। जीव-दया, जीव-करुणा। अशोक ने निर्णय कर लिया कि वे बौद्ध-धर्म की दीक्षा ले लेंगे। बौद्ध-आचार्य उपगुप्त उन दिनों मथुरा में धर्म-प्रचार कर रहे थे, अशोक ने उनके पास जाकर दीक्षा लेने की अनुमति चाही, तो उपगुप्त स्वयं उनके पास चले आए। अशोक दीक्षित हो गए।

धर्म पर आश्रित राज्य। धर्म पर आश्रित समाज। अशोक का वास्तविक साम्राज्य-विस्तार अब आरम्भ हुआ। यह साम्राज्य था उनकी आस्था का, उनके धार्मिक विश्वास का। उत्तर में हिन्दूकुश पर्वत से दक्षिण में मैसूर तक तथा पश्चिम

Hindi Premi

में अरब सागर से लेकर पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक अशोक की यशोगाथा फैलने लगी। अपने जीवनकाल में ही उन्होंने बौद्ध-धर्म का सन्देश समुद्र-पार के कई देशों तक पहुँचा दिया। वे स्वयं सम्राट् होते हुए भी भिक्षु थे—एक भिक्षु सम्राट्। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा का कहना है कि...मानव का धर्म है दासों, अधीनों एवं विवशों के साथ उचित व्यवहार करना...सेवकों व श्रमिकों पर दया-भाव रखना।

वे मानव को अन्दर से बदल देना चाहते थे। चाहते थे कि ऐसा क्रूर कार्य कभी कोई न करे जैसा कि कलिंग युद्ध में उनके आदेश से हुआ था। इसलिए उनके शिलालेख एक पूरे जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति बन गए। देश में स्थान-स्थान पर उन्होंने बौद्ध-विहार खुलवा दिए। उनमें उपदेश-कक्षाएँ खुलवा दीं। अहिंसा का प्रचार। सत्य का प्रचार। राज्य-धर्म का प्रचार। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा का कहना है कि... विजय शस्त्रों द्वारा न प्राप्त की जाए। सद्भावना के दूत सारे देशों में भेजे जाएँ। अमात्यजन अपने उद्देश्य सूझ-बूझ के साथ दूसरे सम्प्रदायों के सामने रखें। किसी सम्प्रदाय को भला-बुरा न कहा जाए। सभी धर्मों का समान आदर हो। दान एवं सत्कार की पूजा हो। अन्धविश्वास किसी धर्म की राह का बाधक न हो।

सहिष्णुता, सद्भाव, प्रेम, दूसरों के गुणों का आदर, दूसरों के धार्मिक विश्वास का सम्मान—यही उनकी दृष्टि में वास्तविक धर्म था। बुद्ध के मार्ग को उन्होंने इसी रूप में समझा था और चाहते थे कि शेष लोग भी इसी रूप में समझें।

धार्मिक आस्था अधिक गहरी होने के साथ उनके मन में इच्छा जागी बौद्ध-तीर्थों के दर्शन की। वे लुम्बिनी गए। कपिलवस्तु गए। लुम्बिनी में एक स्तम्भ स्थापित किया। लुम्बिनी ग्राम पर से धार्मिक कर हटा दिया। उसके बाद कुशीनगर गए। गया में बोधिवृक्ष के दर्शन किए। सारनाथ गए। जिस किसी तीर्थ-स्थान पर पहुँचे, वहीं स्तम्भ, स्तूप और शिलालेख स्थापित कर दिए।

अशोक के शिलालेख उनके मानसिक निर्माण का परिचय तो देते ही हैं, साथ ही वे उस काल के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की भी पर्याप्त जानकारी देते हैं। उनके स्तूप उनके सिद्धान्तों का विवरण देने के अतिरिक्त उस समय की स्थापत्यकला के भी उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, इनमें अशोक की लाट पचास फ़ीट ऊँची है और बहुत भारी भी। इसमें कहीं कोई जोड़ नहीं। इसके अतिरिक्त कई स्तूप चालीस-पैंतालिस फ़ीट ऊँचे हैं और मनों भारी। इन पर कई तरह की आकृतियाँ खुदी हैं—घोड़े, हाथी, सिंह और बैल। ये उनके राज-धर्म के प्रतीक हैं। दूसरी ओर वे आकृतियाँ हैं जो उनके धार्मिक विश्वास को मुखरित करती हैं।

कलिंग-विजय ने मन में जो प्रश्न उठा दिए थे, वे जीवन-भर उन्हीं प्रश्नों के उत्तर अपने कार्यों से देते रहे। बौद्ध-धर्म का जितना प्रचार-प्रसार अशोक के कारण हुआ, उतना शायद अन्यथा न हो पाता। बुद्ध के अवतरण की गाथा, बुद्ध के सिद्धान्त

Hindi Premi

दूर-दूर तक पहुँचाना, यह उनके जीवन के अन्तिम दिनों का उद्देश्य बन गया था। उनकी बहन आनन्दी पहले ही भिक्षुणी बन चुकी थीं। अब छोटा भाई तिष्य भिक्षु-सभा का अध्यक्ष बना। पुत्री संघमित्रा, पुत्र महेन्द्र सैकड़ों को साथ लेकर मिस्र, सीरिया, जावा तथा सुमात्रा आदि देशों में धर्म-प्रचार करने निकल पड़े। अशोक साम्राज्य से उठी बौद्ध-क्रान्ति पूरे एशिया की धार्मिक क्रान्ति बन गई।

Hindi Premi

अन्तराल : विद्रोही आस्थाएँ

जोन ऑफ़ आर्क

30 मई, 1431 का दिन। फ्रांस के नगर रूआँ का चौराहा। असंख्य लोगों की भीड़ वहाँ एक दृश्य देखने के लिए जमा थी। वह दृश्य था एक युवा लड़की को जीवित जलाया जाना। लड़की स्थिर आँखों से सामने के समुदाय को देख रही थी या शायद सामने से अधिक अपने अन्दर। उसके चेहरे पर मृत्यु का आतंक नहीं था। कोई गहरी छाया भी नहीं थी। उसके लिए यह सब उतना ही सहज था कि जितना कि वह सारा संघर्ष जिसमें से वह तब तक गुज़र चुकी थी। उसी सहजता के साथ उसने अपने लिए क्रॉस की माँग की। एक सिपाही ने लकड़ी के दो बँधे टुकड़े उसकी ओर बढ़ा दिए। फिर जब उसका शरीर जलने लगा, तो पास के एक गिरजाघर में क्रॉस लाकर उसकी आँखों के सामने कर दिया गया। आग की ऊँची उठती लपटों में घिरे हुए उसने उस क्रॉस को चूम लिया। मुँह से केवल एक स्वर निकला, 'जीसस!' बाद में उसकी चिता में देखा गया कि उसका हृदय नहीं जला था। उसके शरीर की राख सेन नदी में फेंक दी गई।

लड़की का नाम था जोन ऑफ़ आर्क। उस पर कई अभियोग थे मुख्य अभियोग था धार्मिक प्रतिष्ठान के प्रति विद्रोह का। वह प्रतिष्ठान के अनुशासन में न बँधकर दैव शक्तियों से सीधे आदान-प्रदान की बात करती थी। कहती थी कि उसे उन शक्तियों से आदेश मिलते हैं। वह उनकी आवाज़ें सुनती है। कभी-कभी उन्हें आँखों के सामने देखती भी है। प्रतिष्ठान को यह सब झूठ और आडम्बर लगता था—शैतान की साधना करने वाली एक लड़की का पाखंड, या राजनीतिक चालें चलने का एक ढंग।

जोन का जन्म सन् 1412 में एक साधारण किसान के घर में हुआ था। शिक्षा-दीक्षा न होने पर भी वह लड़की काफ़ी सूझ-बूझ रखती थी। बहुत मनोयोग से वह घर के काम तथा सिलाई-कढ़ाई करती, पिता की भेड़ें चराने जाती। उसका गाँव फ्रांस के उस भाग में था जो बरगंडी-राज के प्रभाव-क्षेत्र में आता था। अतः बचपन से ही वह उस आतंक से परिचित थी जो उसके देश को घेरे हुए था। पशुओं के साथ कई बार वह काफ़ी दूर निकल जाती, जहाँ युद्ध की छाया उसे बहुत पास मँडराती

Hindi Premi

महसूस होती। फ्रांस पर होने वाले आक्रमणों के जो क़िस्से उसने घर में सुन रखे थे, वे उसके मन में वास्तविक आकार धारण करने लगते। अतीत की कथाएँ उसके लिए वर्तमान बन जातीं और वह बहुत अस्थिर महसूस करती। उसे लगता कि वह उस पूरे इतिहास में जीकर आई है; वह सब उसी पर बीता है और आगे का इतिहास भी उसी पर बीतने जा रहा है। 'वह इतिहास क्या होगा?' वह अपने से पूछती और एकान्त मनोयोग से अपने प्रश्न का उत्तर जानना चाहती। तब उसे लगता कि सरसराते पत्तों में से गुज़रती हवा को एक वाणी मिल गई है—वह वाणी उसे आने वाले दिनों के संकेत दे रही है। यह बाहर वर्ष की थी जब एक दिन उसने इस बात की घोषणा भी कर दी कि कोई दैवी स्वर उसके कानों में गूँजता है जो उसे आने वाली घटनाओं का आभास देकर कुछ कार्य करने की प्रेरणा देता है। इसके साथ ही उसने वह व्रत भी ले लिया कि वह जीवन-भर विवाह नहीं करेगी; कुँवारी रहकर दैवी आदेशों के अनुसार जीवन बिताएगी। धीरे-धीरे यह विश्वास उसके मन में दृढ़ होता गया कि उसके जीवन का उद्‌देश्य है अपने देख की रक्षा करना और वहाँ के वास्तविक शासक को राजमुकुट दिलाना। उसके किसान पिता को ये बातें बहुत विचित्र लगतीं। वह सोचता कि शायद डराने-धमकाने से लड़की रास्ते पर आ जाए। वह उसकी बातों का मज़ाक उड़ाता, उस पर ग़ुस्सा करता। कहता कि वह बाज़ नहीं आएगी, तो वह उसे कुएँ में फेंक देगा। परन्तु लड़की बिना इस सबसे प्रभावित हुए चुपचाप अपने अन्तर के आदेशों के अनुसार चलते जाने की बात सोचती रहती। और ऐसे ही एक आदेश ने सोलह वर्ष की उम्र में उसे रोबेयर द वान्द्रीकू के महल में ले जा खड़ा किया। उसने रोबेयर से कहा कि उसे शीनों नगर की ओर जाने के लिए कुछ अंगरक्षक साथ चाहिए। रोबेयर, जो कि एक सीधा अक्खड़ सैनिक था, अचकचाकर उसे देखता रहा। यह सोलह साल की नाज़ुक-सी लड़की उससे विचित्र ही अनुमति चाह रही थी; अनुमति ही नहीं, सहायता भी। कह रही थी कि उसे सेंट माइकेल, सेंट कैथरीन तथा सेंट मागरिट से आदेश मिला है कि वह विदेशी आक्रमणकारियों से अपने देश की रक्षा करे। वह उसकी बात पर उसी तरह हँसा जैसे जोन का पिता हँसा करता था। जोन को सहायता नहीं मिली और उसे वापस अपने गाँव लौट आना पड़ा। परन्तु उसने प्रयत्न नहीं छोड़ा। कुछ और लोगों से रोबेयर को कहलाकर आख़िर उसने सहायता ले ली। उसकी जिन बातों को रोबेयर ने मूर्खतापूर्ण बताया था, उनसे रोबेयर के कुछ-एक समर्थकों-अनुयायियों को विश्वास दिला लेना, उसके सार्वजनिक जीवन की पहली विजय थी सन् 1428 के जनवरी महीने में छः सैनिकों के साथ वह पुरुष-वेष में शीनों नगर की ओर चल दी।

वहाँ फ्रांस के राजा चार्ल्स से उसकी भेंट हुई। उसने अपना प्रस्ताव सामने रखा—वह अंग्रेज़ सेनाओं से घिरे अरलेयाँ नगर का उद्धार करना चाहती है; इस कार्य के

Hindi Premi

लिए उसे दैवी ओदश मिला है; सेना की एक टुकड़ी का संचालन उसे सौंपकर उसे वहाँ भेज दिया जाए। प्रस्ताव बहुत अटपटा होने पर भी चार्ल्स ने उसे ऐसे ही उड़ाया नहीं। उस लड़की की आँखों में कुछ ऐसा था जिससे उस पर अविश्वास नहीं होता था। जोन ने एक और तरह से भी उसे अपने दैवी साक्षात्कार का परिचय देकर उसके विश्वास को दृढ़ कर दिया। चार्ल्स को लगा कि जोन सचमुच उसके लिए दैवी सहायता लेकर आई है। उसने घोषणा कर दी कि प्वातिए-स्थित धार्मिक समुदाय उसे अपनी परीक्षा में खरी पाए, तो उसे अरलेयाँ के बचाव का कार्य सौंप दिया जाएगा।

नगर उस समय युद्ध और आतंक के मनहूस साये में जी रहा था। वहाँ के राजभवन का वैभव, अधिकारियों का दबदबा, नागरिकों का रहन-सहन, सब-कुछ एक ऐसे निम्न धरातल पर था कि किसी को उसके बचाव की आशा ही नहीं रही थी। राजसी ठाठ-बाट एक ऐसी टूट-फूट की स्थिति में था कि कोई भी सैनिक या नागरिक उसकी रक्षा कर सकने का नैतिक साहस अपने में अनुभव नहीं करता था। राजभवन के अन्दर और बाहर छोटे-बड़े षड्यन्त्र रचे जा रहे थे। हर व्यक्ति अपनी सुरक्षा तथा लाभ की दृष्टि से किसी-न-किसी प्रपंच में उलझा था, या निराशा से अभिभूत किसी तरह वहाँ से निकल जाने और कहीं और जाकर रोटी का उपाय करने के विचार से आक्रान्त था। हरएक के मन में डर था कि पता नहीं कब अंग्रेज़ सैनिक नगर पर अधिकार करके उन सबको बेघर कर देंगे—उनके बचे-खुचे साधन-सम्मान को एड़ियों से रौंद देंगे। कमज़ोर चार्ल्स के भविष्य पर उन्हें कोई विश्वास नहीं था। जिसकी अपनी माँ यह ताना कसती थी कि उसकी रगों में वीरों का-सा ख़ून नहीं है, उससे किसी भी तरह के सच्चे नेतृत्व की आशा ही कैसे की जा सकती थी?

और ऐसे में वहाँ आ पहुँची जोन—चार हज़ार सैनिकों के साथ। तलवार और पाँच क्रॉस धारण किए। उसके आने के साथ ही जैसे एक चमत्कार हो गया। टूटे हुए शहर में सहसा एक नए उत्साह की लहर दौड़ गई। वही लोग जो इतने पस्त हो चुके थे कि अंग्रेज़ों के आने के नाम से ही दहल जाते थे, सहसा पुनरुज्जीवित हो उठे। जोन के व्यक्तित्व में एक अपूर्व शक्ति थी दूसरों में विश्वास फूँक सकने की। इसके अतिरिक्त उसके दैवी सम्बन्ध की आभा उसके साथ थी। उसकी प्रेरणा से उन लोगों ने अब एक नए निश्चय के साथ युद्ध करना आरम्भ किया। तुरेल नगर पर फ्रांसीसियों का अधिकार जोन की बहुत बड़ी सैनिक विजय थी। यह माना जाता था कि अंग्रेज़ों के उस गढ़ में किसी भी तरह प्रवेश नहीं किया जा सकता। जोन ने वहाँ इस तरह आक्रमण-पर-आक्रमण किए कि कुछ ही दिनों में असम्भव सम्भव में परिवर्तित हो गया। वह मोर्चे से सिर्फ़ एक बार हटी—कन्धा ज़ख़्मी हो जाने से। पर पट्टी बँधवाकर वह फिर से आ डटी और अन्तिम आक्रमण के बाद उसके सैनिक

Hindi Premi

तुरेल में प्रवेश कर गए। अंग्रेज़ कमांडर ग्लासडेल कुछ सैनिकों के साथ पुल पार करते हुए पुल के टूट जाने से नदी में गिरकर बह गया।

फ्रांसीसी सेनाओं का आत्म-विश्वास एक बिन्दु पर पहुँच गया। जब तक जोन उनके साथ थी, उन्हें कोई नहीं हरा सकता था। एक के बाद एक आक्रमण। एक के बाद एक विजय। अनेक नगरों से अंग्रेज़ों को खदेड़ दिया गया। जोन की उपस्थिति ही उनके लिए विजय का प्रतीक थी। अंग्रेज़ सैनिकों का साहस इस तरह टूट गया था कि वे कहीं भी उसका डटकर सामना नहीं कर पा रहे थे। उनके लिए जोन एक ऐसे बुरे नक्षत्र की तरह थी जिसके साए में उनके लिए कहीं भी विजय सम्भव नहीं थी।

और जोन देख रही थी कि जिस संकल्प को लेकर चली थी, उसे पूरा करने का अवसर आ गया है। उसे अब चार्ल्स को राँस नामक नगर में ले जाना और वहाँ परम्परागत रीति से उसका राजतिलक करना था। एक बार राजधानी पर अधिकार होने के बाद फ्रांस की भूमि से अंग्रेज़ों को बिलकुल बाहर कर देना कठिन नहीं था।

बरगंडी प्रदेश से होते हुए राँस की ओर अभियान। रास्ते के कुछ मोर्चे ऐसे ही जीत लिए गए; कुछ जगह थोड़ा युद्ध हुआ। परन्तु जिस आँधी के वेग से जोन चली थी, उसी वेग से वह अपने लक्ष्य-स्थान तक पहुँच गई। वहाँ चार्ल्स का राज्याभिषेक करते हुए उसने कहा, "ईश्वर की इच्छा पूरी हुई, नेक राजा! उसने चाहा था कि मैं अरलेयाँ को घेरे से मुक्त करके तुम्हें यहाँ अभिषेक के लिए ले जाऊँ। अब उसने दिखला दिया है कि फ्रांस के वास्तविक राजा तुम्हीं हो और यह राज्य केवल तुम्हारा है।"

फ्रांस के शत्रुओं को जीतने-जीतने में जोन ने कई लोगों को अपना व्यक्तिगत शत्रु बना लिया था। अभिषेक के बाद भी चार्ल्स में वह शक्ति और विश्वास नहीं आ पाया जो जोन में था। इसलिए आगे का इतिहास जोन के असफल संघर्षों का इतिहास है। जोन ने पेरिन पर आक्रमण करना चाहा, तो उसे पूरी सुविधाएँ नहीं दी गईं। वह आक्रमण सफल नहीं रहा। चार्ल्स अपनी अन्दरूनी कमज़ोरी के कारण समझौतेबाजी में लग गया था। वह जोन का आभार चुकाना चाहता था उसे पद उपाधि और सुविधाएँ देकर। आगे युद्ध करने के साधन जुटाने से वह कतरा रहा था। जोन को कहीं से भी अंग्रेज़ों के आगे बढ़ने का समाचार मिलता, तो उसका ख़ून खौल उठता। आख़िर कम्पैनिए नगर पर अंग्रेज़ों और बरगंडियनों के आक्रमण का समाचार पाकर वह वहाँ की लड़ाई लड़ने पहुँच गई और एक मुठभेड़ में बन्दी बना ली गई। कोशाँ नामक पादरी पहले से ही उसका शत्रु था। उसके षड्यन्त्र से जोन को अंग्रेज़ों के हाथों में सौंप दिया गया।

अंग्रेज़ों को जोन से बदला लेना था, लेकिन वैधानिक कार्यवाही का ढोंग पूरा करके। यूँ यह घोषणा वे पहले ही कर चुके थे कि हाथ लगने पर वे जोन को ज़िन्दा

Hindi Premi

जलाएँगे। परन्तु जोन की मृत्यु उसे और यशस्वी बना दे, यह उन्हें स्वीकार नहीं था। उन्हें पहले जोन के नाम को धूल में मिलाना था। यह प्रमाणित करना था कि उसका धार्मिक बाना केवल एक ढकोसला है। इसलिए रुआँ नगर में एक धार्मिक अदालत का संगठन करके उसमें जोन पर अभियोग लगाया गया कि वह एक घृणित जादूगरनी है जिसे उसकी काली विद्या के लिए सज़ा दी जानी चाहिए। इस अदालत का मुखिया बनाया गया पादरी कोशाँ।

मुक़द्दमा शुरू हुआ और एक वर्ष तक चलता रहा। जोन अपनी स्थिर आस्था के साथ हर अभियोग का उत्तर देती रही। पादरी कोशाँ का एक मात्र उद्देश्य था कि किसी तरह जोन को अपराध-स्वीकृति के लिए बाध्य किया जा सके। इसके लिए उसे तरह-तरह की यन्त्रणाएँ दी जातीं। कई और यन्त्रणाओं का डर दिखलाया जाता। धर्म के नाम पर हर तरह की क्रूरता उससे बरती जाती। अधमरी-सी जोन अदालत में पेश होती, पर उसके उत्तरों का स्वर वही रहता। जोन के साथ जो कुछ बीत रहा था, उसकी जानकारी चार्ल्स को थी। परन्तु अपने स्वार्थों से घिरे उस व्यक्ति ने जोन की सहायता के लिए कुछ भी नहीं किया। जोन के साथ जो बर्बरता का व्यवहार हो रहा था, उसके उदाहरण इतिहास में बहुत कम हैं। उस पर लगाए जाने वाले मुख्य अभियोग थे कि वह शैतान के प्रभाव में कार्य करती रही है; कि उसे सुनाई देने वाली आवाज़ें झूठी थीं; कि वह स्त्री होकर पुरुष-वेश धारण करती रही है; और सबसे बड़ा पाप यह कि उसने गिरजे और पादरियों की शरण में न आकर सीधे ईश्वर के साथ सम्पर्क रखने की बात उठाई है।

चार्ल्स की तो बात अलग, जनता में भी कोई ऐसा नहीं था जो जोन के पक्ष में आवाज़ उठाता। जोन ने देश के लिए क्या किया था, इसे जैसे सब लोग भूल गए थे। युद्ध-भूमि में हज़ारों का नेतृत्व करने वाली वह लड़की अब बिलकुल अकेली पड़ गई थी। वह थी और जेल की दीवारें। उन दीवारों के बाहर अदालत का कटघरा। जेल के दरवाज़े पर काले कपड़ों से लैस सैनिक। अदालत में सफ़ेद कपड़े पहने धर्माध्यक्ष। सब जगह लोगों की उठती उँगलियाँ। डरी हुई या दोषारोपण करती आँखें। बेहूदा फब्तियाँ, ओछे सवाल।

परन्तु जोन का धैर्य अडिग था। वह सब सुन लेती थी और सहज-भाव से उत्तर दे देती थी। उसकी आँखों में एक ऐसा भाव रहता था कि कई बार सवाल पूछने वालों की ज़बान लड़खड़ा जाती थी। वे लोग बहुत प्रयत्न करते थे कि किसी तरह जोन अन्दर से डगमगा जाए, या ताव में आकर कोई उलटी-सीधी बात कह दे। सवाल होता कि जो आवाज़ें उसे सुनाई देती हैं, क्या उनके साथ उसे किसी तरह का आलोक भी दिखता है? उत्तर मिलता, "आलोक केवल आप पर ही नहीं बरसता।" एक बार किसी ने सवाल पूछा कि उससे बात करते समय सेंट मार्गरिट

Hindi Premi

के मुँह से भाषा कौन-सी निकलती है? उसका उत्तर था, "आप जैसी बोलते हैं, उससे अच्छी फ्रांसीसी भाषा।" यह इसलिए कि पूछने वाले की भाषा का उच्चारण बहुत ख़राब था। वह हर समय पुरुष-वेश में ही क्यों रहती है? यह सवाल पूछे जाने पर उसने उत्तर दिया, "जेल में आपके पहरेदारों का जैसा आचरण है, उसकी दृष्टि से क्या यही वेश सुरक्षित नहीं है?"

परन्तु एक दिन यन्त्रणा की पराकाष्ठा में उसने पुरुष-वेश छोड़ देने आदि के स्वीकृत-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। उसे झुकाकर मानो पादरी कोशाँ अपने उद्देश्य में सफल हो गया। जोन को आजन्म कारावास का दंड दिया गया। परन्तु अंग्रेज़ नेता अर्ल ऑफ़ वारविक को यह दंड पर्याप्त नहीं लगा। इस पर कोशाँ ने एक और चाल चली। उसने जोन से वचन ले लिया था कि वह अब पुरुष-वेश नहीं पहनेगी, परन्तु उसे कोई दूसरी पोशाक पहनने को नहीं दी। इस तरह यह घोषणा करके कि उसकी शैतानियत लौट आई है, उसे मृत्यु-दंड दे दिया गया।

पच्चीस वर्ष यह विवाद चलता रहा कि जोन एक सन्तिनी थी या शैतान की परकाला? पच्चीस वर्ष बाद चार्ल्स सप्तम के आदेश पर उसे फिर से उसकी प्रतिष्ठा दी गई। उस पर लगाए गए अभियोग मिथ्या और निराधार माने गये। मृत्यु-दंड का फ़ैसला ग़लत क़रार दिया गया। परन्तु जोन अब अपनी पुनः प्रतिष्ठा की साक्षी कैसे बन सकती थी? पाँच सौ साल बाद पन्द्रहवें पोप बेनेडिक्ट ने उसकी प्रतिष्ठा संट जोन के रूप में करके उसके व्यक्तित्व को अतिमानवीय धरातल पर पहुँचा दिया।

Hindi Premi

कबीर

एक बालक। नाम कबीर। माथे पर तिलक। गले में जनेऊ। विभोर होकर राम-नाम का जाप करता।

मौलवी लोग उसे देखते, तो कहते कि वह काफ़िर है। उसका यह सब आचरण इस्लाम के साथ द्रोह है। वह उत्तर देता, "काफ़िर वह है जो हिंसा करता है, दूसरों को दबाता है, शराब पीता है या किसी का माल हड़प लेता है। मैं काफ़िर नहीं हूँ।"

पंडित लोग कहते कि वह वैष्णव नहीं है, इसलिए तिलक लगाना, जनेऊ पहनना तथा राम, नारायण गोविन्द, हरि, विष्णु का जाप करना उसके लिए वर्जित है। वह उत्तर देता, "विष्णु का निवास मेरी जिह्वा में है, नारायण का मेरी आँखों में तथा गोविन्द का मेरे हृदय में। हरि के साथ मेरी समाधि है।"

वह बालक युवक हुआ, बूढ़ा हुआ और शरीर परित्याग कर गया, फिर भी उसे लेकर यह विवाद शान्त नहीं हुआ। उसके शव को लेकर भी उसके हिन्दू और मुस्लिम शिष्यों में यह झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि उसका अन्तिम संस्कार किस रीति से किया जाए? हिन्दू उसका दाह-कर्म करना चाहते थे, मुसलमान उसे दफ़नाना चाहते थे, परन्तु किंवदंती यह है कि शव से चादर हटाने पर किसी को वहाँ शव मिला ही नहीं। मिले कुछ कमल के फूल, जिनमें से आधे जला दिए गए, आधे दफ़ना दिए गए।

यूँ इस विवादास्पद स्थिति का सूत्रपात उसके जन्म के साथ ही हो गया था।

ईसवी सन् की चौदहवीं शताब्दी का अन्त। एक ओर राजनीतिक उथल-पुथल, दूसरी ओर बहुत बड़ा भक्ति-आन्दोलन। उन्हीं दिनों एक राम-भक्त ब्राह्मण के घर में इनका जन्म हुआ, परन्तु किन्हीं कारणों से उन्हें जन्म के साथ ही लहरतारा ताल के किनारे छोड़ दिया गया।

वहाँ उस रोते बच्चे पर नज़र पड़ी नीरू नामक जुलाहे की। वह अपनी नव-विवाहिता पत्नी को ससुराल से साथ लेकर आ रहा था। ताल के किनारे से उसने उस बालक को उठा लिया; कहा कि उसे अपने घर ले चलना चाहिए। उसकी पत्नी तुरन्त सहमत नहीं हुई। उसे डर था कि बच्चे को साथ घर ले जाने पर लोग उन पर न जाने क्या-क्या बातें बनाएँ! परन्तु नीरू का मन नहीं माना कि बच्चे को वहीं

Hindi Premi

छोड़ दिया जाए। उसने हठ के साथ पत्नी को समझाया। उसके बाद उस बच्चे का पालन-पोषण उन्हीं के घर में हुआ। उसका नाम उन्होंने रखा—कबीर।

कबीर के बचपन में ही उनके स्वभाव की यह असंगति सामने आने लगी। एक ओर यह वातावरण तो था ही जिसमें वे बड़े हो रहे थे, दूसरी ओर एक और वातावरण उनके मन को खींचता था। जहाँ कहीं सत्संग या हरि-कीर्तन चल रहा होता, वे वहाँ पहुँचकर उसमें सम्मिलित हो जाते और वहाँ से माथे पर तिलक लगाए घर लौटते। घर के लोग इस पर डाँट-फटकार करते, उन्हें ऐसा करने से रोकते। मगर कबीर का मन बार-बार उसे उसी वातावरण की ओर खींच ले जाता। वे बहुत बार घर में रहते हुए भी उसी धुन में खो जाते। उनका यह अस्वाभाविक आचरण उन्हें दोनों ओर से अलगाने लगा। घर के लोग समझते कि उनसे उनका अपनत्व नहीं है। सन्त-समाज उन्हें मुसलमान मानकर अपने से परे रखना चाहता। परन्तु कबीर की लगन में कोई अन्तर नहीं आया। बड़े होने के साथ-साथ उनके मन का भाव और परिपक्व होता गया। यहाँ तक कि उन्होंने निश्चय कर लिया कि वह स्वामी रामानन्द से गुरु-दीक्षा लेंगे। परन्तु एक मुस्लिम परिवार के सदस्य माने जाने के कारण स्वामीजी तक पहुँचना उनके लिए सम्भव नहीं था। बहुत सोचकर उन्होंने इसका एक उपाय ढूँढ निकाला। स्वामीजी पहर रात रहते मणिकर्णिका घाट पर स्नान करने आया करते थे। उनका मार्ग और समय निश्चित था। कबीर एक दिन पहले से ही जाकर घाट की सीढ़ियों पर लेट गए। सीढ़ियाँ उतरते हुए स्वामीजी का पाँव उन पर पड़ गया जिससे वे 'राम-राम' बोल उठे। कबीर ने उसी समय से इन शब्दों को अपना गुरु-मन्त्र मान लिया; घर में जाकर इस बात की घोषणा भी कर दी कि उन्होंने स्वामी रामानन्द से गुरु-दीक्षा ले ली है।

नीरू और उसकी पत्नी नीमा इससे बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने स्वामीजी के पास इस बात की शिकायत पहुँचाई कि उन्होंने एक मुसलमान को अपना शिष्य कैसे बना लिया है? स्वामीजी को आश्चर्य हुआ कि उन्होंने कबीर को कब अपना शिष्य बनाया है! उन्होंने कबीर को बुलाकर यह सवाल पूछा, तो कबीर मुस्करा दिए, बोले, ''साधारणतया गुरु शिष्य के कान में मन्त्र देते हैं, परन्तु आपने तो मेरे सिर पर पाँव रखकर मुझे रामनाम का मन्त्र दिया है।'' इससे स्वामीजी को मणिकर्णिका घाट वाली घटना स्मरण हो आई और उन्होंने प्रसन्न होकर कबीर को अपना शिष्य स्वीकार कर लिया।

कबीर तीस वर्ष के थे जब लोई नाम की युवती से उनका परिचय हुआ। इस परिचय की घटना इस प्रकार बतलाई जाती है कि एक दिन कबीर घूमते हुए गंगा के किनारे एक बनखंडी वैरागी की कुटिया में पहुँचे। वहाँ वैरागी के स्थान पर वह युवती उनका स्वागत करने बाहर आई। कुछ समय बाद और भी साधु-सन्त वहाँ आ

Hindi Premi

पहुँचे। युवती अभ्यागतों का सत्कार करने के लिए एक पात्र में दूध ले आई। दूध के सात भाग किए गए। पाँच भाग उन साधुओं के लिए, एक भाग कबीर के लिए तथा एक भाग उस युवती के लिए। अन्य सबने तो अपने-अपने हिस्से का दूध पी लिया, परन्तु कबीर ने अपने हिस्से का दूध अलग रख दिया। जब यह पूछा गया कि उन्होंने दूध क्यों नहीं पिया, तो उन्होंने उत्तर दिया, ''गंगा-पार से एक और साधु आ रहे हैं। यह दूध मैंने उन्हीं के लिए रख दिया है।'' उनकी इस बात से वह युवती इतनी प्रभावित हुई कि उनके साथ रहने चली आई। उसने अपने सम्बन्ध में कबीर को बताया कि वह वहाँ अकेली ही रहती थी। एक वैरागी ने उसे लोई में लिपटे हुए गंगा में पाया था और निकालकर उसका पालन-पोषण किया था। लोई में लिपटी रहने के कारण उसका नाम भी लोई रख दिया गया था। कबीर ने उसे अपनी शिष्या बना लिया और बाद में उससे विवाह कर लिया। लोई से इनके एक पुत्र और एक पुत्री हुई। पुत्र का नाम रखा गया कमाल, पुत्री का कमाली।

तब तक कबीर की ख्याति एक कवि, भक्त, दार्शनिक तथा समाज-चेता व्यक्ति के रूप में फैलने लगी थी। यह देखकर कि साम्प्रदायिक कट्टरता किस तरह के विषैले बीज बो रही है, कबीर का मन बहुत अस्थिर हो उठता था। उनके लिए धर्म का अर्थ साम्प्रदायिकता से कहीं बड़ा था। और वे खुलकर अपनी इस धारणा का प्रचार करना चाहते थे। इस तरह पंडित और मुल्ला दोनों उनसे द्वेष रखते थे और वे दोनों का ही विरोध करते थे। पंडितों की कट्टरता को लेकर वे कहते :

माला फेरत जग फिरा, फिरा न मन का फेर।
कर का मन का डार के, मन का मनका फेर॥

दूसरी ओर मुल्लाओं को वे इस तरह आड़े हाथों लेते :

दिन भर रोज़ा रहत है, राति हनत हैं गाय।
यह तो ख़ून वह बन्दगी, कैसी खुशी खुदाय॥

लोई इनकी पत्नी थी, शिष्या थी, इनके विचारों के लिए जीती थी, फिर भी उसे किसी तरह घर भी चलाना होता था। आजीविका इनकी जुलाहे के काम से ही चलती थी। पति-पत्नी मिलकर कपड़ा बुनते और उससे जो थोड़ी-बहुत आय होती, उसी से दो समय की रोटी भी चलती और आनेवाले साधु-सन्तों का स्वागत-सत्कार भी होता। परन्तु साधु-सन्तों में बैठकर तो कबीर अपने धन्धे की बात बिलकुल भूल ही जाते। उन्हें खिलाने-पिलाने में इतना तक न सोचते कि घर के लोगों के लिए अन्न बचेगा या नहीं। लोई सब-कुछ किसी तरह निभाती, पर कई बार स्थिति उसकी सहन-शक्ति से बाहर हो जाती। तब कबीर उसके उलाहने सुनते, जिनका उत्तर देते वे अपनी काव्य-पंक्तियों में। कितनी ही रचनाओं में लोई को सम्बोधित करते हुए उन्होंने अपनी बात कही है। घर का अन्न ही नहीं, बर्तन तक साधुओं को दे डालना, मेहनत

Hindi Premi

से एक थान बुनने के बाद उसे बेचने की जगह किसी साधु की आवश्यकता पूरी करने के लिए दे डालना—ये उनके जीवन की सामान्य घटनाएँ थीं। परन्तु बात यहीं तक नहीं थी। वे इससे भी कही आगे तक जा सकते थे।

कहा जाता है कि एक बार बीस-पच्चीस फ़कीर इनके यहाँ आ गए। उन सबके लिए भोजन चाहिए था, पर घर में न अनाज था, न एक पैसा। कबीर चिन्ता में पड़कर सोचने लगे। लोई उन्हें बता चुकी थी कि एक साहूकार का लड़का है जो उसके रूप पर मुग्ध है और उसे अपने यहाँ आने को कहता है। कबीर ने लोई से कहा कि और कोई उपाए नहीं है, इसलिए वह उससे मिलने का वचन देकर उससे रुपया ले आए। लोई ने उनकी आँखों में देखा और चुपचाप चली गई। साधुओं का भोजन ठीक से हो गया और उन्हें विदा कर दिया गया। जब रात उतरी, तो वर्षा होने लगी। लोई को उसी समय साहूकार के बेटे के यहाँ जाना था। कबीर स्वयं उसे कम्बल ओढ़ाकर कन्धे पर बिठाए वहाँ पहुँचाने चले गए। साहूकार का बेटा लोई को देखकर प्रसन्न तो हुआ, पर उसे आश्चर्य भी हुआ कि न तो उसका शरीर भींगा है और न ही उसके पैर कीचड़ से सने हैं पूछने पर लोई ने बतलाया कि कबीर स्वयं उसे लेकर आए हैं। इस पर साहूकार के बेटे को अपने से इतनी ग्लानि हुई कि उसने लोई और कबीर दोनों से क्षमा माँगी और उस दिन से कबीर की शिष्यता स्वीकार कर ली।

कबीर की चर्चा अब दूर-दूर तक होने लगी थी। वे जो कुछ सोचते थे वही सीधी-सादी भाषा में कहते थे। उनकी कविता उनके लिए 'साहित्य-साधना' न होकर जीवन की साधना थी। इसलिए उनके अनुयायियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। जो इनके विचारों में सहमत थे, वे इनकी पूजा करते थे और जो इनसे चिढ़ते थे, वे इन्हें गाली देते थे, गाली देने वाले अधिकांश काशी में थे और समर्थक काशी से बाहर। कबीर कई बार दूर-दूर तक की यात्रा कर आए। उत्तर में मथुरा, दक्षिण में राजस्थान और गुजरात तथा पूर्व में जगन्नाथपुरी तक इसके अतिरिक्त मानिकपुर, ऊँची और झूँसी का भी भ्रमण कर लिया। जगह-जगह घूमकर सीधी-सादी ग्रामीण भाषा में लोगों को अपने विचारों का परिचय देते रहे। जीवन में जो मस्ती और अक्खड़पन था, वही मस्ती और अक्खड़पन इनकी कविता में भी था। परन्तु अन्तर में एक महान् कवि की वह कोमलता भी थी जो कई बार ऐसे-ऐसे शब्दों में साकार हो उठती थी :

नैनन की कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाय॥

परन्तु कोमल भावों की योजना इनका उद्देश्य नहीं था। उद्देश्य था सामाजिक कुरीतियों और साम्प्रदायिक कट्टरपंथियों पर कसकर चोट करना। जिन पर चोट होती थी, वे तिलमिलाते थे, इन्हें कोसते थे, पर कर कुछ भी नहीं पाते थे।

Hindi Premi

वह सिकन्दर लोदी का शासन-काल था। एक बार जब सिकन्दर लोदी काशी आया, तो पंडितों और मुल्लाओं दोनों ने उससे कबीर की शिकायत की। दोनों ने ही उन्हें अपने-अपने धर्म का विरोधी बतलाया। इस पर सिकन्दर लोदी ने कबीर को बुलवा भेजा। कबीर समय पर उसके पास नहीं पहुँचे। सिकन्दर लोदी ने उनसे देर से आने का कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे एक विचित्र घटना देख रहे थे, इसलिए आने में देर हो गई। घटना उन्होंने बतलाई कि सुई की नोंक के बराबर तंग रास्ता था जिसमें से होकर ऊँटों की एक लम्बी पंक्ति गुज़र रही थी। सिकन्दर लोदी ने इसे उनकी धृष्टता समझा और उसे क्रोध हो आया। उसने पूछा कि इस ऊल-जलूल बात का क्या अर्थ है—ऊँटों की पंक्ति सुई की नोंक के बराबर रास्ते से कैसे गुज़र सकती है? कबीर ने कहा कि इसमें आश्चर्य की क्या बात है? आँख की पुतली सुई की नोंक से भी छोटी होती है, पर पृथ्वी और आकाश पूरे उसमें समा जाते हैं। इनके इस उत्तर से सुलतान का क्रोध धुल गया और उसने इन्हें कोई दंड नहीं दिया। परन्तु शेखों और ब्राह्मणों के फिर शिकायत करने पर वे दूसरी बार बुलाए गए। इस बार सुलतान ने उन्हें समझाया कि उन्हें हिन्दुओं और मुसलमानों की निन्दा करना छोड़कर दीन के अनुसार पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए, वरना उन्हें दोज़ख़ में जाना पड़ेगा। कबीर ने उत्तर दिया कि दोज़ख़ में वे नहीं जाएँगे, जाएँगे कट्टरपन्थी शेख और ब्राह्मण। इस पर उन्हें तरह-तरह के दंड दिए गए, परन्तु उनका कुछ बिगाड़ा नहीं जा सका। अन्त में विरोधियों ने सुलतान से कहकर उन्हें काशी से निकलवा दिया।

अपने जीवन के अन्तिम दिन उन्हें मगहर में बिताने पड़े। काशी छोड़ने से हृदय को बहुत-कुछ क्लेश हुआ, क्योंकि इनके जीवन का सारा सुनहला समय काशी में ही व्यतीत हुआ था। वहीं इन्हें गुरु मिले थे। वहीं इनका परिवार और सन्त-मंडली थी। ऐसे में काशी छूट जाने से इनका दुःखी होना स्वाभाविक ही था। उन दिनों लोगों का विश्वास था कि काशी में मरने से मोक्ष मिलता है और मगहर में मरने से गधे की जून प्राप्त होती है। परन्तु कबीर की दृष्टि से यह सब पाखंड था। काशी से बाहर रहकर दुःखी होते हुए भी वे इस बात पर दृढ़ रहे कि स्वर्ग-प्राप्ति या मोक्ष के साथ किसी नगर-विशेष का सम्बन्ध नहीं है। व्यक्ति काशी में मरे या मगहर में, यदि उसकी साधना सच्ची है, तो वह अवश्य मोक्ष का अधिकारी होगा।

किसी अकेले कवि की वाणी उस तरह जन-साधारण की अपनी वाणी नहीं बन सकी जिस तरह कबीर की। उनके निर्भीक व्यक्तित्व की छाप जिस तरह उनके विचारों में मिलती है, उसी तरह उनकी कविता में भी। भावों की तरह वे शब्दों और छन्दों को भी अपने मौलिक व्यक्तित्व से नए-नए रूपों में ढालते रहे। बहुत-से पवित्रतावादी इस पर भी आपत्ति करते थे। कहते थे कि कबीर की भाषा और छन्दों

Hindi Premi

का ठीक ज्ञान नहीं है। कबीर के लिए यह नुक़्ताचीनी कोई महत्व नहीं रखती थी। वे इतने से ही मतलब रखते थे कि उन्हें क्या कहना है और किस रूप में कहना है। उनका स्वर बहुत मीठा था और वे अपने पद गाते हुए यहाँ से वहाँ घूमा करते थे। इसकी कोई चिन्ता ही न थी कि उनकी वाणी उन्हें कवि-रूप में प्रतिष्ठित करेगी या नहीं। पढ़ाई-लिखाई तो कभी हुई ही नहीं थी। जो कुछ था, अपने अन्दर का उद्गार था, अपनी प्रतिभा का आवेग। उस आवेग में बहते हुए रचना अपने-आप हो जाती थी :

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया बूँद पड़े धुल जाना है।

और आज उनकी मृत्यु के साढ़े चार सौ वर्ष बाद भी उनके विद्रोह, विराग और भक्ति के स्वर सब जगह जन-साधारण के मुँह से सुने जा सकते हैं।

कहत कबीर सुनो भाई साधो!

Hindi Premi

मीरा

जिस आस्था और धैर्य के साथ जोन ऑफ़ आर्क ने अपने को आग की लपटों के हवाले कर दिया था, उसी भावना से एक भारतीय नारी ने विष का प्याला होंठों से लगा लिया था। उसका नाम था मीरा।

मीरा के सम्बन्ध में भी उसी तरह लोगों की परस्पर विरोधी धारणाएँ थीं। एक धारणा थी कि मीरा उच्छृंखल है, पागल है। उसने लोक-लाज एवं कुल की मर्यादा का उल्लंघन किया है। उसने पतिव्रत धर्म को तोड़ा है। और दूसरी धारणा थी कि मीरा सन्तिनी है। अपने चरम भक्ति-भाव के कारण वह साधारण मानवीय धरातल से बहुत ऊँची है। उसका जीवन में एक ही लक्ष्य और एक ही ध्येय है :

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।

अन्य किसी भारतीय स्त्री ने अपने जीवन में उतना अपवाद नहीं सहा जितना मीरा ने, और किसी ने शायद उतना बड़ा साहस भी नहीं किया। घर-बार छोड़कर, समाज के बन्धनों की अवहेलना करके उसने वह मार्ग चुन लिया, जिस पर चलकर वह अपनी आस्था के अनुसार जी सकती थी। यह चुनाव आसान नहीं था। अपने मन का संघर्ष एक पत्र लिखकर उसने गोस्वामी तुलसीदास के सामने रखा, तो उन्होंने यह उत्तर भेजकर उसे साहस बँधवाया था:

जाके प्रिय न राम बैदेही,
तजिये सो नर कोटि बैरि सम जद्यपि परम सनेही।

यूँ अन्दर का चुनाव मीरा के शैशवकाल में ही हो गया था। राठौर वंश में जन्म हुआ था। जोधपुर राज्य के संस्थापक जोधाजी के पुत्र दूदाजी की ये पौत्री थीं और रत्नसिंह की इकलौती पुत्री। वे बहुत छोटी थीं जब राव दूदाजी के घर पर एक साधु आया। उसके पास कृष्ण की एक सुन्दर प्रतिमा थी। ये उस प्रतिमा की सुन्दरता पर इतनी मुग्ध हुईं कि उससे आँखें हटाना इनके लिए असम्भव हो गया। साधु जाने लगा तो मीरा मचल उठीं; कहा, वह मूर्ति वे अपने पास रखेंगी, समझाया गया कि उसके स्थान पर दूसरी मूर्ति उन्हें ला दी जाएगी, परन्तु मीरा नहीं मानीं। कहा कि उन्हें बस यही मूर्ति चाहिए, दूसरी नहीं। हारकर साधु को वह मूर्ति मीरा के पास छोड़ जाना

Hindi Premi

स्वीकार करना पड़ा। मीरा को जैसे संसार की सबसे दुर्लभ वस्तु मिल गई। हर समय उस मूर्ति से खेलना, उसे सजाना। दादा जिस तरह अपने आराध्य की पूजा किया करते थे, उसी तरह उस मूर्ति की पूजा-अर्चना करना। उसे भोग लगाना, हिंडोले में झुलाना और रात को उसे सुलाने के लिए कोई भी पंक्ति गुनगुनाते रहना।

एक दिन मीरा ने देखा, राजभवन के सामने से एक बारात निकल रही है। उत्सुकतावश उन्होंने माँ से पूछ लिया, ''क्या मेरे लिए भी एक दिन इसी तरह बारात आएगी?''

माँ हँस दीं; बोलीं, ''हाँ, आएगी।''

''दूल्हा कौन होगा?''

माँ ने उसके हाथ की मूर्ति की ओर इशारा कर दिया—''यह होगा तेरा दूल्हा।''

और यह बात मीरा के मन में बैठ गई कि पूरा जीवन ही उसने इस सत्य को सार्थक करने में लगा दिया। माँ की मृत्यु इनके बचपन में ही हो गई जिससे इनका अधिक समय पिता के सम्पर्क में बीतने लगा। राव दूदाजी परम वैष्णव थे। वे मीरा को वैष्णव भक्ति का उपदेश देते, सत्संगों में उन्हें अपने साथ रखते, बाहर से आनेवाले भक्तों से मिलाते तथा धार्मिक कथाएँ सुनवाते। इस तरह मीरा के मन पर कृष्ण भक्ति की छाप बहुत गहरी होती गई। बाल्यकाल का आग्रह एक विश्वास का रूप लेने लगा।

सन् 1515 में राव दूदाजी की मृत्यु हो गई। उनके बड़े पुत्र वीरमदेव सिंहासन पर बैठे। उन्होंने अठारह वर्ष की उम्र में मीरा का विवाह चित्तौड़ के महाराणा सांगा के बड़े पुत्र भोजराज के साथ कर दिया। मीरा उनके सामने हठ नहीं कर सकीं, परन्तु मन में एक बहुत बड़ी दुविधा लिए वे पति के घर आईं। उनका वास्तविक पति कौन था? वह, जिसका वरण उन्होंने बचपन में ही कर लिया था, या वह जिससे अब उनका विवाह हुआ था?

मीरा के लिए यह उनके संघर्षमय जीवन की शुरुआत थी। विवाहित जीवन का बन्धन स्वीकार करके भी वे उसके प्रति अपने दायित्व का निर्वाह नहीं कर पा रही थीं। हर समय एक ही रंग, एक ही धुन—गिरधर गोपाल और उनकी अराधना। ससुराल के लोगों को आश्चर्य होता। यह कैसी बहू घर में आई है जो घर-गृहस्थी के साथ कोई वास्ता ही नहीं रखना चाहती? उसकी यह कैसी अराधना है कि वह अपने पति के प्रति भी वह अपना कोई कर्तव्य नहीं समझती? मीरा अपने मन में कम दुख नहीं सहती थीं, परन्तु वे अपनी भावना के सामने बेबस थीं। अपने मन की दुविधा का जो उत्तर अन्दर से मिलता, वह था, 'जा के सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।' मीरा का गिरधर-प्रेम उनके परिवार के लिए क्लेश का विषय बन गया था। वह स्त्री जो उस घर की स्वामिनी होकर शासन कर सकती थी, एक मूर्ति के सामने मन-ही-मन यह गुनगुनाने में ही अपना जीवन चरितार्थ मानती थी :

Hindi Premi

म्हाणे नौकर राखोजी, म्हाणे चाकर राखोजी।

विवाह के कुछ वर्ष बाद पति का परलोकवास हो गया। मीरा पर आक्षेप लगाया गया कि इस दुर्भाग्य का कारण वही है—उन्हीं के हाथों कष्ट पाकर उस व्यक्ति के प्राण गए हैं। मीरा को दुख था, सहानुभूति थी। परन्तु उनके विरक्त मन पर से अब एक बन्धन हट गया था। अपने मन को पूरी तरह गिरधर गोपाल के प्रति अर्पित करने में कोई बाधा नहीं थी। लोग क्या कहते हैं, इसकी चिन्ता छोड़कर अपना पूरा समय हरि-भजन और साधु-संगति में बिताने लगीं।

कुछ दिनों बाद कनवाह के युद्ध में मीरा के पिता रत्नसिंह मारे गए। उधर ससुर राणा सांगा भी वीर-गति प्राप्त कर गए। उनकी मृत्यु के बाद भोजराज के छोटे भाई रत्नसिंह मेवाड़ के राजा हुए। मीरा एक प्रकार से आश्रयहीन हो गईं। परन्तु यह स्थिति उनके भक्ति-वेग को आगे बढ़ाने में और सहायक हुई। वे पहले से अधिक मनोयोग से अपना समय भगवद् भजन में बिताने लगीं। अपनी भावना को वे जिस किसी रूप में शब्द देतीं, एक गीत की पंक्तियाँ बन जातीं। उन गीतों की गूँज से भी हृदय शान्त न होता, तो वे गिरधर गोपाल के सामने नाचने लगतीं :

पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे!

अपवाद पहले ही था, अब और बढ़ गया। राजकुल की विधवा बहु खुले स्वर में गीत गाती है! पैरों में घुंघरू बाँधकर नाचती है! उसे न राज-मर्यादा का ध्यान है, न कुल-मर्यादा का! यह निन्दनीय आचरण किसी भी तरह नहीं सहा जा सकता। उसे यह सब छोड़ना ही होगा।

उनके देवर राणा रत्नसिंह ने हर तरह से उन्हें समझाया। वे वास्तविक धर्म का पालन किस तरह कर सकती हैं, इस सम्बन्ध में उपदेश दिए। परन्तु मीरा ने जो कुछ भी सुना, उसे मन तक नहीं पहुँचने दिया। जैसेकि उनसे कही जा रही बातें केवल निरर्थक स्वर और शब्द हों। उनका भजन, कीर्तन, नृत्य उत्तरोत्तर बढ़ता जाता। राजभवन में साधु-सन्तों का आना-जाना इस तरह से होता जैसे कि वह किसी वैरागी की कुटिया हो।

तीन वर्ष बाद राणा रत्नसिंह का भी देहान्त हो गया। उनके सौतेले भाई विक्रमादित्य चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे। उनमें उतनी भी सहिष्णुता नहीं थी जितनी रत्नसिंह में। उन्होंने निश्चय किया कि मीरा के इस लोक-विरुद्ध आचरण का, जैसे भी हो, अन्त होना ही चाहिए। उन्होंने पहले तो मीरा को समझाने का प्रयत्न किया, पर उसमें सफलता नहीं मिली। फिर उन्होंने अपनी बहन ऊदा को यह भार सौंपा कि वह जैसे भी हो मीरा को इस आचरण से हटाए। ऊदा ने कई युक्तियों से बात मीरा के सामने रखी, पर मीरा पर कोई असर नहीं हुआ। राणा विक्रमादित्य के लिए स्थिति बिलकुल असह्य हो गई। उन्होंने सोच लिया कि बात इस तरह नहीं सँभलती,

Hindi Premi

तो दूसरा कोई भी उपाय काम में लाने से नहीं कतराना चाहिए। राम-मर्यादा सबसे बड़ी चीज़ है। उसकी रक्षा के लिए मीरा के प्राण भी लिए जा सकते हैं।

इसका पहला प्रयोग हुआ विष देने के रूप में। कहा जाता है कि मीरा के पास विष-भरा कटोरा यह कहकर भेजा गया कि वह भगवान् का चरणामृत है। मीरा विष पी गईं, परन्तु उसका प्रभाव वही हुआ जो चरणामृत का होता। इस प्रयास में असफलता के बाद उनके प्राण लेने के और कई उपाय किए गए। किंवदन्तियों के अनुसार फूलों की डाली में छिपाकर साँप भेजा गया, सूली की सेज बिछाई गई। परन्तु कोई भी षड्यन्त्र सफल नहीं हो सका। राजभवन में मीरा के स्वर उसी तरह गूँजते रहे :

हे री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोय।

तथा

मैं तो गिरधर के रंग राची।

फिर भी राजभवन में परिस्थितियाँ ऐसी होती जा रही थीं कि अधिक दिन उस सबको सहते जाना उनके लिए असम्भव हो रहा था। अपनी आराधना के लिए उन्हें जो शान्ति और एकाग्रता चाहिए थी, वह वहाँ नहीं मिल पाती थी। यन्त्रणा भी कई रूपों में दी जा रही थी। अन्ततः उन्होंने निर्णय कर लिया कि वे चित्तौड़ छोड़ देंगी। उधर वीरमदेव को सूचनाएँ मिल रही थीं कि मीरा वहाँ किस तरह के वातावरण में जी रही हैं। उन्होंने मीरा को अपने पास मेड़ता बुला लिया। वहाँ आकर उनसे तथा भाई जयमल से उन्हें जो सम्मान मिला, उससे पिछले दिनों की पीड़ा को वे भूल गईं।

परन्तु मीरा के चित्तौड़ छोड़ने के साथ ही दोनों परिवारों पर राजनीतिक विपत्तियाँ घिर आईं। गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। राणा विक्रमादित्य मारे गए। जोधपुर के मालदेव ने वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया। मीरा को लगा कि चित्तौड़ के बाद कहीं भी उनका सुरक्षित आश्रय में रहना उनके प्रभु को स्वीकार नहीं है। वे मेड़ता छोड़कर तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़ीं। वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य सम्प्रदाय के जीवगोस्वामी से हुई। कहा जाता है कि पहले तो जीवगोस्वामी ने उनसे मिलने से इनकार कर दिया। कहा कि वे स्त्रियों से नहीं मिलते। परन्तु जब मीरा ने कहा कि मैं तो वृन्दावन में सबको सखी-रूप में देखती हूँ, पुरुष तो मेरे लिए केवल गिरधर हैं, तो उन्होंने लज्जित होकर भेंट करना स्वीकार कर लिया।

वृन्दावन में रहते हुए वे उन्मुक्त भाव से गायन-कीर्तन में लीन रहने लगीं। भक्त-समुदाय उनके पद सुनकर विभोर हो उठता। परन्तु मीरा ब्रज के बाद अब द्वारिका जाना चाहती थीं। उनके प्रभु के जीवन के साथ द्वारिका का भी गहरा सम्बन्ध था, अतः वे उस भूमि के दर्शन और स्पर्श से वंचित नहीं रहना चाहती थीं। कुछ

Hindi Premi

समय बाद जब वे द्वारिका पहुँची, तो वृन्दावन का-सा वातावरण वहाँ भी पैदा हो गया। वही उनकी आराधना, वही उनकी पदावली और वैसे ही उनके स्वर-में-स्वर मिलाकर गाती भक्त-मंडली।

बसो मोरे नैनन में नन्दलाल!

शेरशाह के भारत-सम्राट् होने और चित्तौड़ की राजगद्दी पर उदयसिंह के बैठने के साथ मेवाड़ में पुनः शान्ति स्थापित हो गई। चित्तौड़ में रहते मीरा को जो अपमान और लांछना सहनी पड़ी थी, उसके लिए उदयसिंह को बहुत दुख था। उन्होंने सोचा कि चित्तौड़ की ओर से प्रायश्चित करने का एक ही रास्ता है, और वह यह कि मीरा को सम्मान के साथ वापस बुला लिया जाए। उन्होंने कुछ ब्राह्मणों को मीरा से अनुरोध करने उनके पास भेजा। कहा कि जब तक मीरा आने के लिए तैयार न हों, उन्हें भी वापिस नहीं आना है। इन ब्राह्मणों ने राणा का सन्देश जाकर मीरा को दिया, तो वे सुनकर चुप रहीं। ब्राह्मणों ने फिर हठ किया, तो उन्होंने कहा कि वे अब रणछोड़जी की सेवा से हटकर कहीं नहीं जा सकतीं। उन्हें अपना शेष जीवन अब वहीं बिताना है। ब्राह्मणों के लिए यह बहुत बड़ा संकट था। बिना उन्हें साथ लिए वे लौटकर राणा के सामने कैसे जा सकते थे? उन्होंने वहाँ सत्याग्रह कर दिया। कहा कि जब तक आप चित्तौड़ चलने के लिए तैयार नहीं होंगी, हम अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। मीरा ने उन्हें समझाया, परन्तु वे नहीं माने। हारकर मीरा ने साथ चलने की हामी भर दी और यह कहकर कि जाने से पहले एक बार दर्शन कर आएँ, रणछोड़जी के मन्दिर में चली गईं। उसके बाद चित्तौड़ लौटकर ब्राह्मणों ने जो बात कही, वह यह थी कि मन्दिर में जाकर मीरा रणछोड़जी की मूर्ति के अन्दर अन्तर्धान हो गईं। हो सकता है, मीरा को लौटा लाने में अपनी असमर्थता को छिपाने के लिए ही उन्होंने यह बात कही हो, परन्तु कहा जाता है कि उसके बाद द्वारिका में भी किसी ने मीरा को नहीं देखा।

Hindi Premi

स्वामी दयानन्द

काठियावाड़ का एक छोटा-सा गाँव—टंकारा। इसी गाँव में एक सम्पन्न भूमिपति थे—अम्बाशंकर। वे धार्मिक व्यक्ति थे और पौराणिक रीतियों में बहुत विश्वास रखते थे। सारे विधि-विधानों का पालन बहुत नियमपूर्वक किया करते थे। उनके यहाँ एक बालक ने जन्म लिया जिसका नाम रखा गया मूलशंकर। पिता की कामना थी कि बालक की शिक्षा ऐसी हो जिससे बड़ा होकर वह घर की परम्परा बनाए रखे।

मूलशंकर चौदह वर्ष के थे जब पिता ने इनसे शिवरात्रि का व्रत रखने के लिए कहा। रात होने पर पिता पूजा-पाठ के लिए उन्हें गाँव के बाहर एक मन्दिर में ले गए। पूजा का क्रम लगभग आधी रात तक चलता रहा। उसके बाद भक्तों को नींद आने लगी। परन्तु मूलशंकर की आस्था गहरी थी, इसलिए ये नहीं सोए। एकटक शिव-प्रतिमा को देखते रहे। सहसा उन्होंने देखा, एक चूहा बिल से निकलकर प्रतिमा को चढ़ाई गई भोग की सामग्री खाने लगा। मूलशंकर का मन अशान्त हो उठा। उन्होंने पिता को जगाकर उनसे कई प्रश्न पूछे। कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। उस दिन से उनके जीवन की दिशा बदल गई। उन्होंने वास्तविक शिव को खोजने का संकल्प कर लिया।

कुछ समय बाद मूलशंकर की बहन का देहान्त हो गया। बहन से इन्हें बहुत स्नेह था, इसलिए इनके हृदय को बहुत चोट पहुँची। अभी यह चोट भरी नहीं थी कि चाचा की मृत्यु हो गई। इनका मन घर से उचाट होने लगा। मन में तरह-तरह के प्रश्न जागने लगे—जीवन की वास्तविकता क्या है? सांसारिक स्नेह-सम्बन्धों का क्या अर्थ है? धर्म व्यक्ति को किस प्रकार निस्तार देता है? और धर्म का वास्तविक रूप क्या है? ये हर समय खोए-खोए रहते और जब-तब अपने प्रश्नों से घर के लोगों को निरुत्तर कर देते। घर के लोगों ने सोचा कि शायद विवाह कर देने से इनकी मनःस्थिति में कुछ अन्तर आ जाए। मूलशंकर ने इस स्थिति को टालने का प्रयत्न किया। परन्तु बस नहीं चला, तो किसी को सूचित किए बिना घर से निकल पड़े।

इधर-उधर घूमते हुए वे सिद्धपुर पहुँचे। सिद्धपुर में उन दिनों एक मेला चल रहा था, जिसमें दूर-दूर से साधु आए हुए थे। यह सोचकर कि शायद इसी मार्ग से शान्ति

Hindi Premi

मिले, उन्होंने भी साधु का बाना स्वीकार कर लिया। रात-दिन साधुओं के सत्संग में सम्मिलित होते, जीवन और मृत्यु का रहस्य जानने का प्रयत्न करते। परन्तु कुछ ही दिनों में उनके वहाँ होने की सूचना घरवालों को मिल गई। पिता कई और सम्बन्धियों को साथ लेकर सिद्धपुर आ पहुँचे। उन्होंने क्रोध में आकर पुत्र का कमंडलु तोड़ डाला, उसके गेरुआ वस्त्र फाड़ दिए। घर लाकर उन्हें कड़ी निगरानी में रख दिया। परन्तु यह नियन्त्रण अधिक दिन सफल नहीं रहा। मूलशंकर किसी तरह फिर घर से निकल गए। इस बार उन्होंने निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो, अब वे लौटकर घर नहीं आएँगे।

अब उन्हें खोज थी एक गुरु की। चामोद कर्णाली पहुँचकर वे स्वामी पूर्णानन्द से मिले। उनसे संन्यास लेकर इन्होंने नया नाम अपना लिया—दयानन्द। उसके बाद भ्रमण करते हुए हरिद्वार चले गए। वहाँ कुम्भ-मेला चल रहा था। मेले में उन्होंने धर्म के नाम पर जो कुछ होते देखा, उससे उन्हें बहुत ग्लानि हुई। मन में संकल्प जागा—इन कुरीतियों को दूर करने के लिए उन्हें अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु इसके लिए भी किसी का मार्ग-दर्शन चाहिए। उन्होंने सुन रखा था कि गढ़वाल में अलखनन्दा के पार बहुत-से योगी रहते हैं। वह वहाँ पहुँचे, पर कोई ऐसा योगी नहीं मिला जो सचमुच उन्हें दिशा दिखा सकता। वहाँ से वे गढ़मुक्तेश्वर गए। वहाँ एक दिन इन्होंने नदी में बहते एक शव को निकाल लिया। उसकी चीर-फाड़ करके देखना चाहा कि योगियों द्वारा बताए गए चक्र तथा कुंडलिनियाँ आदि उसमें हैं या नहीं? परन्तु शव के अन्दर जो कुछ मिला, वह सर्वथा भिन्न था।

वे कानपुर गए। प्रयाग गए। काशी गए। पर कहीं भी उन्हें अपने मन के अनुकूल गुरु नहीं मिला। फिर पता चला कि मथुरा में दंडी स्वामी बिरजानन्द नाम के नेत्रहीन ब्राह्मण रहते हैं जो सचमुच उनका पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। वे मथुरा चले गए। स्वामी बिरजानन्द से मिलकर उन्हें लगा कि सचमुच यही गुरु हैं, जिसकी उन्हें खोज थी। स्वामी बिरजानन्द संस्कृत व्याकरण के पंडित थे। वेदों की उन्होंने मौलिक व्याख्या की थी। वे बहुदेवोपासना, मूर्ति-पूजा आदि को वेदों के विरुद्ध बतलाते थे। वे स्वयं एक ऐसे शिष्य की खोज में थे जो उनके विचार जन-साधारण तक पहुँचा सके। दयानन्द ने उनके प्रश्नों के जो उत्तर दिए, उनसे प्रसन्न होकर उन्होंने तुरन्त उसे अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया।

यहाँ इनका संस्कृत व्याकरण तथा वैदिक साहित्य का अध्ययन आरम्भ हुआ। स्वामी बिरजानन्द जो एक बार पढ़ा देते, वह दूसरी बार नहीं पढ़ाते थे। दयानन्द की प्रतिभा इतनी विलक्षण थी कि इन्हें दोबारा पूछने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। कहते हैं कि एक बार का पाठ इतना कठिन था कि यह उसमें से कुछ अंश भूल गए। गुरु से यह बात कही, तो वे उस पाठ को दोहराने को तैयार नहीं हुए। ये निराश

149677
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
Hindi Premi

होकर यमुना के किनारे एक पेड़ के नीचे जा बैठे। एकाग्रचित होकर सोचने से थोड़ी देर में पाठ स्मरण हो आया। जाकर जब गुरु को वह पाठ उन्होंने सुना दिया, तो गुरु की प्रसन्नता की सीमा न रही।

दयानन्द स्वामी बिरजानन्द के पास रहकर ढाई वर्ष अध्ययन करते रहे। वेदों और शास्त्रों को समझने की एक नई दृष्टि प्राप्त करने के अनन्तर विदा लेने का समय आया। दयानन्द सोचने लगे कि उन्हें गुरु-दक्षिणा क्या देनी चाहिए? गुरु को लौंग बहुत पसन्द थी। दयानन्द जब कुछ लौंग लेकर उनके पास पहुँचे, तो गुरु ने कहा, "गुरु-दक्षिणा के रूप में मुझे ये लौंग नहीं, कुछ और चाहिए।"

दयानन्द बोले, "मेरा तन-मन आपकी सेवा में है। आप आदेश दीजिए!"

गुरु ने कहा, "चारों ओर अविद्या और अज्ञान का अन्धकार छाया है। रूढ़ियों और मत-मतान्तरों ने देश में घर कर रखा है। तुम देश में ज्ञान और विद्या का प्रकाश फैलाओ, मैं तुमसे यही गुरु-दक्षिणा चाहता हूँ।"

अब अपना स्पष्ट कार्य-क्षेत्र इनके सामने था। देश का मानसिक जीवन अन्धविश्वासों में खोखला हो रहा था। विदेशी राज्य-सत्ता ने सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों को लगभग तोड़ दिया था। लोग कायर थे और अपनी सुविधा ही उनका जीवन-दर्शन था। कुरीतियाँ कितनी ही थीं—जाति-भेद, बाल-विवाह, विधवाओं के प्रति अमानुषिक व्यवहार स्त्रियों को शिक्षा की अधिकारिणी ही नहीं समझा जाता था। जनता के अज्ञान का लाभ उठाकर ईसाई पादरी तत्परता से अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे। स्वामी दयानन्द ने भी इन सभी परिस्थितियों से एक-साथ लड़ने का निश्चय कर लिया। सोच लिया कि वे लिखकर, भाषण देकर तथा एक संगठन तैयार करके अपने समय की सामाजिक कुरीतियों से लोहा लेंगे। जब तक समाज की जागृति नहीं आएगी, वे साँस नहीं लेंगे।

पूरे देश में उन्होंने भ्रमण करना आरम्भ किया। आज यहाँ भाषण, कल वहाँ शास्त्रार्थ। आगरा, धौलपुर, ग्वालियर—जहाँ कहीं वे पहुँचे, जनता ने खुलकर उनका स्वागत किया। सदियों से अन्धविश्वासों में जकड़े लोगों को जैसे एक नई चेतना मिलने लगी। उनकी वाणी में ही ऐसा प्रभाव था कि लोग अनायास उनके अनुयायी बन जाते। जो बातें कहते, वे समय की सच्ची अनुभूति थीं; क्योंकि वही अनुभूति लोगों के अपने अन्दर भी थी, इसलिए उसके मुखर होकर सामने आने से उन्हें लगता जैसे उनके अपने ही मन की बात कोई दूसरा उनसे कह रहा हो। करौली, जयपुर—हर जगह एक-सी हलचल, एक-सी वैचारिक क्रान्ति। हर जगह पुराने पंडित-वर्ग की ओर से एक-सा विरोध। परन्तु उस विरोध को पराजित करती वही ओज-भरी वाणी।

फिर आया हरिद्वार का कुम्भ-मेला। स्वामी दयानन्द ने वहाँ जाकर फिर वही दृश्य देखा। वही पंडों का पाखंड, साधुओं के आडम्बर। साधुओं के जुलूस निकलते,

149677
Hindi Premi

तो हज़ारों स्त्रियाँ उनकी चरणधूलि सिर पर लगातीं। स्वामी दयानन्द से यह सब सहा नहीं गया। उन्होंने वहाँ अपनी 'पाखंड खंडिनी' पताका गाड़ दी और लोगों को वास्तविक आर्य-धर्म का उपदेश देने लगे। पंडों ने उन्हें वहाँ से उखाड़ने के बहुत प्रयत्न किए, परन्तु सफल नहीं हो सके।

स्वामी दयानन्द के सबल व्यक्तित्व तथा अकाट्य तर्कों के कारण जहाँ बहुत-से लोग उनके शिष्य बन गए, वहीं अनेक रूढ़िवादी उनके शत्रु भी हो गए। इन लोगों ने उन्हें मार्ग से हटाने के लिए सभी तरह के प्रयत्न किए। उन पर पत्थर बरसाए। यहाँ तक कि उन्हें विष भी देने का प्रयत्न किया। अनुपशहर में जब उन्हें विष दिया गया, तो उन्होंने यौगिक क्रिया द्वारा सारा विष बाहर निकाल दिया। विष देने के अपराध में जब उस ब्राह्मण को पकड़ लिया गया, तो स्वामी दयानन्द ने यह कहकर उसे मुक्त करा दिया, "मेरा ध्येय मनुष्यों को बन्धन में डालना नहीं, बन्धन से मुक्त कराना है।"

और वह बन्धन था सदियों में बनाए गए गलत संस्कारों का। उन्हें उन संस्कारों को बदलना था। लोगों को उस धर्म के निकट ले जाना था जो वास्तविक वैदिक-धर्म था, वास्तविक आर्य-धर्म था। इसके लिए आवश्यक था कि उनकी वाणी हर व्यक्ति तक पहुँच सके। पहले वे संस्कृत में भाषण दिया करते थे। परन्तु अपनी बात जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए उन्होंने उन्हीं की भाषा में बात कहने का निश्चय किया। वे अपने भाषण हिन्दी में देने लगे।

एक बार स्वामी दयानन्द कर्णवास पहुँचे। उन दिनों वहाँ गंगा-स्नान का मेला था। हज़ारों लोग देश के विभिन्न भागों से वहाँ स्नान के लिए आए हुए थे। उनमें बरेली के राय कर्णसिंह भी थे। स्वामी दयानन्द ने वहाँ भाषण दिया। जैसे ही भाषण समाप्त हुआ, राय कर्णसिंह उनसे वाद-विवाद करने लगे। स्वामी दयानन्द ने कर्णसिंह से कुछ प्रश्न पूछे जिनका वह उत्तर नहीं दे पाए। अपनी असमर्थता पर उन्हें इतनी खीझ हुई कि वे इन पर गालियों की बौछार करने लगे। क्रोध में उनका हाथ बार-बार तलवार की मूठ पर जा रहा था। यह देख दयानन्द बोले, "यदि शास्त्रार्थ करना है, तो अपने गुरु को यहाँ बुला लाओ। यदि युद्ध करने का शौक है तो एक संन्यासी से क्यों टकराते हो, जयपुर और जोधपुर से जा भिड़ो।" यह सुनकर कर्णसिंह इन पर तलवार से वार करने दौड़े। वे वार करने ही जा रहे थे कि इन्होंने तलवार छीनकर उसके दो टुकड़े कर दिए और कहा, "मैं संन्यासी हूँ। तुम पर वार करके बदला नहीं लूँगा। जाओ, भगवान तुम्हें सुबुद्धि दे।"

यूँ तो स्वामी दयानन्द का कार्य-क्षेत्र सारा उत्तर भारत था, फिर भी इन्हें अधिक सफलता पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में मिली। लगभग अठारह वर्ष वे विभिन्न प्रदेशों में घूमकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे। एक तरह से कहा जा सकता

Hindi Premi

है कि उन्होंने प्राचीन और नवीन के बीच एक कड़ी का काम किया। 10 अप्रैल, 1875 को बम्बई में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। दो वर्ष बाद लाहौर में आर्य समाज की स्थापना की। शीघ्र ही इसने एक व्यापक संगठन का रूप ले लिया और उत्तर भारत के प्रायः सभी नगरों और क़स्बों में आर्य समाज के अपने मन्दिर स्थापित हो गए। इनके शिष्यों की संख्या इतनी बढ़ गई कि उन्होंने यह वैचारिक क्रान्ति शिक्षा के क्षेत्र में ले जाने का निर्णय कर लिया। शिक्षा के अतिरिक्त राजनीति को भी एक नई दिशा देने का संकल्प कर लिया गया। इसी उद्देश्य से स्वामी श्रद्धानन्द ने 'गुरुकुल कांगड़ी' की स्थापना की।

सन 1883। महाराजा जोधपुर ने स्वामी दयानन्द को अपने यहाँ निमन्त्रित किया था। वहाँ कई दिनों तक वे महाराजा के अतिथि के रूप में नियमित रूप से जनता को उपदेश देते रहे। वहाँ रहते इन्हें पता चला कि महाराजा एक वेश्या से प्रेम करते हैं। इन्होंने इस बात की भर्त्सना की, तो वह वेश्या इनकी शत्रु बन गई। रसोइए से मिलकर उसने इन्हें भोजन में विष खिला दिया। विष के प्रभाव से इनके सारे शरीर पर फफोले निकल आए। चिकित्सा का अच्छे-से-अच्छा प्रबन्ध किया गया, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। सन् 1883 की दीवाली का दिन था। स्वामी दयानन्द गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते-करते एकाएक मौन हो गए।

कुछ ही व्यक्ति होते हैं जिनकी मृत्यु उनके जीवन से अधिक क्रान्तिकारी सिद्ध होती है। स्वामी दयानन्द ऐसे ही व्यक्तियों में से थे। उनकी मृत्यु के कुछ ही वर्षों के अन्दर आर्य समाज ने एक अत्यन्त सबल आन्दोलन का रूप ले लिया। शिक्षा के क्षेत्र में तो इनके अनुयायियों ने सचमुच एक क्रान्ति ला दी। स्वामी दयानन्द को एक तरह से उत्तर भारत में आधुनिक विचारधारा का प्रवर्तक कहा जा सकता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में उन्होंने जो स्थापनाएँ सामने रखीं, उन्हीं के आधार पर समाज का मानसिक पुनर्गठन सम्भव हो सका। जब कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था, तभी उन्होंने कहा था कि स्वराज्य के बिना कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि अंग्रेजी हमारे संस्कारों की भाषा नहीं है, संस्कृत जनसाधारण से दूर जा पड़ती है, इसलिए हिन्दी ही सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा हो सकती है। गांधीजी के हरिजन-आन्दोलन से बहुत पहले उन्होंने कहा था कि अस्पृश्यता हमारे समाज के लिए घातक है। वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार करते हुए भी उसका आधार जन्म को नहीं, कर्म को माना था। कहा था, "जन्म से सब बराबर हैं। अपने कर्म से ही व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र बनता है।" इसी तरह स्त्री-शिक्षा का सूत्रपात तथा विधवा-विवाह का समर्थन करके उन्होंने एक पिछड़े समाज को अग्रगामी बनाने में बहुत बड़ा योग दिया। विश्व-कवि रविन्द्रनाथ ने इन शब्दों में उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की थी। "जिसकी दिव्य दृष्टि

Hindi Premi

ने भारत की आत्म-गाथा में सत्य और एकता का बीज देखा, जिसकी प्रतिभा ने भारतीय जीवन के विविध अंगों को प्रदीप्त कर दिया, जिसका उद्देश्य इस देश को अविद्या, अकर्मण्यता और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व-विषयक अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता के लोक में लाना था, उस गुरु को मेरा बारम्बार प्रणाम है!"

Hindi Premi

भगतसिंह

एक बार एक बच्चे ने अपने पिता को खेत में हल चलाते देखकर पूछ लिया कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं? पिता ने उत्तर दिया कि वह ज़मीन में अनाज बोने की तैयारी कर रहे हैं। बोए गए दाने पौधे बनकर अगली फ़सल में बहुत-सा गेहूँ उगाएँगे। बच्चे के प्रिय खिलौने थे बन्दूक और तलवार। वह बोला, "तो आप बन्दूक और तलवार क्यों नहीं बोते जिससे अगली फ़सल में बहुत-सी बन्दूकें और तलवारें उग आएँ?"

यह बच्चा बाद में क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह के नाम से विख्यात हुआ।

क्रान्तिकारी विचारधारा भगतसिंह के परिवार में ही थी। देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में इनके पिता किशनसिंह तथा चाचा अजीतसिंह का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सन् 1907 में जिस दिन भगतसिंह का जन्म हुआ, उसी दिन यह समाचार भी प्राप्त हुआ कि सरदार अजीतसिंह मांडले जेल से रिहा होकर आ रहे हैं। सरदार किशनसिंह भी उसी दिन नेपाल से लौटकर आए थे। भगतसिंह की दादी को लगा कि यह सब-कुछ इस बच्चे के भाग्य से हो रहा है, वह इसलिए इसे भागवाला कहकर बुलाने लगीं। यही नाम आगे चलकर भगतसिंह में बदल गया।

पिता और चाचा के क्रान्तिकारी विचारों के कारण भगतसिंह को बचपन से ही घर में देश-भक्ति का वातावरण मिला। शिक्षा के दिनों इन्हें जो साथी मिले, वे भी इसी भावना से अनुप्राणित थे। डी.ए.वी. स्कूल लाहौर से मैट्रिक पास करके ये लाजपतराय द्वारा संचालित नेशनल कॉलेज में प्रविष्ट हो गए। सुखदेव और भगवतीचरण आदि युवा क्रान्तिकारी भी उन दिनों वहीं पर थे। इस वातावरण में अर्थशास्त्र और राजनीति में भगतसिंह की दिलचस्पी बढ़ने लगी। कॉलेज की वाद-विवाद प्रतियोगिता को भी उन्होंने एक नया स्वर देना शुरू किया। यह स्वर क्रान्ति के बीज बोनेवाला तो था ही, ब्रिटिश साम्राज्य को एक चुनौती देनेवाला भी था।

घर के लोगों को भगतसिंह से बहुत स्नेह था। उन पर दवाब डाला जाने लगा कि वे शीघ्र विवाह कर लें। परन्तु भगतसिंह के मन में तो यह कल्पना ही नहीं थी। उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया। लेकिन उनके विरोध की ओर ध्यान न देकर

Hindi Premi

जब एक जगह उनके विवाह की बात पक्की कर दी गई, तो वे चुपचाप घर छोड़कर निकल पड़े।

अब प्रश्न सामने था कि जीने का साधन क्या हो? नौकरी? परन्तु कैसी नौकरी?

कानपुर से गणेशशंकर विद्यार्थी 'प्रताप' नामक पत्र निकाल रहे थे। भगतसिंह कानपुर जाकर विद्यार्थीजी से मिले। पत्र की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी—उस पर सरकार की कोप-दृष्टि रहती थी। विद्यार्थीजी सरकारी नीतियों की निर्भीक आलोचना करते थे, इसलिए अधिकांश शिक्षित लोग उसे अपनाने से कतराते थे। मुकद्दमा भी कोई-न-कोई चलता ही रहता था। पत्र इस स्थिति में नहीं था कि भगतसिंह को समुचित वेतन दिया जा सके। परन्तु भगतसिंह के लिए यह चीज़ महत्त्व नहीं रखती थी। उन्होंने विद्यार्थीजी से कहा कि उन्हें केवल दो समय के भोजन के लिए पैसा चाहिए, और कुछ नहीं, "मैं आपके सम्पर्क में रहकर देश-सेवा की कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकूँ, यह मेरे लिए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।"

भगतसिंह 'प्रताप' में विद्यार्थीजी के सहकारी के रूप में कार्य करने लगे। सुविधा के लिए नाम उन्होंने दूसरा रख लिया—बलवन्तसिंह। वही काम करते हुए बटुकेश्वर दत्त से इनका परिचय हुआ। इससे क्रान्तिकारी जीवन के बीज और अंकुरित होने लगे।

घर से समाचार मिला कि माँ बहुत बीमार हैं। भगतसिंह उनसे मिलने गए और निरपराध जेल में ठूँस दिए गए।

रामलीला का दिन था। लाहौर में उस दिन बहुत बड़ा मेला लगा करता था। मेले में हज़ारों लोगों की भीड़ के बीच अचानक एक बम फटा। उससे कई लोग मारे गए, कई भाग-दौड़ में कुचले गए। बम फेंकनेवाले का पता नहीं चला। मगर पुलिस को भगतसिंह पर अभियोग लगाने का एक बहाना मिल गया। उन्हें बम फेंकने के अपराध में पकड़ लिया गया। कई निरपराध देशवासियों की हत्या, यह एक ऐसा आरोप था जिसके कारण भगतसिंह का हृदय छटपटाने लगा। बहुत दौड़-धूप के बाद सरदार किशनसिंह ने साठ हज़ार की ज़मानत दिलवाकर उन्हें छुड़ा लिया। परन्तु ज़मानत देनेवाले की एक शर्त भी थी वह यह कि ज़मानत पर रहते वे क्रान्तिकारी कार्यों में भाग नहीं लेंगे। मन मारकर भगतसिंह को कुछ समय के लिए अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों को स्थगित कर देना पड़ा।

परन्तु चुप बैठे रहना भी उनके लिए सम्भव नहीं था। उन्होंने उन्हीं दिनों 'नौजवान भारत सभा' का संगठन कर डाला, जिसका उद्देश्य था भारत में सामाजिक और राजनीतिक जागरण की भूमिका तैयार करना। भगतसिंह का मन अब क्रान्ति से आगे के प्रश्नों से जूझने लगा था—गोरे शासकों के चले जाने के बाद देश की शासन-व्यवस्था क्या होगी? स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ क्या है? स्वतन्त्रता एक लक्ष्य है, परन्तु उस लक्ष्य तक पहुँचाने का निश्चित उद्देश्य?

Hindi Premi

सितम्बर 1928। दिल्ली में पुराने क़िले के मैदान में प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों की एक सभा। अब तक इनके क्रान्तिकारी दल का नाम था 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी।' भगतसिंह ने प्रस्ताव रखा कि नाम बदलकर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' कर दिया जाए। कहा कि इसी से स्पष्ट होगा कि हम देश में किस तरह का शासन चाहते हैं। यदि हमारा आन्दोलन जनता का आन्दोलन है, तो जनता के हितों को सामने रखकर चलना आवश्यक है। पहले तो उनके प्रस्ताव को समर्थन प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु अन्त में सब लोग सहमत हो गए। दल ने नया नाम अपना लिया जिसका संक्षिप्त रूप था–एच.एस.आर.ए.।

उसके बाद दल का कार्यालय झाँसी में आ गया। उन दिनों का वर्णन श्री भगवानदास ने अपने संस्मरणों में इस प्रकार किया है, "हम लोग दाल एक टूटे मटके की पेंदी में बनाते थे। अपने पाक-शात्र के ज्ञान से नमक-मिर्च तो डाल लेते–कभी कम कभी ज़्यादा–परन्तु दाल में हल्दी भी पड़ती है, इस रहस्य का हमें ज्ञान न था। अतः हमारी दाल शक्ल-सूरत में ऐसी होती थी कि साधारण भूख तो उसे देखते ही भाग जाती।"

रोटी के नाम पर मोटे-मोटे अधजले टिक्कड़ और बिस्तर के स्थान पर अख़बार–इस तरह का जीवन व्यतीत करते हुए युवा क्रान्तिकारी अपने को शिक्षित करने का भी प्रयत्न कर रहे थे। पुस्तकें ख़रीदने की सामर्थ्य नहीं थी, इसलिए भगतसिंह अपने मित्रों-परिचितों से पुस्तकें माँग-माँगकर ले आते। स्वयं पढ़ते तथा शेष लोगों से पढ़ने का अनुरोध करते। इस तरह इनके पास अपना एक छोटा-सा पुस्तकालय भी तैयार हो गया।

यही समय था जब सूचना मिली कि 'साइमन कमीशन' लाहौर आ रहा है। भगतसिंह लाहौर चले गए। वहाँ 'साइमन कमीशन' के विरोध में प्रर्दशन करते हुए लाला लाजपतराय को घातक चोटें आ गईं। भगतसिंह का ख़ून खौल उठा। क्रान्तिकारियों की एक बैठक हुई जिसमें तय पाया कि लालाजी पर हुए आक्रमण के लिए उत्तरदायी पुलिस-अफ़सर सैंडर्स को जान से मार दिया जाए।

17 दिसम्बर, 1928। शाम के चार बजे। छुट्टी होते ही सैंडर्स पुलिस-कार्यालय से निकलकर मोटर-साइकिल पर सवार हुआ। ज्यों ही मोटर-साइकिल चलने को हुई, शिवराम, राजगुरु और भगतसिंह ने उस पर गोलियाँ चलाईं। चन्द्रशेखर आज़ाद भी इनके साथ थे। सैंडर्स तड़पकर गिर पड़ा। ये लोग डी.ए.वी. कॉलेज के होस्टल में जा छिपे और कुछ देर पुलिस की राह देखकर वहाँ से भी साइकिलों पर हवा हो गए। बाद में पुलिस ने होस्टल के चप्पे-चप्पे की तलाशी ली, पर वहाँ उन्हें कौन मिलता? अब लाहौर से बाहर जानेवाली सब सड़कों और आस-पास के स्टेशनों पर पुलिस का कड़ा पहरा बैठा दिया गया। पर सारी निगरानी के बावजूद अगले दिन नगर के प्रमुख

Hindi Premi

स्थानों पर ये पोस्टर लगे देखे गए: "सैंडर्स मारा गया। लालाजी की मृत्यु का बदला ले लिया गया।"

और कुछ ही दिनों के बाद एक सरकारी अफ़सरनुमा आदमी वैसे ही साज़-समान के साथ लाहौर स्टेशन पर गाड़ी पर सवार होने आया। उसके साथ आधुनिक वेषभूषा में एक सुन्दर युवती भी थी। सरकारी चपरास पहने एक अरदली भी साथ में था। दिल्ली की गाड़ी आने पर ये लोग फ़र्स्टक्लास के डिब्बे में सवार हो गए। इस तरह खुफ़िया पुलिस की आँखों में धूल झोंककर भगतसिंह, शिवराम तथा राजगुरु लाहौर से भाग निकले। पीछे रह गए चन्द्रशेखर आज़ाद। उन्होंने एक पंडे का वेष धारण करके अपने साथ तीर्थ-यात्रियों की एक टोली तैयार कर ली और भजन-कीर्तन करते उत्तर प्रदेश पहुँच गए।

अब क्रान्तिकारी संगठन का कार्य-क्षेत्र पहले से बहुत विस्तृत हो गया था और पुलिस की और भी कड़ी नज़र उन पर रहने लगी थी। अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करने के लिए उन्हें बहुत दौड़-धूप करनी पड़ती थी, इसलिए इस दृष्टि से आत्मनिर्भर होने के लिए उन्होंने सारे संकटों के बीच आगरा, लाहौर तथा झाँसी में बम बनाने के कारख़ाने स्थापित कर लिए। पुलिस की सतर्कता बढ़ गई। परन्तु पुलिस को हर तरह से झाँसा देकर ये लोग अपना कार्य आगे बढ़ाते रहे।

भगतसिंह को लग रहा था कि अब अवसर आ गया है जब उन्हें अपना दृष्टिकोण जनता के सामने रखना चाहिए। असेम्बली में 'पब्लिक सेफ़्टी बिल' पेश होने को था। नागरिक स्वतन्त्रता पर होनेवाले इस प्रहार का विरोध करने के लिए सोचा गया कि असेम्बली-अधिवेशन के समय वहाँ बम फेंका जाए—मगर ऐसा बम जिससे धमाका ही हो, किसी के जीवन की क्षति न हो। बम फेंककर ये लोग अपने को पुलिस के हवाले कर दें। बाद में जब मुक़द्दमा चले, तो अपने बयानों द्वारा अपना उद्देश्य जनता के सामने रखें।

असेम्बली में गरमा-गरम बहस चल रही थी जब सरकारी बेंचों की तरफ़ बम फटने का शब्द सुनाई दिया। और फिर एक बार वैसा ही शब्द 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' का नारा वातावरण में गूँज उठा। भगदड़ शान्त होने पर लोगों ने देखा कि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त महिलाओं की गैलरी के पास खड़े नारे लगा रहे हैं और लाल रंग के पर्चे बाँट रहे हैं। पर्चों पर पहला वाक्य था, "बहरों को सुनाने के लिए ज़ोर से बोलना पड़ता है।" पर्चे बाँटकर वे दोनों मुस्कराते हुए वहीं खड़े रहे और पुलिस द्वारा बन्दी बना लिए गए।

दोनों को दिल्ली जेल की अलग-अलग कोठरियों में बन्द कर दिया गया। डरा-धमकाकर उनसे क्रान्तिकारी संगठन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न किए जाने लगे। तरह-तरह की यन्त्रणाएँ देकर भी इनसे कुछ पता नहीं चला, तो इन पर मुकद्दमा चला दिया गया।

Hindi Premi

मुक़द्दमे की कार्यवाही आरम्भ हुई जेल के अन्दर, क्योंकि खुली अदालत में कार्यवाही करने से जनता में बहुत हलचल पैदा होने की आशंका थी। जेल के अन्दर और बाहर पुलिस का कड़ा पहरा बिठा दिया गया। कार्यवाही के बाद निर्णय सुनाया गया—दोनों को आजीवन कारावास। उसके बाद बटुकेश्वर दत्त को लाहौर सेंट्रल जेल में डाल दिया गया और भगतसिंह को मियाँवाली जेल में भेज दिया गया। मगर जेल में रहते इन लोगों की विद्रोह-भावना एक और मार्ग से बाहर फूट निकली। बाहर इनकी लड़ाई राष्ट्रीय आत्म-सम्मान के लिए थी। जेल के अन्दर उसने राजनीतिक आत्म-सम्मान का रूप ले लिया। राजनीतिक बन्दियों के साथ में जो व्यवहार होता था, वह इन्हें सह्य नहीं लगा। इसके लिए इन्होंने जो माँगें सामने रखीं, वे सरकार ने स्वीकार नहीं कीं। भगतसिंह तथा अन्य क्रान्तिकारियों ने जेल में अनशन आरम्भ कर दिया।

उधर सैंडर्स-हत्याकांड के सिलसिले में पकड़े गए संदिग्ध व्यक्तियों से सरकार को किसी तरह पता चल गया था कि सैंडर्स की हत्या के लिए वास्तव में भगतसिंह उत्तरदायी हैं। वे अनशन के कारण बहुत कमज़ोर थे, फिर भी अभियोग की जाँच के लिए उन्हें मियाँवाली जेल से लाहौर ले जाया गया। कुछ दिनों में उनकी अवस्था बहुत बिगड़ने लगी। अधिकारियों ने उन्हें ज़बर्दस्ती कुछ-न-कुछ खिलाना चाहा। मुँह और नाक के रास्ते दूध उनके पेट में पहुँचाने की चेष्टा की। परन्तु सफलता नहीं मिली। देश में इन लोगों के अनशन को लेकर व्यापक असन्तोष फैलता जा रहा था। सभाएँ हो रही थीं जिनमें इनकी नैतिक माँगों का समर्थन किया जा रहा था। बीच में इनकी हालत बिगड़ती देख कुछ नेताओं ने इनसे अनशन छोड़ देने का अनुरोध भी किया, परन्तु ये लोग अपने हठ से नहीं हटे।

आख़िर सरकार सचेत हुई। इन लोगों से प्रकट की जानेवाली सहानुभूति एक आन्दोलन का रूप लेती जा रही थी, इसलिए हारकर उन्हें इन लोगों की माँगों पर विचार करने के लिए एक समिति का निर्माण करना पड़ा। अनशन करनेवालों में क्रान्तिकारी यतीन्द्रनाथ दास भी थे। उनकी दशा शोचनीय हो गई थी, इसलिए समिति ने सुझाव दिया कि उन्हें बिना शर्त रिहा कर दिया जाए। यह सूचना पाकर भगतसिंह तथा उनके साथियों ने अनशन भंग करने का निश्चय कर लिया। परन्तु दूसरे दिन समिति का मत बदल गया। कहा गया कि यतीन्द्रनाथ दास को ज़मानत पर छोड़ा जा सकता है। यतीन्द्रनाथ दास इसके लिए तैयार नहीं हुए। अनशन फिर से आरम्भ हो गया। बासठ दिन के अनशन के बाद जेल में ही यतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु हो गई। सारे देश में आवेशभरा शोक छा गया। यह मृत्यु अपने में ही इतनी क्रान्तिकारी थी कि देश में उबाल-सा उठने लगा। सरकार ने सतर्क होकर जल्दी से जेल के नियमों में अपेक्षित सुधार कर दिए। राजनीतिक बन्दियों के लिए जेल में 'ए', 'बी' तथा 'सी'

Hindi Premi

श्रेणियाँ बना दी गईं। एक सौ पन्द्रह दिनों के बाद भगतसिंह तथा उनके साथियों ने अपना अनशन भंग किया।

परन्तु सरकार को सैंडर्स की हत्या का प्रतिशोध अभी लेना था। उसने एक नया अध्यादेश जारी करके लाहौर-षड्यन्त्र के मुक़द्दमे को एक विशेष न्यायालय को सौंप दिया। भगतसिंह तथा उनके साथियों ने इस न्यायालय की वैधानिकता स्वीकार नहीं की और अपना पक्ष रखने उसके सामने नहीं गए। इस तरह केवल सरकारी अभियोग के आधार पर न्यायालय ने निर्णय दे दिया—भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी तथा अन्य कुछ लोगों को काला पानी।

देश-भर में एक तूफ़ान-सा उठ आया। सभाएँ हुईं। जुलूस निकले। वक्तव्य दिए गए। प्रदर्शन किए गए। परन्तु सरकार अपने निर्णय से नहीं हटी। 23 मार्च, 1931 को रात के आठ बजे शेष दोनों साथियों के साथ भगतसिंह को फाँसी पर लटका दिया गया। फाँसी प्रायः सुबह दी जाती थी, पर उस नियम को ताक पर रखकर प्राण लेने का काम रात में ही निपटा दिया गया। अन्तिम क्षण तक इनके मुँह से निकले ये शब्द वातावरण में गूँजते रहे : 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद!'

फाँसी के बाद उन तीनों साथियों के शरीर उनके सम्बन्धियों को नहीं दिए गए। उसमें भी सरकार को अपने लिए खतरा नज़र आया। यह समझने में सरकार को कई वर्ष लगे कि फाँसी व्यक्ति को दी जा सकती है, उसकी भावना को नहीं। परिणाम? इतिहास साक्षी है।

Hindi Premi

वाल्टेयर

कहते हैं कि जो बच्चे जन्म के समय बहुत कमज़ोर होते हैं, वे या तो बचते नहीं और अगर बच जाते हैं, तो बहुत सबल व्यक्तित्व लेकर बड़े होते हैं।

सन् 1694 में जब वाल्टेयर ने नोतेअर एरुवे के यहाँ पेरिस में जन्म लिया, तो घर के इस सबसे छोटे बच्चे के जीने की आशा किसी को नहीं थी। वह एक रोगी-सा दिखनेवाला बच्चा था—दुबला और पीत-वर्ण। उसकी झुलती-सी पतली टाँगों को जब नर्स हाथ में लेती, तो उसे लगता कि उसने एक मकड़े की हिलती टाँगों को थाम लिया है। लेकिन अपने सिकुड़े-मुरझाए शरीर के बावजूद यह बच्चा जीवित रहा और बड़ा होकर अपने समाज के सिकुड़े-मुरझाए विचारों में क्रान्ति लाने का प्रयत्न करता रहा।

वाल्टेयर का वास्तविक नाम था फ्रांस्वा मेरी एरुवे। अपना प्रख्यात नाम उन्होंने स्वयं बाद में अपनाया था।

तीन साल की उम्र से ही फ्रांस्वा की विलक्षण प्रतिभा का परिचय उनके घरों के लोगों को मिलने लगा था। वे जो भी क़िस्सा-कहानी सुनते, उसे ज्यों का त्यों दोहरा देते। स्कूल-शिक्षा के दिनों में वे क्लास में ऐसे सवाल-जवाब करते कि अध्यापक उन्हें आश्चर्य से देखते रह जाते। रूढ़ि से हटकर सोचने की शिक्षा उन्हें अपने धर्म-पिता अब्बे दशातोनाँ से मिली थी। धर्म-पिता ने कई ऐसी बातें भी उन्हें सिखा दी थीं जो साधारणतया आदमी वयस्क होने पर ही सीखता है। इससे काफ़ी आत्म-विश्वास भी उनके अन्दर पैदा हो गया था। उनके साथी जब अपनी जीविका आदि की बातें कह रहे होते, तो एक हल्की-सी मुस्कराहट से ये उन्हें काफ़ी छोटा कर देते। अपने भविष्य के सम्बन्ध में एक निर्णय उनके अन्दर अपने-आप ही हो गया था। इसलिए उनके पिता को काफ़ी धक्का लगा जब लड़के ने उनकी इच्छा के अनुसार वकालत का पेशा अपनाने की जगह यह घोषणा कर दी, "मैं सिवाय पढ़ने-लिखने के और कोई काम नहीं करना चाहता।"

उस समय फ्रांस में भी केवल लिखकर जीना एक युवा व्यक्ति के लिए आसान नहीं था। परन्तु फ्रांस्वा की पीठ ठोंकने के लिए उसके धर्म-पिता थे। उन्हें इस बात

Hindi Premi

पर गर्व था कि फ्रांस्वा अपने घर के लोगों से कहीं अधिक उनके प्रभाव में है। वे अपने मित्रों-परिचितों के बीच उस लड़के की प्रतिभा की चर्चा करते अघाते नहीं थे। उसके उग्र विचारों में वे अपनी दी हुई शिक्षा का ही बीज देखते। वह जो कविताएँ लिख रहा था, उसका सम्बन्ध वे उस साहित्य से जोड़ते जिसके साथ फ्रांस्वा का परिचय स्वयं उन्होंने कराया था। उनका विश्वास था कि गिरजाघर से जुड़े होने पर भी वे अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते हैं और उस व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हो रही है इस युवा कवि की रचनाओं में। क्योंकि उनका परिचय राज-भवन से सम्बद्ध कई लोगों से भी था, इसलिए फ्रांस्वा को बहुत शीघ्र ही प्रशंसा और सम्मान का वातावरण प्राप्त हो गया। जिन लोगों ने सहसा उसे एक मूर्ति की तरह अपना लिया, उनमें से कुछ तो सहृदय और मेधावी भी थे, परन्तु अधिकतर थे ऐसे शौकीन-मिज़ाज़ लोग जिनके लिए साहित्य भी खाने-पहनने जैसा ही एक शौक होता है। वे किसी भी एक व्यक्ति की प्रतिभा की प्रशंसा करके अपनी प्रतिभा का परिचय दे लेते हैं इसलिए वे फ्रांस्वा की कविताओं से अधिक उसकी तेज़-तर्रार बातों पर मुग्ध होते—उसके मुँह से निकले एक-एक वाक्य को यहाँ-वहाँ सुनाते फिरते। उन्हीं दिनों फ्रांस्वा ने अपना पहला नाटक लिख डाला—'ओदीप'। उसके बहुत-से प्रशंसकों ने वह नाटक पढ़ा, न सुना, पर उसकी प्रशंसा वे जी खोलकर करने लगे। फिर भी किसी नाटक-मंडली ने तुरन्त उस नाटक को खेलने का प्रस्ताव नहीं किया तो फ्रांस्वा के मन को बहुत धक्का लगा। उसने मान लिया कि या तो वे लोग उससे जलते हैं, या फिर नाटक उनकी समझ से बाहर है।

वाल्टेयर के पिता देख रहे थे कि लड़का बिलकुल उनके हाथ से बाहर होता जा रहा है। पूरा-पूरा दिन आवारा लोगों के साथ कभी यहाँ घूम रहा है, कभी वहाँ। कोई ठिकाना ही नहीं कि कब घर लौटकर आएगा और आएगा भी या नहीं। जिस मंडली में वह घूमता था, उसमें कुछ ऐसी महिलाएँ भी थीं जिनके साथ उसका उठना-बैठना उन्हें सह्य नहीं था। उन्होंने निश्चय किया कि उसे पेरिस से बाहर भेज देंगे। अब्बे दशातोनाँ के भाई हॉलैंड में फ्रांस के राजदूत थे। उन्होंने उसे उनके पास भेज दिया। पर कुछ ही दिनों में राजदूत महोदय ने उसके उग्र आचरण के कारण उसे फिर पेरिस लौटा दिया।

सन् 1715 में लूई 14वें की मृत्यु के बाद 15वें के राज्य-भार सँभालने पर जन-जीवन से कई तरह के प्रतिबन्ध हटा दिए गए, जिससे लेखकों को स्वतन्त्र रूप से लिखने-सोचने की सुविधा मिल गई। उस सुविधा के कारण बहुतों ने अपनी रचनाओं में अपने विचार खुलकर व्यक्त किए, परन्तु वाल्टेयर इस दिशा में इतना आगे बढ़ गए कि उन्हें अपने राज-विरोधी लेखन के लिए जेल की हवा खानी पड़ी। जेल में रहते उन्होंने अपने महाकाव्य 'हेनरी चतुर्थ' पर काम करना आरम्भ किया,

Hindi Premi

जिसका प्रकाशन काफ़ी बाद में 'हेनरियेड' के नाम से हुआ। परन्तु राज्य ने जिस उद्देश्य से उन्हें जेल में ठूँसा था, उससे बिलकुल उलटा प्रभाव लेकर वे जेल से बाहर आए। उन तमाम परम्परागत संस्थाओं के प्रति उनके मन में तीव्र घृणा जाग उठी थी जो व्यक्ति के स्वतन्त्र चिन्तन में बाधा बन सकती थी।

जेल से छूटकर आने के बाद वाल्टेयर ने पेरिस में 'ओदीप' के अभिनय की व्यवस्था कर ली। नाटक खेला गया। उसे जो सफलता मिली, वह वाल्टेयर की अपनी आशा से कहीं अधिक थी। दर्शकों की इतनी बड़ी भीड़ नाटक देखने उमड़ आती कि उसे सँभालना कठिन हो जाता। परन्तु दर्शकों के आकर्षण का कारण नाटक के रूप में उसकी विशेषता नहीं, एक और ही बात थी। लोगों को लगता था कि वाल्टेयर ने अपने नाटक में उस समय के राजसी जीवन पर टिप्पणी की है। उन्हें लगता कि नाटक के पात्र उनके जाने-पहचाने हैं। वे वही राज-परिवार के सदस्य तथा राजकर्मचारी हैं जिनके भ्रष्ट जीवन से उनका निज का परिचय है। नाटक की घटनाएँ उन्हीं लोगों के जीवन की वास्तविक घटनाएँ हैं। इस तरह नाटक का आकर्षण लोगों के लिए वाल्टेयर के व्यक्तित्व का आकर्षण बन गया। वाल्टेयर की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। उन्हें लगा कि उनका मुख्य क्षेत्र नाट्य-लेखन ही है। उन्होंने एक के बाद एक कई नाटक लिख डाले परन्तु 'ओदीप' की जिस विशेषता ने लोगों को अपनी ओर खींचा था, वह विशेषता इन नाटकों में नहीं थी।

जितनी तेज़ी से वाल्टेयर ने नाटक लिखे, उतनी ही तेज़ी से वे असफल होते गए। हर नई असफलता वाल्टेयर को नए सिरे से क्षुब्ध करती और नए सिरे से जन-रुचि के प्रति उनकी कटुता को बढ़ा देती। उन्हें लगता कि लिखने से अधिक महत्त्वपूर्ण है लोगों के सोच-विचार को बदलना—उसे एक नया संस्कार देना। वे अपनी रचनाओं को लेकर काफ़ी तर्क-विर्तक करते और अपनी रचना-दृष्टि लोगों के सामने रखने के लिए एक वैचारिक ग्रन्थ लिखने की बात किया करते।

नाटकों की असफलता के बाद वे फिर अपने महाकाव्य में जुटे, जिसका प्रकाशन 1723 में हुआ। प्रकाशन की व्यवस्था उन्हें स्वयं रुआँ नगर में जाकर करनी पड़ी, क्योंकि पेरिस में कोई उसे छापने को तैयार नहीं हुआ। उनके लेखन पर राजसी कोप-दृष्टि पहले से ही थी—'हेनरियेड' के सम्बन्ध में यह अफ़वाह फैल गई थी कि उन्होंने धार्मिक कट्टरवादिता पर खुलकर आक्षेप किए हैं। लोग उस हद तक ही उनके वैचारिक विद्रोह का साथ देना चाहते थे जिस हद तक सुविधापूर्वक दिया जा सकता था। 'हर चीज़ एक हद तक ही ठीक होती है,' यह कहनेवाले बहुत थे। परन्तु इस तरह की दृष्टि से समझौता करना वाल्टेयर के स्वभाव में नहीं था। परिणामस्वरूप 1725 में शिवेलिए द रोहान से उनकी ख़ासी झड़प हो गई। रोहान ने उनका अपमान किया; उन्होंने करारा उत्तर दिया। रोहान ने अपने गुर्गों से उन्हें पिटवा दिया। वाल्टेयर

Hindi Premi

ने रोहान की द्वन्द्व-युद्ध की चुनौती दी, परन्तु निश्चित समय से पहले ही उन्हें फिर से पकड़कर जेल में डाल दिया। वाल्टेयर को अपने आस-पास के पूरे वातावरण से ही चिढ़ हो गई। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे फ्रांस में नहीं रहेंगे। जेल से छूटने पर वे राज्य से अनुमति लेकर इंग्लैंड चले गए।

इंग्लैंड में उन्हें मान्यता मिली। सहानुभूति भी मिली। वहाँ के प्रायः सभी प्रतिभाशाली व्यक्तियों से उनका परिचय भी हो गया—स्विफ़्ट से, पोप से, यंग से तथा ग्रे से। वहाँ के सम्भ्रान्त समाज के साथ भी उनका घनिष्ठ परिचय हो गया। जो उफान वे मन में लेकर आए थे, उसे यहाँ वे आसानी से बाहर निकाल सकते थे। इंग्लैंड के लोग इस दृष्टि से अधिक उदार थे। वे रूढ़िमुक्त विचारों से उस तरह नहीं घबराते थे जिस तरह फ्रांस के लोग। वाल्टेयर को इंग्लैंड में रहते आर्थिक उपलब्धि भी हुई। 'हेनरियेड' का संस्करण काफ़ी बिका। 1729 में पेरिस लौटने तक उन्होंने काफ़ी काम भी कर लिया। एक नए समाज की कामना उनके अन्दर पहले से ही थी। इंग्लैंड-प्रवास ने उस समाज की रूपरेखा उनके मन में और स्पष्ट कर दी।

1729 में वे फिर फ्रांस लौट आए। वहाँ आते ही उन्हें ख्याति भी मिली, धन भी। उनके नाटक काफ़ी सफलता के साथ खेले जाने लगे। परन्तु उनके विचार अब पहले से अधिक उग्र हो गए थे। अपने यहाँ की सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं के प्रति उनका असन्तोष कहीं अधिक बढ़ गया था। वे एक नई विश्व-रचना चाहते थे, जिसका आधार था नागरिक तथा धार्मिक स्वतन्त्रता, व्यापारिक विकास तथा वैज्ञानिक प्रगति। 'क्षेत्र फ़िलसोफ़ीक' नाम की पुस्तक में उनके जो क्रान्तिकारी विचार प्रकाशित हुए, उनसे घबराकर पुलिस ने उस पुस्तक को ज़ब्त करा दिया। वाल्टेयर को अब फिर पेरिस से भागना पड़ा। उन्होंने अपनी मित्र तथा प्रशंसिका मदाम दु शात्ले के सीरे स्थित भवन में आश्रय लिया।

वाल्टेयर उनतालीस वर्ष के थे। मदाम दु शात्ले उनसे ग्यारह साल छोटी थीं। वे देखने में सुन्दर नहीं थीं, परन्तु बहुत विदुषी थीं। पन्द्रह वर्ष बाद उनकी मृत्यु होने तक वाल्टेयर के साथ उनका भावनात्मक सम्बन्ध बना रहा। उन दोनों ने साथ-साथ नक्षत्र-विज्ञान, यान्त्रिक प्रगति, रसायन तथा इतिहास का अध्ययन किया। वे काफ़ी लड़ते-झगड़ते, फिर सुलह करके काम में जुट जाते और फिर झगड़ पड़ते। अपने यहाँ आनेवालों का मनोरंजन वे लोग नए-नए नाटक लिखकर और खेलकर करते। वाल्टेयर के लिए यह समय उनकी प्रतिभा के चरम विकास का समय था।

1736 में एशिया के शहजादे ने वाल्टेयर को एक प्रशंसा-भरा पत्र लिखा। चार साल बाद राज-पद सँभालने पर उसने उन्हें सम्मानित करने के लिए बुलाया, लेकिन मदाम ने फ्रांस से बाहर जाने से इनकार कर दिया। वे चाहती थीं कि पहले वाल्टेयर को अपने देश में विशिष्ट सम्मान प्राप्त करके ही कहीं बाहर जाना चाहिए। 1746

Hindi Premi

में मदाम के प्रयत्नों से वे फ्रांस की अकादमी के सदस्य चुने गए। इस बार लौरेन के राजा स्तेनिस्लास ने उन्हें अपने दरबार में बुलाया, तो मदाम ने राजकीय निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वहाँ राजभवन के जीवन में जाकर वे उस मादक वातावरण में अपने को भूल-सी गईं। एक अन्य युवक के प्रति उनका आकर्षण देखकर वाल्टेयर का हृदय क्षुब्ध हो उठा। वे अकेले मदाम के सिरे स्थित भवन में लौट आए। कुछ दिनों बाद सूचना मिली कि प्रसव में मदाम की मृत्यु हो गई। वाल्टेयर उस शोक से जीवन-भर उभर नहीं सके।

सीरे छोड़ने के बाद उन्होंने प्रशिया के सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय के यहाँ आश्रय लिया। अब मदाम तो उन्हें वहाँ जाने से रोकने के लिए थीं नहीं। परन्तु वहाँ रहते शीघ्र ही उनका मन घबराने लगा। राजा आख़िर राजा होता है—वह कितना ही दार्शनिक क्यों न हो। वे वहाँ से स्विट्ज़रलैंड चले गए। लेकिन वहाँ भी वही पेरिस-जैसी कट्टरता थी, और वैसे ही अन्धविश्वास। वे दोनों जगह घर लेकर कभी यहाँ से वहाँ जाते और कभी वहाँ से यहाँ। आख़िर साठ साल की उम्र में उन्होंने जेनीवा के निकट फेरने गाँव में अपना निश्चित ठिकाना बना लिया। वहाँ उन्होंने शिल्प, उद्योग तथा कृषि—सभी में रुचि लेना आरम्भ किया। घर बनाए, घोड़े पाले, घड़ियों की फ़ैक्टरी लगाई। जो-जो काम किया, उसी की छाया उनके साहित्य में भी उतर आई। नए-नए सन्दर्भ, नए-नए चरित्र। वाल्टेयर ने अब सब तरह के विषयों पर खुलकर लिखना आरम्भ किया। इतना अधिक लिखा कि अपने समय के सबसे बड़े पत्रकार माने जाने लगे। परन्तु अधिक लिखने के साथ-साथ अपनी सबसे अच्छी रचना 'कान्दीद' भी उन्होंने इसी अवधि में पूरी की।

यह समय उनके लिए सुख और शान्ति का था। पहले वर्षों के तूफ़ानी जीवन के बाद वे निश्चिन्त मन से अपना काम कर पा रहे थे। उनकी ख्याति इतनी बढ़ गई थी कि दूर-दूर से लोग उनसे मिलने फेरने गाँव में आते थे। राजा फ्रेडरिक ने अब फिर उनसे मित्रता कर ली थी। फ्रांस में भी शत्रुता नहीं रही थी। वाल्टेयर तिरासी साल के थे जब उन्होंने अपना दुखान्त नाटक 'त्रेन' पूरा किया। उसका अभिनय पेरिस में होने को था। उन्होंने निश्चय किया कि इस अवसर पर वे पेरिस अवश्य जाएँगे।

वह पूरी यात्रा एक उत्सव की तरह थी। रास्ते में सब जगह उनका स्वागत हुआ, उन्हें अभिनन्दित किया गया। नाटक की रात को अभिनय के बाद अभिनेताओं ने उन्हें फूल-मालाओं से लाद दिया। दर्शकों ने लगातार तालियाँ बजाकर अपनी भावना का परिचय दिया। परन्तु नाटक की इतनी बड़ी सफलता एक विराम-चिह्न की तरह थी। अभिनय के कुछ ही दिनों बाद असह्य शारीरिक पीड़ाओं के बीच उन्होंने प्राण त्याग दिए। वह 30 मई, 1778 का दिन था। असंख्य दर्शनार्थी उन्हें घेरे हुए थे। मरते

Hindi Premi

समय जो अन्तिम शब्द उनके मुँह से निकले, वे थे: "मुझे शान्ति से मरने के लिए छोड़ दो!" यह कामना उस व्यक्ति की थी जिसका पूरा जीवन ही एक हलचल रहा था और जो दूसरों के जीवन में निरन्तर हलचल पैदा करना चाहता रहा था। यह हलचल उसकी मृत्यु के बाद भी उसके विचारों से पैदा होती रही। साहित्य-क्षेत्र में उन जैसा ज्वालामुखी के समान व्यक्तित्व बहुत कम लोगों का रहा है। आज भी उस ज्वालामुखी की चिनगारियाँ नए-नए विचारकों को नई दिशाओं में सोचने के लिए प्रेरित करती रहती हैं।

Hindi Premi

महात्मा गांधी

भगतसिंह तथा अन्य क्रान्तिकारियों का स्वप्न पूरा करनेवाले महात्मा गांधी, जिन्हें सब लोग प्यार से 'बापू' कहते थे, एक विलक्षण व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे अकेले ही जैसे अपने समय की राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक थे। वे अपनी जनता को अच्छी तरह समझते थे—उसकी शक्ति को भी, कमज़ोरियों को भी। जनता के साथ अपने सीधे साक्षात्कार के कारण ही वे अपने को उसकी भावना के साथ एकाकार कर सके, उन भावनाओं को अपनी ओर से एक दिशा दे सके। अहिंसा तथा सत्याग्रह के मार्ग से उन्होंने यह कार्य कर दिखलाया जो तोड़-फोड़ के मार्ग से शायद कितने ही वर्षों तक सम्भव न हो पाता। यह उन्हीं के नेतृत्व का परिणाम था कि अंग्रेज़ सन् 1947 में भारत छोड़कर चले गए। उनके कार्यों तथा सिद्धान्तों ने भारत को ही नहीं, सारे संसार के पराधीन देशों को एक नई राजनीतिक चेतना दे दी। कुछ ही वर्षों में एशिया और अफ्रीका के प्रायः सभी ऐसे देशों में स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन उठे और देखते-देखते संसार का भूगोल ही दूसरा हो गया।

महात्मा गांधी का वास्तविक नाम था मोहन दास। 2 अक्तूबर, 1869 को इनका जन्म गुजरात के एक गाँव पोरबन्दर में हुआ। पिता कर्मचन्द गांधी राजकोट रियासत के दीवान थे। परिवार धार्मिक था। माँ अपना अधिकांश समय पूजा-पाठ में बिताती थीं। इन पर वैष्णव भक्ति की छाप इनकी माँ की ही देन थी। पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य करना तथा दूसरों के दुख से दुखी होना—ये संस्कार भी इन्हें अपने परिवार से ही मिले थे। परन्तु जिन बातों में इन्हें रूढ़िवादिता या अन्धविश्वास नज़र आता, उनके विषय में ये अपने परिवार से अलग हटकर भी सोचते थे। सचाई का आग्रह—यह इनके स्वभाव में ही था। अपनी जीवनी में एक जगह उन्होंने लिखा है कि एक बार भाई का ऋण चुकाने के लिए इन्होंने घर से एक तोला सोना चुरा लिया था। बाद में मन में इतना परिताप हुआ कि स्वयं अपराध स्वीकार किए बिना इन्हें शान्ति नहीं मिली। अपने हर आचरण का निरीक्षण करना तथा हर ऐसी चीज़ से बचना जो झूठ और छल के मार्ग पर ले जाए, यह जैसे इनके अन्दर की एक विवशता ही थी।

Hindi Premi

अपने पाठ्य-विषयों के अतिरिक्त विशिष्ट व्यक्तियों की जीवनियाँ पढ़ने में इनकी रुचि थी। उन जीवनियों से भी जो सार इन्हें प्राप्त हुआ, वह यही था कि दूसरों के सुख-दुख को अपना सुख-दुख मानकर चलना ही जीवन की सही दिशा है। आस-पास के लोगों में आलस्य, प्रमाद और फूहड़पन देखकर इन्हें बहुत कष्ट होता। लगता है कि यह सब-कुछ गुलामी के कारण है। यदि किसी तरह लोगों को अपने प्रति सचेत किया जा सके, तो उन्हें गुलामी का जुआ उतार फेंकने के लिए भी तैयार किया जा सकता है।

आगे के जीवन के लिए इनकी मानसिक पृष्ठभूमि तैयार करने में उस समय का भी विशेष हाथ है जब ये बार-एट-लॉ करने के लिए इंग्लैंड गए। घर के लोगों से अलग होकर स्वतन्त्र रूप से जीने का यह पहला अवसर था। नए जीवन के कई-कई प्रलोभन सामने थे। परन्तु घर से चलते समय ये माँ को वचन देकर आए थे कि विदेश में रहते मांस और मदिरा छुएँगे भी नहीं। किसी बाहरी अनुशासन के स्थान पर अपने अन्दर के अनुशासन को सबसे बड़ा मानकर चलना—इस परीक्षा में सफलता ने इन्हें वह नैतिक बल दिया जिसके कारण आगे चलकर वे कड़ी-से-कड़ी परीक्षाओं में अपने को डाल सके। कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी इन्होंने अपना अनुशासन टूटने नहीं दिया। आगे चलकर एक बार जब इनके पुत्र मणिलाल काफ़ी बीमार हो गए, तो डॉक्टर के बहुत कहने पर भी ये उसे मांस का शोरबा देने को तैयार नहीं हुए। प्राकृतिक चिकित्सा से ही उसे स्वस्थ कर लिया। जीवन में कितनी ही बार ऐसे निर्णयों के अनुशासन में उन्होंने अपने को जकड़ा। जब एक बार गृहस्थधर्म से हटकर ब्रह्मचर्य-पालन का संकल्प ले लिया, तो ऐसी सब चीज़ें खाना-पीना भी बन्द कर दिया जिनसे इस संकल्प में बाधा पड़ सकती थी। उससे पहले अफ्रीका में भैंस का दूध पीना छोड़ दिया था, क्योंकि ग्वाले को भैंस पर अत्याचार करते देख लिया था। फल इसलिए त्याग दिए थे कि साधारण हैसियत का औसत आदमी फल खरीदने की सामर्थ्य नहीं रखता था। ऐसे कितने ही निर्णय न जाने किन-किन बातों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने लिए जिनकी नैतिकता से प्रभावित होकर दूसरों ने भी उनका अनुसरण किया।

गांधीजी के सार्वजनिक जीवन की शुरुआत दक्षिण अफ्रीका में हुई। बार-एट-लॉ करने के बाद ये वहाँ एक फ़र्म की ओर से एक मुक़द्दमे की पैरवी करने गए थे। वहाँ रहते इन्होंने 'टॉलस्टॉय आश्रम' स्थापित किया। इसके सदस्यों में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई और पारसी—सभी थे। मर्यादित जीवन की पद्धति सिखाना ही इस आश्रय का उद्देश्य था। वे इस आश्रम में लोगों को रहन-सहन और खान-पान के आडम्बर से मुक्त करने का प्रयत्न करते रहे और सिखाते रहे कि व्यक्ति के लिए सबसे बड़ी चीज़ है उसका स्वाभिमान।

Hindi Premi

बात प्रारम्भ हुई थी कि उनके अपने स्वाभिमान को लगी एक चोट से। मुक़द्दमे की पैरवी के लिए वे ट्रांसवाल जा रहे थे। रात का समय था। वे एक फ़र्स्टक्लास के डिब्बे में बैठे थे। गाड़ी रास्ते में एक स्टेशन पर रुकी, तो एक अंग्रेज़ उस डिब्बे में आ गया। इन्हें देखकर उसकी त्यौरी चढ़ गई और उसने कहा, "तुम इस डब्बे में क्यों सवार हुए हो?" गांधीजी ने शान्तिपूर्वक उत्तर दे दिया कि उनके पास उस डब्बे का टिकट है। अंग्रेज़ इससे और उत्तेजित हो उठा और उसने स्टेशन-मास्टर तथा पुलिस की सहायता से उन्हें डब्बे से उतार दिया। यह अपमान उनके लिए इतना असह्य हो उठा कि उन्होंने अपना पूरा जीवन ही काले-गोरे का भेद-भाव मिटाने तथा गोराशाही के आतंक से लड़ने में लगा दिया। गांधीजी को गाड़ी से उतारनेवाले उस व्यक्ति ने सोचा भी नहीं होगा कि इस छोटी-सी घटना के बदले में कुछ समय बाद ब्रिटिश साम्राज्य को भारत तथा अन्य कई देशों से अपना दामन समेट लेना होगा।

काली चमड़ी के लोगों के साथ दक्षिण अफ्रीका में जो बर्ताव किया जाता था, उसके कई और उदाहरण प्रत्यक्ष रूप से इनके सामने आए। गाड़ी के डब्बों में ही नहीं, कई-कई बाज़ारों और इलाक़ों में उनका प्रवेश वर्जित था। वे वहाँ ज़मीन नहीं खरीद सकते थे; जिन फ़ुटपाथों पर गोरे लोग चलते थे, उन फ़ुटपाथों पर नहीं चल सकते थे। यहाँ तक कि वहाँ मज़दूरी करने के लिए भी उन्हें टैक्स अदा करना पड़ता था।

और अदालत में पेश होने पर मजिस्ट्रेट की ओर से आदेश मिला कि वे सिर से पगड़ी उतार दें। गांधीजी के अन्दर एक शोला भड़क उठा। उन्होंने वहाँ के पत्रों में इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई, जिससे वहाँ रहनेवाले भारतीय अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए; आगे के संघर्ष की भूमिका तैयार होने लगी।

आन्दोलन एक बार आरम्भ हुआ, तो सभी भारतीय गांधीजी के नेतृत्व में सरकार की नीतियों से लड़ने को तैयार हो गए। नेटाल की विधान-सभा द्वारा भारतीयों से विधान-सभा की सदस्यता का अधिकार छीन लिया गया, तो आन्दोलन की गति और तीव्र हो गई। संगठन ने 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' का रूप ले लिया। गांधीजी की व्यक्तित्व नैतिकता अब एक सार्वजनिक नैतिकता में बदल गई थी। अपने अधिकारों के लिए लड़ी, परन्तु हिंसात्मक नीति अपनाकर नहीं। युद्ध और विपत्ति में अपने नागरिक कर्तव्य का पालन करो, आवश्यकता पड़ने पर सरकार को सहयोग भी दो क्योंकि अधिकारों का दावा वही कर सकता है जो अपने कर्तव्यों का पालन करे। परन्तु अधिकारों की रक्षा के लिए अपना सब-कुछ बलिदान करने के लिए तैयार रहो। क़ानून अधिकारों को कुचलता है, तो उससे लड़ो। जाति-भेद आड़े आता है, तो उसे उखाड़ने का प्रयत्न करो। किसी भी स्थिति में अपनी नैतिकता–सत्य के आग्रह को–डिगने मत दो। इस तरह राजनीतिक लड़ाई लड़ने के मन्त्र 'सत्याग्रह' का आविष्कार हुआ। शक्तिशाली से लड़ने का हथियार शक्ति नहीं–सत्याग्रह है।

Hindi Premi

एक बार भारत आकर गांधीजी फिर अफ्रीका चले गए। वहाँ के संघर्षों में उनका व्यक्तित्व घुलता-निखरता रहा। पहला महायुद्ध आरम्भ होने पर वे कुछ समय के लिए इंग्लैंड गए। वहाँ भारतीय नागरिकों के एक 'एंबुलेंस यूनिट' का संगठन किया, परन्तु अस्वस्थ हो जाने से स्वयं उन्हें भारत चले आना पड़ा। यहाँ श्री गोखले ने अपनी मृत्यु से पहले उनसे कुछ समय भारत में रहकर कार्य करने का वचन ले लिया। गांधीजी ने देश-भर में घूमकर यहाँ की स्थिति का अध्ययन किया। अहमदाबाद के पास आश्रम की स्थापना की तथा लोगों को सादगी एवं बलिदान की भावना से जीने का सन्देश दिया। आश्रम में अछूतों को प्रवेश देकर उन्होंने अपने कई पुरातनपन्थी समर्थकों को नाराज़ भी कर लिया। यहाँ भी अपनी वही नैतिकता उनके साथ थी। यदि वे काले-गोरे का भेद स्वीकार नहीं करते, तो छूत-अछूत को कैसे मान्यता दे सकते थे?

अहमदाबाद में मिल-मालिकों और मज़दूरों के एक झगड़े को लेकर उन्होंने पहला अनशन किया। उनकी जो जीवन-दृष्टि और कार्य-पद्धति अफ्रीका में रहते निर्धारित हो चुकी थी, वह अब और स्पष्ट रूप ग्रहण करने लगी। गुलामी की जंजीरें यहाँ भी वैसी ही थीं। सरकार की तानाशाही का वैसा ही पग-पग पर विरोध करने की आवश्यकता थी। खेड़ा के अकाल-ग्रस्त किसानों को यह निर्देश देने कि साथ के वे लगान अदा न करें, चाहे इसके लिए उन्हें जेल जाना पड़े, उन्होंने देशवासियों को सरकार से टक्कर लेने का नया रास्ता दिखला दिया। दंड झेलो, परन्तु हिंसा पर न उतरो। अन्याय से लड़ो, परन्तु तलवार से नहीं, अपने शान्त व्यक्तित्व से। कायर वह है जो लाठी-बन्दूक को देखकर भाग खड़ा होता है। जो उनके सामने निश्चल खड़ा रहता है, उसकी शक्ति जैसी कोई शक्ति नहीं।

स्वाभिमान की एक शर्त है—स्वावलम्बी होना। देश पराधीन था, क्योंकि अपनी हर आवश्यकता के लिए विदेशों का मुँह ताकता था। आवश्यकता थी कि इस निर्भरता से छुटकारा पाने की। गांधीजी ने दिशा बतलाई—बहिष्कार करो, अंग्रेज़ों द्वारा लाई गई सब सुविधाओं का, सब संस्थाओं का; आयात से आए सब कपड़ों तथा अन्य साधनों का; उनकी शिक्षा-पद्धति का; उद्योगों का। जगह-जगह विदेशी माल की होली जलने लगी। उन्होंने कहा—स्वयं बुनो, स्वयं पहनो। इस तरह खादी आन्दोलन आरम्भ हुआ, जिसे बहुतों ने अपनी जीवन-पद्धति के रूप में अपना लिया। 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'—तिलक की यह वाणी सारे देश की वाणी बन गई।

परन्तु जनता उत्तेजना की भाषा जानती थी, संयम की नहीं। कई बार वह आपे से बाहर होने लगती तो उसे सही दिशा पर लाने के लिए उन्हें कठिन व्रत करना पड़ता। 1922 के सत्याग्रह में बारदोली की जनता ने चौराचौरी गाँव में सरकारी सिपाहियों को ज़िन्दा जला दिया। लोगों के इस आचरण से क्षुब्ध होकर प्रायश्चित-

Hindi Premi

स्वरूप उन्होंने उपवास आरम्भ कर दिया। परन्तु यह उपवास अभी पाँच दिन ही चला था कि उन्हें जेल में डाल दिया गया।

1924 में जिन दिनों वे जेल में थे, सरकार ने अपनी विभाजन नीति से हिन्दू-मुस्लिम दंगों को बढ़ावा दिया; साम्प्रदायिक मतभेद को बढ़ावा दिया। साम्प्रदायिक दंगों के समाचारों ने गांधीजी के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाला। जेल से उन्हें समय से पूर्व छुट्टी मिल गई। बाहर आकर उन्होंने इक्कीस दिन के उपवास की धोषणा कर दी। साम्प्रदायिक स्थिति सँभल गई; अगले कांग्रेस-अधिवेशन में गांधीजी को अध्यक्ष चुन लिया गया। इसके बाद उन्होंने अछूतोद्धार के सम्बन्ध में विशेष कार्य आरम्भ किया। हरिजन बिल पास हुआ, परन्तु रूढ़िवादी हिन्दुओं ने अछूतों को मन्दिरों में नहीं आने दिया। गांधीजी को फिर एक बार इक्कीस-दिवसीय उपवास करना पड़ा।

उनके संघर्ष की कई दिशाएँ थीं। एक ओर, वे भगतसिंह तथा उनके साथी क्रान्तिकारियों की विध्वंस-नीति से सहमत नहीं थे; दूसरी ओर, जनता के संस्कार और अन्धविश्वास थे; तीसरी ओर, साम्प्रदायिक राजनीति थी; और चौथी ओर थी वह बर्बर शक्ति जिससे उन्हें देश को मुक्ति दिलानी थी। इन सब स्थितियों से उन्हें एक-एक करके नहीं, एक साथ लड़ना था। एक ओर सैंडर्स की हत्या का विरोध, दूसरी ओर नमक क़ानून तोड़ने के लिए सत्याग्रह। बहुत-से लोग थे, जिन्हें इन सबमें एक विरोधाभास लगता था। परन्तु गांधीजी समझते थे कि ये सब उनकी एक ही नैतिकता के अलग-अलग पक्ष हैं।

अंग्रेज सरकार उनके प्रभाव को देख रही थी; उनकी नीतियों के ख़तरे को पहचान रही थी। लन्दन में गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस रखी गई। गांधीजी लन्दन गए, लेकिन वार्ता असफल रही। उन्होंने फिर सत्याग्रह आरम्भ किया और फिर जेल में डाल दिए गए। सरकार ने अब अछूतों और सवर्ण हिन्दुओं में फूट डलवाने की नीति अपनाई। उसने अछूतों को अलग प्रतिनिधित्व देने की योजना बना ली। गांधीजी को पता चला, तो उन्होंने जेल में ही उपवास करना आरम्भ कर दिया। व्रत तोड़ा तब, जब सरकार ने पूना-पैक्ट कर लिया और अलग प्रतिनिधित्व की बात वापस ले ली।

देश के राजनीतिक संघर्ष को एक नया रूप मिला। 1937 में, जब नए 'प्रान्तीय स्वतन्त्रता एक्ट' के अन्तर्गत गांधीजी ने कांग्रेस को चुनाव लड़ने का परामर्श दिया तब तक वे कांग्रेस की सदस्यता से त्याग-पत्र दे चुके थे, परन्तु इससे कांग्रेसी नेताओं की उन पर निर्भरता कम होने के स्थान पर और बढ़ गई थी। कई प्रान्तों में कांग्रेस के मन्त्रिमंडल बन गए। परन्तु दो ही वर्ष बाद दूसरा महायुद्ध आरम्भ होने पर फिर गांधीजी के परामर्श से इन सब मन्त्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिए। कारण कि ब्रिटिश सरकार ने भारत को युद्ध में झोंकने से पहले यहाँ के नेताओं से राय तक लेना आवश्यक नहीं समझा।

Hindi Premi

और इसके बाद कुल आठ वर्षों में नक़्शा बिलकुल पलट गया। ये आठ वर्ष भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के सबसे कठिन और निर्णायक वर्ष थे। क्रिप्स मिशन आया और असफल रहा। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ हुआ और गांधीजी तथा अन्य नेता फिर बन्दी बना लिए गए। लेकिन जनता अब इस तरह जाग गई थी कि किसी भी मूल्य पर उसे स्वतन्त्रता प्राप्त करनी ही थी। ब्रिटिश सरकार ने जनता के आवेश को पहचाना और मई, 1944 में नेताओं को रिहा कर दिया। उसके साथ ही साम्प्रदायिक विषमता को इस तरह बढ़ावा दिया कि अन्त में जब देश को स्वतन्त्रता मिली, तो उसे दो टुकड़ों में बाँट दिया गया।

देश स्वतन्त्र हो गया, परन्तु बँटवारे का दुख गांधीजी के मन को बुरी तरह सालता रहा। वे अब भी प्रयत्न करते रहे कि दोनो देशों में आपसी सद्भाव बना रहे। और इन प्रयत्नों का मूल्य चुकाना पड़ा उन्हें अपना जीवन देकर। उनके दृष्टिकोण को मुसलमानों का पक्षपात मानते हुए नाथूराम गोडसे ने 30 जनवरी, 1948 को बिड़ला-भवन, दिल्ली की प्रार्थना-सभा में उन्हें गोली मार दी।

उनके निधन पर बर्नार्ड शॉ ने कहा, "इससे सिद्ध होता है कि बहुत अच्छा होना कितना ख़तरनाक होता है।"

Hindi Premi

जवाहरलाल नेहरू

अपनी जीवनी में एक स्थान पर पंडित नेहरू ने अपने सम्बन्ध में लिखा है: ''मैं अपने को पूरब और पच्छिम का एक विचित्र मिश्रण पाता हूँ, सब जगह बेगाना और कहीं भी अपना-सा नहीं। शायद मेरे विचार और सोचने का ढंग पूरबी की अपेक्षा उस दृष्टिकोण के अधिक निकट है जिसे पच्छिमी कहा जाता है। परन्तु भारत अपने सब बच्चों की तरह मुझे भी कई तरह से अपने से जोड़े हुए है। मैं न अपने अतीत की विरासत से मुक्त हो सकता हूँ, और न ही आज की प्राप्तियों से। वे दोनों ही मेरा भाग हैं, और यद्यपि इनसे पूरब और पच्छिम दोनों में मुझे सहायता मिलती है, फिर भी, साथ ही इनसे मेरे अन्दर एक आध्यात्मिक अकेलेपन की अनुभूति भी भरी रहती है। यह अनुभूति मुझे जन-कार्यों में ही नहीं, स्वयं जीवन में होती है। पच्छिम के लिए मैं बेगाना और अजनबी हूँ; उसका भाग मैं नहीं बन सकता। परन्तु अपने देश में भी कभी-कभी मुझे एक निर्वासित की-सी अनुभूति होती है।''

उनके व्यक्तित्व का इतना अच्छा विश्लेषण दूसरा कोई व्यक्ति शायद ही कर पाता। आश्चर्य हो सकता है कि वह व्यक्ति, जिसे पूरे राष्ट्र का समर्थन प्राप्त था, जिसके मुँह से निकले शब्द सुनने के लिए लोग लाखों की संख्या में उमड़ पड़ते थे, जो वर्षों तक इस देश का ही नहीं, पूरे संसार की राजनीतिक हलचलों का मुखिया रहा, जिसके जीवन-काल में सारे संसार के लोग अपने से एक ही सवाल पूछते रहे कि 'नेहरू के बाद भारत का क्या होगा?' और जिसे बहुत चाहकर भी अकेले में रहने या सोचने का समय बड़ी मुश्किल से ही कभी मिल पाता था, वह अपने को अकेला और निर्वासित-सा क्यों महसूस करता था? कारण छोटा-सा है। वह व्यक्ति पूरबी और पच्छिमी—दो ध्रवों के बीच एक कड़ी की तरह था, उन दोनों के बीच की खाई को पाट सकने का महान् प्रयत्न उसका उद्देश्य था। इस उद्देश्य में अकेला वह भले ही न हो, अपने प्रयत्न में अकेला वह अवश्य था।

पंडित नेहरू का जन्म 14 नवम्बर, 1889 को इलाहाबाद के विख्यात नेहरू-परिवार में हुआ। इनके पूर्वज बहुत पहले कश्मीर छोड़कर इलाहाबाद में आ बसे थे। इनके पिता पंडित मोतीलाल नेहरू बहुत प्रसिद्ध वकील थे। इस परिवार के राजसी

Hindi Premi

ठाठ-बाट की कई कहानियाँ यहाँ-वहाँ सुनी जाती थीं। जवाहरलाल उसी ठाट-बाट में बड़े हुए। सब तरह की सुख-सुविधा के साथ शिक्षा भी बहुत अच्छी मिली। शिक्षक ब्रुक घर पर पढ़ाने आता था। पढ़ाई के बाद ये या तो घुड़सवारी पर निकल जाते, या माँ और चाचियों से क़िस्से-कहानियाँ सुनने का चाव पूरा करते। इस तरह उन दिनों से इन्हें दो तरह के संस्कार प्राप्त होने लगे—पाश्चात्य भी और भारतीय भी। बचपन में सुने क़िस्से-कहानियों में एक ओर रामायण, महाभारत और पुराणों की कथाएँ थीं और दूसरी ओर 1857 के सिपाही-विद्रोह तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विभिन्न कारनामों की कहानियाँ। दस साल की उम्र से ही इन्हें समाचार-पत्र पढ़ने का गहरा शौक हो गया। इसके साथ ही विश्व के राजनीतिज्ञों तथा अन्य महान् व्यक्तियों की जीवनियाँ पढ़ने में रुचि हुई, साथ ही विज्ञान की ओर रुझान बढ़ा। घर में ही उन्होंने अपनी एक प्रयोगशाला बना ली। लेकिन आगे की शिक्षा के लिए इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध विद्यालय हैरो में भेज दिए जाने से इस प्रयोगशाला का कार्य बीच में ही रह गया।

हैरो में अंग्रेज़ छात्रों के बीच रहकर इनकी राजनीतिक चेतना और तीव्र होने लगी। ये उस देश की परिस्थितियों की तुलना अपने देश से करते, तो मन उदास होने लगता। देश में उन दिनों जो कुछ हो रहा था, उसके समाचार उन्हें मिलते रहते थे। गोखले, तिलक तथा विपिनचन्द्र पाल के विचार उन तक पहुँचते रहते थे; सोचने लगते थे कि क्या तरीक़ा हो सकता है जिससे वे भी अपने देश के संघर्ष में भाग ले सकें?

हैरो से केम्ब्रिज परीक्षा पास करके वे ट्रिनिटी कॉलेज में आ गए। उन्हीं दिनों गोखले, विपिनचन्द्र पाल तथा लाला लाजपतराय के केम्ब्रिज में आने की सूचना मिली, तो ये उनसे मिले। उसके बाद बार-ऐट्-लॉ करने तक वे मन में भारत लौटने के बाद देश के लिए कार्य करने की योजनाएँ बनाते रहे। उनके पिता पंडित मोतीलाल नेहरू भी अब राजनीतिक क्षेत्र में उतर आए थे। परीक्षा के बाद भारत आते ही ये भी उस कार्य में जुट गए। परन्तु अपने पिता तथा अन्य नेताओं की नम्र नीति इनके मन को स्वीकार नहीं थी। ये चाहते थे कि एक ऐसी उग्र नीति, जो पूरे देश की सोई चेतना को एकाएक जगा दे।

चल रही राजनीति में मन नहीं खपा, तो सोचा वकालत में रुचि लें। वह भी नहीं हुआ, तो शिकार में मन लगाया। पर्वत, घाटियाँ, जंगल—उनका अपना आकर्षण था, फिर भी मन अन्दर से अस्थिर रहता था। एक बार एक हरिणी को निशाना बनाने पर उसका बच्चा इनकी गोली से मर गया, तो इन्हें अपने से बहुत ग्लानि हुई। लगा, उस शावक की आँखें कह रही हैं, 'बस, यही तुम्हारी बहादुरी है?' और उस ग्लानि ने एक आवेश का रूप ले लिया जब पहला महायुद्ध छिड़ जाने से चारों ओर वही हत्या-कांड होने लगा।

Hindi Premi

एक बार वे फिर विदेश जाकर लौटे, तो कांग्रेस के बाँकीपुर-अधिवेशन में एक डेलीगेट के रूप में सम्मिलित हो गए। उसके बाद 1915 में इलाहाबाद में प्रेस-कानून की विरोधी सभा में भाग लिया। उस सभा में उनके भाषण के बाद डॉ. तेजबहादुर सप्रू ने उन्हें गले लगा लिया। उसके बाद परिचय हुआ गांधीजी से, जो शीघ्र ही घनिष्ठता और फिर आत्मीयता में बदल गया। आगे के सार्वजनिक जीवन की बुनियाद पक्की हो गई।

फिर विवाह हो गया। पत्नी कमला को साथ लेकर पर्वत-यात्रा पर निकल गए। कई दृष्टियों से वह यात्रा अविस्मरणीय थी। केवल वही एक अवसर था जब दोनों को सही माने में साथ-साथ गृहस्थ जीवन जीने का सुख मिल सका। उसके बाद तो कुछ निश्चित ही नहीं रहा कि कब घर में हैं, कब लाखों लोगों के बीच राजनीतिक अखाड़े में और कब जेल में। गांधीजी द्वारा चलाए गए असहयोग-आन्दोलन की सरगर्मी के बीच पुत्री इन्दिरा प्रियदर्शिनी का जन्म हुआ। कमला बहुत अस्वस्थ रहने लगीं। वे उन्हें मसूरी ले गए। वहाँ आए हुए कुछ अफ़ग़ानिस्तानी नेताओं से उन्होंने मिलना चाहा, तो सरकार की ओर से मिलने की इजाज़त नहीं दी गई। उन्होंने अपना गुस्सा किसी तरह पी लिया और मसूरी वापस चले आए। यह वापस आना एक तरह से पारिवारिक जीवन से सदा के लिए वापस आना हो गया। आते ही वे सार्वजनिक आन्दोलन में जूझ गए। कमला मसूरी में बीमार थीं और ये ब्रिटिश सम्राट के भारत-आगमन पर अपने पिता के साथ मिलकर काले झंडों का प्रदर्शन कर रहे थे। इसके लिए पिता-पुत्र दोनों को जेल हो गई। जेल से निकलने पर कार्य और बढ़ गया। सरकार से संघर्ष के साथ-साथ कांग्रेस के संगठन की भी काफ़ी ज़िम्मेदारी इन पर आ पड़ी। कांग्रेस के मन्त्री के रूप में कार्य करते हुए दिन, महीने, साल इस तरह गुज़रते गए कि पत्नी की शुश्रूषा के लिए कभी उसके पास बैठने का इन्हें समय ही नहीं मिल पाया। अपनी वयस्तताओं से परे कुछ समय बीतता, तो केवल जेल के अन्दर। कमला प्रायः जेल में इनसे मिलने आतीं। इनके सामने मुस्कराती रहतीं, लेकिन परे आकर उनका मन टूटने लगता। जवाहरलाल सोचते कि शीघ्र ही देश स्वतन्त्र हो जाएगा, तो वे कमला के साथ 'अपना' जीवन जी सकेंगे; कमला भी तब तक शायद स्वस्थ हो जाएगी। परन्तु कमला का स्वास्थ्य अधिक बिगड़ जाने से डॉक्टरों ने उसे स्विटज़रलैंड ले जाने का सुझाव दिया। ये कमला को स्विटज़रलैंड ले गए। वहाँ उनका इलाज होने लगा। उन दिनों इन्होंने यूरोप में घूमकर वहाँ के राजनीतिक जीवन में हुए परिवर्तन का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त किया।

वहाँ से ये उन दिनों भारत लौटे जब साइमन-कमीशन आया हुआ था। स्थान-स्थान पर प्रदर्शन हो रहे थे। उन दिनों जनता के साथ इन्होंने पुलिस की लाठियाँ झेलीं। 1930 के सत्याग्रह-आन्दोलन में पूरा नेहरू परिवार जूझ गया। माता

Hindi Premi

स्वरूपरानी ने भी विदेशी माल की दुकानों पर धरना दिया। उधर कमला की हालत फिर शोचनीय हो रही थी। जवाहरलाल उन्हें फिर स्विट्ज़रलैंड ले गए, परन्तु इस बार कमला की प्राण-रक्षा नहीं हो सकी। जिस एक के साथ वे अपने अन्दरूनी अकेलेपन को बाँटने की कल्पना करते थे, वह भी उन्हें छोड़कर चली गई।

1953 का प्रान्तीय स्वशासन आन्दोलन। फिर प्रांतीय स्वशासन एक्ट के अन्तर्गत चुनाव। कई प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें। दूसरा महायुद्ध। कांग्रेसी सरकारों के त्यागपत्र। साम्राज्यशाही से नई टक्कर। 1942 का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन। चार साल जेल की सज़ा। और अन्त में 14 अगस्त, 1947 तथा 15 अगस्त के बीच की मध्य रात्रि! राजकुमारी अमृतकौर ने उनके माथे पर रोली लगाई और स्वतन्त्र भारत के पहले प्रधानमन्त्री का कार्यभार उन्होंने सँभाल लिया। एक ओर जनता की उमंग थी और दूसरी ओर विभाजन के कारण हुए साम्प्रदाकिय दंगों के बीच से उठता हाहाकार। वे जानते थे कि उनका उत्तरदायित्व कितना गम्भीर है। देश की सारी समस्याएँ अब जैसे उनकी निजी समस्याएँ बन गई थीं। सबसे बड़ी समस्या करोड़ों विस्थापितों को फ़िर से बसाने की थी। इसके अतिरिक्त शीघ्र-से-शीघ्र देश को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाना था, औद्योगिक क्षेत्र में आगे ले जाना था। संसार के अन्य देशों के साथ एक नए आत्म-सम्मानपूर्ण ढंग से सम्बन्ध स्थापित करने थे। बड़े देशों के दवाबों से अपने को बचाते हुए एक सशक्त विदेश-नीति लेकर चलना था। अब तक उनके लिए एक जीवन एक युद्ध-क्षेत्र था। अब उसे एक व्यवस्था के साँचे में ढालना था।

और यह व्यवस्था लाने-लाने में ही अगले अठारह वर्ष निकल गए। बहुत-सी समस्याएँ सुलझीं, परन्तु संसार की अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों के कारण कई नई समस्याएँ पैदा होती गईं। वे उन समस्याओं से लड़ते रहे और देश की समुन्नत देशों के समानान्तर ला सकने के लिए जी-जान से प्रयत्न करते रहे। बाधाएँ बहुत-सी थीं। विस्थापितों की बहुत बड़ी संख्या के अतिरिक्त अंग्रेज़ न जाने कितनी तरह की और गुंझलें छोड़ गए थे। देश-भर में कितनी ही स्वतन्त्र रियासतें थीं जो देश की एकता में बाधक थीं। उनमें से हैदराबाद को पुलिस की कार्यवाही से अधिकार में लेना पड़ा; कश्मीर को लेकर पाकिस्तान से झगड़ा उठ खड़ा हुआ। पाकिस्तान ने क़बाइलियों से वहाँ आक्रमण करा दिया जिससे देश की बहुत-सी साधन-शक्ति उस सीमा की रक्षा में ख़र्च होने लगी। इसके अतिरिक्त कई अन्दरूनी समस्याएँ भी सामने आईं। इनमें से एक मुख्य समस्या थी विभिन्न प्रदेशों के पुनर्गठन की। उन्होंने इस समस्या को हल किया, और सब समस्याओं को हल करने की भी युक्तियाँ निकालीं। इस सबके बीच औद्योगिक विकास पर बल दिया, पंचवर्षीय योजनाएँ बनाईं। संसार के सभी परस्पर-विरोधी देशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करके तटस्थता की

Hindi Premi

विदेश-नीति का सफल प्रयोग किया। यह प्रयोग संसार की राजनीति को एक बिलकुल नई दिशा दे देता अगर चीन ने भारत पर आक्रमण न कर दिया होता।

यह आक्रमण एक ऐसा नैतिक आघात था जिसने उनके मन को बहुत दुख पहुँचाया। कुछ ही वर्ष पहले 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का नारा लगानेवाले देश से उन्हें ऐसी आशा हरगिज़ नहीं थी। परन्तु इससे भी वे विचलित नहीं हुए और न ही किसी गलत समझौते की दिशा में उन्होंने क़दम बढ़ाया। उनके विरोधी उनकी कटु आलोचना करते रहे, परन्तु उन्होंने किसी भी बड़े देश के सैनिक संगठन में साझीदार होना स्वीकार नहीं किया। उनके अडिग निश्चय की प्रशंसा लोग तभी कर सके जब चीनी सेनाएँ देश की सीमा से वापस चली गईं।

और 27 मई, 1964 का धूल-भरा दिन। दोपहर के समय लोगों ने सुना—नेहरू नहीं रहे। जो जहाँ था, वह वहीं कुछ देर के लिए सुन्न हो रहा। एक बार तो सब लोगों के मन में यह गहरी आशंका समा गई—अब देश का क्या होगा? परन्तु वे अपने जीवन-काल में प्रजातन्त्रीय पद्धति को इस तरह स्थिर कर गए कि थोड़ा समय बीतने के बाद ही यह आशंका मिट गई।

नेहरू चले गए, परन्तु उनका व्यक्तित्व उनके बाद भी देश का नेतृत्व करता रहा। आज भी देश की गृह-नीति हो या विदेश-नीति, उसका मूल्यांकन करने में यही बात सबसे पहले सामने आती है—नेहरू होते तो क्या करते, नेहरू होते तो क्या कहते। उन्हें शरीर से विदा करके भी लोगों ने आज तक मन से विदा नहीं किया। और नेहरू भी तो अपनी अस्थियाँ और भस्म तक इस भीड़ के बीच बिखराने का आदेश दे गए। उनकी वसीयत थी कि उनके शरीर की मुट्ठी-भर राख ही इलाहाबाद के पास गंगा में बहाई जाए, शेष उन खेतों में बिखरा दी जाए जहाँ भारत के किसान मेहनत करते हैं, तथा उन उपजाऊ मैदानों में जहाँ काम करते उनकी ज़िन्दगी गुज़री थी।

नेहरू एक राजनीतिज्ञ तथा नेता ही नहीं, एक दार्शनिक और विचारक भी थे। उनका दर्शन जीवन के साथ इस तरह जुड़ा है कि दोनों को अलग करके देखना भी कठिन है। उनके विचारों ने भारत के बाहर भी कितने ही देशों के नेताओं को प्रभावित किया। इनमें राष्ट्रपति टीटो, राष्ट्रपति नासिर तथा राष्ट्रपति कैनेडी के नाम लिए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व का एक और पक्ष था—उनका कवि-हृदय। वे बहुत कोमल संवेदनाओं के व्यक्ति थे, इसलिए कई बार बहुत भावुकतापूर्ण क़दम भी उठा जाते थे जिसके लिए उन्हें अपने विरोधियों से बहुत ताने सुनने पड़ते थे। उनके कवि-हृदय का एक प्रमाण उनकी वसीयत भी है जिसकी गणना अपने समय की श्रेष्ठ साहित्य-कृतियों में की जा सकती है।

अपने देहावसान के समय पंडित नेहरू लगभग 75 वर्ष के थे, फिर भी उनकी सादगी और निश्छलता नए बच्चे-जैसी ही थी। यूँ जीवन-भर उन्हें बच्चों से बहुत

Hindi Premi

लगाव भी रहा। उनका जन्मदिन ही बाल-दिवस के रूप में मनाया जाता था। आज भी जहाँ कहीं बच्चों का जमघट होता है, उनका ज़िक्र अनायास ही बीच में आ जाता है।

और यही नेहरू, जीवन-भर आस-पास की परिस्थितियों से सीधे जूझनेवाले नेहरू, कहीं सचमुच बहुत अकेले भी थे। क्योंकि समय के जिस सोपान पर खड़े होकर वे जीवन का आस्वादन करते रहे, उस सोपान तक पहुँचकर उनके बराबर खड़ा होनेवाला दूसरा कोई नहीं था।

Hindi Premi

मार्टिन लूथर किंग

30 जनवरी, 1948 के दिन महात्मा गांधी को गोली लगने से संसार के जिन व्यक्तियों के हृदय में तीव्र प्रतिक्रिया हुई, उनमें मार्टिन लूथर किंग भी एक थे। उस समय कुल उन्नीस वर्ष के थे और शायद इस सम्भावना से स्वयं भी परिचित नहीं थे कि कुछ ही वर्ष बाद वे भी उसी तरह अमरीका-स्थित नीग्रो जाति का नेतृत्व कर रहे होंगे जैसे गांधीजी ने भारतीय जनता का किया था। गांधीजी की तरह उन्हें भी एक दिन गोली का शिकार होना पड़ेगा, यह बात तो उनके आस-पास भी किसी की कल्पना में नहीं रही होगी। परन्तु समय गुज़रने के साथ उनका मन सब तरह की सम्भावनाओं के लिए तैयार हो गया था। गोली लगने से काफ़ी पहले एक बार उन्होंने कहा था: "व्यक्ति की दीर्घजीविता से अधिक महत्त्व उसके जीवन की उपयोगिता का है। यदि एक ऐसे आन्दोलन में आदमी की जान चली जाए जिसका उद्देश्य एक राष्ट्र की आत्मा की रक्षा करना हो, तो उससे अधिक मुक्तिदायी कोई चीज़ नहीं हो सकती।" और अपनी आकस्मिक मृत्यु से कुल दो ही दिन पहले उनके मुँह से ये शब्द निकले थे: "मैं नहीं जानता, अब क्या होगा। आगे के दिन काफ़ी मुश्किल हैं। हर व्यक्ति की तरह मैं भी दीर्घजीवी होना चाहता हूँ। दीर्घजीवी होने का अपना एक स्थान है। परन्तु इस समय मुझे उससे प्रयोजन नहीं है।"

कुल उनतालीस साल की उम्र में ज़िन्दगी से काट दिए जाना—यह भाग्य गांधीमत का अनुसरण करने के कारण उन्होंने स्वयं ही अपने लिए चुन लिया था।

मार्टिन लूथर किंग का जन्म 1929 में एटलांटा नामक नगर में हुआ। पिता और बाबा दोनों पादरी थे और दोनों ही नीग्रो जाति के अधिकारों के लिए लड़ते रहे थे। बचपन का नाम था माइकेल लूथर किंग। यही नाम पिता का भी था। परन्तु बाद में पिता ने दोनों का नाम बदलकर मार्टिन कर दिया। कारण था सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध प्राटेस्टेंट नेता मार्टिन लूथर के प्रति उनका आदर-भाव।

मार्टिन लूथर किंग जूनियर को शुरू से ही हिंसात्मक कार्यों से घृणा थी। उनकी आरम्भिक शिक्षा एटलांटा युनिवर्सिटी के एक स्कूल में हुई। 1941 में ये बुकर टी. वाशिंग्टन हाई स्कूल में दाखिल हुए। सितम्बर, 1944 से वे एक नीग्रो शिक्षा-संस्था

Hindi Premi

मोरहाउस कॉलेज में चले गए। वहाँ से डिग्री लेने के बाद वे चेस्टर-स्थित क्रोज़र थियोलॉजिकल सेमिनरी में प्रविष्ट हो गए। अध्यापकों की शुरू से ही उनके बारे में बहुत अच्छी राय थी। वे हमेशा अपनी क्लास के इने-गिने विद्यार्थियों में से माने जाते थे। परन्तु शिक्षा-काल से उनके मन में काले-गोरे के भेद को लेकर बहुत असन्तोष जागने लगा था। सेमिनरी में उन्होंने जी-तोड़ मेहनत से अध्ययन किया, ताकि किसी भी तरह गोरे छात्रों से पीछे न रहें। अन्य दार्शनिकों के अतिरिक्त जिस व्यक्ति के विचारों का उन्होंने विशेष अध्ययन किया, वे थे महात्मा गांधी। इस सम्बन्ध में एक बार उन्होंने कहा था: ''अहिंसात्मक प्रतिरोध की भावना मैंने बाइबिल से सीखी है और उसे कार्यान्वित करने की रीति गांधी से।''

मार्टिन लूथर किंग के जीवन का इतिहास क्रोजर सेमिनरी में ही बनना शुरू हो गया था। वे सेमिनरी के सर्वश्रेष्ठ छात्र स्वीकार किए गए और वहाँ के छात्र-संगठन के पहले नीग्रो अध्यक्ष निर्वाचित हुए। 1951 में वहाँ अध्ययन पूरा करने के बाद 'प्लाफ्कर एवार्ड' तथा 'जे. क्रोज़र फ़ैलोशिप' प्राप्त हुआ। वे शोध-अनुसंधान के लिए बोस्टन युनिवर्सिटी में चले गए। वहीं उनका परिचय कॉरेटा स्कॉट नाम की एक युवती से हुआ जिसने उनके जीवन में एक माधुर्य ला दिया। कॉरेटा स्वयं उन्हीं के-से विचारों की थीं। काफ़ी संघर्ष करते हुए वे अपनी शिक्षा पूरी कर रही थीं। काली चमड़ी के लोगों के प्रति गोरे लोगों के व्यवहार से उनका मन उसी तरह क्षुब्ध था। वे संगीत की शिक्षा ले रही थीं और बहुत अच्छी गायिका थीं। मार्टिन से मिलकर उन्हें लगा कि उन्हें सचमुच अपना मनचाहा साथी मिल गया है। मार्टिन को भी आगे की जीवन-यात्रा के लिए ऐसी ही सहधर्मिणी की आवश्यकता थी। 18 जून, 1953 को उन दोनों ने विवाह कर लिया।

दोनों की शिक्षा पूरी हो चुकी, तो मार्टिन लूथर किंग अपने आगे के जीवन की योजनाएँ बनाने लगे। पादरी का कार्य करने के साथ-साथ वे अब सक्रिय रूप से नीग्रो-अधिकारों के आन्दोलन को बढ़ावा देना चाहते थे। अपनी जाति की दरिद्रता और साधन-हीनता को मिटाने के साथ-साथ उन्हें उस हीनता की स्थिति से भी मुक्त करना था जो गोरे लोगों ने उस पर लाद रखी थी। डॉ. किंग को स्वयं कई बार अपने जीवन में गोरे लोगों के हाथों अपमान सहने पड़ते थे। बचपन में एक गोरी स्त्री के पाँव पर पाँव पड़ जाने से उन्हें चपत के साथ यह सुनना पड़ा था: ''निगर होकर तुमने मेरे पाँव पर पाँव रखा है?'' इसी तरह एक जूते की दुकान में इन्हें और इनके पिता को अगली बेंच से इसलिए उठ जाने को कहा गया कि ये गोरी चमड़ी के नहीं थे। और आस-पास नीग्रो लोगों को जो-जो यन्त्रणाएँ दी जाती थीं और जिस तरह उन्हें कुचलने के लिए उन पर आक्रमण होते रहते थे, इन सबसे तो इनका परिचय था ही। इन्हें महसूस होता जैसे गोरे लोगों की आँखें जलती सलाखें हों ज़रा-सा मौक़ा मिलते ही उन्हें झुलसा देना चाहती हों।

Hindi Premi

और पति-पत्नी दोनों मिलकर इस स्थिति को बदलने की दिशा में काम करने लगे। डॉ. किंग केवल सत्ताइस वर्ष के थे, जब उन्होंने एक ऐसे आन्दोलन का नेतृत्व किया जिसने उन्हें पददलित नीग्रो जाति का प्रमुख नेता बना दिया। बात काले लोगों के साथ गोरे बस-ड्राइवरों के अपमानजनक व्यवहार की थी। डॉ. किंग के कहने से 50,000 नीग्रो बस-यात्रियों ने बसों का बहिष्कार करने का फैसला कर लिया। इस तरह पहली बार अमरीका में अहिंसात्मक आन्दोलन की शुरुआत हो गई। बात शुरू हुई थी एक नीग्रो-महिला की थकान से, क्योंकि उसने ड्राइवर के आदेश से गोरे लोगों के लिए जगह ख़ाली करने से इनकार कर दिया था। इस साधारण-सी घटना के जो परिणाम सामने आए, उन्होंने पूरे संसार की नज़रें अपनी ओर खींच लीं। डॉ. किंग का सुझाव भी साधारण-सा था—सोमवार से बसों में न चढ़ो। और देखा गया कि लोग खच्चरों पर अपने दफ़्तरों को जा रहे हैं, बग्घियों में जा रहे हैं, मगर किसी बस-स्टॉप पर कोई एक भी नीग्रो नहीं है। जिनके पास कारें या स्टेशन-वैगन थे, वे उनमें लोगों को भरकर ले जाने लगे। गिरजाघरों में चन्दे होने लगे—यहाँ तक कि बाहर के देशों से भी सहायता के लिए धन आने लगा। मेयर गेल ने इस आन्दोलन को तोड़ने के कई प्रयत्न किए। कुछ लोगों को फुसलाया। ग़लत अफ़वाहें फैलाईं कि डॉ. किंग और उनके साथी चन्दे का पैसा खा रहे हैं। मगर उसकी कोई भी नीति कारगार न हुई। इस पर डॉ. किंग को तेज़ कार चलाने के अपराध में गिरफ्तार किया गया। अन्य कई लोगों पर अदालती कार्यवाही की गई। डॉ. किंग के पास धमकी-भरा पत्र भेजा गया। फ़ोन पर उन्हें गन्दी गालियाँ दी गईं। उनके भाषण के स्थान पर बम फेंका गया और इस पर उनके नीग्रो-साथी क्षुब्ध होकर मेयर गेल को कुचलने लगे, तो डॉ. किंग से ही सहायता माँगी गई। डॉ. किंग ने अपने साथियों को शान्त कर दिया। उसके बाद भी धमकियाँ चलती रहीं। उन पर क़ानून तोड़ने का मुक़द्दमा किया गया। मगर डॉ. किंग के विश्वास-भरे नेतृत्व के सामने मेयर गेल की कोई पेश नहीं चली। बस-कम्पनी के लिए अपना आर्थिक नुक़सान झेलना असम्भव हो रहा था। आख़िर नीग्रो-यात्रियों की माँगें स्वीकार कर ली गईं।

उसके बाद डॉ. किंग अधिकारों की लड़ाई को बड़े पैमाने पर संगठित करने लग गए। दक्षिण में नीग्रो वोटरों का पंजीकरण उनका मुख्य ध्येय बन गया। 1957 में उन्होंने उप-प्रधान निक्सन से नीग्रो-अधिकारों के सम्बन्ध में बातचीत की। उसी वर्ष घाना के स्वतन्त्रता-उत्सव में भाग लेने के लिए उन्हें निमन्त्रित किया गया। वह यात्रा उनके मन पर एक अमिट छाप छोड़ गई। काले लोगों की शक्ति पर उनका विश्वास और दृढ़ हो गया। एक पागल नीग्रो-महिला ने छुरा घोंपकर उनके प्राण लेने का प्रयत्न किया, तो मृत्यु के द्वार तक जाकर भी उन्होंने प्रतिशोध का मार्ग नहीं अपनाया। उस महिला को उन्होंने क्षमा कर दिया। उसके बाद पंडित नेहरू के निमन्त्रण पर वे भारत

Hindi Premi

आकर उनसे मिले। उनके मन में यह निश्चय और पक्का हो गया कि अपने संघर्ष का जो रास्ता उन्होंने चुना है, वही वास्तव में सही रास्ता है।

बस-बहिष्कार के बाद एक और महत्त्वपूर्ण घटना हुई 1959 में। आधी रात को मांटगोमरी नगर के नीग्रो-इलाक़ों में लगातार बमों के धमाके हुए। लोगों के मन में आतंक बैठ गया था। परन्तु उसके थोड़े ही दिन बाद उत्तर कैरोलिना के औद्योगिक शहर ग्रीन्ज़बोरो में नीग्रो-छात्रों ने एक विचित्र आन्दोलन आरम्भ कर दिया। एक डिपार्टमेंटल स्टोर के गोरे लोगों के लिए सुरक्षित काउंटर पर वे चुपचाप जा बैठे और सारा दिन बैठे रहे। शीघ्र ही वह आन्दोलन और शहरों में भी फैल गया। उस दौरान कईयों को पीटा गया; उन पर थूका गया; जलते सिगरेट उन पर फेंके गए। आग बुझाने की पाइपों से उन पर पानी डाला गया। 1960 के अन्त में विद्यार्थियों के साथ धरना देते हुए डॉ. किंग अन्य 52 व्यक्तियों के साथ गिरफ्तार कर लिए गए। उन्हें ज्योर्जिया के जेल में बन्द किया गया। वे वहीं थे जब उन्हें सेनेटर जॉन एफ. कैनेडी की ओर से बुलावा मिला और उन्हें रिहा कर दिया गया। यह सेनेटर कैनेडी के साथ हुई उनकी बातचीत का ही परिणाम था कि निर्वाचन में सेनेटर को हज़ारों नीग्रो वोट प्राप्त हो गए और वे प्रधान चुन लिए गए। बाद में प्रधान कैनेडी के प्राण भी इसलिए गए कि वे काले और गोरे के भेद को समाप्त करने के लिए क़दम उठा रहे थे। मगर जो कुछ वे करना चाहते थे, उसे करने के रास्ते में भी कई तरह की बाधाएँ खड़ी हो रही थीं। नीग्रो-जनता छोटे-छोटे सुधारों से सन्तुष्ट नहीं थी। सन् 1930 के बाद वर्षों में यह संघर्ष उत्तरोत्तर ज़ोर से पकड़ता गया। अप्रैल, 1964 में उन्होंने एक बड़े सत्याग्रह का आयोजन किया। अधिकारी परेशान थे कि यह कैसी लड़ाई है कि लोग हँसते-खेलते गिरफ्तार होने चले आ रहे हैं। एक वर्ग डॉ. किंग की आलोचना करनेवालों का भी था। लेकिन वे जानते थे कि वे क्या कर रहे हैं। 7 मई के सामूहिक प्रदर्शन में 3,300 अन्य लोगों के साथ डॉ. किंग फिर गिरफ्तार कर लिए गए। पुलिस ने निहत्थे लोगों पर जो अत्याचार किए, उनके कारण चारों ओर हलचल मच गई। कई गोरे लोग भी अब इस आन्दोलन में साथ हो गए। सेनेट 'नागरिक अधिकार क़ानून' पास करे इसके लिए और भी कई तरफ़ से आवाज़ें उठने लगीं। उसके बाद आया डॉ. किंग का नारा–'वाशिंग्टन चलो'। दो लाख गोरे और काले लोग इस यात्रा में शामिल हुए। इतना बड़ा जुलूस पहले कभी अमरीका में नहीं देखा गया था। लिंकन मेमोरियल के साये में खड़े होकर डॉ. किंग ने अपना ऐतिहासिक भाषण दिया–"मेरा सपना है कि एक दिन सब घाटियाँ ऊपर उठ आएँगी और सारी पहाड़ियाँ नीचे झुक जाएँगी।" 'नागरिक अधिकार क़ानून' के पास होने में इस प्रदर्शन की बहुत बड़ी देन थी। वह अवसर आ गया था जिसकी नीग्रो-जाति प्रतीक्षा कर रही थी। गोरे लोगों ने ही उन्हें क़द्र से देखना शुरू नहीं किया, खुद अपनी नज़र में उनकी क़द्र काफ़ी बढ़ गई।

Hindi Premi

14 अक्तूबर, 1964 को डॉ. किंग एटलांटा अस्पताल में अपनी डॉक्टरी जाँच करा रहे थे जब उन्हें नोबेल शान्ति पुरस्कार का समाचार मिला। डॉ. किंग ने कहा था कि यह पुरस्कार व्यक्तिगत रूप से उनके लिए नहीं, पूरी संघर्षशील नीग्रो-जाति के लिए है। पुरस्कार की पूरी रक़म उन्होंने 'नागरिक अधिकार आन्दोलन' को सौंप दी। साथ ही यह भी कहा, ''मैं अब तक अपने काम से वह शान्ति और भ्रात-भाव नहीं ला सका जो इस पुरस्कार का आधार है।''

पुरस्कार-प्राप्ति के बाद अमरीका लौटकर उन्होंने नए सिरे से अपने को अपने काम में लगा लिया। सेल्मा में नीग्रो-वोटरों के पंजीकरण का संघर्ष शुरू हुआ। सेल्मा शेरिफ़ जेम्स क्लार्क ने संघर्ष को कुचलने की हर नीति अपनाई। 2,000 व्यक्तियों को बन्दी बना लिया। फिर भी दल-के-दल नीग्रो यह गाते हुए बन्दी होने आते रहे, 'हम विजयी होंगे।' और वह रात आई जब एक युवा लकड़हारे के पेट में गोली दाग़ दी गई। लोग बहुत उत्तेजित हो उठे। डॉ. किंग ने कहा—''वे लोग सेल्मा से मांटगोमरी अभियान करेंगे।'' 7 मार्च को इतवार के दिन अभियान का आयोजन हुआ। लोग एक गिरजाघर में जमा होकर दो-दो की पंक्ति में उस पुल की ओर चल दिए जो उन्हें एलाबामा नदी के पार ले जा सकता था। मगर पुल से पहले ही उन्हें रोक लिया गया। आदेश दिया गया कि दो मिनट के अन्दर वे तितर-बितर हो जाएँ। इस पर भी जुलूस ख़ामोश रुका रहा, तो पुलिस कार्यवाही शुरू हो गई—लाठी चार्ज और अश्रुगैस। साथ फब्तियाँः ''मार्च करना चाहते हो, निगर? लो करो मार्च!''

देश-भर में सहानुभूति की लहरें उठ आईं। सब तरफ़ से पुलिस की इस कार्यवाही का विरोध किया गया। डॉ. किंग ने देश की आत्मा को जगाने के लिए एक और वैसे ही अभियान का आयोजन किया। उसे भी लौटा दिया गया। फिर तीसरे अभियान का आयेजन हुआ था, जो मांटगोमरी जा पहुँचा। उसके बाद संघर्ष का रुख़ तीव्र होता गया। डॉ. किंग ने लोगों का ध्यान अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने की ओर भी दिलाया। मगर एक नीग्रो युवा-वर्ग ऐसा भी था जो अधिक उग्र कार्यवाही चाहता था; डॉ. किंग की नीति से वह सन्तुष्ट नहीं था। 'रैप' ब्राउन के प्रभाव में आकर यह वर्ग प्रचंड हिंसा-मार्ग के ज़रिए अपने अधिकार प्राप्त करने की बात करने लगा। डॉ. किंग फिर भी अपने विचारों में स्थिर संघर्ष का अहिंसात्मक रूप बनाए रखने की बात करते रहे। कई ठोस योजनाएँ उनके हाथ में थीं जिन्हें शीघ्र कार्यान्वित करना था। परन्तु उन्हीं दिनों उन्हें एक बुलावा आया जो मृत्यु के बुलावे में बदल गया।

टेनेसी-स्थिति मेम्फ़िस नगर में सफ़ाई-कर्मचारियों की हड़ताल दो महीने से चल रही थी। उनमें से अधिकांश नीग्रो थे। वे लोग अपने वेतन में कुछ वृद्धि चाहते थे। उन्होंने डॉ. किंग को बुलावा भेजा कि वे आकर उनकी दयनीय स्थिति में उनकी सहायता करें। डॉ. किंग ने उनके अभियान को संगठित करना स्वीकार कर लिया।

Hindi Premi

उनके वहाँ आने के बाद अभियान के सिलसिले में कुछ दंगे भी हो गए। इससे नेशनल गार्ड को बुला लिया गया और कर्फ़्यू लगा दिया गया। डॉ. किंग एक सप्ताह के लिए मेम्फ़िस में जाकर फिर लौट आए। उन्हें नए सिरे से अभियान का आयोजन करना था। शाम के समय बाहर निकलने से पहले वे होटल के बरामदे में निकलकर जंगले के पास आकर नीचे खड़े लोगों से बातचीत कर रहे थे। शोफ़र ने कहा कि शाम ठंडी है, वे बड़ा गरम कोट पहन लें। ''अच्छा, पहन लूँगा,'' कहकर वे मुस्कराए। और तभी सड़क के पास से आकर एक गोली उनकी गर्दन और जबड़े को बींध गई। डॉ. किंग जिस अभियान की तैयारी कर रहे थे, उनसे हटकर वे एक और ही अभियान पर निकल गए। अमरीका के सारे नीग्रो स्तम्भित रह गए। दुनिया स्तम्भित रह गई। उनके हत्यारे को चाहे बाद में पकड़ लिया गया, परन्तु जो क्षति हो चुकी थी, उसकी पूर्ति क्या किसी भी तरह सम्भव थी?

Hindi Premi

Hindi Premi

बिना हाड़-माँस के आदमी

(बाल साहित्य)

Hindi Premi

Hindi Premi

काँटेदार आदमी

एक आदमी था। आम आदमियों जैसा आदमी। उसी तरह रहता था। खाता-पीता और हँसता था। पर एक दिन उसने देखा, उसकी दाईं हथेली में एक काँटा उग आया है।

वह बहुत परेशान हुआ। पहले उसने सोचा कि काँटा कहीं बाहर से गड़ गया है। उसने सुई से उसे निकालने की कोशिश की, वह सुई से नहीं निकला। नश्तर से निकालने की कोशिश की। पर हुआ यह कि हथेली एक-दो जगह से कट गई। काँटा निकलने में नहीं आया। अब वह डरा। उसे विश्वास हो गया कि काँटा बाहर का नहीं है। उसके अन्दर का ही है।

उसकी बुरी हालत थी। खाना खाने लगे, तो काँटा ज़बान में गड़ा जाए। ज़बान को छील दे। सिर पर हाथ फेरने लगे, तो काँटा अपनी नोक से खोपड़ी पर लकीर खींच दे। किसी से मिलने पर उससे हाथ मिला बैठे, तो मिलने वाला चीख़कर अपने हाथ पीछे हटा ले। उसकी समझ में नहीं आए कि वह करे तो क्या करे। वह इस मुसीबत से छुटकारे का उपाय सोच रहा था। तभी उसने पाया कि एक काँटा बायीं हथेली में भी निकल आया है।

एक हथेली में काँटा होने से तो ख़ैर किसी तरह चल भी जाता था। पर अब दोनों हथेलियों में एक-एक काँटा।

उसने एक डॉक्टर को दिखाया। दूसरे को दिखाया। कई हकीमों और वैद्यों से राय ली। दो-दो विशेषज्ञों के पास भी गया। पर किसी की समझ में नहीं आया कि आख़िर बात क्या है। किसी ने इसका सम्बन्ध खाने-पीने के साथ बताया। किसी ने आबो-हवा के साथ। किसी ने कहा कि उसे विटामिन और प्रोटीन ज़्यादा खाने चाहिए। किसी ने कहा कि उसे अपनी खुराक कम कर देनी चाहिए। वह एक बात पर अमल करने का फ़ैसला करता। उसी समय बिलकुल उलटी दूसरी बात उसके मस्तिष्क में डाल दी जाती। एक दिन वह भरपेट दूध-अंडे-बिस्कुट खा लेता। दूसरे दिन फिर उसे बिलकुल भूखा रहना पड़ता। एक दिन खुली हवा में सैर करता। दूसरे दिन कम्बल लपेटकर घर के अन्दर बन्द रहता। इस तरह डॉक्टरों-हकीमों की राय

Hindi Premi

ले-लेकर वह परेशान हो गया अन्त में उसने तय किया कि चाहे जो हो, अब यह अपना इलाज अपनी इच्छा से करेगा। दूसरों से बिलकुल राय नहीं लेगा।

पर अपनी इच्छा से इलाज क्या हो? इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं था कि वह चुपचाप दोनों हाथ कटवा दे। पर हाथ कटवाने का मतलब होता कि वह अपने रोज़गार से भी हाथ धो ले। अब तक तो वह काँटों के होते हुए भी फ़ाइलों पर किसी तरह हस्ताक्षर कर लेता था। हाथ कटाने के बाद तो वह भी नहीं कर सकेगा। अब तक तो केवल इतना ही था कि हस्ताक्षर टेढ़े-मेढ़े आते थे। पर टेढ़े-मेढ़े हस्ताक्षरों का वेतन तो उसे उतना ही मिलता था जितना सीधे हस्ताक्षरों का। बल्कि अफ़सरों से उसने कहा कि हाथों में काँटे उगे हैं, वह तब भी रोज़ हस्ताक्षर कर रहा है। इससे कुछ तरक़्क़ी भी उसने ले ली थी। इसलिए हाथ कटाने की बात को उसने वहीं कुचल दिया।

उसी दिन शाम एक बड़ी बात हो गई। उसने देखा कि काँटा उसके माथे में भी निकल आया है। यह काँटा कहीं गड़ता न था, न ही इससे किसी काम में रुकावट पड़ती थी। फिर भी हाथों के काँटों से वह कहीं अधिक परेशान करने वाला था। सीधा सामने को निकला हुआ। ख़ासा लम्बा और तेज़। आँख से न दिखाई देते हुए भी जैसे हर समय आँख पर छाया हुआ। हर समय मन करता कि छूकर देखले कि वह वहाँ पर है या नहीं। किसी तरह ढँक ले। हाथ अचानक उस ओर उठ भी जाता। पर वह उसे बीच में ही रोक लेता। जब हाथ में ही काँटा हो तो उससे माथे का काँटा कैसे ढँका जाए।

पर बिना ढँके भी कैसे काम चले? जो कोई भी उससे मिलने आता, सामने आते ही पूछता—''क्यों साहब, आपके माथे पर क्या निकला है?''

वह किसी को क्या बताए कि क्या निकला है? कभी चुप रहता और कभी हँसकर टाल देता। कभी अनमना होकर उत्तर दे देता—''कुछ नहीं, ऐसे ही एक कील-सी निकल आई है।''

कील-सी निकल आई है! सामने वाला तो अधिक पूछताछ न करता पर उसका मन स्वयं कहता कि आदमी के माथे पर क्या इस तरह कील भी निकलती है?

इससे उसके मन में छटपटाहट-सी भर जाती। वह जल्दी-से-जल्दी जाकर कहीं छिप जाना चाहता। हाथों के काँटों से तो हस्ताक्षर करने में कुछ कष्ट भी था। इस काँटे से तो कोई काम करने में किसी तरह का कष्ट नहीं था। फिर भी उससे न तो दफ़्तर में बैठा जाता। न फ़ाइलों पर हस्ताक्षर किए जाते। न वह ठीक से खाता-पीता। न किसी से बात ही करता। वह घंटों कमरे में बन्द होकर आइने में अपने को देखता रहता। उसे लगता था कि आइने में भी उसका बाक़ी चेहरा साफ़

Hindi Premi

नहीं दिखाई देता। माथे का काँटा ही सबसे पहले दिखता है। काँटा इतना नुकीला और चमकदार था, जैसे वह किसी मछली के अन्दर से निकालकर उसके माथे में गाड़ दिया गया हो।

रात को वह बिस्तर पर लेटता तो बिलकुल सीधा आसमान की तरफ़ देखता रहता। सोचता कि आख़िर उसे हो क्या गया है। संसार में और भी तो इतने आदमी हैं। किसी के इस तरह काँटे नहीं निकलते। भाग्य की उसी के साथ क्या शत्रुता है! उसने उसे इस तरह की सज़ा क्यों दे रखी है।

एक रात जब उसकी आँख लगी तो उसने एक सपना देखा। देखा कि वह एक नहीं दो आदमी है। एक, जिसके माथे और हथेलियों पर काँटे निकलने हैं। दूसरा, पहले जैसा अर्थात् जिसके काँटे नहीं हैं। उसकी समझ में नहीं आया कि उनमें से असली 'वह' कौन है—काँटे वाला या बिना काँटे का। पर यह भी लगे कि असली दोनों दो शत्रुओं की तरह एक-दूसरे को देख रहे थे।

''तुम्हें काँटों से बहुत कष्ट होता है?'' जिसके काँटे नहीं थे उसने पूछा।

'तुम्हें इससे क्या? तुम्हारे तो काँटे क्यों नहीं हैं?'' काँटे वाला बोला।

''तुम्हें इससे भी कष्ट होता है कि मेरे काँटे क्यों नहीं हैं?'' कहकर पहला हँस दिया। फिर बोला—''तुम जानते हो, तुम्हारा यह क्यों निकले हैं?''

''क्यों निकले हैं?'' काँटे वाले ने क्रोध के बिना काँटे वाले आदमी से पूछा।

''यह तुम्हें मालुम है, पर तुम अपने को बताना नहीं चाहते।''

''मुझे मालुम है।'' काँटे वाले को और भी क्रोध आया—''और मैं अपने को बताना नहीं चाहता? तुम इस तरह मेरा मज़ाक उड़ाकर मज़ा लेने की कोशिश कर रहे हो?''

''मैं मज़ा लेने की कोशिश नहीं कर रहा, तुम्हें सच बता रहा हूँ। तुम्हें पता है, जब तुम्हारी पहली हथेली पर काँटा निकला था, तो उससे पहले कई दिन उस हथेली पर चुनचुनाहट होती रही थी?''बिना काँटे वाले आदमी ने उससे कहा।

काँटे वाले से उत्तर देने नहीं बना। वह सिर्फ़ सिर हिलाकर उसे देखता रहा।

''फिर दूसरी बार उसी तरह की चुनचुनाहट दूसरी हथेली में हुई थी?''

काँटे वाले को याद था कि उसे चुनचुनाह्ट हुई थी। पर उसने हामी नहीं भरी।

''फिर वैसी ही चुनचुानाहट माथे में हुई थी?''

''तुम कहना क्या चाहते हो?'' इस बार काँटे वाले आदमी ने दाँत भींचते हुए पूछ लिया।

''कुछ नहीं। बस यही कि तुम्हारे एक-एक काँटा क्यों निकला है, इसका कारण तुम्हें मालुम है। आगे अगर और काँटे निकलेंगे, तो उसका कारण भी तुम्हें मालुम होगा।'' यह कहते हुए जिसके शरीर में काँटे नहीं थे, वह सामने से गायब हो गया।

Hindi Premi

यह अकेला रह गया, उसी तरह माथे और हथेलियों में काँटे लिये हुए। तभी अचानक उसकी नींद खुल गई।

नींद खुलने पर उसने इधर-उधर देखा, जैसे कि अब भी वह दूसरा आदमी उसे वँहा दिखाई दे सकता हो। पर दूसरा आदमी होता तो दिखाई देता। वँहा तो वह अकेला ही था। बिस्तर में पड़ा हुआ। थोड़ी देर में उसने करवट बदली। उसे लगा जैसे कोई चीज़ उसकी कमर में चुभ रही है। वह चौकन्ना हो गया। उसका मन ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। तो क्या अब उसकी कमर में भी काँटे निकलने शुरू हो रहे हैं? उसने धीरे-धीरे हाथ वहाँ ले जाकर देखा। जब हाथ किसी काँटे से नहीं छुआ तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने अच्छी तरह उस जगह को मलकर देखा। सचमुच कोई काँटा नहीं था। उसने बिस्तर पर इधर-उधर टटोलना शुरू किया। आख़िर वह क्या चीज़ थी, जो चुभी थी? कुछ पता नहीं चला।

उसने उठकर बत्ती जलाई। बत्ती जलाकर बिस्तर के पास आया। देखा कि एक चींटा उसकी चादर पर चला जा रहा है। उसने उसे चादर से उठाया। खिड़की से बाहर फेंक दिया।

उसके बाद उसे सारी रात नींद नहीं आई। वह बिस्तर पर करवटें बदलता रहा। सोचता रहा। रह-रहकर उसे सपने की बात याद हो आती थी। अपने जिस्म पर काँटे निकलने का कारण उसे स्वयं कैसे मालूम है? उसे क्रोध आया। यह बात कहने वाला बिलकुल उसी जैसा क्यों लगता था? क्या सचमुच उसे इसका कारण मालूम था?

यह ठीक था कि हर बार काँटा निकलने से पहले कई-कई दिन उसे उस जगह पर चुनचुनाहट होती रही थी। पहले हथेली में चुनचुनाहट हुई। उस समय एक आदमी से रिश्वत लेने के लिए हाथ बढ़ाया था। बाईं हथेली में भी चुनचुनाहट हुई थी। उस समय उसके अफ़सर ने पूछ-ताछ की थी। तब उसने रिश्वत का आधा रुपया उसे पकड़ाया था। पर माथे पर चुनचुनाहट कैसे हुई थी, यह उसे बहुत सोचकर भी याद नहीं आया। वह तो एक दिन दफ़्तर में बैठे-बैठे अचानक ही शुरू हो गई थी। उसने मन-ही-मन फैसला किया, आगे से वह इसका ध्यान रखकर चलेगा। जैसे ही कहीं चुनचुनाहट होगी, वह अपने को उस काम से रोक लेगा।

तीन-चार दिन बाद एक बड़े आदमी के घर से उसे खाने के लिए बुलावा आया। उसे हैरानी हुई। इतने बड़े आदमी ने उसे अपने घर पर कैसे बुलाया है! यह बात उसने अपने मित्रों को बताई। उन्हें भी कम हैरानी नहीं हुई, साथ ही उन्हें ईर्ष्या भी हुई। इतना बड़ा आदमी उसे खाने पर बुला रहा है। वह वैसे किसी को पूछता भी नहीं। लोगों ने उसे बधाइयाँ दीं। कहा कि अब शीघ्र ही उसका भाग्य चमकने वाला है। एक बार इतने बड़े आदमी के यहाँ आना-जाना हो जाए तो फिर वह दफ़्तर की मामूली-सी नौकरी में नहीं पड़ा रहेगा। वे ज़रूर कोई-न-कोई ऊँची जगह उसे दिला

Hindi Premi

देंगे। एक बार आदमी को ऊँची जगह मिल जाए, फिर तो उसके लिए ऊँची-से-ऊँची जगह के दरवाज़े खुलने लगते हैं।

अफ़सर के यहाँ जाने को वह तैयार हुआ। उसने अपना नया सूट निकालकर पहना। पुराना जूता घिस गया था। बाज़ार जाकर नया जूता खरीद लाया। शाम को बड़े आदमी की गाड़ी उसे लेने आई। जब वह घर से उस गाड़ी में बैठकर चला तो उसका मन ख़ुश हुआ था। रास्ते में बड़े आदमी के ड्राइवर ने उससे एक बात कही। इससे उसका मन एकाएक उदास हो गया। उसे पता चला कि खाना खाने के लिए उसे यूँ ही नहीं बुलाया गया। उसके पीछे एक ख़ास मतलब है। बड़े आदमी को कुछ काग़ज़ों की आवश्यकता है। वे दफ़्तर की गुप्त फ़ाइल में हैं। वे उससे काग़ज़ों को निकलवाकर देखना चाहते हैं। वह इस विषय में सोच रहा था, तभी गाड़ी बड़े आदमी के द्वार पर पहुँच गई। ड्राइवर ने उतरकर गाड़ी का दरवाज़ा खोला। वह गाड़ी से उतरकर अन्दर चलने को हुआ, तभी उसके दायें पैर के तलवे में चुनचुनाहट होने लगी। वह अपनी जगह पर खड़ा-का-खड़ा रहा गया। एक क़दम भी उससे दरवाज़े के अन्दर रखते नहीं बना।

"क्या बात है! आप अन्दर नहीं चलेंगे?" ड्राइवर ने पूछा।

वह कुछ देर चुप रहा। पैर में चुनचुनाहट बढ़ती जा रही थी। उसके पसीना छूटने लगा। अगर पैर में काँटा निकल आया तो वह क्या करेगा? अपाहिज होकर वह तो सड़क पर ठीक से चल भी नहीं पाएगा।

"मेरी तबीयत ठीक नहीं है।" उसने कहा—"मैं वापस अपने घर जाऊँगा।

ड्राइवर ने घूरकर उसकी ओर देखा। बिना कुछ कहे वह अन्दर चला गया। ड्राइवर के जाते ही वह चुपचाप वहाँ से लौट पड़ा। पैदल रास्ता काफ़ी लम्बा था। चलते-चलते वह काफ़ी थक गया। पर घर वापस पहुँचते ही उसके पैर से चुनचुनाहट खत्म हो चुकी थी। उसके मन से एक बोझ उतर गया। एक ख़तरा मन से दूर हो गया। उसे खुशी थी, इस बार काँटा उगने से पहले ही वह उस पर काबू पा सका था। काश, इस चीज़ का पता उसे पहले चल गया होता!

उस दिन उसने डटकर खाना खाया। रात को खूब आराम की नींद सोया। पर अगले दिन दफ़्तर में उसे ख़ासी डाँट खानी पड़ी। बड़े बादमी के यहाँ से उसकी शिकायत आई थी। उसने उनका अपमान किया है। उन्होंने ख़ासतौर से गाड़ी भेजकर उसे घर पर बुलाया। वह बाहर से ही लौट गया। उसके साहब की भौंहें चढ़ी हुई थीं। जब वह सामने पहुँचा तो उन्होंने बड़े आदमी का नाम लेकर उससे पूछा—"कल उन्होंने तुम्हें अपने घर बुलाया था?"

उसे लगा कि शायद वहाँ जाने के लिए उसे डाँट पड़ने वाली है। उसने डरते-डरते कहा—"जी, बुलाया तो गया था। मैं गया नहीं था।"

Hindi Premi

"गए नहीं थे या जाकर बाहर से लौट आए थे?"

"जी...जी...!" उसकी घिग्घी बँध गई।

"तुम्हें पता है इस तरह अपमान करने का क्या फल निकल सकता है?"

उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। वह चुपचाप ज़मीन की ओर देखता रहा।

"अगर अपनी ख़ैरियत चाहते हो तो जाकर उनसे क्षमा माँग लो।"

"जी...!" इससे आगे उसकी जीभ फिर जकड़ गई। 'यस सर' कहकर वहाँ से चलने को हुआ। तभी उसकी पीठ पर चुनचुनाहट होने लगी।

"जाओ!" साहब ने चिल्लाकर कहा, 'अब यहाँ क्यों खड़े हो?" उसने पीछे दरवाज़े की ओर। पीठ की चुनचुनाहट और तेज़ हो गई।

"सर...!" उसने कहा।

"क्या बात है?" साहब का पारा गरम हुआ।

"मैं नहीं जा सकूँगा।" पीठ में चुनचुनाहट हो रही है। वहाँ हाथ रखे हुए उसने कहा।

"क्या?" साहब की गरज़ सारे दफ़्तर में गूँज गई। "तुम वहाँ नहीं जा सकोगे! मेरे कहने के बाद भी नहीं जा सकोगे! तुम्हें पता है तुम्हारे हाथों पर और माथे पर जो काँटे हैं, उनके कारण तुम्हें कब का नौकरी से निकाला जा सकता था? तुम्हारे ऊपर दया कर रहा हूँ। तुम बदले में मेरे ही सामने यह कह रहे हो? मैं तुम्हें नौकरी से बाहर करता हूँ।"

उसका मन हुआ कि झटपट साहब से क्षमा माँग ले। वह मुँह से कुछ कहने को हुआ। अचानक उसकी जीभ में चुनचुनाहट होने लगी।

"तुम कुछ कहना चाहते हो?"—साहब ने उसे चुपचाप खड़े देखकर पूछा।

"जी हाँ...!" उसके मुँह से निकला। पर साथ ही उसे लगा कि एक तीखा-सा काँटा उसके तालू में चुभ जाएगा।

"क्या कहना चाहते हो?"

"जी...जी...कुछ नहीं कहना चाहता।" उसने रूखे गले से कहा। यह कहते ही उसकी जीभ की चुनचुनाहट ठंडी पड़ने लगी।

"तो यहाँ खड़े रहने की ज़रूरत नहीं।" साहब बोले—"मेरी बात तुमने सुन ली है!"

वह दरवाज़ा खोलकर बाहर आया। पीठ की चुनचुनाहट भी कम हो रही।

"क्या बात थी?" उसके साथियों ने पूछा।

"कुछ नहीं।" उसने कहा—"मुझे आज नौकरी से निकाल दिया गया है।"

"किस कारण से?"

Hindi Premi

उसने अपने हाथ के काँटों की ओर देखा। बिना कुछ कहे वहाँ से चला आया। घर आकर वह कमरे में बैठा। अब चुनचुनाहट उसके मन में होने लगी।

यह क्या हो रहा है? उसने सोचा नौकरी छोड़ने के बाद यह किस चीज़ का काँटा उग रहा है। तभी उसकी दृष्टि सामने रखे ट्रांजिस्टर पर पड़ी जो उसने रिश्वत के पैसों से खरीदा था। उसे देखते ही मन में जाने क्या उबाल आया? उसने दोनों हाथों में उसे उठाया। ज़ोर से खिड़की के बाहर दे पटका। पटककर लौटा। उसने देखा कि दोनों हाथों के काँटें ट्रांजिस्टर के साथ ही झड़कर बाहर गिर गए हैं। इसके साथ ही मन की चुनचुनाहट भी कम होने लगी।

रात को उसने फिर सपना देखा। सपने में उसे दो आदमियों की सूरत दिखाई दी। एक, जिसके माथे पर काँटा था। दूसरा, जिसके माथे पर काँटा नहीं था।

"तो आज तुम्हारे हाथों के काँटे टूट गए?"–जिसके काँटा नहीं था, उसने मुसकराकर पूछा–"पर माथे का काँटा नहीं टूटेगा!"

"टूटेगा क्यों नहीं? पर तब टूटेगा जब तुम इसके उगने का कारण बता दोगे।"

"मैं बताऊँगा?" काँटेवाला हैरान हुआ।

"तुम नहीं तो और कौन बताएगा? पहले भी तुम्हीं ने तो नए-नए काँटे उगने से बचाया है।"

Hindi Premi

बिना हाड़-माँस के आदमी

लोगों ने अख़बारों में समाचार पढ़ा, तो किसी को उस पर विश्वास नहीं आया। समाचार था कि एक देश के वैज्ञानिकों ने ऐसे मशीनी आदमी का आविष्कार कर लिया है जो आम आदमी से सौ गुना ज़्यादा सोच सकता है और सौ गुना ज़्यादा तेज़ी से अपने सोचे के अनुसार काम कर सकता है। इस समाचार से पैदा हुई हलचल अभी समाप्त नहीं हुई थी कि दूसरा समाचार आया। वह यह कि मशीनी विचारक रातों-रात अपने कमरे की खिड़की तोड़कर और न जाने कैसे चौथी मंज़िल से नीचे कूदकर लापता हो गया।

चारों तरफ़ हलचल मच गई। पुलिस की गाड़ियाँ दौड़ाई गईं। जगह-जगह टेलीफ़ोन किए गए। रेडियो और टेलिविजन से घोषणाएँ की गईं। उसे पकड़ने के लिए एक बड़ा-सा पुरस्कार भी रखा गया। पर मशीनी विचारक एक बार जो चौमंज़िले से कूदकर गायब हुआ, तो फिर किसी के हाथ नहीं आया। न ही यह पता चला कि दुनिया-भर की आँखों में धूल झोंककर आख़िर वह चला कहाँ गया। किसी शहर-गाँव, पहाड़-जंगल या नदी-नाले में उसका पता नहीं चला। कई दिनों की दौड़-धूप के बाद लोग थककर बैठ गए। उसके गुम होने के बारे में कई तरह के अंदाज़े लगाए गए। किसी का ख़याल था कि आम आदमी से सौ गुना ज़्यादा तेज़ी से सोचने की वजह से उसका दिमाग़ फट गया होगा और वह समुद्र या रेगिस्तान में कहीं पुर्ज़ा-पुर्ज़ा होकर गिर गया होगा। किसी का कहना था कि अपने तेज़ दिमाग़ से उसने यहाँ से किसी और ग्रह-नक्षत्र पर जाने का तरीका सोच लिया होगा। वह वहीं चला गया होगा। जिन वैज्ञानिकों ने उसका आविष्कार किया था, वे अब सिर धुन रहे थे क्योंकि उसके बाद वैसा ही अगला आदमी बनाने के उनके आले वगैरह भी वह अपने साथ उड़ा ले गया था।

एक साल, दो साल, चार साल बीत गए। लोग उस बात को लगभग भूल गए। वैज्ञानिकों ने उसके बाद फिर वैसा आदमी बनाने की कोशिश नहीं की। उन्हें डर था कि पहले आदमी ने ही जब ऐसा करतब दिखाया है, तो दूसरा जाने क्या ग़ज़ब ढाएगा!

Hindi Premi

उसके बाद शायद कभी उसकी बात भी न होती, अगर बीच-समुद्र के एक टापू में एक माहीगीर की उससे मुलाक़ात न हो जाती।

वह माहीगीर समुद्र में मछली पकड़ने निकला था। पर उससे पहले कि एक भी मछली पकड़ पाता, उसकी नाव तुफ़ान में फँसकर उसे उस टापू की तरफ़ ले गई। टापू के किनारे पहुँचकर वह नाव को वहाँ बाँधने लगा, तो अपने आसपास देखकर उसे बहुत हैरानी हुई। कितने ही लोग वहाँ पेड़ चीर रहे थे, ज़मीन खोदकर कच्चा लोहा निकाल रहे थे, या रूई धुन रहे थे। कुछ ऐसे भी थे जो चिरी हुई लकड़ियों को आग लगाकर क़ोयला बना रहे थे। पर वे सब के सब आम आदमियों से बिलकुल अलग तरह के थे। आपस में भी एक गिरोह के लोग दूसरे गिरोह से मेल नहीं खाते थे। जो लकड़ी चीर रहे थे, वे ख़ुद भी लकड़ी के बने लगते थे और उनकी बाँहों के आगे हाथों की जगह आरियाँ लगी थीं। जो लोहा खोद रहे थे, उनके जिस्म कच्चे लोहे के थे। हाथों की जगह कुदालियाँ थीं और वे चलते थे तो लगता था जैसे कवायद कर रहे हों इसी तरह रूई धुनने वाले आदमी रूई के बने थे। हाथ-पैर और नाक-कान कच्ची कपास के थे और गले से नीचे का धड़ का हिस्सा धुनकी की शक्ल का था। जो लकड़ियों को जलाकर कोयला बना रहे थे, वे सिर से पैर तक ख़ुद भी कोयला ही थे। हाथ-पैरों से उनके लपटें निकलती थीं और आँखें जलते अंगारों की-सी थीं। माहीगीर पहले तो उन्हें देखकर डरा। पर जब उनमें से किसी ने न तो उसकी तरफ़ देखा, और न ही उससे कुछ कहा, तो उसका डर धीरे-धीरे जाता रहा।

उसे भूख लगी थी, इसलिए वह नाव को किनारे पर छोड़कर टापू में इधर-उधर घूमने लगा। पर उसे न तो कोई ऐसा पेड़ नज़र आया जिस पर फल लगे हों, और न ही कोई एक भी जानवर दिखाई दिया जिसका कि वह शिकार कर सके। जब भूख के मारे उसका बुरा हाल होने लगा, तो उसने सोचा कि बेहतर यही है कि अपनी नाव लेकर फिर से समुद्र में चला जाए और वहीं से कोई मछली वग़ैरह पकड़ने की कोशिश करे। उस टापू पर भूखों मरने से अच्छा है कि तूफ़ान से जुझकर भी जिस किसी तरह अपना पेट तो भर ले।

जब वह किनारे की तरफ़ लौटने लगा, तब अचानक उसकी मुलाक़ात मशीनी विचारक से हो गई। विचारक उस समय बहुत-सी घास और मिट्टी हाथ में लिए उनसे एक पुतला घड़ रहा था। माहीगीर को लौटते देखा, तो वह हँसता हुआ उसके सामने आ गया।

"तुम मुझे पहचानते हो?" उसने माहीगीर से पूछा। माहीगीर ने अख़बारों में उसकी तसवीरें देखी थीं, फिर भी वह तुरन्त उसे नहीं पहचान सका। कुछ देर हक्का-बक्का-सा उसकी तरफ़ देखता रहा। फिर बोला—"तुम...तुम वही हो...जिसके लिए...!"

Hindi Premi

जिसके लिए चार साल से तुम्हारे लोग परेशान हैं," विचारक ने उसकी बात पूरी कर दी। "वे लोग चार साल से मेरा पता नहीं लगा पाए जबकि मैंने इस अरसे में एक नई दुनिया ईजाद कर ली है। तुमने देखी है मेरी दुनिया? इस दुनिया में कोई किसी चीज़ के लिए किसी का मोहताज नहीं है। हर आदमी अपनी जगह अपने में पूरा है, सब-दूसरों से अलग, अकेला और आज़ाद। यहाँ न किसी को तुम लोगों की तरह भूख लगती है, न काम करके पसीना आता है। न किसी को नींद सताती है, न समुद्र और तूफ़ान से डर लगता है। हर आदमी हर वक़्त काम करता रहता है और अपनी तरह काम करने वाले नए-नए आदमी तैयार करता रहता है।"

माहीगीर उसकी बात से बहुत प्रभावित हुआ, पर और कुछ भी कहने से पहले उसने पूछ लिया—"यहाँ कुछ खाने को मिल सकता है?"

विचारक इस पर और भी हँसा। बोला—"यह दुनिया तुम्हारी दुनिया की तरह भूख और ठंड से सताए जाने वाले लोगों की नहीं है जो कि खाने और कपड़े बग़ैर जी ही न सकें। खाना, पीना, ठिठुरना, साँस लेना, ये सब पुरानी बातें हैं जिन्हें यहाँ कोई नहीं जानता।" कहते हुए उसने माहीगीर की बाँह थाम ली और पल-भर में ही वे वहाँ से काफ़ी दूर एक खुले मैदान में पहुँच गए। वहाँ आकर माहीगीर की आँखें फटी-सी रह गईं। उसने देखा कि मैदान में चारों तरफ़ लोहे-लकड़ी और रूई-कोयले के आदमी ढेरों-के-ढेर पड़े हैं। उनकी तरफ़ इशारा करते हुए विचारक ने कहा—"देख रहे हो इन्हें? यह इतनी बड़ी जनसंख्या मैं तुम्हारी दुनिया में बसाने के लिए तैयार कर रहा हूँ। आठ-दस साल में मेरे पास इतने आदमी तैयार हो जाएँगे कि तुम्हारी पूरी दुनिया के काम-काज सँभाल लेंगे। उसके बाद रोटी-पानी और साँस के सहारे जीने वालों की दुनिया को कोई ज़रूरत ही नहीं रह जाएगी।"

माहीगीर का पहले ही भूख के मारे बुरा हाल था, इस बात को सुनकर और आसपास के ढेरों को देखकर, उसका दम और भी ख़ुश्क हो गया। "इन लकड़ी-कोयले के आदमियों को दुनिया में बसाकर तुम क्या करोगे?" उसने किसी तरह पूछा।

"तब मैं दुनिया को अपने ढंग से चलाऊँगा," विचारक बोला। "तब दुनिया में न आज की तरह रोना-धोना रहेगा, न चीख़ना-चिल्लाना। ये लोग आराम से जिएँगे और अपना काम करेंगे, बस!"

माहीगीर ने उस तरह की दुनिया की कल्पना की, तो उसके शरीर में सिरहन दौड़ गई। उसे न जाने क्यों अपने बच्चे का ध्यान हो आया। ख़ुश्क गले से उसने पूछ लिया—"तब हमारे बच्चे क्या करेंगे?"

"तुम्हारे बच्चे उन्हें काम करते देखेंगे तो खुश होंगे," विचारक बोला।

माहीगीर के मन में अचानक एक बात आई जिसे सोचकर उसका चेहरा खिल गया। 'तुम्हारे इन आदमियों के तो बच्चे नहीं होंगे?" पूछा।

Hindi Premi

"नहीं," विचारक ने सिर हिलाया। "इन्हें बच्चों-अच्चों की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। दुलार-प्यार जैसी चीज़ों के लिए न इनके पास वक़्त होगा, और न ही उनसे इनका कोई वास्ता रहेगा। ये बस जिएँगे और काम करेंगे, काम करेंगे, और जिएँगे।"

माहीगीर को इस बात से इतनी खुशी हुई कि वह ठहाका लगाकर हँस दिया। हँसता हुआ किनारे की तरफ़ भाग खड़ा हुआ। "तुम्हारी दुनिया नहीं चलती," उसने भागते हुए कहा—"जिस दुनिया में बच्चे नहीं होंगे, दुलार-प्यार नहीं होगा, वह दुनिया कभी नहीं चलेगी, एक दिन भी नहीं चलेगी।"

उसे डर था कि विचारक उसका पीछा करेगा। पर एक बार उसने घूमकर पीछे देखा, तो विचारक ठगा-सा अपनी जगह पर खड़ा था। माहीगीर ने किनारे पर आकर जल्दी से अपनी नाव खोली और उसे तूफ़ानी पानी में खेना शुरू कर दिया। जब वह काफ़ी आगे निकल आया, तो अनानक तेज़ आग की लपटों ने उसे चौंका दिया। उसने देखा कि उसके पीछे सारा टापू धू-धू करके जल रहा है। लोहे, लकड़ी और रूई के आदमी जलकर राख हुए जा रहे हैं। जो आदमी दोनों हाथों में जलती टहनियाँ लिए पागलों की तरह टापू में चारों तरफ़ आग लगा रहा था, वह खुद विचारक ही था।

Hindi Premi

सुनहरा मुर्ग़ा, काला बन्दर और लाल अमरूद का पेड़

सुनहरा मुर्ग़ा अपनी तरह का एक ही था। इसलिए बहुत-से कसाइयों की नज़र उस पर थी।

काला बन्दर भी अपनी तरह का एक ही था। इसलिए बहुत-से चिड़ियाघर उसे पकड़ पाने की कोशिश में थे।

लाल अमरूद के पेड़ पर पूरे-पूरे लाल अमरूद उगते थे। उस जैसा भी कोई दूसरा पेड़ वहाँ नहीं था। इसलिए फलवालों से लेकर स्कूल के बच्चों तक को उसके अमरूदों का लालच था।

पर उन तीनों ने मिलकर एक ऐसी योजना बना रखी थी कि कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाता था।

जब कोई कसाई मुर्ग़े को पकड़ने के लिए आता, तो पेड़ उसे लुभाने के लिए दो-तीन पके-पके अमरूद नीचे टपका देता। उन अमरूदों की ख़ुशबू ही ऐसी थी कि कसाई पहले अमरूद चखने में लग जाता। उस बीच बन्दर दो-एक कच्चे अमरूद तोड़कर इस तरह निशाना बनाता कि कसाई को अपना होश भूल जाता। आख़िर जब वह ऊपर की तरफ़ देखता, तो बन्दर मुर्ग़े को पीठ पर बिठाए मुँह बिचकाता नज़र आता। वह हारकर वहाँ से चलने लगता, तो उसे पता चलता कि उसका थैला भी गायब है। थैला उसके औज़ारों समेत पेड़ की सबसे ऊँची ख़ास पर लटक रहा होता। साथ पेड़ साँय-साँय करता उसकी हालत का मज़ा ले रहा होता।

जब चिड़ियाघर के लोग बन्दर को घेरने के लिए आते, तो पेड़ उसे अपनी पत्तियों और शाखों में इस तरह छिपा लेता कि किसी की उस पर नज़र ही न पड़ती। नीचे मुर्गा ज़ोर-ज़ोर से पंख फड़फड़ाकर इतनी धुल उड़ा देता कि उनके लिए वहाँ खड़े होकर साँस लेना मुश्किल हो जाता। आख़िर वे वहाँ से हटने लगने, तो पेड़ अपने सबसे पिलपिले अमरूद नीचे टपकाकर उन्हें फिसला देता। वे किसी तरह गिरते-पड़ते वहाँ से लौटते, तो उन्हें पता चलता कि उनका बन्दर पकड़ने का जाल मुर्ग़े की चोंच में है और मुर्ग़ा पेड़ की सबसे ऊँची टहनी पर बैठा है। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें पीछे से मुर्ग़े की बाँग सुनाई दे जाती—कुक्कडूँ कूँ! लगता जैसे मुर्ग़ा उनका मज़ाक उड़ा रहा हो।

Hindi Premi

इसी तरह जब फलवाले या स्कूल के बच्चे पेड़ से अमरूद तोड़ने के लिए आते, तो पहले उनका सामना बन्दर से होता। बन्दर इस तरह उनके इर्द-गिर्द चक्कर काटता और उन्हें डराता-धमकाता कि उनका पेड़ के नज़दीक जाने का हौसला ही न पड़ता। अगर उन लोगों के पास अपना कोई खाने-पीने का सामना होता, तो उसे भी वह चट्ट कर जाता। मौका लगने पर किसी के बाल नोंच देता, किसी के कान उमेठ देता। फिर भी वे लोग पेड़ के नज़दीक पहुँच जाते, तो वहाँ उन्हें मुर्ग़ा बेजान-सा तड़पता नज़र आता। मुर्ग़े की चोंच एक अमरूद में होती, जैसे कि अमरूद खाकर ही उसकी यह हालत हुई हो। लोग बीमारी के डर से अमरूद तोड़ने का इरादा छोड़कर वहाँ से लौट पड़ते। लौटते हुए यह और पता चलता कि अमरूदों के लिए जो टोकरी साथ लेकर आए थे, वह बंदर के सिर पर है और बंदर एक मसखरे की तरह आवाज़ें पैदा करता पेड़ की सबसे ऊँची टहनी पर बैठा टाँगें हिला रहा है।

इस तरह वे मज़े में दिन काट रहे थे कि एक दिन ख़ूब घनी घटा घिर आई। पहले मूसलाधार वर्षा हुई, फिर ओले पड़ने लगे। जब उन तीनों ने साथ मिलकर अपना-अपना बचाव करने की योजना बनाई थी, तो इस दिन की बात नहीं सोची थी। पेड़ अपनी जगह परेशान था। ओलों से उसके सब अमरूद नष्ट हुए जा रहे थे। बन्दर का अपनी जगह भीग-भीगकर बुरा हाल था। ऊपर से ओलों की मार उसकी जान ले रही थी। मुर्ग़े की अपनी जगह ख़स्ता हालत थी। वर्षा से भारी होकर उसके पंख ही नहीं खुल पा रहे थे। ऊपर से ओलों की झड़ी उस पर गोलियाँ दाग रही थीं

'ये दोनों छुटकू किसी काम के नहीं', पेड़ ने झल्लाकर सोचा—'मैंने आज तक मुसीबत में इनकी जान बचाई है। पर आज मुझ पर इतनी बड़ी मुसीबत आई है, तो इन्हें अपनी-अपनी ही पड़ी है। एक बार मेरा हाल तक नहीं पूछा, मदद करना तो दूर की बात है!'

'मैंने भी क्या साथी चुन रखे हैं?' बन्दर ने ठंड से काँपते हुए अपने से कहा। 'एक पेड़ है जो जमीन में गड़ा होने की वजह से सुरक्षित है। दूसरा पक्षी है जिसे आकाश में उड़ सकने के कारण कोई ख़तरा नहीं है। आज तक मुझसे तो ये अपनी रखवाली कराते रहे हैं। पर आज मुझ पर इतनी सख़्त मुसीबत पड़ी है, तो दोनों चुपचाप ताकते हुए मज़ा ले रहे हैं, कर कुछ नहीं रहे।'

'बन्दर का और पेड़ का तो हमेशा का साथ है', मुर्ग़े ने त्योरी डाले हुए मन में कुड़कुड़ाना शुरू किया—'मैं क्यों बेवकूफ़ बनकर इन दोनों के बीच फँसा हूँ? आज तक मैं तो इनकी हर मुसीबत को अपनी मुसीबत समझता आया हूँ। पर आज जब मेरी जान पर बनी है, तो दोनों को जैसे मेरा पता ही नहीं है। मज़े से बारिश में नहा रहे हैं और मेरी बात तक नहीं पूछ रहे।'

Hindi Premi

तीनों एक-दूसरे से इतने नाराज़ थे कि आपस में उन्होंने बात तक नहीं की। पेड़ चुपचाप अपने अमरूद नष्ट होते देखता रहा। बन्दर चुपचाप ठिठुरता रहा। मुर्ग़ा चुपचाप कुढ़ता रहा।

थोड़ी देर में ओले थम गए। बारिश भी रुक गई। पर तीनों में फिर भी कोई बात नहीं हुई। पेड़ को चिढ़ हो रही थी कि उसके इतनी बारिश झेलने के बाद भी बन्दर उस पर बोझ बनकर लटका है। मुर्ग़ा उसके तने से अपने पंख खुजला रहा है। बन्दर को गुस्सा आ रहा था कि उसे तो ठंड के मारे सन्निपात हुआ जा रहा है और पेड़ है कि अब भी उस पर बूँदें टपका रहा है। मुर्ग़ा है कि अब भी पंखों से छींटे ऊपर उड़ा रहा है। मुर्ग़े को कुढ़न हो रही थी कि पानी की मार से उसका तो जिस्म जवाब दे रहा है और पेड़ ने जरा-सी भी ज़मीन उसके लिए सूखी बनाकर नहीं रखा। बन्दर से इतना तक नहीं हो रहा कि उसे वहाँ से किसी और सुरक्षित जगह पर ही पहुँचा आए।

अगले रोज़ तक पेड़ की टहनियाँ सूख गईं। बन्दर का जिस्म सूख गया। मुर्ग़े के पंख सूख गए। मगर तीनों ने एक-दूसरे से फिर भी कोई बात नहीं की। पेड़ सोचता रहा—'अब आए इन दोनों पर कोई मुसीबत, तो देखूँगा अपने को कैसे बचाते हैं। मैं अब इनकी कोई मदद नहीं करने का।' बन्दर भी यही सोचता रहा। मुर्ग़ा भी यही सोचता रहा।

उसी रोज़ एक कसाई आया। वह मुर्ग़े की तरफ़ बढ़ा, तो पेड़ ने अमरूद नहीं टपकाए। बन्दर ने न मुर्ग़े को अपनी पीठ पर लिया, न ही कसाई का थैला उड़ाया। मुर्ग़ा कसाई के थैले में बन्द हो गया, तो बाक़ी दोनों ने सोचा—'अब पता चलेगा इसे जब कसाई इसकी गरदन काटेगा। बड़ा मुर्ग़ा बना फिरता था!' कसाई मुर्ग़े को लेकर चला गया।

अगले रोज़ एक चिड़ियाघर के लोग आए। उन्होंने बन्दर को पकड़ने के लिए जाल बिछाया, तो पेड़ चुपचाप दूसरी तरफ़ मुँह किए रहा। बन्दर उसकी ऊपर की टहनी की तरफ़ लपका, तो पेड़ ने वह टहनी ही टूट जाने दी। थोड़ी देर में बन्दर जाल में था और चिड़ियाघर के लोग उसे घसीटते हुए लिए जा रहे थे। पेड़ ने उसकी यह हालत देखी, तो मुसकरा दिया। मन में उसने सोचा, 'अब रात-दिन पिंजरे में रहना पड़ेगा, तो इसे होश आएगा। बड़ा बन्दर बना फिरता था!'

उससे अगले रोज़ बहुत-से लोगों ने पेड़ पर घेरा डाल लिया। पेड़ ने सहमकर देखा कि उनके पत्थरों और डंडों का कोई जवाब उसके पास नहीं है। ताड़-ताड़-ताड़—थोड़ी ही देर में उसके सारे अमरूद झाड़ लिए गए। फिर किसी ने कहा कि पुराना पेड़ है, इसे काटकर इसकी लकड़ी जलाने के काम ले आनी चाहिए। एक आदमी के पास कुल्हाड़ी थी। बस उसी समय पेड़ की जड़ पर कुल्हाड़ी चलने लगी। थोड़ी

Hindi Premi

देर में अमरूद टोकरियों में भरकर जा रहे थे और पेड़ की लकड़ियाँ लोगों के कन्धों पर लदकर।

एक गिलहरी वहीं रहती थी। मुर्ग़, बन्दर और पेड़ की आपसी योजना पर वह चकित हुआ करती थी। उसने मुर्ग़ और बन्दर के बाद पेड़ को इस हालत में जाते देखा, तो लम्बी उसाँस के साथ मन में बोली–'जा रहा है यह भी लोगों का चूल्हा जलाने। बड़े दोस्त बने फिरते थे!'

Hindi Premi

गिरगिट का सपना

एक गिरगिट था। अच्छा, मोटा-ताज़ा। काफ़ी हरे जंगल में रहता था। रहने के लिए एक घने पेड़ के नीचे अच्छी-सी जगह बना रखी थी उसने। खाने-पीने की कोई तकलीफ़ नहीं थी। आस-पास जीव-जन्तु बहुत मिल जाते थे। फिर भी वह उदास रहता था। उसका ख़याल था कि उसे गिरगिट की जगह कुछ और होना चाहिए था। और हर चीज़, हर जीव का अपना एक रंग था। पर उसका अपना कोई एक रंग था ही नहीं। थोड़ी देर पहले नीले थे, अब हरे हो गए। हरे से बैंजनी। बैंजनी से कत्थई। कत्थई से स्याह। यह भी कोई ज़िन्दगी थी? यह ठीक था कि इससे बचाव बहुत होता था। हर देखने वाले को धोखा दिया जा सकता था। ख़तरे के वक़्त जान बचाई जा सकती थी। शिकार की सुविधा भी इसी से थी। पर यह भी क्या कि अपनी कोई एक पहचान ही नहीं! सुबह उठे, तो कच्चे भुट्टे की तरह पीले और रात को सोए तो भुने शकरकंद की तरह काले! हर दो घंटे में खुद अपने ही लिए अजनबी!

उसे अपने सिवा हर एक से ईर्ष्या होती थी। पास के बिल में एक साँप था। एक बढ़िया लहरिया था उसकी खाल को देखकर मज़ा आ जाता था। फिर भी आसपास के सब चूहे-चिमगादड़ उससे खौफ़ खाते थे। वह भी उसे देखते ही दुम दबाकर भागता था। या मिट्टी के रंग में मिट्टी होकर पड़ रहता था। उसका ज़्यादातर मन यही करता था कि वह गिरगिट न होकर साँप होता, तो कितना अच्छा था! जब मन आया, पेट के बल रेंग लिए। जब मन आया, कुंडली मारी और फन उठाकर सीधे हो गए।

एक रात सोया, तो उसे ठीक से नींद नहीं आई। दो-चार कीड़े ज़्यादा निगल लेने से बदहजमी हो गई थी। नींद लाने के लिए वह कई तरह से सीधा-उलटा हुआ, पर नींद नहीं आई। आँखों को धोखा देने के लिए उसने रंग भी कई बदल लिए, पर कोई फ़ायदा नहीं हुआ। हलकी-सी ऊँघ आती, पर फिर वही बेचैनी। आख़िर वह पास की झाड़ी में जाकर नींद लाने की एक पत्ती निगल आया। उस पत्ती की सिफ़ारिश उसके एक और गिरगिट दोस्त ने की थी। पत्ती खाने की देर थी कि उसका सिर भारी होने लगा। लगने लगा कि उसका शरीर ज़मीन के अन्दर-अन्दर धँसता जा रहा है। थोड़ी देर में उसे महसूस हुआ जैसे किसी ने उसे ज़िन्दा ज़मीन में गाड़ दिया हो। वह बहुत

Hindi Premi

घबराया। उसने क्या किया कि दूसरे गिरगिट के कहने में आकर ख़ामख़ाह वह पत्ती खा ली। अब अगर वह ज़िंदगी-भर ज़मीन के अन्दर ही दफ़न रहा तो?

वह अपने को झटककर बाहर निकलने के लिए ज़ोर लगाने लगा। पहले तो उसे कामयाबी हासिल नहीं हुई। पर फिर लगा कि ऊपर की ज़मीन पोली हो गई है और वह बाहर निकल आता है। ज्यों ही उसका सिर बाहर निकला और बाहर की हवा अन्दर गई, उसने एक और ही अजूबा देखा। उसका सिर गिरगिट के सिर जैसा न होकर साँप के सिर जैसा था। वह पूरा ज़मीन से बाहर आ गया, पर साँप की तरह बल खाकर चलता हुआ। अपने शरीर पर नज़र डाली, तो वही लहरिया नज़र आया जो उस पास वाले साँप के बदन पर था। उसने कुंडली मारने की कोशिश की, तो कुंडली लग गई। फन उठाना चाहा, तो फन उठ गया। वह हैरान भी हुआ और ख़ुश भी। उसकी कामना पूरी हो गई थी। वह साँप बन गया था।

साँप बने हुए उसने आसपास के माहौल को देखा। सब चूहे-चिमगादड़ उससे खौफ़ खाए हुए थे। यहाँ तक कि सामने के पेड़ का गिरगिट भी डर के मारे जल्दी-जल्दी रंग बदल रहा था। वह रेंगता हुआ उस इलाके से दूसरे इलाके की तरफ़ बढ़ गया। नीचे से जो पत्थर-काँटे चुभे, उनकी उसने परवाह नहीं की। नया-नया साँप बना था, सो इन सब चीज़ों को नज़र-अन्दाज़ किया जा सकता था। पर थोड़ी दूर जाते-जाते सामने से एक नेवला उसे दबोचने के लिए लपका, तो उसने सतर्क होकर फन उठा लिया।

उस नेवले की शायद पड़ोस के साँप से पुरानी लड़ाई थी। साँप बने गिरगिट का मन हुआ कि वह जल्दी से रंग बदल ले, पर अब रंग कैसे बदल सकता था? अपनी लहरिया खाल की सारी ख़ूबसूरती उस वक़्त उसे एक शिकंजे की तरह लगी। नेवला फुदकता हुआ बहुत पास आ गया था। उसकी आँखें एक चुनौती के साथ चमक रही थीं। गिरगिट आख़िर था तो गिरगिट ही। वह सामना करने की जगह एक पेड़ के पीछे जा छिपा। उसकी आँखों में नेवले का रंग और आकार बसा था। कितना अच्छा होता अगर वह साँप न बनकर नेवला बन गया होता! तब साँप भी उससे डरकर भागता।

तभी उसका सिर फिर भारी होने लगा। नींद की पत्ती अपना रंग दिखा रही थी। थोड़ी देर में उसने पाया कि जिस्म में हवा भर जाने से वह काफ़ी फूल गया है। ऊपर तो गरदन निकल आई है और पीछे को झबरैली पूँछ। जब वह अपने को झटककर आगे बढ़ा, तो लहरिया साँप नेवले में बदल चुका था।

उसने आसपास नज़र दौड़ाना शुरू किया कि अब कोई साँप नज़र आए, तो उसे वह लपक ले। पर साँप वहाँ था ही नहीं। कोई साँप निकलकर आए, इसके लिए उसने ऐसे ही उछलना-कूदना शुरू किया। कभी झाड़ियों में जाता, कभी बाहर आता। कभी सिर से ज़मीन को खोदने की कोशिश करता। एक बार जो वह ज़ोर से उछला

Hindi Premi

तो पेड़ की टहनी पर टँग गया। टहनी का काँटा ऐसे जिस्म में गड़ गया कि न अब उछलते बने, न नीचे आते। आख़िर जब बहुत परेशान हो गया, तो वह मनाने लगा कि क्यों उसने नेवला बनना चाहा। इससे तो अच्छा था कि पेड़ की टहनी बन गया होता। तब न रेंगने की ज़रूरत पड़ती, न उछलने-कूदने की। बस अपनी जगह उगे हैं और आराम से हवा में हिल रहे हैं!

नींद का एक और झोंका आया और उसने पाया कि सचमुच अब यह नेवला नहीं रहा, पेड़ की टहनी बन गया है। उसका मन मस्ती से भर गया। नीचे की ज़मीन से अब उसे कोई वास्ता नहीं था। वह ज़िंदगी भर ऊपर-ही-ऊपर झूलता रह सकता था। उसे यह भी लगा जैसे उसके अन्दर से कुछ पत्तियाँ फूटने वाली हों, उसने सोचा कि अगर उसमें फूल भी निकलेगा, तो उसका क्या रंग होगा? और क्या वह अपनी मर्ज़ी से फूल का रंग बदल सकेगा?

पर तभी दो-तीन कौवे उस पर आ बैठे। एक ने उस पर बींठ कर दी, दूसरे ने उसे चोंच से कुरेदना शुरू किया। उसे बहुत तकलीफ़ हुई। यह अच्छा था कि कौवे उससे अपनी मनमानी किए जा रहे हैं और वह जवाब में कुछ कर ही नहीं सकता! उसे फिर अपनी ग़लती के लिए पश्चात्ताप हुआ। अगर वह टहनी की जगह कौवा बना होता, तो कितना अच्छा था! जब चाहो, जिस टहनी पर जा बैठो, और जब चाहो, हवा में उड़ान भरने लगो!

वह अभी सोच ही रहा था कि कौवे उड़ खड़े हुए। पर उसने हैरान होकर देखा कि कौवों के साथ वह भी उसी तरह उड़ खड़ा हुआ है। अब ज़मीन के साथ आसमान भी उसके नीचे था। और वह ऊपर-ऊपर उड़ा जा रहा था। उसके पंख बहुत चमकीले थे। जब चाहो उन्हें झपकाने लगो, जब चाहो सीधे कर लो। उसने आसमान में कई चक्कर लगाए और ख़ूब काँय-काँय की। पर तभी नज़र पड़ी, नीचे कुछ लड़कों पर जो गुलेल हाथ में लिए उसका निशाना बना रहे थे। पास उड़ता हुआ एक कौवा निशाना बनकर नीचे गिर चुका था। उसने डरकर आँखें मूँद लीं। मन-ही-मन सोचा कि कितना अच्छा होता अगर वह कौवा न बनकर गिरगिट ही बना रहता! तब आसमान के रंग में अपना रंग मिला लेता और इस तरह अपनी जान न गँवानी पड़ती।

पर काफ़ी देर बाद भी गुलेल का पत्थर उसे नहीं लगा, तो उसने आँखें खोल लीं। वह अपनी उसी जगह पर था जहाँ सोया था। पंख-वंख गायब हो गए थे और यह वही गिरगिट का गिरगिट था। वही चूहे-चिमगादड़ आसपास मँडरा रहे थे और साँप अपने बिल से बाहर आ रहा था। उसने जल्दी से रंग बदला और दौड़कर उस गिरगिट की तलाश में हो लिया जिसने उसे नींद की पत्ती खाने की सलाह दी थी। मन में शुक्र भी मनाया कि अच्छा है वह गिरगिट की जगह और कुछ नहीं हुआ, वरना कैसे उस गलत सलाह देनेवाले गिरगिट को गिरगिटी भाषा में मज़ा चखा पाता!

Hindi Premi

पिता-पुत्री संवाद

पिता – उम्र पैंतालीस साल
पुत्री – उम्र तीन साल
स्थान – डायनिंग रूम
समय – साढ़े ग्यारह-बारह बजे दोपहर

पुत्री : अब हम खाना खाएँगे।
पिता : ठीक है। मगर तू बैठेगी कहाँ?
पुत्री : इस कुर्सी पर।
पिता : ये तो मेरी कुर्सी है। तू अपनी छोटी कुर्सी पर क्यों नहीं बैठती?
पुत्री : वो टूट गई।
पिता : टूट कहाँ गई। वो तो साबुत है।
पुत्री : नहीं, मैं यहीं पर बैठूँगी। ये मेरी है।
पिता : ये तो बड़ों की कुर्सी है। पापा अपने लिए लाया है।
पुत्री : नईं, ये मेरी है। मैं बैठूँगी।
पिता : ठीक है। इसके पैसे दे।
पुत्री : *(हतप्रभ! चुप)*
पिता : तेरे को पैसे कौन देता है?
पुत्री : अम्मा।
पिता : अच्छा। अम्मा से पैसे ले के आ।
पुत्री : नईं, पैसे गमला देता है।
पिता : गमले से लेकर आ।
पुत्री : गमला टूट गया।
पिता : फिर कौन देगा पैसे?
पुत्री : बटुआ।
पिता : जा बटुए से लेकर आ।

Hindi Premi

पुत्री : बटुआ खो गया।
पिता : और कौन देता है पैसे?
पुत्री : बत्ती देती है।
पिता : तो बत्ती से लेकर आ।
पुत्री : पैसे नहीं हैं।
पिता : तो कुर्सी भी नहीं है।
पुत्री : नहीं। मैं यहीं बैठूँगी। ये कुर्सी मेरी है।
पिता : कुर्सी चाहिए तो पैसे ला। किससे लाएगी।
पुत्री : अम्मा से।
पिता : तो अम्मा के पास नहीं है। और किससे लाएगी?
पुत्री : मम्मी से।
पिता : मम्मी के पैसे खतम हो गए। अब कहाँ से लाएगी?
पुत्री : अपने पास से।
पिता : कपड़ा तो पहना नहीं हुआ। पैसे कहाँ से लाएगी?
पुत्री : बाथरूम से।
पिता : तुझे नहलाता कौन है?
पुत्री : आंटी।
पिता : आंटी का नाम क्या है?
पुत्री : गीता...नईं...मम्मी...नईं अनीता।
पिता : और अनीता के अंकल का क्या नाम है?
पुत्री : पता नईं। नईं...मोहन राकेश।
पिता : और तेरा नाम क्या है?
पुत्री : पुर्वा।
पिता : अच्छा, आंटी का नाम है अनीता और अंकल का नाम है मोहन राकेश और तू है पुर्वा तो पुर्वा मोहन राकेश की क्या लगती है?
पुत्री : *(चुप)*।
पिता : बोल। घाटी कहीं की!
पुत्री : *(चुप)*
पिता : अच्छा बता, मोहन राकेश तेरा क्या है?
पुत्री : *(चुप)*।
पिता : जा, मम्मी से पूछ के आ।
पुत्री : *(पूछकर)* पापा।
पिता : शाबाश, मोहन राकेश तेरा क्या लगता है?

Hindi Premi

पुत्री : पापा।

पिता : शाबाश। और पैसे कौन देता है?

पुत्री : मैं।

पिता : क्या? और ये कुर्सी किसकी है?

पुत्री : मेरी!

पिता : चल बैठ और खाना खा—चुपचाप।

अम्मा के ज़ोर से हँसने की आवाज़।

Hindi Premi

Hindi Premi

पूरी विधाएँ : अधूरी रचनाएँ

Hindi Premi

Hindi Premi

शय्या

दूसरा अंक

प्रथम दृश्य

शयति का राजप्रासाद : दधीच का शयनागार। राजकुमार दधीच शय्या पर बैठे हैं। उषा की सुनहली किरणों का आलोक राजकुमार के चेहरे पर पड़ रहा है जो अत्यन्त विक्षुब्ध दीख पड़ता है। एक दासी जलपात्र हाथ में लिए किंकर्त्तव्यमूढ़-सी खड़ी है।

दासी : *(धीरे से)* युवराज की जय! यह जल ले लीजिए युवराज! *(दधीच चुप रहता है)*

दासी : *(फिर धीरे से)* युवराज के आचमन का समय...

दधीच : ऊँह!

दासी कुछ क्षण मौन रहती है—फिर साहस करके राजकुमार के बिलकुल सामने आ जाती है।

दासी : आज युवराज इतने... *(दधीच चौंककर देखता है)*

दधीच : तुम यहाँ क्यों खड़ी हो दासी?

दासी : आचमन...युवराज!

दधीच : धृष्टता न करो दासी! जाओ।

दासी धीरे-धीरे पीछे फिरकर देखती हुई किसी तरह निकल जाती है। दधीच उठकर टहलने लगता है। फिर अपनी शय्या पर बैठ दोनों हाथों में सिर धर देता है। विकुक्षि शयनागार में प्रवेश करता है। वह धीरे-धीरे दधीच के पास आकर खड़ा हो जाता है। दधीच को कुछ भी पता नहीं चलता।

विकुक्षि : कुमार! *(दधीच एकदम विकुक्षि को देखकर कुछ लज्जित-सा हो उठकर खड़ा हो जाता है)*

Hindi Premi

विकुक्षि : आचमन नहीं किया कुमार? यह लाल-लाल आँखें, रूखा-सा मुख-मंडल, अस्त-व्यस्त केश! जिस भाल पर सदा प्रसन्नता खेलती है, उस पर सिकुड़न क्यों? सदा उल्लासपूर्ण रहनेवाले हृदय में आकुलता क्यों कुमार?

दधीच : मैंने स्वप्न देखा है।

विकुक्षि : स्वप्न और उस पर विश्वास? यदि उसमें कुछ भी यथार्थता होती तो फिर वह स्वप्न ही क्यों होता? स्वप्न एक मायाजाल है जिसमें फँसना धीर पुरुषों का काम नहीं।

दधीच : नहीं आर्य! स्वप्न अपने मन का विभ्रम है। जिन सच्ची घटनाओं को हम आँखों से नहीं देख पाते, उन्हें हमारा मन देखता है, और वह स्वप्न के रूप में हमारी आँखों के सामने आ जाती हैं। अविश्वास की ओट में मन को धैर्य बँधाना आत्म-प्रतारणा है। और यह मनुष्य की सबसे बड़ी कमज़ोरी है।

विकुक्षि : वृथा आशंका भी कई बार स्वप्न बन जाती है। सभी स्वप्न तो सच्चे नहीं हो सकते कुमार!

दधीच : पर यह स्वप्न!—ओह! यह किसी आशंका का फल नहीं आर्य!

विकुक्षि : स्वप्न ने कुमार को विक्षुब्ध कर दिया है। क्या मैं वह स्वप्न सुन सकता हूँ?

दधीच* :

•

विकुक्षि : यह एक असम्भव घटना है कुमार! इस स्वप्न का तो कोई भी आधार नहीं।

दधीच : आधार? पर मेरा चित्त शान्त नहीं होता आर्य!

सुनन्दा का प्रवेश। विकुक्षि और दधीच दोनों उन्हें प्रणाम करते हैं।

सुनन्दा : आज आचमन नहीं हुआ कुमार? स्वास्थ्य तो ठीक है? तुम्हारे मुखमंडल पर अवसाद की छाया क्यों?

दधीच : नहीं माँ! दधीच सदैव की भाँति स्वस्थ और प्रसन्न है।

सुनन्दा : प्रसन्न ही रहो कुमार। यह आँखें सदा तुम्हें प्रसन्न देखकर ठंडी रहें। आज माँ के लिए आह्लाद का दिन था। तुम्हारे तिलक के

---

* स्वप्न के लिए स्थान छोड़ दिया गया है। —सं.

Hindi Premi

लिए सन्देशा आया है कुमार! महाराज स्वयं प्रसन्नता के उद्रेक में तुम्हारे तक आने का विचार रखते हैं।

दधीच : तिलक? मेरे लिए माँ? नहीं माँ!

सुनन्दा : *(मुस्कराकर)* मैं जानती हूँ मेरा दधीच संकोच और लज्जा का प्रतिबिम्ब है। और मैं यह भी जानती हूँ कि वह माँ की कामना को नहीं टालता।

दधीच : संकोच नहीं माँ! तपोवन की मृदुशीतल पवन, सच्छाय तरुवृन्द, और कलकल करते झरने, यही तो मेरे लिए लक्ष्य हैं! एक तपस्वी के बेटे के लिए राजसी ठाठ और राजसी विवाह की चर्चा कैसी? इस वातावरण में तुम्हारे प्यार और नानाजी के स्नेह के रहते हुए भी एक अभाव का अनुभव मैं करता हूँ। मेरा हृदय व्याकुल रहता है। यज्ञधूम के साथ उड़ने के लिए, वेदध्वनि में खो जाने के लिए मुझे तपोवन में भेज दो माँ! वहाँ पिताजी के दर्शन भी होंगे, शान्ति भी मिलेगी।

विकुक्षि : कुमार उदास ही रहते हैं। राज्य कार्य में प्रारम्भ से ही यह रुचि नहीं रखते। पर आज व्याकुलता बढ़ी है महा देवि!

सुनन्दा : शैशव के भोलेपन को भुला दो कुमार! उस भूले से राग की लय को छोड़ दो। यह शरीर कठिन तपस्या के योग्य नहीं। माँ के जीवन की एक साध तो पूरी हो जाने दो!

दधीच : माँ, जो राग श्वासों पर पलता है, वह भी अपने शैशव के बाद यौवन को देखता है। पुत्र की परितुष्टि ही तो माँ के जीवन की सबसे बड़ी साध होती है माँ! माँ पुत्र को कर्त्तव्य-पथ से च्युत नहीं होने देती। पिता के पद-चिह्नों पर चलना पुत्र का कर्त्तव्य है। जो जीवन बना ही कष्ट सहने के लिए हो, वह कोमल सेजों पर बीत कैसे सकेगा।

सुनन्दा : मुझे भुलावा मत दो कुमार! जो जीवन ही छलावा बनकर रह गया, उसमें सन्तोष की झलक का स्वप्न देखना भी पाप है शायद! माँ की साध क्या होती है, यह तुम उसे नहीं समझा सकते।

Hindi Premi

मिस्टर भाटिया

हलके वाद्य-संगीत के अनन्तर कहानी सुनानेवाले के शब्द :

—मेरे दोस्त मिस्टर भाटिया का नाम उसके नीले रंग के लैटरपैड पर इस तरह छपा है : के.सी. भाटिया, बी.एस.सी./एल.एल.बी.। डिग्रियों के अक्षर ब्रेकेट्स में दिए गए हैं, क्योंकि दो-दो साल साइंस और लॉ की श्रेणियों में बिताकर आवश्यक योग्यता तो उसने प्राप्त कर ली थी पर दुर्भाग्यवश एक अक्षर भी पास होनेवाले विद्यार्थियों की सूची में उसका नाम नहीं निकला।

ख़ैर जिन दिनों की यह बात है उन दिनों भाटिया और मैं दोनों ही बेकार थे—फ़र्क़ सिर्फ़ इतना था कि मैं काम की तलाश कर रहा था और भाटिया काम की तलाश छोड़कर विश्राम कर रहा था। खुशक़िस्मती से उसे कालवा देवी रोड पर एक कमरा मिला हुआ था और उसे उस कमरे में साथ रहने के लिए कोई-न-कोई पेइंग गेस्ट मिल जाता था। बस उसी पैसे से वह अपना गुज़ारा चला लेता था। मेरा भी उससे परिचय उसी नाते हुआ था। बेकारी के दिनों में वह मेरा मेज़बान था और मैं उसका मेहमान, हालाँकि ज़ेबें दोनों की ख़ाली रहती थीं। मेरे ऊपर उसका दो महीने का किराया निकलता था और उस पर मालिक मकान का छह महीने का किराया निकलता था। ग़नीमत यह थी कि मेरे पास विश्व साहित्य की कुछ चुनी हुई मोटी-मोटी पुस्तकें रखी थीं जिन्हें बेचकर हम लोग आलू, टमाटर और चुकन्दर ले आते थे और उबालकर मक्की की रोटी के साथ खा लिया करते थे। मगर इन हालात में भी भाटिया हर शनिवार को रेस ज़रूर जाता था। इसके लिए कभी वह इस व्यक्ति से उधार लेता कभी उस व्यक्ति से—यहाँ तक कि कोई ऐसा व्यक्ति नहीं बचा जिससे उधार लिया जा सके। घर में जो भी आता था बही-खाता लिए हुए ही आता था। धोबी ने पिछली धुलाई के कपड़े अपने हिसाब में जमा कर लिए थे। अख़बारवाला हमें कोसता हुआ अपने अख़बारों की रद्दी उठाकर ले गया था। एक चायवाला था जो शराफ़त से हमें चाय उधार पिलाए जा रहा था। उसे शायद भाटिया की बात पर विश्वास था कि किसी-न-किसी दिन वह रेस में हज़ार-दो हज़ार मार लाएगा और बस फिर क्या है! एक-एक के चार-चार वसूल हो जाएँगे। पर

Hindi Premi

क़िस्मत की मार ऐसी थी कि भाटिया जिस घोड़े पर रुपया लगाता वही दग़ा दे जाता। आख़िर नौबत यहाँ तक आ गई कि वे सब किताबें भी एक-एक करके चुक गईं, जिन्हें बेचकर टमाटर और चुकन्दर ख़रीदे जा सकते थे। और ऐसे में ही एक सुबह...

भाटिया : अब तुम जैसे नास्तिक को कोई क्या समझाए? ठहरो, अभी बाहर आकर बतलाता हूँ। *(क्षणभर के व्यवधान के अनन्तर)* उफ़ ओह!

मोहन : क्या बात है?

भाटिया : बात क्या है? कमबख़्त एक अदद बनियान है, उसमें भी सीने के पास इतना बड़ा सूराख़ हो गया है!

मोहन : अरे, ग़म नहीं करो। जब तक क़मीज़ सलामत है, बनियान में सौ सूराख़ होते रहें।

भाटिया : *(गुसलख़ाने का दरवाज़ा खोलकर बाहर आता हुआ)* वह तो ठीक है, पर क़मीज़ भी तो कमबख़्त फटी हुई है। यह देखो यहाँ कुहनी के पास से और यहाँ कन्धे के पास से। और तुम कहते हो कि सिर्फ़ छह आने की तजवीज़ करो।

मोहन : तजवीज़, तुम छह हज़ार की करो। मैं तो सिर्फ़ यह कहता हूँ कि उस छह हज़ार में से मुझे आज के लिए छह आने निकालकर दे दो, और बाक़ी अपने पास रखो।...अरे पतलून पहन रहे हो? पतलून में बटन नहीं है।

भाटिया : क्यों, इसके बटन क्या हुए?

मोहन : इसके बटन मैंने कल उतारकर अपनी पतलून में लगा लिए थे। तुम्हें ज़रूरत हो तो आज तुम उतारकर अपनी पतलून को लगा लो। मैं पाजामा पहन लूँगा।

भाटिया : आदमी तुम वाक़ई तारीफ़ के काबिल हो। कहाँ है तुम्हारी पतलून?

मोहन : वह सामने टँगी है।

भाटिया : सामने टँगी तो है, पर घर में कैंची भी तो नहीं है। ये बटन उतरेंगे किस तरह?

मोहन : परमात्मा ने दाँत किस लिए दिए हैं?

भाटिया : *(जैसे अनजान स्वर में)* हूँ! इसीलिए दिए हैं! *(फिर तीखे स्वर में)* जैसे दाँत नहीं दरान्ती है!

Hindi Premi

मोहन : अरे, चीख़ते क्यों हो? भले आदमी, जब घर में ख़ाने को न हो तो दाँतों का कोई-न-कोई इस्तेमाल तो होना ही चाहिए।...यह बात! बस इसी तरह दूसरे भी उतार लो।

भाटिया : *(मुँह में बटन दबाए हुए)* यह तो मैं अब उतार ही लूँगा। मुँह से बटन निकालकर—पर यार मेरे, मैं सोचता हूँ कि आज पतलून पहनकर ही क्या हो जाएगा? रेस पर तो जा नहीं सकते।

मोहन : नहीं, जा सकते हो, बशर्ते के पतलून और क़मीज़ दोनों ही बेच दो।

भाटिया : ?

भाटिया : मज़ाक नहीं, आज मैंने वह घोड़ा निकाला है, वह घोड़ा निकाला है कि अगर उस पर दस रुपया लगाया जाए तो तीन सौ रुपया मिलेगा, अगर सौ रुपया लगाया जाए तो तीन हज़ार रुपया मिलेगा और अगर...

मोहन : बस-बस ज़्यादा आगे नहीं बढ़ो, नहीं तो मारे खुशी के हार्ट फ़ेल हो जाएगा।

भाटिया : तुम देख लेना, आज दूसरी रेस ग़िज़ाला जीतेगा। सब अख़बारों का कहना है कि यह रेस मेघपुष्प जीतेगा। मगर तुम मेरी बात लिखकर ज़ेब में रख लो और वक़्त आने पर पढ़ लेना कि यह रेस ग़िज़ाला के सिवा कोई और घोड़ा जीत ही नहीं सकता। आज पहली बार ज़िन्दगी में मालदार बनने का मौका आया है।

मोहन : मगर मालदार बनने से पहले जो माल चाहिए, वह कहाँ से आएगा?

भाटिया : *(ठंडी साँस लेकर)* उसी की तो कमी है।

मोहन : तो पहले उस कमी को पूरा कर लो, फिर आगे की बात सोचना।

ज़ीने पर पैरों की आहट

भाटिया : कोई आ रहा है। हो सकता है कि यही कोई वसीला बन जाए!

मोहन : हाँ, सौ रुपए की थैली लेकर ख़लक से फ़रिश्ता आया होगा। *(बाहर से आवाज़)* भाटिया साहब!

भाटिया : *(दबे स्वर में)* धत्तेरे की!

मोहन : *(वैसे ही स्वर में)* कौन है?

भाटिया : *(उसी तरह)* मकान मालिक का मुंशी है। *(बाहर से मुंशी की आवाज़)* क्या हो रहा है भाटिया साहब? ज़रा दरवाज़ा तो खोलो।

Hindi Premi

भाटिया : *(दरवाज़ा खोलते हुए)* आओ, आओ, मुंशी! क्या बात है? इस बार बहुत जल्दी फेरा कर लिया?

मुंशी : बहुत जल्दी? भाटिया साहब, सेठ चार बार भेजता है तो मैं एक बार आपके यहाँ आता हूँ। शरबत-पानी का लिहाज़ मार जाता है, वर्ना सेठ तो कहता है कि वहाँ धरना देकर बैठ जाओ और जब तक किराया वसूल न हो जाए वहाँ से हिलो नहीं। अबकी बार तो वह बेदख़ली कराने की कह रहा था।

भाटिया : सेठ का फ़र्ज़ है कहना और तुम्हारा फ़र्ज़ है सुनना। हमारे साथ तो तुम्हारे दोस्ताना ताल्लुक़ात हैं। मैंने उस दिन तुम्हारे लिए बहुत बढ़िया छड़ी लाकर रखी थी...

मुंशी : अच्छा? लाओ, देखें।

भाटिया : कल एक दोस्त उठाकर ले गया है। इतनी बढ़िया छड़ी थी, इतनी बढ़िया छड़ी थी कि क्या कहूँ...

मुंशी : *(बात बीच में काटकर)* हाँ तो भाटिया साहब, पहले किराए की बात हो जाए। पिछले छह महीने का किराया अदा नहीं हुआ और सातवाँ महीना भी सत्रह दिन जा चुका है।

भाटिया : मैंने उससे कहा भी कि कमबख़्त यह छड़ी रहने दे, यह मैं मुंशी के लिए लाया हूँ, मगर उसने मेरी सुनी ही नहीं। ऐसी अच्छी अख़रोट की लकड़ी की छड़ी थी...

मुंशी : अब सेठ एक दिन की मुहलत देने के लिए भी तैयार नहीं है। वह अख़रोट की लकड़ी की छड़ी तुम्हारे हाथ से लेकर उसी की मदद से तुम्हें घर के बाहर कर देगा।

भाटिया : तब तो अच्छा हुआ वह ले गया। नहीं तो कहीं...

मोहन : देखो मुंशी, किराया हमारे पास नहीं है और न जल्द होने की उम्मीद ही है, इसलिए...

भाटिया : अरे उम्मीद क्यों नहीं है? पूरी उम्मीद है। आज शाम तक अपने पास पैसे-ही-पैसे हो जाएँगे। मुंशी, तुम कल शाम किसी वक़्त आ जाओ। तुम्हारा सातों महीनों का किराया भी अदा कर दूँगा और इनाम के तौर पर तुम्हें अख़रोट की छड़ी की जगह दस रुपए का नोट दूँगा। मंजूर?

मुंशी : *(कुछ हिचकिचाहट के साथ)* तुम कहते हो तो मंजूर ही है। मगर कल मैं ख़ाली हाथ नहीं जाऊँगा।

भाटिया : तुम चाहोगे भी तो मैं तुम्हें कल ख़ाली हाथ नहीं जाने दूँगा।

Hindi Premi

मुंशी, तुमने अभी भाटिया का दिल नहीं देखा है!...ख़ैर कोई बात नहीं। कल देख लेना।

मुंशी : अच्छा, इस वक़्त मैं चलता हूँ। कल शाम को सात-साढ़े सात बजे के क़रीब आऊँगा।

भाटिया : हाँ, ठीक वक़्त पर आ जाना। और सुनो...

मुंशी : क्या बात है?

भाटिया : तुम्हारे पास टूटे हुए छह आने होंगे?

मुंशी : क्यों?

भाटिया : मेरे दोस्त को चाहिएँ। कल लौटा दूँगा।

मुंशी : *(कुछ हिचकिचाहट के साथ)* देखता हूँ। अच्छा, यह लो।

भाटिया : वाह मुंशी, वाह! आदमी तुम बहुत भले हो!

मुंशी : *(चलते हुए)* यह न हो कि कल मैं आऊँ और तुम घर पर न मिलो।

भाटिया : अरे, यह कैसे हो सकता है मुंशी? आख़िर रहना तो इसी घर में है। दरिया में रहकर भला...

मुंशी : दरिया में क्या?

भाटिया : कुछ नहीं। मैं तुम्हारी दरियादिली की बात सोच रहा था। अच्छा नमस्ते।

मुंशी : नमस्ते। भूलना नहीं मेरे दस रुपए छह आने हुए।

भाटिया : यह भी कोई भूलने की बात है मुंशी?

मुंशी के सीढ़ियाँ उतरने और साथ ही किसी के सीढ़ियाँ चढ़ने का शब्द

मोहन : लो, एक बला टली नहीं कि दूसरी आ मौजूद हुई।

भाटिया : अरे चिन्ता नहीं करो। एक बला आई तो छह आने दे गई। अब दूसरी जाने सौ रुपया ही झाड़ दे।

(भारी गले की आवाज़-लहजा सिंधी) भाटिया!

भाटिया : *(निराशापूर्ण स्वर में)* ओ हो!

मोहन : *(दबे स्वर में)* गोपूमल लगता है।

भाटिया : *(वैसे ही स्वर में)* हाँ, वही है। इसे भी अपना पुराना क़र्ज़ा आज ही याद आया। *(फिर आवाज़) (भाटिया, वहीं बैठा है?)*

भाटिया : *(सिंधी लहज़े की नकल करते हुए)* हाँ वड़ी, आजा अन्दर गोपूमल! दरवाज़ा खुला है वड़ी!

गोपूमल : *(अन्दर आकर)* क्या बैठा करता है?

Hindi Premi

भाटिया : कुछ नहीं बैठा करता। सिर्फ़ सोच रहा था कि अगर आज गोपूमल आ जाए और आकर अपने क़र्ज़े की बात चलाए तो उसे क्या जवाब देना चाहिए?

गोपूमल : तो क्या सोचा?

भाटिया : कुछ नहीं। अभी सोच ही रहा था कि तुम आ गए।

गोपूमल : तो अब सोचना बन्द कर दो। आज मैं तुम्हारी सब मुसीबतों का एक हल लेकर आया हूँ। तुझे आँख मूँदकर बैठे-बैठे तीन हज़ार रुपया मिल जाएगा।

भाटिया : *(ज़रा हैरानी से)* वाक़ई?...कितनी देर के लिए आँख मूँदनी थी?

गोपूमल : अरे आँख नहीं मूँदनी होगी, सिर्फ़ शादी करनी होगी।

भाटिया : ओ! सिर्फ़ शादी!...यानी के ज़िन्दगी भर के लिए आँख मूँदने की बात है!

गोपूमल : सोच ले। लड़की मिलेगी, गहना कपड़ा मिलेगा और नक़द तीन हज़ार रुपया मिलेगा। कहे तो मैं आज ही बात पक्की कर दूँ। दस दिन में ब्याह हो जाएगा।

भाटिया : गोपूमल, एक बात पूछूँ?

गोपूमल : पूछ।

भाटिया : तू मुझे समझता क्या है?

गोपूमल : कम-अज़-कम अक्लमन्द नहीं समझता।

भाटिया : गोपूमल, मैं शादी तब करूँगा जब तीन हज़ार रुपया मेरी महीने की आमदनी होगी। मेरा अपना बँगला होगा और अपनी कार होगी। एक गोपूमल मेरे आगे चलेगा और एक पीछे चलेगा।

गोपूमल : यानी के ज़िन्दगी भर तेरी शादी नहीं होगी।

भाटिया : कौन कह सकता है? न हो तो ज़िन्दगी भर न हो। और होने को आए तो आज शाम को ही हो जाए!

गोपूमल : आज शाम को? *(हँसकर)* वाक़ई तू सोचता ख़ूब है?

भाटिया : यह सिर्फ़ सोचने की ही बात नहीं है गोपूमल! तू मेरे ज़ख़्म को न छेड़। तुझे पता नहीं कि सिर्फ़ सौ रुपया पास में न होने से आज मैं नक़द तीन हज़ार रुपए का नुक़सान उठा रहा रहा हूँ।

गोपूमल : मतलब?

भाटिया : मतलब यह कि आज दूसरी रेस ग़िज़ाला जीत रहा है और उस पर खेलनेवालों को दस रुपए के तीन सौ मिलेंगे। तू आज अगर मुझे सौ रुपया दे दे तो शाम तक तेरा पिछला क़र्ज़ा भी उतर

Hindi Premi

जाएगा और साथ एक हज़ार रुपया तुझ पर तेरे हिस्से के तौर पर दे दूँगा। अब देख टाल-मटोल नहीं कर और रुपया दे दे। ऐसा अच्छा मौक़ा फिर हाथ नहीं आएगा।

गोपूमल : हाँ, ऐसे ही अच्छे मौक़ों पर तो मैंने पहले तुझे रुपया दिया है!

भाटिया : ठीक है। मुझे पहले ही पता था कि तू नहीं देगा। जब-जब हारने का मौक़ा था तब-तब रुपया मिलता रहा। अब जीतने का मौक़ा आया है तो बस घर बैठे हाथ मलते रह जाएँगे। गोपूमल कल जब तू अख़बार में पढ़ेगा कि दूसरी रेस ग़िज़ाला ने जीत ली तो बैठकर मेरी तरह सिर घुनेगा। मैं एक हज़ार रुपया तेरा हिस्सा रख रहा हूँ तो किसी बूते पर ही रख रहा हूँ। अब भी मान जा, अभी मौक़ा है।

गोपूमल : *(कुछ अनिश्चित स्वर में)* और अगर इस बार भी तू हार गया?

भाटिया : तू हारने के सिवा दूसरी बात तो सोच ही नहीं सकता। मैं जब तुझसे कह रहा हूँ तो तुझे कुछ तो विश्वास होना चाहिए!...तो फिर बता बनी सलाह कि नहीं?

गोपूमल : सलाह बनने का क्या है? रुपया तो मेरे पास है पर तुझे देते डर लगता है।

भाटिया : तो रहने दे। मैं किसी और से ले लूँगा। इतने हिस्से पर तो लोग मिन्नत से रुपया देते हैं। तू है कि आसमान पर चढ़ा जा रहा है।

गोपूमल : *(खिसियानी-सी हँसी हँसकर)* अरे तो अब तू भी तो आसमान पर नहीं चढ़। पूरे सौ दे दूँ?

भाटिया : सौ नहीं, एक सौ दस। वहाँ जाने के लिए भी तो रुपए चाहिएँ।

गोपूमल : अच्छा ले ले। एक बार और सही। जहाँ इतने गए हैं वहाँ...

भाटिया : बस-बस अब अगली बात मुँह से नहीं निकालना। यह बता कल तू मुझे किस वक़्त मिल रहा है?

गोपूमल : रात को ही न आ जाऊँ?

भाटिया : ऊँ हूँ। रात को हम ताज-वाज में दावत उड़ा रहे होंगे या कहीं कैब्रे में बैठे होंगे, घर पर थोड़े ही होंगे। तू कल किसी वक़्त मिलना।

गोपूमल : कल इतवार है और सुबह से मुझे दो-तीन आसामियों से घर पर मिलना है।

भाटिया : तो कल शाम को सही। मैं सात सवा सात बजे घर पर मिलूँगा। अच्छा? बाई बाई!

गोपूमल : *(चलता हुआ)* मैं सात से पहले ही आने की कोशिश करूँगा।

Hindi Premi

भाटिया : हाँ-हाँ जब चाहे आ जाना!...लो मोहन! ये छह आने तुम्हारे और एक सौ दस रुपए हमारे। फिर नहीं कहना कि कोई तजवीज़ नहीं की।

भाटिया : देखा महालक्ष्मी का रेसकोर्स यह वह जगह है जहाँ दुनिया की हर चीज़ रंगीन नज़र आती है। बम्बई की सारी ख़ूबसूरती और ताज़गी तुम सनीचर के दिन महालक्ष्मी के रेसकोर्स में देख सकते हो।...क्या बात है? इस तरह गुमसुम क्यों चल रहे हो?

मोहन : चुपचाप चलते चलो। खुद तो पतलून क़मीज़ डाट आए हो। यहाँ इस पाजामे की वजह से मारे शर्म के गड़े जा रहे हैं।

भाटिया : अरे शर्म और रेसकोर्स में? तुम भी हद करते हो। यहाँ आनेवाले लोगों की ख़ासियत यह है कि वे शर्म से आँख झुकाना नहीं जानते। तुम यह झूठी इज़्ज़त का ख़याल दिल से निकाल दो और आसपास की दुनिया को देखते चलो। मेरा ख़याल है कि पहली रेस अभी-अभी समाप्त हुई है। इधर आ जाओ, भीड़ से ज़रा हटकर चलें। *(सहसा एक व्यक्ति से टकराकर)* ओफ़ ओह! रेसकोर्स में आदमी लाख बचने की कोशिश करे मगर किसी-न-किसी से टक्कर हो ही जाती है। माफ़ कीजिएगा भाई साहब!

नया व्यक्ति : नहीं, माफ़ी मुझे माँगनी चाहिए। क़सूर मेरा है।

भाटिया : ख़ैर यूँ कह लीजिए कि क़सूर दोनों का है। मेरा नाम भाटिया है, के.सी. भाटिया। आपका नाम...?

नया व्यक्ति : आई एम कैप्टेन केशव कपूर। बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर।

भाटिया : ये मेरे दोस्त हैं मिस्टर मोहन राकेश।

कैप्टेन : हऊ डु यू डू?

मोहन : हऊ डु यू डू?

कैप्टेन : आप लोग पहली रेस में किस घोड़े को बैक कर रहे थे?

भाटिया : हम लोग पहली रेस के लिए ज़रा लेट हो गए थे। आप किसे बैक कर रहे थे?

कैप्टेन : द विनर। मुझे दरअसल पहले से टिप मिल गया था कि पहली रेस रंगाराव जीत रहा है। मैंने उस पर दो सौ रुपया लगाया था और अब सात सौ वसूल करके आ रहा हूँ। दो-एक जौकी अपने वाक़िफ़ हैं इसलिए अच्छे टिप मिल जाते हैं। उधर कैंटीन में मेरी

Hindi Premi

मिसेज़ और मेरी सिस्टर बेसब्री से मेरा इन्तज़ार कर रही होंगी। जीत के पैसे को देखकर बहुत खुशी होती हैं न? आइए, आप लोग भी मेरे साथ चाय की एक प्याली पीजिए। आप लोगों का अपनी वाइफ़ और सिस्टर से परिचय भी करा दूँ। अभी दूसरी रेस शुरू होने में कुछ देर है। हो सकता है मेरी सिस्टर उसके लिए भी कोई टिप ले आई हो। मैं उसे पता करने के लिए भेज़ आया था।...आइए, संकोच की कोई बात नहीं। एट द रेसकोर्स वी आर ऑल वन फ़ैमिली। आइए मिस्टर भाटिया! आइए मिस्टर...अ...मोहन!

मोहन : *(चलते हुए)* भाटिया, मेरा ख़याल है तुम इनके साथ चले जाओ, मैं तब तक यहीं ठहरता हूँ।

भाटिया : *(वैसे ही स्वर में)* फिर तुम्हारा ध्यान पाजामे की तरफ़ चला गया? मैं कहता हूँ कि यहाँ तुम इन सब चीज़ों को भूल जाओ और छाती फुलाकर चलो।

कैप्टेन : क्यों मिस्टर भाटिया, पीछे क्यों रह रहे हैं? वह देखिए, वे दोनों इन्तज़ार कर ही रही हैं।...क्यों लीना? कोई टिप मिला?

लीना : पहले कुछ खिलाइए तो बताऊँगी। इतना अच्छा टिप मिला है कि क्या कहूँ? दूसरी रेस में आप कम-से-कम पाँच सौ रुपया लगाइए।

कैप्टेन : वाह-वाह क्या बात है! पहले इनसे मिलो। ये हैं मिस्टर भाटिया और ये हैं मिस्टर मोहन। यह मेरी बहन लीना और यह मेरी वाइफ़ शारदा।

क्षणभर के व्यवधान के अनन्तर

मोहन : अरे इस तरह जल्दी से चले क्यों आए? उस भले आदमी ने चाय के लिए कहा और तुम...

भाटिया : तुम वाक़ई बात नहीं समझते।

मोहन : क्यों?

भाटिया : अरे भाई, अगर उनके साथ चाय पीते तो वे लोग इधर भी साथ ही आते और उस हालत में मुझे अपनी बात रखने के लिए ग़िज़ाला के टिकट ख़रीदने पड़ते।

मोहन : तो अब क्या तुम ग़िज़ाला के टिकट नहीं ख़रीद रहे?

भाटिया : तुमने मुझे बेवकूफ़ समझ रखा है?

मोहन : मगर उनसे तो तुम इस तरह कह रहे थे जैसे...

Hindi Premi

भाटिया : अरे भाई, रेसकोर्स पर जो दूसरों को बेवकूफ़ नहीं बना सकता वह कभी कामयाब खिलाड़ी नहीं बन सकता। उनका टिप श्योर है। मैं उस लड़की का चेहरा देखकर ही समझ गया था। मगर मैं उन्हें यह इम्प्रेशन नहीं देना चाहता था कि मैं अपना टिप छोड़कर उनका टिप ले रहा हूँ। समझे? अब रेस के बाद देखना कैसा मज़ा आएगा।

मोहन : मगर...

भाटिया : अरे मगर वगर कुछ नहीं। देखते चलो। यहीं ठहरो, मैं अभी टिकट लेकर आता हूँ।

क्षणभर का व्यवधान

मोहन : *(अपने आप)* वाह मेरे दोस्त भाटिया! तुम्हारा रुख़ बदलते भी देर नहीं लगती। फिर धीरे-धीरे गुनगुनाता है : "दुनिया का मज़ा ले लो दुनिया तुम्हारी है, दुनिया तुम्हारी है..."

भाटिया : अरे क्या गुनगुना रहे हो? रेस शुरू होनेवाली है, जल्दी से मेरे साथ उधर आओ।

मोहन : सब रुपए नसरुल्लाह पर लगा दिए?

भाटिया : हाँ, हाँ, तुम चले तो आओ!

शोरोगुल की आवाज़—फिर फ़ायर होने की आवाज़ और घोड़ों की टापों का शब्द—शोरोगुल बढ़ जाता है। बीच में ऐसे-ऐसे वाक्य उभरकर सुनाई देते हैं : "कम आन नसरुल्लाह!" "बक अप लेडी क्लिोपाट्रा!" "कम आन ग़िज़ाला!" फिर घोड़ों की टापों का शब्द—फिर हलके-हलके शोर के बीच भाटिया और मोहन की आवाज़ उभरकर सुनाई देती है।

Hindi Premi

ख़ालिस और नाख़ालिस

पात्र

बाबू महेश चंद : निम्न मध्यवर्ग से ज़रा ऊपर की सतह को छूता हुआ आदमी है जिसे अविश्वास और सन्देहशीलता अपने वर्ग से विरासत में मिली है। क़द छोटा और शरीर कुछ भारीपन लिए है। मूँछों के आधे बाल सफ़ेद हैं। वह सस्ते-से कपड़े का जो नाइट सूट पहने है, वह लगता है कि कई धुलाइयाँ खा चुका है।

लीला : एक अच्छी पत्नी की तरह अपने पति की प्रकृति के सभी गुणों को ग्रहण किए हुए है। उसके चरित्र की अपनी विशेषता है भीरुता। उसके सिर का कोई-कोई बाल सफ़ेद हो चुका है परन्तु सफ़ेद धोती और पीले ब्लाउज़ में वह अब भी देखने में अच्छी लपती है। बात करते हुए लगता है जैसे उसकी साँस फूल रही हो।

राजेश : बाबू महेश चंद का छोटा भाई अभी तक अपने वर्ग-धर्म में दीक्षित नहीं हुआ। कुर्ते-पाजामे में भी वह चुस्त ढंग से चलता-फिरता है और विश्वस्त और निश्चिन्त ढंग से बात करता है। मसें भीग आई हैं और आगे की आधी लटें माथे पर पड़ी रहती हैं।

फतहसिंह : लम्बा-ऊँचा जाट युवक है। चेहरे पर छोटी-छोटी दाढ़ी है और आँखें बहुत बड़ी-बड़ी हैं। रंग साँवला और माथे पर एकाध चोट का निशान है। वह रंगीन लुंगी के साथ घुटनों से नीचे तक की क़मीज़ पहने। गले में काले डोरे का तावीज है और पगड़ी को ताज़ा कलफ लगा है।

Hindi Premi

मंच

नए बने हुए घर का एक कमरा। दीवारों पर पलस्तर हुआ है पर अभी सफ़ेदी नहीं हुई। सामने की दीवार में एक अलमारी है जिस पर रोगन नहीं हुआ। एक दरवाज़ा सामने की दीवार के बाएँ कोने में है जो बरामदे में खुलता है। एक दरवाज़ा बाईं ओर की दीवार में है जो साथ के कमरे में खुलता है। दोनों दरवाज़ों के आगे छींट के पर्दे लटक रहे हैं। एक चारपाई सामने की दीवार के साथ सटाकर बिछाई गई है। चारपाई के पास ही छोटी-सी तिपाई पर एक टाइमपीस और किताबों का शेल्फ़ रखा है। चारपाई के बाईं ओर तीन आरामकुर्सियाँ और एक गोल मेज़ पड़ी है। बाईं दीवार के साथ एक जरा बड़ी मेज़ रखी है जिस पर स्टोव और चाय बनाने का सामान पड़ा है। अलमारी के साथ की खूँटी पर कई कपड़े बेतरतीब लटक रहे हैं।

समय : सर्दी की एक रात। पर्दा उठने पर राजेश रजाई ओढ़े चारपाई पर लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़ने में व्यस्त दिखाई देता है। सहसा साथ के कमरे से बड़े-से चीनी के बरतन के टूटकर गिरने की आवाज सुनाई देती है। राजेश चौंककर सीधा हो जाता है।

राजेश : अरे!

बरामदे के दरवाज़े से महेश चंद और लीला कम्बलों में लिपटे हुए दबे पाँव अन्दर आते हैं। महेश चंद आँख के संकेत से पूछते हैं कि माजरा क्या है। राजेश मुँह बनाता है कि जाने क्या माजरा है। महेश चंद उसके पास चारपाई पर बैठ जाते हैं। लीला कुर्सी की बाँह पकड़े खड़ी रहती है। कुछ क्षण वे उत्सुक और आशंकित-से रहते हैं कि शायद फिर कोई शब्द सुनाई दे। लीला महेश चंद का कन्धा हिलाती है। उसका स्वर ऐसा है जैसे बहुत बड़े बोझ के नीचे दबी हो।

लीला : सुन रहे हैं?

महेश चंद सिर हिलाते हैं।

महेश : नहीं।

लीला : नहीं? हलकी-हलकी आहट सुनाई नहीं दे रही? क्यों राजेश?

Hindi Premi

राजेश : मुझ लगता है भाभी कि हवा से कोई काग़ज़ उड़ रहा है। या शायद कोई चूहा...।

लीला : ज़रा ध्यान से सुनो। मुझे तो ऐसे लगता है जैसे कोई बहुत धीमे क़दमों से चल रहा हो, पंजों के बल।

कुछ क्षण सब लोग आहट की प्रतीक्षा करते हैं।

राजेश : कोई आहट नहीं है भाभी। सिर्फ़ तुम्हारा वहम है।

लीला महेश चंद के साथ सटकर चारपाई पर बैठ जाती है।

लीला : मुझे तो डर लग रहा है।

महेश चंद उसे कन्धे से पकड़े हुए जैसे चाबुक मारकर अपने पुरुषत्व को जगाते हैं।

महेश : ख़ैर, डरने की तो कोई बात नहीं। हम लोग तीन हैं और वह अकेला है।

लीला : वह अकेला ही हम तीनों के लिए काफ़ी है। देखा है, कैसा दैत्य जैसा उसका शरीर है!

राजेश : भाभी, तुम ख़ामख़ाह डर रही हो। वह बेचारा गहरी नींद सो रहा होगा।

महेश : तुम क्यों न कहोगे! इस समय तो ख़ैर यह विश्वास रखना ही अच्छा है कि वह सचमुच सो रहा है।

लीला : सुनो। ऐसे आवाज़ नहीं आ रही जैसे कोई कैंची से कुछ काट रहा हो?

महेश चंद क्षण-भर ध्यान देकर सुनते हैं।

महेश : मुझे कुछ ऐसी आवाज़ लगती है जैसे कोई किसी चीज़ को धीरे-धीरे सरका रहा हो।

राजेश : लेकिन मुझे तो कोई आवाज़ सुनाई नहीं दे रही। आप लोग ख़ामख़ाह...।

सहसा फिर एक चीनी के बर्तन के गिरकर टूटने की आवाज़ सुनाई देती है। लीला महेश चंद से और सट जाती है। महेश चंद का पुरुषत्व फिर बैठ जाता है।

: अच्छा, मैं उधर जाकर देखता हूँ।

लीला : उधर मत जाओ।

राजेश : कोई डर नहीं है भाभी। मैं देख लूँ तो तुम्हारे मन का वहम निकल जाएगा।

Hindi Premi

रजाई उतारकर उठ पड़ता है और हाथों को आपस में मलकर गर्म करता हुआ अन्दर के दरवाज़े की ओर जाता है।

राकेश : आज पहली बार इतनी सर्दी पड़ रही है।

दरवाज़े से झाँककर देखता है और फिर उधर चला जाता है। लीला और महेश उत्सुकतापूर्वक उधर देखते रहते हैं।

लीला : मैं कहती हूँ, राजेश को उधर नहीं जाने देना था।

महेश : मैंने उसे कहा है जाने के लिए?...ये जवान लड़के किसी की सुनते हैं?

राजेश लौटकर आता है। वे दोनों जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हैं।

राजेश : मैंने क्या कहा था? वह उधर के कमरे में गहरी नींद में सो रहा है। बीच के कमरे में कोई नहीं है।

लीला : कोई नहीं है? मगर वे चीनी के बर्तन...?

राजेश : दो मुरब्बेवाले मर्तबान टूट गए हैं।

लीला : मर्तबान कैसे टूट गए?

राजेश : किसी चूहे ने गिरा दिए होंगे।

लीला : चूहे ने इतने बड़े-बड़े मर्तबान गिरा दिए? मैंने अभी परसों ही सन्तरे और सेब का मुरब्बा डाला था। सारा बर्बाद हो गया होगा।

महेश : मगर घर में चूहे पहले भी थे। पहले कभी मर्तबान नहीं गिरे।

राजेश : यह ठीक है। मगर सोया हुआ आदमी तो मर्तबान नहीं गिरा सकता।

लीला : हो सकता है, उसने पैरों की आहट सुन ली हो; या हम लोगों की बातों की आवाज़ उसके कानों में पड़ गई हो!

महेश : इसे कहते हैं मुसीबत को घर बुलाकर रखना। अब सब लोग रात-भर यहाँ बैठकर पहरा दें।

हवा के झोंके से बरामदे का किवाड़ चौखट से टकरा जाता है। फिर हवा की साँय-साँय सुनाई देती है।

लीला : आज हवा भी कैसी मनहूस आवाज़ कर रही है! बाहर पेड़ों की डालियाँ इस तरह हिल रही हैं जैसे टूट ही जाएँगी। मैं कहती न थी कि पहले आसपास के कुछ और घर आबाद हो जाने दो,

Hindi Premi

फिर यहाँ आकर रहेंगे। अभी सड़क की बत्तियाँ भी नहीं लगीं। रात को बाहर कुत्ते रोते हैं तो दिल काँप जाता है।

महेश : अपना घर खाली छोड़कर किराए के मकान में पड़े रहते? उठो, चाय बना लो। जागना ही है तो किसी तरह समय तो कटे।

राजेश कन्धे हिलाता है और कुर्सी पर लम्बा होकर गोल मेज़ पर टाँगें फैला देता है।

राजेश : भाभी, चाय बनाओ तो एक प्याली मेरे लिए भी।

लीला : तुम्हारे लिए भी!...ईंटोंवाली सड़क पर रिक्शावाले का ख़ून हुए अभी कितने दिन हुए हैं? उस दिन सेठी साहब के घर ही चोरी हो गई होती। यह कहो कि चोर उनका अपना ही रसोइया था और उन्हीं ने समय पर जागकर उसे पकड़ लिया। यहाँ उसे घर बुलाकर गद्दा-तकिया देकर सुला रखा है!

महेश : तुमसे कहा है, उठकर चाय बना लो। इसने तो अपनी समझदारी का सबूत दे ही दिया है। अब जैसे-तैसे रात तो कटे।

लीला उठकर स्टोव के पास चली जाती है।

लीला : और इसका वह देहाती घी! आजकल के बच्चों को भी इन बातों की समझ होती है।

स्टोव जलाने लगती है।

महेश : मेरा तो उसी समय माथा ठनका था।

आक्रोशपूर्ण दृष्टि से राजेश की ओर देखता है।

: तुम्हें इतना तो पता होना चाहिए कि देहात से लोग इस तरह पाँच-पाँच सेर घी बेचने के लिए यहाँ नहीं आते। आख़िर पढ़े-लिखे हो, इस साल बी.ए. कर रहे हो।

राजेश : परन्तु मुझसे उसने कहा था कि वह गाँव से अपने एक मित्र से मिलने आया था और उसी के लिए घी लाया था। परन्तु उस आदमी की यहाँ से तब्दीली हो गई है। यह शहर में घूमना चाहता था और कुछ चीजें खरीदना चाहता था। मैंने कहा, घर में घी की ज़रूरत पड़ती ही रहती है...।

लीला : इसलिए तुमने घी भी ले लिया और उसे रात को यहाँ आकर रहने का निमन्त्रण भी दे दिया!

राजेश : उसके पास ठहरने की और जगह नहीं थी...।

महेश : तो हमारा घर धरमसाला है कि जो भी आए ठहर जाए? उसके पास ठहरने की और जगह नहीं थी! ठहरने की जगह नहीं थी

Hindi Premi

तो अपने गाँव क्यों नहीं चला गया? आजकल कौन किसी पराए आदमी को घर में रखता है? एक नावाकिफ देहाती जो सूरत-शक्ल से ही उचक्का लगता है और आपने उससे कह दिया कि और कहीं जगह नहीं तो हमारे घर में रह जाइए। जैसे घर नहीं, सराय है। लोग तो ऐसों को सराय में भी नहीं जगह देते।

लीला : जरा आहिस्ते बात कीजिए। क्या पता वह सुन रहा हो!

स्टोव पर केतली रखकर वह उनके निकट आ जाती है। मैं कहे देती हूँ, मैं यह घी घर में किसी को नहीं खाने दूँगी। ये लोग कोई ऐसी-वैसी चीज़ मिलाकर भी तो दे जाते हैं।

महेश : घी का डिब्बा कहाँ है? यहीं कहीं तो रखा था।

राजेश : मेरी चारपाई के नीचे है।

महेश चंद उठकर चारपाई के नीचे से डिब्बा निकाल लेते हैं और खोलकर सूँघते हैं।

महेश : इसे तुम घी कहते हो? घी की यह खुशबू होती है?

लीला : अच्छा नहीं है?

महेश : अच्छा? शुद्ध वनस्पति घी है। यहीं कहीं से उसने भर लिया होगा। और जाने वनस्पति में भी मिलावट हो। उस समय मैं घर पर होता तो उसे पहली सीढ़ी पर से ही लौटा देता। मगर साहब बहादुर ने अभी जमाना देखा नहीं है न!

राजेश : अभी उसे पूरे पैसे कहाँ दिए हैं? दस ही तो रुपए दिए हैं। आप दो सेर घी रखकर बाकी उसे लौटा दें।

महेश चंद डिब्बा बन्द करके फ़र्श पर रख देते हैं।

महेश : लौटा दें! जैसे बस इतनी ही बात है। जो मुसीबत न आनी हो वह भी बुला लूँ। इस सुनसान अँधेरी रात में एक आवारा आदमी को घर बुलाकर रख लिया और अब उससे झगड़ा मोल ले लूँ। कह दूँ कि तुम जो घी दे गए हो वह असली घी नहीं है। जिससे न भी करना हो तो भी वह फसाद खड़ा कर दे। बस, यही एक अक्ल की बात बाकी रह गई है।

राजेश : तो जिस किसी तरह रात कट जाने दीजिए। वह कहता था कि उसे सुबह ही उठकर चले जाना है। ग्यारह बज चुके हैं। चार-पाँच घंटे की ही तो बात है।

महेश चंद क्रोध में उसके पास की कुर्सी पर जा बैठते हैं।

Hindi Premi

महेश : तुम्हारे ख्याल में चार-पाँच घंटे कुछ समय ही नहीं होता। चार-पाँच घंटे में क्या कुछ नहीं हो सकता? और होने के लिए तो दस मिनट, पाँच मिनट, दो मिनट काफ़ी हैं। किसी आदमी के पास हथियार हो तो उसे कुछ भी करने के लिए कितना समय चाहिए?

राजेश : लेकिन उस बेचारे के पास तो कोई हथियार नहीं है। एक लाठी है जिसे आप...

महेश : वह बेचारा है और उसके पास कोई हथियार नहीं है। लाठी हथियार नहीं होता। अट्ठारह साल के हो चुके हो और उन्नीसवाँ तुम्हें चल रहा है। इतनी ही समझ तुम्हें आई है? मैं समझता था कि बड़े हो गए हो, कल से घर सँभाल सकते हो।

लीला केतली स्टोव पर रखकर उनकी ओर आती है।

लीला : एक बात कहूँ? अगर आप लोग मानें तो...।

क्षण-भर चुप रहकर उन दोनों की ओर देखती है। फिर स्वर धीमा हो जाता है।

: क्यों न उसे यह कहकर उठा दिया जाए कि सुबह हो गई है। आजकल तो पाँच बजे के बाद भी देर तक अँधेरा रहता है।

महेश : कैसे कह दिया जाए कि सुबह हो गई है। अभी ग्यारह बजे हैं और...।

लीला : आप उसे उठाने की बात तय कीजिए। ग्यारह के पाँच तो हो सकते हैं...*(टाइमपीस उठाकर घड़ी की सुई घुमा देती है)* यह लीजिए। घड़ी की सुइयाँ तो पाँच बजा रही हैं। आगे जैसा आप लोग सोचें।

राजेश : झूठ-मूठ कहकर इस अँधेरी रात में एक आदमी को घर से निकाल दिया जाए? मैं तो इस बात से सहमत नहीं। अभी तुम्हीं कह रही थीं भाभी कि इस दिन ईंटोंवाली सड़क पर रिक्शावाले का ख़ून हुआ है। हमारी जान जान है तो उसकी भी तो है...।

महेश : आज इस लड़के का दिमाग ख़राब हो गया है।

उठकर टहलने लगता है।

: इसे उसकी जान की चिन्ता है, अपनी और घरवालों की चिन्ता नहीं। वह यहाँ से दो-चार घंटे पहले चला जाए तो क्या है? रास्ता जितना सुनसान इस समय है उतना ही सुनसान पाँच बजे भी होगा।

लीला के पास रुकता है।

Hindi Premi

: चाय रखी ही है। मैं उससे कह दूँगा कि हम लोग सुबह की चाय पी रहे हैं, इसलिए तुम्हें भी उठा दिया है। ट्रंकों की चाबियाँ तुम्हारे पास हैं?

लीला सिर हिलाती है।

: मुझे दे दो। नहीं, अपने पास ही रखो।... और अच्छी तरह कम्बल ओढ़ लो, सर्दी है।... अच्छा, तो मैं जाकर उसे उठा दूँ?

जैसे शहीद हो रहा हो, ऐसी दृष्टि से राजेश की ओर देखता है।

: और तुम जरा होशियार होकर बैठो। इस तरह ढीले-ढाले होकर नहीं।

लीला : सुनिए।... आप मत जाइए।

महेश : बच्चों की-सी बातें मत करो। आखिर किसी को तो जाकर उसे उठाना होगा।

फिर एक दृष्टि राजेश पर डालकर चला जाता है। लीला राजेश के निकट चली जाती है।

लीला : मेरा दिल बहुत डर रहा है।

राजेश : और मुझे बहुत बुरा लग रहा है। आप लोग न जाने क्यों ऐसा कर रहे हैं! एक आदमी को रात के लिए रख ही लिया तो रात तो किसी तरह कट जाने दें। मैं देख भी आया हूँ कि वह सो रहा है, फिर भी आपको विश्वास नहीं। मैं तो कहता हूँ भाभी कि अब भी भैया को बुला लो। सुबह तक जैसे भी हो...

दूसरे कमरे से फतह सिंह की आवाज़ सुनाई देने लगती है। महेश चंद और फतह सिंह साथ-साथ आते हैं। फतह सिंह पगड़ी बगल में लिए है और सिर पर बालों को लपेट रहा है।

फतह : पता ही नहीं चला जी कि रात कैसे बीत गई। ऐसे लगा जैसे अभी झपकी आई ही थी। वैसे सर्दी की रात कितनी बड़ी होती है। मगर आदमी निश्चिन्त होकर सोए तो समय बीतते पता नहीं चलता।

हाथ की लाठी एक ओर रख देता है और पगड़ी खोलकर बाँधने लगता है।

Hindi Premi

महेश : हम लोग ऐसे ही उठ गए थे।...इनकी तबीयत कुछ ठीक नहीं इसलिए सुबह उठकर ये अपनी दवाई खाती हैं। मैंने कहा, आपको भी उठा दूँ।

फतह : आप न उठाते तो शायद मैं दिन चढ़े तक सोया रह जाता।

पगड़ी ठीक से नहीं बँधती। उसे फिर से खोलकर बाँधने लगता है।

: अब सूरज निकलते-निकलते घर पहुँच जाऊँगा।

महेश : चाय भी बन रही थी। मैंने कहा था, आप उठ जाएँ तो एक प्याली आप भी पी लेंगे।

फतह : चाय बनी है तो जरूर पिऊँगा जी। सर्दी में चाय से अच्छी क्या चीज़ है? अब तो गाँवों में भी लोग चाय ही चाय पीने लगे हैं। मगर हमारे यहाँ चाय कैसे बनती है? पाव-भर दूध में पाव-भर चाय का पानी। फिर भी कहते हैं खुश्की करेगी इसलिए बीच में घी डाल देते हैं। मगर यहाँ तो मैंने देखा है कि लोग पानी-सा ही उठाकर पी जाते हैं। हमारे यहाँ घर का दूध-घी होता है। यहाँ लोगों को मोल लेना पड़ता है।

राजेश : आप सुबह जो घी लाए थे वह मैंने आपसे ले लिया था। मगर...

महेश : बात यह है कि घर में घी बहुत आया हुआ है इसलिए ये कह रही थीं कि अभी और घी की जरूरत नहीं है। मगर मैंने कहा कि अब ले लिया है तो रख ही लेंगे। काम तो आ ही जाएगा। आपको दस रुपए तो सुबह इसने दे ही दिए थे। और जितने बनते हों बता दीजिए।

फतह : घी आप रखिए। मैं घर से ताज़ा घी लाया था। आपकी दया से घर में चार भैंसें हैं। मैं घी तौलकर थोड़े ही लाया हूँ? अपने दोस्त के लिए लाया था मगर वह यहाँ से तब्दील हो गया है। मैंने सोचा, दो-चार घरों में पूछ लूँ शायद किसी को जरूरत हो। मैं साथ उठाए-उठाए कहाँ फिरूँगा? और हाथ में पैसे होंगे तो शहर में घूम भी लूँगा, साल-सवा साल के बाद इधर आया हूँ। सुबह भाई साहब से दस रुपए ले गया था। अभी उन्हीं में से दो रुपए बच रहे हैं।

महेश : तो ऐसा करते हैं कि इसमें से दो सेर घी हम रख लेते हैं, बाकी...।

Hindi Premi

फतह : वाहगुरु का नाम लो जी। दो सेर घी छोड़कर बाकी मैं साथ ले जाऊँगा? घी-मक्खन खाने-खिलाने की चीज़ है। हम लोग घी बेचते भी हैं, यह नहीं कि नहीं बेचते। मगर यह घी बेचने के लिए नहीं था। मुझे जितने पैसे चाहिए थे मैंने ले लिए थे। आठ रुपए भी मुझसे इसलिए खर्च हो गए कि मैंने अपनी मंगेतर...

Hindi Premi

चिदम्बरा

इधर के नये प्रकाशनों पर दृष्टिपात करते हुए सब से पहले ध्यान श्री सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य संग्रह 'चिदम्बरा' पर जाता है। 'चिदम्बरा' में श्री पन्त की 'युगवाणी' से 'वाणी' तक की चुनी हुई कविताएँ संकलित हैं। नये प्रकाशनों में इस संकलन का महत्व इसलिए है कि यह स्वयं कवि पन्त द्वारा ही प्रस्तुत किया गया है और इसकी भूमिका में उन्होंने अपनी काव्यचेतना का विशद परिचय देने के साथ-साथ छायावाद काल की साहित्यिक उपलब्धियों को ऐतिहासिक सन्दर्भ में देखने का प्रयत्न किया है। उनका कहना है कि 'ये लेखक-आलोचक, आत्म-विज्ञापन की धुन में, छायावाद का परिचय अपने पाठकों को उसी प्रकार देते हैं जिस प्रकार कोई रामायण में तुलसी की नारीत्व के प्रति भावना को 'ढोल गँवार शुद्र पशु नारी' का उदाहरण देकर उपस्थित करे। जहाँ कवि पन्त छायावाद के आधुनिक मूल्यांकन से असन्तुष्ट हैं, वहाँ आज की नई कविता की बहु-विज्ञापित नई उपस्थितियों के प्रति शंकालु भी हैं। उनके अनुसार, आज की नयी कविता अपनी प्रयोगवादी सीमाओं को अतिक्रमण करने के प्रयत्न में, नवीन मानव मूल्यों की खोज में, सामाजिक चेतना की वास्तविकता के घनत्व से हीन एक भयानक शून्य में भटक गई है और उपचेतन व्यक्तित्व के मोहक गर्त में फँसकर ऐसे अतिवैयक्तिक छायाभासों तथा व्यक्तिगत रुचियों के भावना-मूढ़ भेदोपभेदों, अतिवास्तविक प्रतीकों तथा शशंक शृंग प्रतीकों को जन्म दे रही है जिनका मानवत्ता तथा लोक मांगल्य से दूर का भी सम्बन्ध नहीं। आज की नयी कविता के सभी प्रयोगों के सम्बन्ध में ऐसा कहना तो संगत नहीं, परन्तु निःसन्देह नयी कविता के अन्तर्गत एक धारा ऐसी है जिस पर यह उक्ति पूरी तरह चरितार्थ होती है। नयी कविता की एक सामाजिक धारा भी है जो मानव-मूल्यों के प्रति बहुत सचेत है। शायद अब समय आ गया है जब नयी कविता को भी एक ही मुक्तक प्रयोगों की परम्परा के रूप में न देख कर कुछ समानान्तर चलती हुई अलग-अलग धाराओं के रूप में देखना होगा।

'चिदम्बरा' का प्रकाशन श्री पन्त के कवि व्यक्तित्व को समझने की दृष्टि से निःसन्देह बहुत महत्वपूर्ण है और इस दृष्टि से भी कि इसके माध्यम से कवि की बहुत-सी रचनाएँ एक पाठक को सुसम्पादित रूप में एक ही जिल्द में पढ़ने को मिल जाएँगी।

Hindi Premi

रात बीतने तक

कुछ क्षण चिड़ियों के चहचहाने का शब्द, फिर व्यंग्यपूर्ण हँसी का शब्द ज़रा दूर से पास आता है।

मैत्रेय : यह हँसने की बात नहीं है कुमार! स्थिर चित्त से विचार करने की बात है।

नन्द : *(हँसता हुआ)* तो तुम्हें मेरे हँसने पर भी आपत्ति है, मैत्रेय? परन्तु, तुम बात ही ऐसी करते हो कि हँसी आ जाती है। मुझे तो आश्चर्य है कि तुमने अब तक सिर मुँडाकर भिक्षु का वेश क्यों धारण कर लिया!

मैत्रेय : भिक्षु का वेश धारण करना आसान नहीं है कुमार। जिसने गौतम बुद्ध को उस वेश में देखा है वह अपने शरीर पर उस वेश को धारण करने से पहले...

नन्द : ठहरो! गरदन उठाकर आकाश की ओर देखो। कितने सुन्दर सारस उड़ते आ रहे हैं! सामने देखो, टेसू की टहनियाँ लाल-लाल फूलों से लद गई हैं। जीवन में इतना सौन्दर्य है मैत्रेय कि देखकर आँखें नहीं भरतीं। तुम्हारी आँखें इस सौन्दर्य पर मुग्ध नहीं होतीं?

मैत्रेय : नहीं कुमार क्योंकि मेरी आँखें इसके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ देखती हैं। मैं जीवन में दुख-दारिद्रय और पीड़ा भी देखता हूँ जिसे जीवन से निकाल फेंकना आवश्यक है। मैं तुम्हारा ध्यान उस ओर दिलाना चाहता हूँ तो तुम खिलखिलाकर हँस देते हो। हँसी कोई तर्क नहीं है।

नन्द : परन्तु, तर्क करना कौन चाहता है?...देखो वह अकेला सारस कैसे पंख मारता आ रहा है! मैं इसके लचकीले पंखों को देखूँ कि तुमसे तर्क करूँ? लो, मैं इसे यहीं पास गिराए लेता हूँ।

Hindi Premi

मैत्रेय : ठहरो कुमार! पहले बात सुनो...

नन्द : नहीं। बात सुनने में सारस निकल जाएगा। यह गिरे तो तुम इसे उठाकर देखना कि इसके पंख कितने मुलायम हैं। वह स्पर्श शायद थोड़ी देर के लिए तुम्हें भी तर्क की बात भुला दे। *(जैसे सन्धान करता हुआ)*—यह...यह...यह लो।

सारस के चीख़कर गिरने का शब्द

मैत्रेय : हाँ। यह लहू से लथपथ सौन्दर्य सब तर्क भुला देता है!...तुम नहीं समझोगे कुमार!

नन्द : मैं समझना चाहूँगा भी नहीं मैत्रेय! मैं जीने का एक ही ढंग जानता हूँ। जो चीज़ मुझे खींचती है, मैं उसकी ओर खिंच जाता हूँ। उसका परिणाम क्या होता है, यह सोचने के लिए मैं नहीं रुकता। गौतम बुद्ध जंगलों में भटककर जो सिद्धि प्राप्त कर आए हैं, नन्द को वह सिद्धि नहीं चाहिए। कंचन जैसे शरीर का सूखकर ठठरी हो जाना—तुम इसे सिद्धि कह लो, पर मेरी दृष्टि में यह जीवन को तिरस्कृत करने का दंड मात्र है!

मैत्रेय : *(आवेग के साथ)* कुमार!

नन्द : *(हँसकर)* फिर तड़प उठे? मैत्रेय, गौतम बुद्ध तुमसे अधिक मेरे सगे हैं। तुम समझते हो कि मेरे हृदय में भाई का स्नेह नहीं है? परन्तु, तुम लोगों की यह मानसिक दासता मुझे सह्य नहीं है। क्योंकि एक कहता है, दस कहते हैं, इसलिए सब व्यक्ति वही बात कहेंगे। क्यों? मुझे यह स्वीकार नहीं। इसीलिए मैंने अपने महल में आज कामोत्सव का आयोजन किया है। मुझे उपभोग में उतना ही विश्वास है जितना गौतम बुद्ध को त्याग और तपस्या में।

मैत्रेय : तो तुम इसीलिए गौतम बुद्ध के पास नहीं जाना चाहते कि तुम्हें अपने विश्वास के छिन जाने का डर है?

नन्द : नहीं, बल्कि इसलिए कि मैं चाहता हूँ कि उन्हें भ्रम बना रहे। अब तक जो भी लोग उनके पास गए हैं, उनके बनने के लिए ही गए हैं। मैं नहीं चाहता कि कपिलवस्तु में उनका एक ऐसे भी व्यक्ति से साक्षात्कार हो जो उनके विश्वास से टक्कर ले सकता है।

मैत्रेय : तो तुम नहीं चलोगे?

नन्द : नहीं। परन्तु, गौतम बुद्ध कभी महलों की ओर आने का कष्ट करें तो उनका स्वागत अवश्य करूँगा।

Hindi Premi

मैत्रेय : तो कम-से-कम कामोत्सव का आयोजन तो अभी टाल दो। कुछ दिनों में गौतम बुद्ध यहाँ से चले जाएँगे। फिर जैसा तुम्हारे मन में आए...

नन्द : नहीं, मैत्रेय, नहीं। कामोत्सव कामना का उत्सव है। और आज की कामना भला कल पर कैसे टाली जा सकती है? आज रात नन्द के महल में कामोत्सव अवश्य मनाया जाएगा।

मैत्रेय : कुमार, कोई ऐसा तर्क है जिससे तुम समझ सको?

नन्द : तर्क? जीवन में तुम्हें तर्क के अतिरिक्त भी कुछ मिला है मैत्रेय? सचमुच यह प्रकृति का बहुत सुन्दर व्यंग्य है। *(हँसता है)*

Hindi Premi

ऊँची झील

ठिठुरे हुए हाथों में चाय की प्यालियाँ थामे, हम अपने सामने फैले हुए ग्लेशियर को देख रहे थे। सर्दियों की जमी हुई बर्फ़ जगह-जगह से स्याह नज़र आती थी, जैसे अपने अन्दर की सर्दी से ही ठिठुरकर जकड़ गई हो। बीच में दो बड़ी-बड़ी दरारें थीं, जिनकी वजह से लगता था जैसे ग्लेशियर जबड़े फाड़े हर चीज़ को देख रहा हो। हम लोग सुबह लिद्दरवट के डाक बँगले से चले थे और खच्चरों पर आने के बावजूद वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते काफ़ी थक गए थे। मगर कोल्हाई ग्लेशियर का वह विराट् मकान तो क्या, किसी भी अनुभूति को भुला दे सकता था। हम लोग ऐसे देख रहे थे जैसे जीवन के साथ या सृष्टि के साथ हमारा अभी नया-नया ही परिचय हुआ हो और हम समझ न पा रहे हों कि हम जो देख रहे हैं, वह कहाँ तक स्थूल है और कहाँ तक सूक्ष्म...

एक तरफ़ बर्फ़ का पहाड़ था, तो दूसरी तरफ़ हरियाली से लदा हुआ दूसरा पहाड़, जो उससे भी ऊँचा चला गया था। उसे कहीं बर्फ़ ने छुआ भी नहीं था। उसी ऊँचाई की ओर संकेत करते हुए हमारा खच्चरवाला, लस्सू रैना कह रहा था—वहाँ उस चोटी के ऊपर वह झील, दूधसर, जहाँ कभी ही कोई जाता है। रास्ता अच्छा नहीं है। बल्कि रास्ता है ही नहीं, बर्फ़ ऐसा ही जान पड़ता है।

बर्फ़ का पानी पास से गुज़र रहा था और पहाड़ के पीछे से बादल का एक टुकड़ा इस तरह झाँक रहा था जैसे इधर की कुछ ख़ोज-ख़बर लेने का इरादा रखता हो। हवा में हमारे कपड़े काँप रहे थे, सर्दी से शरीर सुन्न हुए जा रहे थे। हम तीनों साथी एक-दूसरे की तरफ प्रश्नात्मक दृष्टि से देख रहे थे कि किसमें उस पहाड़ की चोटी पर दूधसर झील देखने जाने की हिम्मत है। तीनों में से किसी ने भी प्रतिवाद नहीं किया, इसलिए यह अपने आप ही तय हो गया कि हम ऊपर जाएँगे। लस्सू ने दूसरे खच्चरवालों से कह दिया कि दो घंटे बाद वे खच्चर लेकर एक मील आगे ठीक ग्लेशियर के पैरों के पास पहुँच जाएँ। हमने अपनी छड़ियाँ सँभाली और लस्सू के साथ इधर का रुख किया।

Hindi Premi

एक फुट चौड़ी पगडंडी थी, एक दिन पहले की वर्षा के कारण दलदल हुई। पाँव या तो फिसलता था, और जमता था, तो जम ही जाता था। मगर उत्साह था इसलिए विशेष असुविधा नहीं हुई। कुछ और ऊपर जाकर वह पगडंडी भी नहीं रही। पहाड़ नीचे से जितना ऊँचा लगता था, चढ़ते हुए पता चलने लगा कि वह उससे कहीं ऊँचा है। मगर हमने हिम्मत नहीं छोड़ी। आख़िर उस चोटी को पा ही लिया। मगर वहाँ पहुँचकर भी झील नज़र नहीं आई। देखा, कि मैदान है और फिर एक और चोटी है। फिर हिम्मत बाँधी और उसी तरह उस चोटी के ऊपर पहुँचे। झील वहाँ भी नहीं थी। और उसके बाद जब झील की बात भूलकर गुस्से के मारे अन्धाधुन्ध चढ़े जा रहे थे, तो सहसा वह झील सामने आ गई।

—झील! हममें से किसी ने कहा। शेष दोनों भी जल्दी से पास पहुँच गए। हम लोग जहाँ पहुँचे थे, वह जगह झील से ऊँचाई पर थी और झील कुछ नीचे थी। हम लोग स्तब्ध होकर देखते रहे। खामोश जहर-मोहरा रंग का पानी, हलकी लहरियों में काँपता हुआ, जैसे कोई सोया हुआ बच्चा नींद में मुस्करा रहा हो। दो-एक तरफ़ बर्फ़ जमी थी। एक साँप किनारे-किनारे रेंगता जा रहा था।

एक साथी ऊपर ही रहा, हम दो आदमी नींचे किनारे पर पहुँच गए। मानसबल और शेषतान से कहीं बड़ी झील थी वह, कहीं अधिक एकान्त, आत्मनिष्ठ और सुन्दर। उसमें पत्थर फेंकते रहे। ऊपर से साथी ने चेतावनी दी कि वर्षा होने लगी है, तो लौट आए।

अब? प्रश्न बहुत बड़ा था। जिस रास्ते से किसी तरह ऊपर चढ़ आए थे, उस रास्ते वर्षा में लौटते तो जाने कहाँ से सीधे नीचे लुढ़क जाते। लस्सू ने हमारा रास्ता पकड़ा। मगर रास्ते ने दो-एक करवटों के बाद ही खुले पत्थरों की पहाड़ी पर पहुँचा दिया। चलने की जगह रेंगने लगे। रेंगते-रेंगते लुढ़कने लगे। एक साथी लुढ़का, तो उसने नीचे पहुँचकर ही दम लिया। शेष दोनों एक-दूसरे को सावधान करते रेंगते रहे। जब किसी तरह नीचे पहुँचे तो पता चला कि पैरों के नीचे ठोस ज़मीन नहीं, ग्लेशियर का जमा हुआ बर्फ़ है।

बर्फ़, बर्फ़! बर्फ़ का रास्ता, उस बर्फ़ के पत्थर, बीच से बहते हुए बर्फ़ के नाले। दो मील बर्फ़ का रास्ता तय किया। जगह-जगह बर्फ़ में सुरंगें बनी थीं, जो जाने कहाँ ले आती थीं। खच्चरों तक पहुँचे, तो अँधेरा होने लगा था। खच्चरें भगाईं, मगर सतलुंजन तक पहुँचते अमावस की रात उतर आई। पथरीला नालों से घिरा ऊबड़-खाबड़ रास्ता, साथ बहता हुआ दरिया और थके हुए खच्चरों की लगामें थामे चलते हुए हम लोग। टॉर्च का सेल चुक गया था, दियासलाइयाँ समाप्त हो गई थीं, घुटनों तक हम कीचड़ से लथपथ थे, ऊपर से वर्षा पड़ रही थी। जाने कहाँ से रास्ता ऊपर को चढ़ने लगता था और फिर कहाँ से नीचे को उतरने लगता था। लस्सू

Hindi Premi

'शाबाश महिबा (साहबा–सं.), शाबाश' कहकर सबकी हिम्मत बँधा रहा था मगर हमारे पैर साथ नहीं दे रहे थे। हममें से एक के पैर में चोट भी आ गई थी। फिर भी हम किसी तरह चले जा रहे थे क्योंकि हमारी आँखों में वह ऊँची झील समाई थी, जिसे हमने एक बच्चे की तरह मुस्कराते देखा था।

Hindi Premi

कई एक अकेले*

इतवार की शाम को क्लब में ख़ासी रौनक हो जाती थी।

"वाइन, सर?" बारमैन अब्दुला अपनी ही अंग्रेज़ी से हर नए आनेवाले का स्वागत करता। "आल वाइन गेट हियर सर। गुड वाइन। बियर वाइन। व्हिस्की वाइन। रम वाइन। गोल्डन ईगल। ब्लैक एंड व्हाइट। सोडा फ्री। ओपन सर?"

इससे पहले कि आनेवाला हाँ या ना कहे, वह एक न एक बोतल के ढक्कन पर हाथ रख लेता। "व्हेयर सिट ड्रिंक सर? हियर बार रूम ऑर देयर रिवर बैंक टैरेस? देयर टैरेस आल राइट। कूल एयर। सोडा फ्री। एयर फ्री। गुड एन्जॉयमेंट।"

आनेवाला अभी आसपास का जायज़ा भी न ले पाता कि टैरेस पर उसकी मेज़-कुर्सी लगा दी जाती। जूते के नीचे गदरी घास की कसमसाहट महसूस करता वह टैरेस पर पहुँचता तो बैरा लतीफ़ बोतल को एक ख़ास कोण से कन्धे से सटाए वहाँ पहले से उसका इन्तज़ार कर रहा होता। उसके बैठते न बैठते मेज़ पर रखा ख़ाली गिलास भर जाता, और लतीफ़ झुकने-मुसकराने तक सभी फ़र्ज़ पूरे करके बार रूम की तरफ़ चल देता। पर गिलास होंठों से छुए, इससे पहले ही एक और आदमी सिर पर आ खड़ा होता—क्लब का चपरासी नियामत। उखड़े पन्नों का पुराना रजिस्टर सामने फैलाकर वह कहता—"साहब, आज सर्दी बहुत है।"

आनेवाला रजिस्टर में बने सोलह खानों को देखता तो उसे वाकई सर्दी का अहसास होता।

नियामत मुसकराता। टूटा हुआ दफ़्तरी बॉल पॉइंट उसके हाथ में देता हुआ कहता—"लगता है, आप पहली बार ही यहाँ आए हैं।"

आनेवाला लिद्दर की तेज़ धार की तरफ़ देखता और पहले से ज़्यादा अजनबी महसूस करता। लिद्दर की आवाज़ को काटती नियामत की आवाज़—घात की तरह तेज़ और कसैली—उसके कानों में पड़ती रहती। "जो पहले कभी एक बार भी यहाँ

---

* 'सारिका' में फ़रवरी 1965 से मई, 1965 तक चार किस्तों में धारावाहिक रूप में प्रकाशित मोहन राकेश का एक अचर्चित और अधूरा उपन्यास। —सं.

Hindi Premi

आया है, उसे मेरी नज़र कभी नहीं भूल सकती। बीस साल से इसी क्लब में काम कर रहा हूँ। पन्द्रह साल का था जब यहाँ आया था। तब अंग्रेज़ का ज़माना था...यहाँ रियासती राज चलता था। उसके बाद शेख साहब का ज़माना आया, फिर बख़्शी साहब का। सब कुछ बदल गया...आनेवाले लोग, हुकूमत करनेवाले अफ़सर...मगर आपका यह ख़ादिम आज भी अपनी जगह पर है। गाँववालों को छोड़कर सारी बस्ती में दो ही पुराने आदमी हैं—एक नियामत, दूसरे कोहली साहब।''

फिर शुरू से गिनकर वह रजिस्टर के तेरहवें ख़ाने पर उँगली रख देता—''बस, यहाँ दस्तखत कर दीजिए। अगले ख़ाने में अपना घर का पता लिख दीजिए। बाक़ी ख़ाने शाहिद साहब खुद ही भर लेंगे। वैसे यह तो नाम का ही रजिस्टर है, असली रजिस्टर नियामत का दिमाग़ है। आज के बाद आप बीस साल में भी आएँ तो नियामत आपको पहचानने में ग़लती नहीं करेगा। उस दिन एक साहब आए...सोढ़ी साहब...सन् चवालीस-पैंतालीस के बाद पहली बार। तब शेखू पुरा में ज़मींदार थे...अब दिल्ली में पता नहीं ठेकेदार हैं या क्या हैं। मैंने उन्हें देखा तो बिना उनसे पूछे ही उनके लिए रम और सीक कबाब ले गया। यही दो चीज़ें थीं जिनका वह उन दिनों आर्डर दिया करते थे। मैं तब सरकारी मुलाज़िम नहीं था, ठेकेदार के पास कारीगीरी करता था। पर ज़्यादा मज़ा तो तब आया जब सोढ़ी साहब भी मुझे देखते ही पहचान गए। बोले—''कहो, नियामत, अभी तुम्हारी शादी हुई कि नहीं?...वह कौन थी तुम्हारी श्रीनगर में...नसीम कि शमीम, क्या नाम था उसका?'' मुझे हँसी आई कि सत्रह साल बाद पूछ रहे हैं कि अभी मेरी शादी हुई कि नहीं...जबकि मैं अब तक तीन बच्चों का बाप बन चुका हूँ और मेरा बड़ा लड़का अगले साल दसवीं का इम्तिहान दे रहा है।

नियामत रजिस्टर समेटकर चला जाता तो टैरेस पर बैठे आदमी को दरिया का शोर पहले से बढ़ा हुआ महसूस होता। उस पार के जंगल से कभी कुछ मिली-जुली आवाज़ें सुनाई दे जातीं...कभी हरियाली के झुरमुटों में दो-एक हरी-नीली जीन्ज़ दिखाई दे जातीं...कमर से टखनों तक चुस्त, जैसे कि जिस्म का बाक़ी हिस्सा उस हिस्से से अलग से जोड़ा गया हो। कमर से ऊपर कभी देखने लायक गोलाइयाँ कम ही नज़र आतीं। बीच में ऊपर मन्दिर में घंटियाँ बज उठतीं या झुरमुटों में खोई पगडंडी से घोड़ों की टापें सुनाई दे जातीं। कभी कोई गुज्जर लड़की सामने किनारे पर हाथ-मुँह धोने आ जाती...भरी बाँहों और पिंडलियों के अलावा उसकी आँखें आँखों को बाँधें रहतीं। वह उठकर चल देती—बिना एक बार पीछे मुड़कर देखे—तो जंगल कुछ देर के लिए ज़्यादा अकेला और सुनसान हो जाता। हवा में तैरती पेड़ों की सरसराहट मन में एक आदिम-सी उदासी भर देती।

तभी एक लम्बी कॉपी पास फड़फड़ाती। हेड क्लर्क शाहिद रसीद बुक लिये सामने खड़ा होता।

Hindi Premi

आदमी अपने पर फिरती उदासी की कीमत अदा कर चुकता तो शाहिद अपने चेचक-भरे चेहरे पर लम्बी मुसकराहट लाकर कहता—"साहब, आप उधर लॉन में चलकर क्यों नहीं बैठते? वहाँ लोगों के बीच दिल कुछ बहला रहेगा। फिर उधर लाउंज है, बार रूम है, कार्ड रूम है। अकेले बैठकर दरिया को ही देखना हो तो आदमी कहीं से भी देख सकता है। पैसे देकर आदमी क्लब में आये, और यहाँ भी एक तरफ़ अकेला बैठा रहे—हमारी मैडम की तरह—तो आने का मतलब ही क्या है? यहाँ आदमी आता है कि कुछ देर नए-नए लोगों में घुल-मिलकर बैठे, हँसी-मज़ाक करे, अपना और दूसरों का दिल बहलाए। यह कोई बात है कि यहाँ आकर भी आदमी उसी तरह अकेला रहे जैसे घर में रहता है! कहें तो आपकी मेज़-कुर्सी उधर स्वीमिंग पूल के पास लगवा दूँ। और कुछ नहीं तो कम-से-कम देखने का लुत्फ़ तो वहाँ है ही।"

रसीद बुक से कटा क़ागज़ तह होकर ज़ेब में चला जाता तो भी शाहिद बात करता, कुछ देर वहीं रुका रहता। बताता रहता कि किस तरह क्लब का सारा काम उसे अकेले को सँभालना पड़ता है...कि वहाँ के नौकर और चपरासी, सबके सब कैसे कामचोर और हरामी हैं...कि टूरिस्ट अफ़सर सोमनाथ, जो क्लब का सेक्रेटरी भी है, खुद कितना हरामखोर है...कि कैसे सब लोग वहाँ अफ़सरों को खुश करने में लगे रहते हैं और टूरिस्टों की तरफ़ कोई ध्यान नहीं देता...और कि पहले का वक़्त कितना अच्छा था, आजकल का कितना ख़राब है।

उधर से पुकार होने पर शाहिद को ज़बरदस्ती, मन मारकर वहाँ से हटना पड़ता। दूर से नियामत लगभग डाँटकर उससे कहता कि दफ़्तर में चार आदमी इन्तज़ार कर रहे हैं, और वह वहाँ खड़ा बातों में वक़्त ज़ाया कर रहा है! शाहिद डाँट सुनकर चलते-चलते कहता—"सुन रहे हैं आप? यहाँ सब लोग, यहाँ तक कि चपरासी भी, मेरे अफ़सर हैं! डाँटनेवाले सब हैं, डाँट खानेवाला है एक...सिर्फ़ एक आदमी—मियाँ शाहिद!"

डॉक्टर और मैं अपनी शाम अकसर बीच के टैरेस पर बिताते थे। तीन टैरेस थे कुल जिनमें से दो लॉन से हटकर दूर कोनों में बने थे। उनमें से एक को हम हनीमून टैरेस कहते थे, दूसरे को ओल्ड एज टैरेस। अपने टैरेस को हमने नाम दे रखा था बैचलर्ज़ आई व्यू। बैचलर्ज़ आई व्यू के तख़्ते न तो हनीमून टैरेस की तरह हमवार थे, न ही ओल्ड एज टैरेस की तरह उखड़े हुए। वहाँ धार ज़्यादा पैनी और गहरी थी...आसपास पत्थर और झाड़ियाँ भी उतनी ज़्यादा नहीं थीं। हम लोग अपनी बियर दरिया में ठंडी करके पीते थे। हवा इतनी तेज़ चलती थी और पानी की आवाज़ इतनी ऊँची होती थी कि कई बार एक की कही बात दूसरे के कानों तक नहीं पहुँच पाती थी।

Hindi Premi

डॉक्टर से मेरा परिचय वहाँ आने पर ही हुआ था—उसकी डिस्पेन्सरी में। आने के दूसरे-तीसरे दिन सर्दी लग जाने से डिस्पेन्सरी में दवाई लेने गया था। डिस्पेन्सरी के बाहर गुज्जरों की भीड़ लगी थी। एक बड़ी-सी टोली ने शायद उसी दिन पिछले पड़ाव से आकर वहाँ कहीं डेरा डाला था। मरीज़ों में मर्दों से ज़्यादा औरतें थीं, औरतों से ज़्यादा लड़कियाँ। जिस तरह वे शोर मचा रही थीं, उससे लगता था जैसे डिस्पेन्सरी की बजाय वे पुलिस थाने में खड़ी हों और डॉक्टर वह मुजरिम हो जिसे उन्होंने घेर रखा हो। जान-पहचान न होने पर भी डॉक्टर मुझे देखकर मुसकराया। हाथ की सिरिंज में सूई लगाते हुए मुझसे ब्यौरा लेकर उसने कहा कि मुझे वहाँ रुकने की ज़रूरत नहीं, दवाई मेरे टेण्ट में पहुँच जाएगी। डेढ़-दो घंटे बाद दवाई मेरे टेण्ट में पहुँच गई...लेकर आनेवाला खुद डॉक्टर ही था।

उस दिन मेरे पास बैठकर काफ़ी देर वह बातें करता रहा। बाद में नीचे बाज़ार के एक होटल में हमने साथ खाना खाया। मुझे लगा कि मरीज़ों की भीड़ में वक़्त गुज़ारने के बाद भी वह आदमी कहीं अकेला महसूस करता है। वहाँ जितने ग़ैर सरकारी अफ़सर थे—टूरिस्ट अफ़सर, तहसीलदार, एग्ज़ेक्यूटिव इंजीनियर वगैरह, उनके साथ उसका ज़्यादा उठना-बैठना नहीं था। शायद इसलिए कि पुराने डॉक्टर बदलकर उसे वहाँ भेजे जाने से वे लोग खुश नहीं थे...उन्हें लगता था कि मेडिकल कॉलेज से नया-नया निकलकर आया छोकरा इतनी बड़ी टूरिस्ट डिस्पेन्सरी का काम कैसे सँभाल सकता है! शिकायत की एक वजह शायद यह भी थी कि डॉक्टर की रिश्तेदारी एक ऐसे घराने में थी जिसका वहाँ की राजनीति में काफ़ी दखल था और उन लोगों का ख़याल था कि उसे वहाँ भेजकर उनके सिर पर जासूस बिठा दिया गया है। उम्र में हर एक से दस-बारह साल छोटा होना और सरकारी महकमों के काम-काज का तजुरबा न रखना भी ऐसी बातें थीं जो डॉक्टर के ख़िलाफ़ जाती थीं।

एक ही छोटा-सा बाज़ार था जो बस के अड्डे से शुरू होकर खच्चरों के अड्डे के पास ख़त्म हो जाता था। एक तरफ़ था टूरिस्ट ऑफ़िस, डाकख़ाना, सरकारी क्वार्टर्स, किराये पर दिए जानेवाले कुछ कमरे, छोटे-छोटे मौसमी रेस्तराँ और टेण्टों-ग़लीचों वग़ैरह की दुकानें...और दूसरी तरफ़ डिस्पेन्सरी, तीन-चार बड़े होटल, स्टोर, कामगारों की दुकानें और घर, शराब की दुकान, अख़बार की एजेन्सी, डेरी और वर्मा फोटोग्राफ़र का स्टूडियो। बस के अड्डे से डाकख़ाने तक हलकी चढ़ाई, फिर वैसी ही उतराई। आगे खुली सड़क शुरू हो जाती थी जिससे एक तरफ़ बच्चों का पार्क था। ज़्यादातर टूरिस्ट सड़क के इतने ही हिस्से के बीच दिनभर चहलक़दमी करते थे। जब थक जाते तो खच्चरों पर सवार हो लेते या कमरों और टेण्टों में जाकर सो रहते।

हम भी दिन में कई-कई बार बाज़ार में नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तक घूम लेते थे—वहाँ के सारे शोर-शराबे और चहल-पहल के बीच कोई अच्छा चेहरा ढूँढ़ते

Hindi Premi

हुए। डॉक्टर अपना स्टेथेस्कोप हाथ में रखता जिससे यह न लगे कि वह आवारा घूम रहा है। चेहरा भी ऐसे बनाए रखता जैसे सचमुच किसी मरीज़ को देखने जा रहा हो। इससे कभी-कभी नुकसान भी होता। कोई आदमी जो डिस्पेन्सरी से बुलाने जा रहा होता, उसे सड़क पर ही पकड़ लेता और डॉक्टर को वहीं से खच्चर पर सवार होकर उसके साथ चले जाना पड़ता। अगर बुलावा किसी होटल या सी प्लाट के किसी टेण्ट से आया होता तो मैं उसका इन्तज़ार करता। पर अगर बुलावा गाँव के लम्बरदार या किसी और चौधरी का होता तो उसके राजनीतिक महत्त्व को समझते हुए या तो मैं वापस चला आता, या दरिया के साथ-साथ मोटर की सड़क पर दूर निकल जाता।

शाम को छः बजे डॉक्टर डिस्पेन्सरी बन्द करता था और उसके बाद ही हम लोग बैचलर्ज़ आई व्यू पर पहुँच जाते थे। हालाँकि बुलावे का ख़तरा वहाँ भी बना रहता था...और हर वक़्त टूरिस्ट अफ़सर की नज़र में रहने से डॉक्टर के लिए किसी से भी इनकार करना मुश्किल होता था, फिर भी पूरी शाम हम लोग साथ रह लेते थे। ज्यों-ज्यों शाम गहरी होती, डॉक्टर के बाहर बुलाए जाने की सम्भावना कम होती जाती। तब हम लोग ज़्यादा निश्चिन्त होकर अपने लिए बियर या जिन-लाइम-कार्डियलक आर्डर दे सकते।

अकसर वहीं बैठे-बैठे काफ़ी अँधेरा हो जाता। आसपास हर चीज़ की हलकी धुँधली रेखाएँ ही हमें नज़र आतीं। मैं देखता मेज़ के उस तरफ़ चमड़े के पैबन्दवाली दो कुहनियाँ, गबार्डिन के लम्बे कोट के उठे हुए कन्धे और उनके ऊपर अलग-सा एक चेहरा...बाल हवा में उड़ते हुए, माथे पर हलकी लकीरें, चमकतीं आँखें, काँपती हुई पतली नाक और अपनी ही बात के अहसास से दबे जाते होंठ। डॉक्टर शायद सामने के चेहरे को देखता ही नहीं, क्योंकि उसकी आँखें अकसर ऊपर की टहनियों में उलझी रहतीं।

बीच में काफ़ी-काफ़ी देर ख़ामोशी रहती। टैरेस के अँधेरे में हम जैसे बाक़ी दुनिया से कटकर, एक-दूसरे से भी कटकर, एक-दूसरे के सामने बैठे रहते। हवा से झिंझोड़े जा रहे देवदारों से कई-कई पके हुए बीज नीचे गिर आते—सिर पर, कोट की बाँहों पर, मेज़ पर और आसपास, उनका गिरना या गिरकर आवाज़ करना उस वक़्त हमें महसूस तक न होता...या होता तो हवा और पानी के बीच एक हलकी डुबकी या फड़फड़ाहट की तरह। दरिया की धार अँधेरे में कई (बार) अपनी ही चमक से चमक जाती। हम जानते थे, कहाँ किस चट्टान से टकराकर पानी में जालियाँ बनती हैं, और कहाँ ढलान पर आ जाने से उस पर फ़ौलाद के फल से बिखर जाते हैं। देर तक ख़ामोश रहते पानी की रफ़्तार का अन्दाज़ा भी नहीं रहता था। ऐसे लगता था जैसे अँधेरे से फूटता हुआ एक चश्मा लगातार एक ही जगह पर कुलबुला रहा हो। बीच में कोई भटकी हुई आवाज़—हवा में काँपती हुई—कानों में पड़ती तो अँधेरे का बाँध एकाएक टूट जाता और चश्मे का पानी दरिया की रवानी में बदल जाता।

Hindi Premi

"कितना...कितना बेमानी है यह!" डॉक्टर मुँह से ज़्यादा यह बात आँखों से कहता और लकड़ी की मुँडेर पर कुहनी रखे दरिया की तरफ़ झुक जाता।

मैं उसकी बात का सूत्र दस मिनट पहले कही बात से न जोड़ पाता और पूछ लेता—"किसके बारे में कह रहे हो तुम?"

"इस सबके बारे में।" डॉक्टर बिना मेरी तरफ़ देखे जैसे दरिया से बात करता रहता—"और इसके अलावा तुम्हारे, अपने और हर एक के। हम सब क्या लगभग एक ही तरह से नहीं जीते?"

मैं मन ही मन कुछ कहने की तैयारी करता पर मुँह तक लाने से पहले ही अपनी बात मुझे फीकी लगने लगती। मेरे गले से पैदा हुई हलकी-सी आवाज़ से डॉक्टर पलभर मेरी तरफ़ देखता रहता, फिर मुझे ख़ामोश पाकर उसी तरह मुँडेर पर झुक जाता। कहता—"कभी-कभी घोड़े या खच्चर पर बैठकर मैं उसे तेज़ दौड़ाता हूँ तो एक अजीब-सी सरसराहट मुझे अपने अन्दर महसूस होती है। मन करता है कि उसे लगातार दौड़ाता चलूँ, दौड़ाता चलूँ, यहाँ तक कि सभी हदें पीछे रह जाएँ और हमेशा के लिए उनके पार और उनसे आगे चला जाऊँ। लोग पीछे से देखते रहें...सोचते रहें कि मैं कब लौटकर आता हूँ, कब लौटकर आता हूँ...पर मैं उनसे दूर-दूर जाता हुआ...सिर्फ़ मैं ही महसूस कर सकूँ कि उनका इन्तज़ार कितना फ़िज़ूल और कितना बेमानी है...कि वे ज़िन्दगीभर उसी तरह इन्तज़ार करते रहेंगे और मैं उनके बीच अब कभी लौटकर नहीं जाऊँगा।"

वह चुप कर जाता तो भी मैं कुछ देर इन्तज़ार करता कि शायद वह आगे कुछ कहे। अपने को जैसे मैं इन्तज़ार करती भीड़ में खड़ा महसूस करता और इस तरह उस पार की तरफ़ देखता जैसे डॉक्टर मेरे सामने न होकर उधर के घने जंगल में कहीं खो गया हो। कुछ देर बाद जंगल से निकलकर उससे पूछता—"इधर घर से कोई चिट्ठी तो नहीं आई?"

डॉक्टर सिर हिलाकर 'नहीं' कहता...शायद उसे बुरा लगता कि मैं उसकी बात का सिरा घर की चिट्ठी के साथ क्यों जोड़ रहा हूँ। मेरे दिल से चिट्ठी की बात निकाल देने के लिए वह लफ़्ज़ों पर ज़ोर देकर कहता—"आए, न आए, अब उससे क्या फ़र्क़ पड़ता है! मैं उस चीज़ की अब बिलकुल परवाह नहीं करता।"

कुहनी के बोझ से मुँडेर की लकड़ी चरमरा जाती। मुझे हर वक़्त लगता कि अचानक अगर मुँडेर टूट जाए, तो? मुझे टैरेस के तख़्ते भी तब हिलते हुए और कमज़ोर जान पड़ते। लगता जैसे कुछ ही देर में हम दोनों हाथों में गिलास लिए, कुरसियों पर बैठे, दरिया में बहे जा रहे होंगे। पैरों की उँगलियों से उठकर एक झुरझुरी शरीर में भर जाती। अपना वज़न कुर्सी पर और कुर्सी का वज़न टैरेस पर महसूस करता हुआ मैं एक बार चारों तरफ़ देख लेता। छाती और गले के बीच की हड्डी

Hindi Premi

कुछ देर जकड़ी-सी रहती...ठोड़ी के निचले हिस्से में दर्द और खिंचाव-सा महसूस होता। मैं ठोड़ी और जबड़ों को इस तरह हिलाता जैसे उनके अन्दर लहू जम गया हो।...इसे जो कहता, वह भी बात के सिलसिले में कम, ज़्यादा जबड़ों को खोलने के लिए ही होता। ''तुम यहाँ से बाहर नौकरी ढूँढ़ने की कोशिश क्यों नहीं करते?''

''नौकरी यहाँ हो या और कहीं, उससे भी क्या फ़र्क़ पड़ता है? फ़ासला पचास मील का न रहकर पाँच सौ मील का हो जाएगा, बस, इतना ही न? तुम समझते हो, फ़ासला थोड़ा और बढ़ जाने से कोई चीज़ बदल सकती है? और फ़ासला कम होने से आदमी ज़्यादा जुड़ा रहता है?'' वह अपने कोट के कॉलर ऊपर उठा लेता, जिससे लगता वह मन-ही-मन उठने की तैयारी कर रहा है। इससे मुझे सर्दी पहले से ज़्यादा महसूस होती और मेरे हाथ भी अपने कॉलरों पर चले जाते। साथ ही अपने टेण्ट के अकेलेपन और वहाँ बिखरे सामान का ध्यान हो आता। सोचता कि आज अगर डॉक्टर ने कुछ देर के लिए अपने साथ अपने क्वार्टर चलने को न कहा, तो? रात को लौटते हुए अकसर मैं दो-एक घंटे उसके क्वार्टर में बिता कर ही अपने टेण्ट में जाता था। कई बार डॉक्टर खुद टार्च लेकर मुझे मेरे प्लैटो तक छोड़ आता था। उसके क्वार्टर में या मेरे टेण्ट में हमें रोज़ ग्यारह-साढ़े ग्यारह बज जाते थे। उसके बाद घंटे-डेढ़ घंटे से ज़्यादा नींद का इन्तज़ार नहीं करना पड़ता था।

डॉक्टर अपने क्वार्टर में अकेला रहता था, एक नौकर के साथ। उसके पास दो बड़े-बड़े कमरे थे जिनमें से एक का आधे से भी कम हिस्सा उसके इस्तेमाल में आता था। बाक़ी हिस्से का ख़ाली होना गैलरी में क़दम रखते ही महसूस होने लगता था... गैलरी में अपने पैरों की आहट ही उसके ख़ालीपन का अहसास करा देती थी। ज़ीना इतना तंग था कि ऊपर जाते हुए मैं अपने को काफ़ी बड़ा और भारी महसूस करता। पर जब गैलरी में आकर डॉक्टर चाबी निकालने के लिए ज़ेब में हाथ डालता तो खुलने वाले कमरे के सामने अपना आप मुझे बहुत छोटा लगता। कमरे के अन्दर पहुँचकर, ख़ाली फ़र्श को नापते हुए, अपना छोटापन और भी महसूस होता। इससे यह कभी नहीं हो पाता कि अपने को भूलकर मैं इतमीनान के साथ उस कमरे में रह सकूँ। खुद डॉक्टर को भी वहाँ शायद उसी तरह की दिक़्क़त होती थी, क्योंकि वह बीच की बत्ती बहुत कम जलाता था। ज़्यादातर टेबल तक सिमटी हुई रोशनी में बैठना ही पसन्द करता था।

डॉक्टर मुझे अपने साथ ले जाता तो ज़िद करके खाना भी वहीं खिलाता। उसका नौकर ज़हीरा खाना बहुत अच्छा बनाता था—ख़ासतौर से दहीवाला गोश्त। पहली बार खाकर ही मुझे इतना शौक हो गया था कि कई बार उसी के लालच से डॉक्टर के साथ चला जाता था। पहुँचकर पता चलता कि ज़हीरा ने कोई और चीज़ बना रखी है तो मन एकाएक वहाँ से उखड़ जाता। जल्दी से अपने टेण्ट में वापस पहुँचने की

Hindi Premi

उतावली मन में भर जाती। तब मैं डॉक्टर को भी मजबूर करके अपने साथ ले जाता–डिब्बे का हैम और पनीर के सैंडविच खाने के लिए। या फिर डॉक्टर ही अपने यहाँ का खाना उठवाकर मेरे टेण्ट में ले आता।

डॉक्टर की गैलरी से मेरा टेण्ट सामने ही नज़र आ जाता था, हालाँकि उस तक पहुँचने का रास्ता काफ़ी लम्बा और घुमावदार था। डॉक्टर साथ में होता तो घास और पत्थरों पर जमा-जमाकर पैर रखते हुए सीधे पहाड़ी पर चढ़ जाते और टहनियाँ काटकर बनाई गई बाड़ के ऊपर से कूदकर टेण्ट के सामने कच्ची सड़क पर पहुँच जाते। सड़क के दूसरी तरफ़ भी उसी तरह की बाड़ थी। उसका ऊपर का डंडा मैंने एक तरफ़ से निकाल दिया था जिससे ज़रूरत के मुताबिक उसे रखा और हटाया जा सकता था। उसे हटाकर हम टेण्ट से आगे खुले मैदान में, जिसे मैं अपना लॉन कहता था, पहुँच जाते। दो कुरसियाँ वहाँ बाहर ही पड़ी रहती थीं। उन पर बैठकर हम बाज़ार और क्लब की रोशनियों और दोनों के बीच अँधेरे से गुज़रकर जाते पानी को देखते रहते थे। दूसरी धार, जो क्लब के उस तरफ़ से जाती थी और जिस पर हमारा टैरेस था वहाँ से नज़र नहीं आती थी। दरअसल वे दो अलग-अलग पानी थे... एक शेषनाग झील से आता था, दूसरा कोल्हाई ग्लेशियर से। पहलगाम की घाटी में आकर ग्लेशियर का पानी दो हिस्सों में बँट जाता था, जिनमें से एक पहले ही शेषनाग के पानी में आ मिलता था, दूसरा पहाड़ी के साथ-साथ बहता हुआ क्लब के ऊपर से होकर आगे से उसमें मिलता था। इधर शेषनाग का पानी भी दो हिस्सों में बँटकर बहता था... एक धार डिस्पेन्सरी से कुल दस पन्द्रह गज़ के फ़ासले से जाती थी, दूसरी पच्चीस-तीस गज़ के फ़ासले से। पहली धार के इस तरफ़ और दोनों धारों के बीच टेण्टों की लम्बी कतारें थीं जो रात के वक़्त प्लैटो से देखने पर बड़े-बड़े सफ़ेद बगुलों जैसी नज़र आती थीं। हवा से तम्बुओं की छतें काँपतीं तो बगुले सर्दी से ठिठुरते जान पड़ते। वैसे ही कुछ क़तारें दाईं तरफ़ 'सी प्लाट' में भी थीं–ग्लेशियरवाले पानी के किनारे और शेषनाग की धार के दोनों तरफ़ जो कि बाज़ार की छतों के पीछे और घने देवदारों के साये में होने से नज़र नहीं आती थीं । कुछ थोड़े से टेण्ट उसी तरफ़ ऊँचाई पर लगे थे, जैसे रात के वक़्त वहाँ अकेले में भटक गए हों। अलग-अलग धारों पर जो पुल बने थे और जिन पर खड़े होकर हम पानी में पत्थर फेंका करते थे, वे भी प्लैटो से नज़र नहीं आते थे...सिर्फ़ दाईं तरफ़ के बड़े पुल को छोड़कर लिद्दर अर्थात् ग्लेशियर से आते 'बड़े' पानी पर बना वह पुल भी, जिसे पार करके उस तरफ़ मन्दिर की पहाड़ी पर जाया जा सकता था, पूरा नज़र नहीं आता था। क्लब परली तरफ़ की दो धारों के बीच एक छोटे से टॉप पर था और क्लब की अनेक्सी बीच की छोटी धार और इधर की बड़ी धार के बीच और भी छोटे टॉप पर। बाज़ार से क्लब में जाने के लिए बाईं तरफ़ को मोटर की सड़क पर एक फ़र्लांग नीचे जाकर वहाँ से दो पुल पार करने पड़ते थे। पहले पुल के बाद

Hindi Premi

अनेक्सी में जाने का रास्ता था, दूसरे के बाद क्लब के बैडमिंटन और टेनिस कोर्ट आ जाते थे। वे दोनों पुल भी प्लैटो पर आकर आँख से ओझल हो जाते थे, क्योंकि डिस्पेन्सरी की इमारत उनके और प्लैटो के बीच आ पड़ती थी।

आसमान अकसर घिरा रहता था। बीच में एकाध रात ही चाँदनी की आई थी। उस रात दूर ग्लेशियर का पानी भी हमें चमकता नज़र आया था। लगा था जैसे पहाड़ी और घाटी के बीच पारे की एक तेज़ धार काँप रही हो। हम लोग लॉन में टहलते हुए कितनी ही देर उधर देखते रहे थे और अन्दाज़ा लगाने की कोशिश करते रहे थे कि हमारे टैरेस को वह धार कहाँ पर छू रही होगी। डॉक्टर का ख़याल था कि चीड़ों के झुरमुट से थोड़ा आगे जो स्याह धब्बा नज़र आता था, वही हमारा टैरेस था। पर मुझे लग रहा था कि जिसे वह टैरेस बता रहा है, वह दरअसल एक बड़ी सी चट्टान है। मैंने डॉक्टर से यह बात कही भी कि एक टैरेस अगर वहाँ से नज़र आ सकता है तो बाक़ी दो भी क्यों नहीं नज़र आते। पर इसका उसने जवाब नहीं दिया। मुझे यही समझाने की कोशिश करता रहा कि उस स्याह धब्बे का कटाव एक चट्टान जैसा नहीं, बिल्कुल हमारे टैरेस जैसा है, इसलिए वह टैरेस के सिवा कुछ हो ही नहीं सकता। मैंने ज़्यादा बहस नहीं की, क्योंकि उस घूली-निखरी रात में बहस करने की बजाए ख़ामोशी में सिहरते लैंडस्केप को देखना ज़्यादा अच्छा लग रहा था। उस वक़्त डॉक्टर यह कहता कि जहाँ हम खड़े हैं, वह ज़मीन दरिया के इस पार की नहीं, उस पार की है, तो भी शायद मैं चुपचाप मान लेता।

उसी रात हमने उसे भी अपने टेण्ट के बाहर टहलते देखा था...बाईं तरफ़ साथ के प्लैटो पर उसका टेण्ट मेरे टेण्ट से कुछ ऊँचाई पर लगा था। दिन में तो अकसर वह टेंट से छोलदारी और छोलदारी से टेण्ट में जाती नज़र आ जाती थी...या कई बार बाहर कुर्सी डालकर बैठी हुई...पर रात को मेरे लौटकर आने से पहले ही उसके टेण्ट की बत्ती बुझ चुकी होती थी। अगर कभी मैं जल्दी भी लौटकर आया था—दस या नौ बजे—तो भी उसके टेण्ट को मैने अँधेरा और ख़ामोश पाया था...जैसे कि वह काले तख़्ते पर चाक से बनी एक तस्वीर भर हो। मेरे टेण्ट के बाहर जो बिजली का खम्भा था...खम्भा नहीं, खम्भे का काम देता पेड़ का तना...उसके पास से वह टेण्ट कुछ ऐसा ही नज़र आता था। शायद मटियाली रोशनी की हलकी चादर बीच में आ जाती थी, इसलिए। टेण्ट की तरफ़ देखकर हड्डियों में ठंडक का अहसास बढ़ जाता था और मैं टेण्ट में दाख़िल होने से पहले एक नज़र दाईं तरफ़ उस बड़े शामियाने को भी देख लेता था जिसमें किसी ने एक गेस्ट हाउस खोल रखा था। वहाँ बारह बजे तक कई-कई बत्तियाँ जलती रहती थीं। शुरू-शुरू में उस गेस्ट हाउस के वहाँ होने से मुझे बहुत कोफ़्त होती थी पर धीरे-धीरे आँखों को और आँखों से ज़्यादा कानों को उसकी आदत हो गई थी।

Hindi Premi

"देखो, वह मैडम टहल रही है शायद"—पहले डॉक्टर ने ही मेरा ध्यान उसकी तरफ़ खींचा था। 'शायद' डॉक्टर ने आदतन कहा था, क्योंकि खुली चाँदनी में उसे पहचानना ज़रा भी मुश्किल नहीं था। वही काला कोट जिसे हम रोज़ क्लब में या बाज़ारों में देखते थे...वही नपे-तुले क़दम, झुकी हुई आँख और जूड़े में लगी चाँदी की झालर। उसकी पीठ हमारी तरफ़ होती तो झालर की चमक ही ज़्यादा दिखाई देती। सड़क की बत्तियाँ जाने चाँदनी की वजह से बुझा दी गई थीं या वैसे ही गुल थीं। उसके टेण्ट में रोशनी उस वक़्त भी नहीं थी जिससे मुझे लगा कि हो सकता है, और रातों को भी वह उसी तरह टहलती हो और अँधेरे में मुझे पता नहीं चलता हो। डॉक्टर ने इसे मेरी 'विशफुल थिंकिंग' कहकर मुझे चुप करा दिया।

"मेरा ख़याल है, वह भी हमारी तरफ़ देख रही है।" डॉक्टर की इस बात पर मैंने भी कहना चाहा कि यह उसकी 'विशफुल थिंकिंग' है पर ख़ामख़ाह उस सम्भावना को रद्द कर देना मुझे ठीक नहीं लगा। लॉन के सिरे तक होकर लौटते हुए मैं काफ़ी देर ग़ौर से उस तरफ़ देखता रहा और मुझे लगा कि डॉक्टर की बात ग़लत नहीं है। टहलकर हमारी तरफ़ आते हुए वह सचमुच इसी सीध में देख रही थी...हाँ, यह हो सकता था कि हमें न देखकर हमसे आगे पहाड़, घाटी और दरिया के पानी को देख रही हो। उतनी दूर से उसके चेहरे की हलकी रेखा ही नज़र आती थी...कभी-कभी आँखों की चमक का भी अन्दाज़ा होता था...पर वह ठीक कहाँ और किस चीज़ को देख रही है, यह तय कर पाना मुश्किल था।

"तुमसे कभी इसकी बात हुई है?"—मैंने डॉक्टर से पूछा...कहीं यह उम्मीद लिए हुए कि डॉक्टर से बात हुई होगी तो मुझसे भी ज़रूर हो सकेगी। एक अकेली औरत से बात कर सकने में सभी तरह की सम्भावनाएँ रहती हैं...ख़ास तौर से उस औरत से जो किसी जमघट में न बैठकर सबसे अलग-थलग रहती हो। एक आकर्षण इसका भी हाता है कि जिससे और लोग बात नहीं कर सकते, हम कर सकते हैं। सवाल पूछते हुए नन में मैंने कल्पना की कि टैरेस पर मैं और डॉक्टर उसके साथ बैठकर चाय, कॉफ़ी या व्हिस्की, जो भी वह पीती हो, पी रहे हैं...क्लब के और लोग कनखियों से हमारी तरफ़ देखते हुए पास से गुज़र रहे हैं...कोई आदमी 'सी' प्लाट से आकर डॉक्टर को अपने साथ ले जाता है, और मैं सोचने लगता हूँ कि अकेले हो जाने पर अब मुझे उससे पहला सवाल क्या पूछना चाहिए...।

पर डॉक्टर ने मुझे इससे आगे नहीं सोचने दिया। धीरे से सिर हिलाकर कह दिया—"वह कभी किसी से बात ही नहीं करती!"

मुझे अच्छा ही लगा कि मुझसे नहीं तो डॉक्टर से भी कभी उसकी बात नहीं हुई...कि इस लिहाज़ से डॉक्टर किसी तरह मुझसे बेहतर नहीं है। क्लब में आने वाली और सभी लड़कियों के बारे में वह कह देता था—"हाँ, मेरी मरीज़ है।" मुझे

Hindi Premi

इससे ईर्ष्या होती थी...डॉक्टर से ज़्यादा उसके पेशे से। लगता था कि दुनिया में सबसे ग़लत और फ़िज़ूल क़िस्म का कोई काम है तो कॉलेज में पढ़ाना...और वह भी लड़कों के कसबाती कॉलेज में। दिनभर रजिस्टर बगल में दबाए एक कमरे से दूसरे कमरे में जाओ, डेस्कों की तरफ़ देख-देखकर गला फाड़ो और बोलते-बोलते गला दुखने लगे तो भी घंटी बजने तक किसी तरह मशीन को चालू रखो। घंटी वाला चपरासी अगर प्रिन्सिपल की चाय लाने गया हो तो बार-बार अपनी घड़ी को देखते और झटकते रहो। शाम को सड़क पर निकलो तो खुलकर हँसो भी नहीं कि कहीं कॉलेज के सत्ताईस सौ लड़कों में से कोई एक पास से गुज़र कर न जा रहा हो। लड़कियों की तरफ़ तो ख़ैर कभी देखो ही नहीं जब तक कि वे तुम्हारे या अपने कमरे में न हों। मुझे डॉक्टर के डॉक्टर होने से ईर्ष्या इसलिए भी थी कि वह देखने में काफ़ी ख़ूबसूरत था—आम कश्मीरी से कहीं ज़्यादा ख़ूबसूरत। क्लब के बैडमिंटन कोर्ट में या स्विमिंग पूल के पास जब भी कोई नई लड़की नज़र आती तो मैं डॉक्टर से कहता—''आज तुम्हारे लिए एक नई मरीज़ आई है!'' डॉक्टर इस पर मुसकराता। पर जब मैं वह लड़की उसे दिखाता तो गबार्डिन के कोट में हाथ डाले अपने ख़ास अन्दाज़ में वह कहता—''यह मरीज़ नई नहीं, तीन दिन पहले की है। नरसों सुबह मेरी डिस्पेन्सरी में आई थी। चन्दनवाड़ी से लौटते हुए घोड़े से गिरकर इसके पैर में चोट आ गई थी।''

उस दिन डॉक्टर रोज़ से कहीं ज़्यादा देर तक मेरे साथ रहा। अकसर ग्यारह बजने के साथ ही उसे नींद का ध्यान हो आता था और वह यह कहकर बाड़ की तरफ़ चल देता था कि सुबह आठ बजे तक तैयार होकर उसे डिस्पेन्सरी पहुँचना है। पर उस दिन बारह बजे के बाद भी वह नींद और डिस्पेन्सरी की बात भूला रहा। सामने प्लैटो की मैडम चहलक़दमी से थककर कुछ देर घास पर बैठी रही, फिर उठकर अपने टेण्ट में चली गई। दो मिनट के लिए टेण्ट की बत्ती जली तो हमें थोड़ा अचम्भा हुआ। उतनी तेज़ रोशनी का बल्ब आसपास के किसी टेण्ट में नहीं था। हम लोग खम्भे के पास रुककर टेण्ट के परदे पर नज़र आती बड़ी-सी छाया को देखते रहे जो इस तरह हिल रही थी जैसे मुर्गियों की पिटारी का बन्द ढकना खोला जा रहा हो। ऊपर की झाँकती-ताकती मुर्गी शायद उसका सिर था और दाएँ-बाएँ की पंख फड़फड़ाती मुर्गियाँ उसकी बाँहें। नीचे पिटारी की बन्द गोलाई थी जिसमें बाक़ी मुर्गियाँ सोयी हुई थीं।

''मेरा ख़याल है, वह कपड़े बदल रही है''—डॉक्टर ने कहा।

''मेरा ख़याल है, स्टोव जला रही है।''

मगर मेरी बात हमेशा की तरह ग़लत साबित हुई, क्योंकि आधे मिनट के अन्दर ही टेण्ट की बत्ती बुझ गई।

Hindi Premi

बत्ती बुझने के साथ ही मैंने डॉक्टर की तरफ़ देखा—यह सोचकर कि वह अब चलने की बात करेगा। मगर डॉक्टर बिना बात किए चुपचाप टहलता रहा...जैसे उसे भूल गया हो कि वह उस वक़्त अपने कमरे में नहीं, मेरे टेण्ट के बाहर खुले में है...बल्कि यह भी ध्यान उसे न हो कि एक और आदमी भी उसके साथ, लगभग उसके बराबर, चल रहा है। मुझे अचानक थकान-सी महसूस होने लगी, क्योंकि उस दिन शाम को मैं काफ़ी दूर तक घूमकर आया था। मगर डॉक्टर से मैंने अपनी थकान का ज़िक्र नहीं किया...चुपचाप एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। मेरे बैठ जाने से डॉक्टर चौंककर रुका। फिर वह भी पास की कुर्सी पर आ बैठा।

"अजीब औरत है!"—उसने बैठते हुए कहा।

"क्यों?"

"बाहर से अकेली आई है और यहाँ भी अकेली रहती है!" डॉक्टर की आँखें अब भी उस टेण्ट की तरफ़ लगी थीं। बत्ती बुझ जाने से टेण्ट और भी अकेला हो गया था—चाँदनी के आकाश में बहुत उदास और डरा-डरा-सा। हवा से उसमें बार-बार लहरें उठ आती थीं।

"कुछ लोगों की आदत होती है अकेले रहने की"—मैंने कहा। "उसके साथ एक नौकरानी भी तो है शायद। दिन के वक़्त मैंने देखा है एक औरत को वहाँ काम करते।"

"वह तन्दूर वाले सरदार की बीवी है। दिन में काम करके अपने घर वापस चली जाती है।"

कोई चीज़ मेरे रोंगटों को छू गई कि वह औरत जो मेरे इतने पास रहती है—मेरे सबसे पास के टेण्ट में—वह बिल्कुल अकेली है...कोई नौकरानी भी रात को उसके पास नहीं सोती। मैंने अपने कोट की बाँहें नीचे खींच ली। कमीज़ के कफ़ जो ज़रूरत से ज़्यादा बाहर नज़र आ रहे थे, उनसे ढक लिए।

"तुम्हारे ख़याल में इसकी उम्र क्या होगी?" डॉक्टर ने वही बात पूछ ली जो उस वक़्त मेरे मन में थी। उसके बारे में यह भी हमें मालूम नहीं था कि वह कुँवारी है या शादीशुदा। एक दिन क्लब में सोचा था कि शाहिद मियाँ के रजिस्टर में देखेंगे मगर बाद में यह बात भूल गए थे।

"तुम्हारे ख़याल में क्या होगी?"

"मेरे ख़याल में यह अट्ठाइस-तीस से कम की नहीं है।"

मैं सोचने लगा जैसे कि उसकी उम्र का सही अन्दाज़ा लगाना काफ़ी ज़िम्मेदारी का काम हो और जैसे कि उस पर कुछ निर्भर करता हो। "देखने में तो छब्बीस-सत्ताइस से ज़्यादा की नहीं लगती।" मैंने कहा—"बल्कि कभी-कभी तो इससे भी कम की लगती है।"

Hindi Premi

"मेरे ख़याल में यह ज़रूर शादीशुदा है।"

"हो सकता है, हो। पर तुम किस बात से कह रहे हो?"

"लगता है, इसका तलाक-वलाक हुआ है, इसीलिए इस तरह अकेली रहती है।"

मुझे हँसी आने को हुई पर मैंने अपने को रोक लिया। मेरी तरह डॉक्टर भी उस औरत की ज़िन्दगी को अपनी ज़रूरत के साँचे में ढाल कर देख रहा था।

"यह भी हो सकता है कि बीमार-वीमार हो और डॉक्टर की सलाह से हवा-बदली के लिए आई हो।" मैंने सोचा था, इस बात से डॉक्टर को थोड़ा झटका लगेगा पर वह उलटे पहले से ज़्यादा गम्भीर हो गया।

"नहीं, चेहरे से वह बीमार नहीं लगती"—वह बोला। "और ऐसी कोई बात होती तो एकाध बार डिस्पेन्सरी में ज़रूर आती।"

अकसर लड़कियों की बात करते हुए जो शरारत की चमक उसकी आँखों में आ जाया करती थी, वह उस समय नहीं थी। उड़कर आगे आए बालों के नीचे माथे पर वही शिकन आ गई थी जो उन क्षणों में आती थी जब वह शिद्दत के साथ कुछ सोच रहा होता था। कोट के उठे कॉलरों के बीच उसका चेहरा काफ़ी छोटा लग रहा था।

"या हो सकता है, किसी स्कूल या कॉलेज में पढ़ाती हो और छुट्टी बिताने के लिए आई हो।"

"होने को कुछ भी हो सकता है।" यह उसने जैसे बात ख़त्म करने के लिए कहा। मुझे लगा जैसे मैंने कोई छोटेपन की बात कह दी हो। दोनों हाथों की उँगलियाँ मैंने उलझा लीं और अपने एक पैर को हिलाने लगा।

"मैं कुछ दिनों के लिए बाहर जाने की सोच रहा हूँ।" यह बात डॉक्टर ने जिस तरह कही, उससे मुझे लगा जैसे यह भी मेरी वजह से हो। क्षण भर मैं अपने को आकाश और पहाड़ियों के फैलाव के बीच देखता रहा—कुर्सी पर बैठे एक छोटे से जीव के रूप में। फिर मैंने अपनी बाँहें समेट लीं। पूछा—"कहाँ जाने की सोच रहे हो?"

"कहीं भी। बहुत दिनों से पैदल सफ़र पर नहीं निकला। छुट्टी के लिए मैंने अर्ज़ी दी तो है पर दिक़्क़त यही है कि अभी मेरी छुट्टी बनती नहीं। आजकल सीज़न के दिन है, इसलिए शायद बिल्कुल ही मंजूर नहीं करेंगे।"

"पर एकाएक छुट्टी का ख़याल कैसे आ गया? पहले तो तुमने कभी बात नहीं की।"

"ख़याल एकाएक नहीं आया, बहुत दिनों से था—तुम्हारे आने के पहले से। तुमसे बात नहीं की, क्योंकि उम्मीद ही नहीं थी कि छुट्टी मंजूर होगी। उम्मीद वैसे अब भी नहीं है। इसलिए कभी-कभी तो इस्तीफ़ा ही दे देने की भी सोचता हूँ।"

Hindi Premi

"क्यों?"

"बस ऐसे ही।"

"सिर्फ़ इसलिए कि बहुत दिनों से पैदल घूमने नहीं निकल सके?"

डॉक्टर कुछ देर चुप रहा। जूते की नोक से घास को रगड़ता रहा। फिर बोला–"सिर्फ़ इसलिए नहीं। वैसे भी यहाँ नौकरी में मेरा दिल नहीं लगता।"

मुझे लगा जैसे यह बात वह मेरी जगह, मेरी तरफ़ से कह रहा हो। सोचा कि नौकरी में दिल न लगने की बात जितनी मेरे लिए सच है, उतनी ही क्या उसके लिए भी है?

"यह जगह तुम्हें पसन्द नहीं, या इस महकमे में ही तुम नहीं रहना चाहते?"

"मुझसे पूछा जाए तो मैं किसी भी महकमे में नहीं रहना चाहता। नौकरी, वह किसी भी तरह की हो, मैं करना ही नहीं चाहता।"

"तो अपनी प्रैक्टिस खोलोगे?"

"प्रैक्टिस तो नौकरी से भी बड़ी बन्दिश है"–वह बोला। "ज़िन्दगी भर एक जगह दफ़्न हो रहने वाली बात है। मेरा बस हो तो मैं कुछ भी न करूँ–सिवा पहाड़ों पर घूमने और लोगों का मुफ़्त इलाज करने के। पर उसके लिए पैसा कहाँ से लाऊँ?"

मुझे लगा कि यह बात वह बनावट के साथ कह रहा है। जिस घर से वह था, उसके पास काफ़ी जमीन और पैसा था। उसने बताया था कि उसका भाई साल भर पहले सारा यूरोप घूमकर आया है। इसलिए उन लोगों ने ब्लैक से तीस हज़ार रुपए का एक्सचेंज लिया था उससे डॉक्टर को ख़ुद भी अहसास हुआ कि मैं शायद ऐसी बात सोचूँ इसलिए उसने कहा–"घर वालों के पास पैसा है...काफ़ी है...पर उससे क्या होता है? उनका पैसा लेना हो तो उससे नौकरी करना ही क्या बुरा है?"

हाथ ज़ेबों में डाले वह अपनी कुर्सी पर झूल रहा था। हर बार कुर्सी पीछे की तरफ़ जाती तो मुझे डर लगता था कि कहीं वह गिर न जाए। हर बार उसे रोकने की बात ज़बान पर आती पर तब तक कुर्सी आगे की तरफ़ आ चुकी होती। घर वालों से उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं, यह बात वह मुझे बता चुका था–एक दिन इसी तरह टैरेस पर बात करते हुए। उस दिन घर से उसके पास चिट्‌ठी आई थी। याने उसे एक दिन के लिए श्रीनगर आने को लिखा था...साथ यह खबर भी दी थी कि सकीना...उसकी बीबी को वे लोग मायके से ले आए हैं। शादी के तीन साल में से सिर्फ़ पहला साल वह सकीना के साथ घर में रहा था...बाद में पढ़ाई के लिए हॉस्टल में चला गया था। हॉस्टल छोड़ने से नौकरी पर आने तक तीन-चार महीने वह इसी शर्त पर घर पर रहा था कि सकीना उस बीच अपने मायके में रहेगी। सकीना से उसकी अनबन शुरू से हो चल रही थी...पर घर के और लोग सकीना को काफ़ी पसन्द करते थे। ख़ासतौर से उसके अब्बा। शादी के लिए सकीना का चुनाव भी

Hindi Premi

अब्बा ने ही किया था। उस घर से उनका पुराना 'जज़्बाती' रिश्ता था। जज़्बाती रिश्ते का ज़िक्र करते हुए डॉक्टर के माथे पर वही शिकन पड़ गई थी, आवाज़ में झुँझलाहट भर गई थी। मुझे लगा था, जैसे उस जज़्बाती रिश्ते के पीछे कोई ख़ास बात हो जिसे वह अपनी ज़बान पर लाने से कतरा रहा हो। वह चिट्ठी पाकर पूरा दिन उखड़ा-उखड़ा-सा रहा था। पर तब से अब तक न तो श्रीनगर गया था और न ही उस चिट्ठी का उसने जवाब दिया था।

"वह अब तक वहीं है?"—मैंने पूछ लिया।

"कौन? वह?" डॉक्टर के होठ सिकुड़ गए। "वहीं होगी...मुझे पता नहीं।"

"तुम इसका फ़ैसला क्यों नहीं कर डालते?"

"फ़ैसला?" कुर्सी को हिलाना उसने बन्द कर दिया। "जैसे कि कोई फ़ैसला इसका हो सकता है!"

"करना चाहो, तो क्यों नहीं हो सकता?"

"हो सकता है, बस, एक ही तरह से..कि मैं कहीं चला जाऊँ और उन लोगों को पता न चलने दूँ कि कहाँ पर हूँ।"

"यह तो फ़ैसले का कोई तरीका नहीं है।"

"बस यही एक तरीका है। मैंने यह भी कर लिया होता, अगर यह हमेशा के लिए हो सकता। पर मैं जानता हूँ कि ऐसा करूँ भी तो वह चन्द दिनों के लिए ही होगा। सिवा जंगल के ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ रहते लोगों को आदमी के वहाँ होने का पता न चले।"

वह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ—शायद मन की उतावली की वजह से। चौड़े कन्धों से ढ़लकर ज़ेबों की तरफ़ आती उसके कोट की बाँहें एक रोबोट की बाँहों जैसी लग रही थी। कुछ देर वह मेरे टेण्ट से ऊपर गेस्ट हाउस से भी ऊपर, बायसरन को जाती पगडंडी की तरफ़ देखता रहा। फिर अचानक, जैसे अपने में लौटकर दायाँ हाथ उसने मेरी तरफ़ बढ़ा दिया और कहा—"मेरा ख़याल है, मुझे अब चलना चाहिए। मैं चुपचाप उसकी आँखों में देखता रहा—यह तय करने के लिए कि उसे जाने देना चाहिए या अभी और रुकने को कहना चाहिए। उसका हाथ मेरे हाथ से कहीं ज़्यादा ठंडा था और दोनों में से पकड़ भी सिर्फ़ मेरे हाथ में ही थी। मैंने अपने हाथ को ज़रा-सा ढीला किया तो उसका हाथ जैसे सरककर अलग हो गया। "अच्छा", उसने कहा,—"अब कल शाम को मिलेंगे।" और इससे पहले कि मैं कुछ भी कहता, वह हाथ हिलाकर बाड़ की तरफ़ बढ़ गया।

मैं वहीं खड़ा उसे देखता रहा—दोनों बाड़ें पार करते और ढलानों के अँधेरे में गुम होते। कहने के लिए दो-तीन अलग-अलग फ़िकरे मेरे मुँह में बने पर मुँह में ही रह गए। ढलान की घास पर फुल बूट की आवाज़, जल्दी-जल्दी—लगभग फिसलकर—

Hindi Premi

नीचे जाती हुई, कुछ देर सुनाई देती रही। फिर ख़ामोशी छा गई—दरिया की आवाज़ और गेस्ट हाउस से आती थालियों की छनक के बावजूद। मेरा ध्यान पल भर अपने पैरों से लिपटे फीके-से साये में उलझा रहा—घास पर तिरछे लेटे डेढ़ फुट के आदमी पर—और जैसे उसे झाड़कर अपने से अलग करने के लिए ही मैं टेण्ट की तरफ़ मुड़ पड़ा। झुककर ताला खोला, बीच की रस्सी को छल्लों से निकाला और फाड़कर दो टुकड़े करने की तरह आगे के पर्दे को हटाकर अन्दर चला गया। पहले मन हुआ कि बिना बत्ती जलाए, जूता उतारकर उसी तरह बिस्तर में घुस जाऊँ...पर घुटना तिपाई से टकरा जाने से हाथ अपने आप बेड-स्विच पर चला गया।

अन्दर सब चीज़ें उलझी-बिखरी हुई थीं—बीते कल की रात से भी बदतर हालत में, जैसे कि उस तरह अपना प्रदर्शन करने का उनमें एक ख़ामोश समझौता हो। कुछ मैले कपड़े लकड़ी के फ़र्श पर पड़े थे, कुछ बिस्तर और तिपाई पर। मक्खन का डिब्बा और छुरी-डबलरोटी भी बिस्तर पर पड़ी थी। कई रातें सोने से बिस्तर जिस हालत में हो सकता था, उसी हालत में था। सुबह सोचा था कि रात को उसे झाड़कर और फिर से बिछाकर सोऊँगा पर उस वक़्त अपने में उतनी हिम्मत नहीं लग रही थी। मक्खन और डबल रोटी वहाँ से हटाते हुए सोचा कि आज नहीं, कल ज़रूर उसे फिर से बिछाऊँगा। पर थोड़ी देर में दूसरी वजह से उसे झाड़ना और फिर से बिछाना पड़ा। सुबह एक टमाटर उसके अन्दर गुम हो गया था जो चारों तरफ़ टटोलने पर भी नहीं मिला। मिला, जब नीचे का गद्दा भी उठाकर झाड़ दिया। बिस्तर में दरअसल वह था ही नहीं; पलंग के नीचे एक कोने में पड़ा था।

बिस्तर बिछकर नया-नया सा लगने लगा तो नाइट-सूट भी धुला हुआ निकाल लिया। उसे जल्दी-जल्दी पहना...पहनते हुए जिस्म पर रोंगटों का सिहरना महसूस किया। जाँघों और कलाइयों के रोंगटों को एक-एक बार हलके से छू लिया। धुले कपड़ों की सरसराहट ने उकसाया कि कमरे की और सब चीज़ें भी समेट दी जाएँ। मैले कपड़े एक गठरी में बाँध दिए। कॉलरों की उधड़न और मोज़ों के सूराख इस तरह ढँक दिए कि गठरी खोलने पर भी अचानक किसी की नज़र उन पर न पड़ सके। जूते और चप्पलें सब अलमारी के नीचे कर दीं। कुर्सियों के मुँह सीधे कर दिए। प्याज़ के छिलके और डबलरोटी के टुकड़े उठाकर पीछे कनस्तर में डाल दिए। किताबें टेण्ट की थैलियों में भर दीं। अब एक ही चीज़ रह गई—उस चिट्ठी के टुकड़े जो सुबह आधी लिखकर फाड़ दी थी। उन्हें हाथ में लिया तो लगा कि उनका मज़मून अब भी जोड़कर पढ़ा जा सकता है। सोचा कि उन्हें फाड़कर उससे भी छोटा कर देना चाहिए। पर वैसा करने की बजाए खुद एक बार पढ़ लेने के लिए उन्हें तिपाई पर फैला लिया। फटे शब्दों की नोकें आपस में जोड़ने में एक अजीब सुख का अहसास हुआ, जैसे कि कुछ जिये जा चुके क्षणों को फिर से जी लेने का हक हासिल हो गया हो।

Hindi Premi

पास-पास रखे बेडौल टुकड़ों को पढ़ने के लिए झुका तो काफ़ी देर उसी तरह झुका रहा। अपने लिखे अक्षरों को इस तरह देखता रहा जैसे वे अक्षर न होकर जीवित प्राणी हों जिन्हें मैंने कुचल दिया हो पर जिनमें अब भी थोड़ी-थोड़ी जान बाक़ी हो। मन में उदासी भरने लगी...जाने इसलिए कि उस चिट्ठी को फाड़ क्यों दिया, या इसलिए कि उसे फिर से जोड़ क्यों लिया।

लिखते वक़्त लगा था कि वह सब ज़रूर लिखना चाहिए और उन्हीं शब्दों में लिखना चाहिए। लिख लेने के बाद लगा था कि इस तरह की चिट्ठी लिखना ही ग़लत है; किसी के सामने आदमी को अपनी कमज़ोरी इस तरह ज़ाहिर नहीं करनी चाहिए। और अब फिर से उसे पढ़ा...कई बार पढ़ा...तो लगा कि चिट्ठी जिस रौ में लिखी गई थी, उसी रौ में पोस्ट भी कर दी जाती तो कितना अच्छा होता...कि तब तो लिखने के पछतावे का कुछ मतलब भी होता जब कि अब यह पछतावा कितना बेमानी है!

एक दिन पहले ही डॉक्टर ने कहा था—"तुमने अच्छा किया जो अब तक शादी नहीं की।" उसकी बात से अच्छा ही लगा था फिर बाद में टीस की एक नोक मन को छू गई थी। मन में आया था कि जिस तरह उसने अपने बारे में सब कुछ बता रखा है, उस तरह मुझे भी बता देना चाहिए। पर फिर सोचा कि ऐसा है ही क्या जो किसी को बताया जाए। डॉक्टर की तकलीफ़, जो भी थी, बहुत साफ़ थी। एक ऐसी तकलीफ़ का ज़िक्र आदमी क्या करे जो कि उसे खुद ही बिल्कुल बेमानी और बेबुनियाद महसूस होती हो?

शरीर दो-एक बार सर्दी से काँप गया तो मैंने तिपाई पर रखे टुकड़ों को समेट लिया। उन्हें मुट्ठी में लिए कुछ देर चुपचाप रहा, फिर बाहर निकल आया। बाहर आते ही डेढ़ फुट का बौना फिर पैरों से चिपक गया। मैंने मुट्ठी के काग़ज़ घास पर बिखरा दिए, वापस टेण्ट में जाने को मन नहीं हो रहा था, इसलिए कुछ देर वहीं खड़ा रहा जब तक कि पीछे गेस्ट हाउस की बत्तियाँ एक-एक करके बुझने नहीं लगीं।

उस दिन शनिवार था।

सुबह से मैं टेण्ट के पोर्च में कुर्सी डालकर बैठा था। सोचा था कि शायद कोई परिचित व्यक्ति सड़क से गुज़रता नज़र आ जाए और उससे दो बातें ही हो जाएँ। पर रात से ही हलकी बूँदें पड़ रही थीं...इसलिए और तो और, कोहली की लड़की नोरा भी घोड़ा दौड़ाती उधर से नहीं गुज़री। रोज़ अकसर वह ग्यारह बजे के करीब घण्टे भर के लिए घोड़ा किराये पर लेती थी और तीन-चार चक्कर उसी सड़क के लगाती थी। मैं टेण्ट के बाहर होता, तो वह दूर से ही आवाज़ देती—"हलो, अंकल, अभी बेड टी ली कि नहीं?" मैं सुबह देर से उठता था और इसके लिए मुझे जानने वाले सभी लोग मेरा मज़ाक उड़ाते थे। सबको मालूम था कि मैं अपना नाश्ता खुद

Hindi Premi

टेण्ट में मँगवाता हूँ...चाय बनाने का सारा सामान मेरे पास है...फिर भी बेड टी सुबह नौ बजे मेरे लिए नीचे के एक होटल से आती है। डॉक्टर तो यह कहता था कि होटल से आई बेड टी सिरहाने पड़ी ठंडी हो जाती है और असली बेड टी ग्यारह बजे मुझे खुद को बनाकर पीनी पड़ती है। नीरा ने यह बात जाने डॉक्टर से सुनी थी या कोहली से, पर टेण्ट के पास से गुज़रते हुए वह इस पर चुटकी लेना नहीं भूलती थी। मैं अगर टेण्ट के अन्दर होता तो वह घोड़ा रोककर उतर पड़ती और टेण्ट के परदे से झाँककर कहती–''बेड टी ला दूँ, अंकल?'' एक बार अन्दर आकर उसने चाय बनाने में मेरी मदद भी की थी जिसके लिए बाद में उसे अपनी माँ से डाँट खानी पड़ी थी। उनकी गैलरी डॉक्टर की गैलरी से सटी हुई थी और उसकी माँ गैलरी में खड़ी होकर देखती रहती थी कि लड़की घुड़सवारी का वक़्त किसी और चीज़ पर तो बरबाद नहीं करती। उसे बरदाश्त नहीं था कि घोड़े वाले को जो बारह आने दिए जाते हैं, उनमें से एक पैसा भी किसी तरह ज़ाया हो। एक ख़याल शायद उसे यह भी रहता था कि लड़की तेरह साल की हो चुकी है और उस उम्र में उसके बारे में हर तरह का एहतियात रखना ज़रूरी है।

पोर्च का तख़्ता कुर्सी के नीचे तक भीग गया था। हवा के रेले से कभी बूँदों के ज़र्रे मुँह और हाथ-पैरों में सिहरन भर जाते थे। लगता था जैसे हवा जिस्म के मुसामों से अन्दर दाखिल हो रही हो और उससे लहू में रोंगटे उठ रहे हों। टेण्ट के आगे का हरियाली का टुकड़ा भीगकर बहुत नरम हो गया था...इतना कि हर बार नज़र पड़ने पर उस पर नंगे पैरों चहलक़दमी करने का मन होता था...पैरों में एक हलकी गुदगुदी तो नज़र पड़ते ही महसूस होने लगती थी। मैं हर दो मिनट में आँख उठाकर डॉक्टर की गैलरी की तरफ़ देख लेता था कि वह वहाँ नज़र आ जाए तो उसे आवाज़ देकर बुला लूँ। पर दो घण्टे देखते रहने पर भी वह नज़र नहीं आया।

ज़हीरा ही अन्दर से बाहर आता दिखाई दिया। कोहली की एकाध बार अपनी गैलरी में नज़र आई–गीले कपड़ों को फटकाती और समेटकर अन्दर ले जाती हुई। उसके बाद वह भी सुनसान हो रही।

साथ के प्लैटो पर भी हलचल नहीं थी। मैडम और उसकी नौकरानी में से किसी की भी सूरत इस बीच टेण्ट के बाहर नज़र नहीं आई। नीचे बस का अड्डा भी लगभग सुनसान था। दो घण्टे से कोई भी बस श्रीनगर की तरफ़ से नहीं आई थी और न ही इधर से कोई बस श्रीनगर के लिए रवाना हुई थी। अड्डे के मज़दूरों में से कोई एक कभी सवालिया निशान की तरह सड़क के बीचों बीच आ जाता और वापस शेड में लौट जाता। वरना ख़ाली सड़क ही नज़र आती, या दो-एक रुकी हुई बसें और पीछे की तरफ़ सोभाना के बनते मकान का ढांचा। सोभाना का मकान दो साल पहले की आग में जल गया था और इसी साल उसने उसे फिर से बनवाना

Hindi Premi

शुरू किया था। उसमें अभी लकड़ी के शहतीर ही आपस में खड़े किए गए थे...न ऊपर छत की टीनें पड़ी थीं, न दीवारें और न ही खिड़कियाँ और दरवाज़े अभी लगे थे। आसमान (टूटती) भीगी लकड़ियों की एक भूल-भुलैया थी जिसके कोनों में पहाड़ी कौवे दुबककर बैठे थे। मकान के नीचे कामगारों के घरों से धुँआ उठ रहा था...जाने उन लोगों ने हांडियाँ चढ़ा रखी थीं, या सिर्फ़ आग ही ताप रहे थे।

मेरे टेण्ट के बाहर का खम्भा रात-रात में पहले से ज़्यादा टेण्ट की (तरफ़)..झुक आया था। तीन दिनों पहले लैण्डस्लाइड में आसपास की ज़मीन उखड़ गई थी। जिससे एक तरफ़ से वह नीचे तक नंगा हो गया। पिछली दो रातों की तरह उस रात में भी यह अन्देशा मन में लिए सोया था कि सोते में वह कहीं टेण्ट के ऊपर ही न आ गिरे। मन था कि टेण्ट वहाँ से उखड़वाकर किसी दूसरी जगह ले जाऊँ लेकिन इतनी अच्छी दूसरी जगह आसपास कहीं नहीं थी। एक ही ओर (घरों) से घिरा छोटा सा टुकड़ा था जो मुझे अच्छा लगता था पर वह बिल्कुल मैडम के टेण्ट के बगल में था। अपना टेण्ट वहाँ ले जाने की बात मुझे सोचने में ही बेहूदा लग रही थी....कि उससे मैडम को....और लोगों को भी ख़ासी ग़लतफ़हमी होगी। जब तक खम्भा (गिर कर) मेरे सिर पर न आ पड़ता, कोई यह मानने को तैयार न होता कि उसकी वजह से टेण्ट वहाँ से उठवाकर ले गया हूँ।

काफ़ी देर पोर्च में भीगने के बाद मैंने पनीर और डबल रोटी के छोटे टुकड़े काटकर नाश्ता और दोपहर का खाना साथ किया और बिस्तर में लेटकर एक किताब के पन्ने पलटता रहा। उससे भी मन ऊब गया तो गेस्ट हाउस से गरम पानी मँगवा कर हाथ-मुँह धोया, कपड़े बदलकर बरसाती कोट पहना और ताला लगाकर बाहर निकल पड़ा।

सड़क की ढलान पर काफ़ी फ़िसलन थी। किसी तरह बाड़ के (ऊपर) चलकर नीचे पहुँचा। डॉक्टर के घर तक पहुँचने के लिए दो-दो भरे हुए गड्ढ़े पार किए। डॉक्टर का कमरा खुला था, पर डॉक्टर कमरे में नहीं था। ज़हीरा कमरे का सारा सामान झाड़-पोंछकर (नए ढंग से) लगा रहा था। उसने बताया कि डॉक्टर सुबह से ही बाहर है, पता नहीं कब वापस आएगा। खाने के वक़्त तक ज़रूर आ जाएगा क्योंकि रात को कोई ख़ास मेहमान खाना खाने आ रहे हैं। यह सन्देश डिस्पेन्सरी का चपरासी उसे दे गया था।

मैंने वहाँ से लौटते हुए एक बार डिस्पेन्सरी में भी देख लिया। पता चला कि डिस्पेन्सरी से डॉक्टर उस दिन जल्दी ही चला गया था। बाहर से बुलावा आया था...पता नहीं, किसी मरीज के यहाँ से या किसी दोस्त के यहाँ से। बूँदाबाँदी तब तक रुक गई थी, फिर भी ज़्यादा दूर तक अकेले घूमने को मेरा मन नहीं हुआ। क्लब के पुल के पास पहुँचा तो क़दम उसी तरफ़ को मुड़ गए। गीले चमकते हुए लकड़ी

Hindi Premi

के पुल पर पाँव ज़रा सा फिसला तो पूरा शरीर एक बार झनझना गया। लगा कि इस सुनसान में अगर दरिया में जा गिरा होता तो शायद किसी को इसका पता तक न चलता। पर जब पुल पार कर लिया तो अपने पर हँसी आई। सोचा कि दस आदमी उस घटना के गवाह भी होते तो मुझे उससे क्या फ़र्क़ पड़ जाता!

अनेक्सी का छोटा पुल कभी पुल की तरह नहीं लगता था पर उस वक़्त उसे भी सतर्क होकर पार किया। हमेशा की तरह वहाँ रुककर अनेक्सी के लॉन की तरफ़ नहीं देखा, जैसे कि आँखों को इधर-उधर हटाते ही पैरों के फिसल जाने का डर हो। क्लब के अहाते में पहुँचकर भी यह अहसास कुछ देर बना रहा कि पुल अभी पार नहीं हुआ और पानी पैरों के चार फुट नीचे से गुज़रकर जा रहा है।

क्लब में उस वक़्त कोई नहीं था...मतलब बाहर का आदमी कोई नहीं था। कुछ देर मैं ख़ाली लाउंज में खड़ा-खड़ा अख़बार और मैगज़ीनें देखता रहा, फिर बार रूम में चला गया। बारमैन अब्दुल्ला काउण्टर पर बाँहें फैलाए जाने सो रहा था, या वैसे ही आँखें मूँदकर पड़ा कुछ सोच रहा था। मेरे अन्दर दाखिल होते ही उसने आँखें खोल लीं और झटके से सीधा होकर ड्यूटी के लिए तैयार हो गया। "आज सर्दी बहुत है साहब!" वह अपना जोकरों जैसा चौखाना स्वेटर नीचे खींचता हुआ मुसकराया। इस तरह वह मुसकराता तभी था जब अकेला होता था। जब चार आदमी आसपास होते, तब वह गम्भीर बना रहता था और अंग्रेज़ी में बात करता था।

"तुम श्रीनगर नहीं गए?"—मैंने पूछा। पिछली शाम वह बता रहा था कि दो दिन की छुट्टी लेकर श्रीनगर जा रहा है...अपने लड़के को देखने। हफ़्ता-दस दिन पहले ही उसे घर से ख़बर मिली थी कि उसके यहाँ लड़का हुआ है...पच्चीस साल और तीन बीवियों के तजुरबे के बाद पहला लड़का। जाना वह उसी दिन चाहता था पर सीज़न ज़ोरों पर था और दिल्ली से कोई उपमन्त्री आने वाले थे, इसलिए उसे आठ-दस दिन रुक जाना पड़ा था।

"कैसे जाता साहब?" वह बुरा सा मुँह बनाकर बोला—"पहले छुट्टी नहीं मिली, और कल शफ़ी साहब ने छुट्टी दी तो आज उधर की सड़क ही टूट गई!" शफ़ी बार का ठेकेदार था जो इण्टर तक डॉक्टर के साथ एक ही कॉलेज में पढ़ा था। यह उसकी ज़िन्दगी का पहला ठेका था जो बड़ी सिफ़ारिशों के बाद उसे हासिल हुआ था। अब्दुल्ला उसके अब्बा का पुराना नौकर था जो एक साल किसी और ठेकेदार के साथ वहाँ बार का काम कर चुका था। उनके श्रीनगर के होटल में भी बार का काम वही सँभालता था। यहाँ उसे इस काम के साथ-साथ बाक़ी सारे काम की चौकसी रखने के लिए भी भेजा गया था। अकेले शफ़ी के बस का वह काम था ही नहीं। पढ़ाई उसने एल.एल.बी. तक की थी और शौक़ उसे था दूसरों की लिखी ग़ज़लें गुनगुनाने का। वह कहा करता था कि पता होता, बार की पढ़ाई उसे इस बार में ले आएगी,

Hindi Premi

तो पहले से ही वह लॉ कॉलेज में जाने की जगह किसी वकील के यहाँ भरती हो जाता। अब भी अब्दुल्ला साथ में न होता तो आने के दूसरे दिन ही वह अपना बोरिया समेटकर वहाँ से चला गया होता। अब भी अब्दुल्ला को छुट्टी उसने आसानी से नहीं दी थी। उसके लिए अब्दुल्ला को कई लोगों की ख़ुशामद करनी पड़ती थी और उन लोगों को शफ़ी से उसकी वकालत।

"कहाँ पर टूटी है सड़क?"–मैंने पूछा।

"ऐश-मुकाम से थोड़ा पहले...पता नहीं, दो मील, तीन मील,...कितना। सुबह अयूब साहब बता रहे थे।" और उसने व्हिस्की-सोडा मिलाकर गिलास मेरे सामने रख दिया।

"अयूब आया है?" हैरानी के साथ मुझे खुशी भी हुई। अयूब से पहली मुलाक़ात इसी बार श्रीनगर में हुई थी–अपने दोस्त सूरी के साथ। उसके बाद कई शामें हम लोगों ने साथ-साथ गुज़ारी थीं–घास पर घूमते हुए, नीडोज़ में बिलियर्ड खेलते हुए, या आहदू सन्ज़ में बियर-कबाब खाते हुए। वह निहायत खुशमिज़ाज आदमी था... इतना कि सिर्फ़ बात करने के लिए ही जैसे उसकी...थी। देखने में ऐसा था कि लगता था, हड्डियों के ढांचे को कोट-पतलून पहनाकर टाई लगा दी गई हो। जब वह पिए रहता तो बिना गाली के बात ही नहीं कर सकता था। थोड़ी-सी गम्भीरता उसमें आती थी तो चार-छः पेग पी चुकने के बाद। फिर दिन भर की ऊब और उदासी के बाद यह जानकर कि वह आया हुआ है, मुझे लगा कि अब शाम तो कम से कम ठीक गुज़र जाएगी। और कुछ नहीं तो उसकी हँसी से ही दिल बहला रहेगा।

"वे सुबह-सुबह आकर पहुँचे हैं–" अब्दुल्ला कुछ खिंची-सी आवाज़ में बोला। "गाड़ी से उतरे, तभी इतने धुत्त थे कि उनसे चला नहीं जा रहा था। अब आने के बाद से भी शफ़ी साहब के कमरे में वे लगातार पी रहे हैं। मुझे डर उनके लिए उतना नहीं जितना शफ़ी साहब के लिए है। कहीं उन्हें कुछ हो-हवा गया तो शफ़ी साहब की यहाँ मुसीबत हो जाएगी। फिर बिल का भी सवाल है। पेग के हिसाब से तो ले नहीं रहे...पूरी बोतल खोलकर बैठे हैं।"

"बिल की तुम फ़िक्र न करो।" मैंने जल्दी-जल्दी घूँट भरना शुरू किया कि गिलास ख़ाली करके शफ़ी के कमरे में चला जाऊँ। "अयूब पैसे के मामले में बहुत खुले दिल का आदमी है।"

"वह तो ठीक है–"अब्दुल्ला आँखें गोल किए कुछ सोचता हुआ-सा बोला, "पर अपने शफ़ी साहब भी तो बहुत ही शरीफ़ आदमी हैं। क्या पता, दोस्ती में उनसे पैसे लें ही नहीं।" और आवाज़ धीमी करके ज़रा आगे को झुकते हुए उसने कहा– "बोतलें, साहब बाहर से गिनकर आती हैं। बड़ा साहब मुझसे एक-एक पेग का हिसाब लेगा। बताइए, अगर दो बोतलें भी कम हो गईं तो मैं साहब से कैसे कहूँगा

Hindi Premi

कि शफ़ी साहब ने अपने एक दोस्त को पिला दी थीं? बड़ा साहब पहले ही नाराज़ रहता है कि लड़का इतना निक्कमा है...इकलौता होने से बाप की कमाई पर ही जीना चाहता है। वकालत पास करके तीन साल में एक पैसे की भी तो कमाई करके इन्होंने नहीं दी। यह ठेका भी बड़े साहब की कोशिशों से ही (मिला) है। अब सोचिए, इसमें भी अगर घाटा पड़ता है तो बड़े साहब को कैसा लगेगा? बड़ा साहब मेरी तरह दिल का मरीज़ है। ज़रा सी बात से उसके ख़ून का दौरा बढ़ जाता है। पर बड़े साहब को तो पता बाद में चलेगा, मुझे ज़रूर आज शाम तक दिल का दौरा पड़ जाएगा।...साहब पर जो ज़िम्मेदारी है, सो तो है ही पर असली ज़िम्मेदारी तो यहाँ की मेरे ही ऊपर है।''

मैंने बड़ा सा घूँट भरकर गिलास ख़ाली कर दिया और चलने को तैयार होकर कहा—''मैं अयूब को समझा दूँगा। वह जितनी पिएगा, उसके पूरे पैसे तुम्हें पेग के हिसाब से दे जाएगा।''

''पूरे पैसे...पेग के हिसाब से...यह आप उनसे ख़ास तौर से कह दीजिएगा। यह भी कि शफ़ी साहब की बात पर वे न जाएँ। साहब तो शराफ़त में पैसे लेने से इनकार ही करते रहेंगे।''

मैं व्हिस्की का बिल देकर वहाँ से चला तो अब्दुल्ला ने पीछे से आवाज़ दी—''साहब!'' मैं रुक गया। वह काउंटर से हटकर मेरे पास चला आया। ''देखिए, शाम तक सड़क ठीक हो गई तो भी अभी मेरी छुट्टी की बात शफ़ी साहब से मत कीजिएगा। जब तक अयूब साहब यहाँ हैं, मैं छुट्टी पर नहीं जाऊँगा। जिस दिन इन्हें श्रीनगर जाना होगा, उस दिन इनके साथ ही इनकी कार में चला जाऊँगा।''

मुझे हँसी आ गई। उसका कन्धा हलके से दबाकर मैंने कहा—''तुम्हें अपने लड़के को देखने की उतनी चाह नहीं जितनी फ़िक्र बोतलों के हिसाब की है!''

''लड़का तो अपना है साहब!'' अब्दुल्ला थोड़ा खिलकर बोला—''हिसाब मालिक का है। मालिक को खुश रखूँगा, तभी तो न लड़के की भी देखभाल कर सकूँगा!''

शफ़ी का कमरा बार रूम के बाईं तरफ़ गुसलख़ाने के सामने था। शफ़ी जब बार रूम में होता तो कमरे में ताला लगा रहता...और जब कमरे में होता तो उसमें अन्दर से चटखनी चढ़ी रहती। उसे कंघी भी करनी होती तो बिना चटखनी चढ़ाए नहीं करता था। उसे बरदाश्त नहीं था कि गुसलख़ाने में आते-जाते लोगों की नज़र कमरे के सामान पर पड़े। हममें से कोई उससे कमरे में मिलने जाता तो वह किवाड़ थोड़ा सा खोलकर देख लेता कि आने वाला कौन है। फिर उसे अन्दर दाख़िल करके उसी तरह चटखनी चढ़ा लेता। कभी इस बारे में उससे कहा जाता तो उसका चेहरा सुर्ख़ हो उठता। वह या तो तब 'प्राइवेसी' के बारे में भाषण करता, या कोई ग़ज़ल गुनगुनाने लगता।

Hindi Premi

पर उस वक़्त, शायद पहली बार, शफ़ी कमरे के अन्दर था और कमरे का दरवाज़ा खुला था। कमरे में दाख़िल होते ही सामने उसका बिस्तर था जिसके नीचे शराब की पेटियाँ रखी रहती थीं। मैंने देखा, अयूब रज़ाई ओढ़कर दीवार से टेक लगाए बिस्तर में बैठा है, चेहरा उसका पी-पीकर सुर्ख हो रहा है और शफ़ी कोने की ड्रेसिंग टेबल के मैले आईने में चेहरा देखता हुआ हजामत बना रहा है। मुझे देखकर दोनों ने ज़रा भी उत्साह नहीं दिखाया। इससे मुझे लगा कि उस वक़्त वे किसी भी और आदमी से मिलने के लिए तैयार नहीं है। अयूब ने हलके से 'हलो' कहकर आँखें मूँद लीं तो मैंने सोच लिया कि मुझे वहाँ ज़्यादा नहीं रुकना चाहिए।

"अब्दुल्ला ने अभी मुझे बताया है कि तुम आज सुबह ही आए हो"– मैंने अयूब से कहा। अयूब ने आँखें खोलकर एक बार मुझे देखा, फिर शफ़ी को। शफ़ी ने आईने से आँखें हटाकर मेरी तरफ़ देखा और धीरे से कहा–"बैठो।"

"मैं बैठूँगा नहीं"–मैंने कहा। "लगता है, तुम लोग कोई ख़ास बात कर रहे थे।"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, तुम बैठो।" शफ़ी जल्दी-जल्दी ब्लेड खींचकर तौलिए से मुँह पोंछने लगा।

"मैं टैरेस पर जा रहा हूँ। अभी थोड़ी देर बाद मिलेंगे"– कहकर मैं चलने को हुआ तो अयूब रज़ाई टाँगों से हटाकर उठ खड़ा हुआ। "मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ"–वह बोला। "मैं भी कुछ देर खुली हवा में बैठना चाहता हूँ।" इस पर शफ़ी ने घूमकर उसकी तरफ़ देख लिया। फिर हजामत का सामान लिए उसे धोने के लिए सामने गुसलखाने में चला गया। अयूब ने हैंगर से उतारकर किसी तरह अपना कोट पहना और मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर बोला–"चलो।"

शफ़ी गुसलख़ाने में ही था जब हम बरामदे से उतरकर लॉन में आ गए। टैरेस की तरफ़ चलते हुए अयूब ने जैसे सहारे के लिए अपनी बाँह मेरे कन्धे पर रख ली। उसके दुबलेपन को जानते हुए भी मैंने उसकी बाँह का हलकापन महसूस किया। हम टैरेस पर पहुँचे तभी बैरा मदन सिंह दौड़ता हुआ आकर दो कुर्सियाँ वहाँ रख गया।..."सूरी नहीं आया?" मैंने बैठते हुए बिना मतलब पूछ लिया जबकि न तो यह सवाल बनता था और न ही उस वक़्त मैं सूरी के बारे में पूछना चाहता था।

अयूब कुर्सी पर बैठने के बाद फिर से अपने में सिमट गया था। मेरी बात सुनकर उसने आँखें उठाईं और जैसे कोशिश के साथ बोला "सूरी? उससे तो मैं आठ-दस दिन से मिला ही नहीं। पता नहीं, वह श्रीनगर में ही है या कहीं बाहर गया है।"

श्रीनगर में रहते हुए सूरी से न मिलना भी मेरे लिए हैरानी की बात थी। मेरे श्रीनगर में रहते वे लोग दिन में कई-कई बार मिलते थे...और बीच में भी कई-कई बार फ़ोन पर बात कर लेते थे।

Hindi Premi

''मैं इस बीच घर से बहुत कम बाहर निकला हूँ।'' अयूब अपनी बाँहों को खोलता बन्द करता हुआ कहता रहा–''दुकान पर तो इन दिनों मैं गया ही नहीं। हमारे यहाँ दरअसल...वह दरअसल...दरअसल कुछ नहीं...।'' और पलभर ग़ौर से मुझे देखने के बाद उसने अपने को कुर्सी पर ढीला छोड़ दिया। ''कुछ ऐसी ही बात थी कि...मैं इस बीच किसी से नहीं मिला। मुझे पता नहीं, कौन श्रीनगर में है, कौन नहीं है। अब लौटकर जाऊँगा तो...पर पता नहीं....मुझे कुछ भी पता नहीं। अपने बारे में और किसी के बारे में मुझे पता नहीं कल रात वहाँ से चला था तो यह सोचकर कि अब...कि मैं अब...पर हटाओ...छोड़ो...मेरे यहाँ आने का....किसी को पता नहीं है। मैं ऐसे ही रात को गाड़ी लेकर निकल गया था। क़ाज़ीगुंड पहुँचने तक यह नहीं सोचा था कि यहाँ आऊँगा। क़ाज़ीगुंड से आगे आकर गाड़ी दाएँ को नहीं मोड़ी, सीधा निकल आया, बस।''

बात करते हुए उसके होठों में सलवटें पड़ रहीं थी। शायद उन्हें ढाँपने के लिए ही उसने मुसकराने की कोशिश की जिससे उसका चेहरा अस्वाभाविक-सा हो गया। मैं उसके चेहरे से आँखें हटाकर दरिया के पार देखने लगा। कई घंटे भीगते रहने से पार का जल भरा-भरा-सा हो उठा था। पेड़ों से गिरे बीज और पत्ते उससे चिपककर उसमें यक़जान हो रहे थे। ऊपर टहनियों पर....बूँदें बीच-बीच में नीचे टपक जाती थीं। हवा चलने पर टहनियों से आवाज़ पैदा होती थी, वह भी पहले से भारी और अलसाई हुई जान पड़ती थी। दरिया के पानी का रंग कल से आज के बीच काफ़ी बदल गया था...वह रंग उस ख़ाकीपन से कहीं गहरा था जो हर बार बारिश के बाद उस पानी में आ जाता था। बीच की बड़ी चट्टान, जिससे कटकर धार की गहरी जालियाँ बनती थीं, अब उस तरह धार को काट नहीं रही थी। पानी चट्टान के नुकीले कोनों को छोड़कर उनके ऊपर से बह रहा था।

मुझे अचानक ख़याल आया कि मैं ख़ामख़ाह अब तक बरसाती पहने बैठा हूँ। उसे नीचे डालकर फिर से कुर्सी पर बैठा तो ऐसा महसूस हुआ कि कुर्सी गीली है। अपनी पतलून को बचाने के लिए मैंने नीचे दोनों हाथों की सीट बना ली।

अयूब चुपचाप मेरी तरफ़ देख रहा था, जैसे मेरे मुँह से बात सुनने की राह देख रहा हो। मैंने हाथों को अपने बोझ से बचाते हुए पूछा–''तुम्हारी कुर्सी तो गीली नहीं है?''

उसने जैसे चौंककर अपने नीचे कुर्सी का होना महसूस किया और उसकी बाँहों को एक बार हाथों से मलकर देख लिया। ''पता नहीं,'' उसने कहा–''लगता है, शायद गीली ही है।''

''कहो तो उधर लाउंज में चलकर बैठें।'' मैंने कहा–''बाहर की तो सभी कुर्सियाँ गीली होंगी।''

''बैठे रहो।'' वह बोला–''सूखी कुर्सियों पर जा बैठने से क्या फ़र्क़ पड़ जाएगा?''

Hindi Premi

"इसलिए कह रहा था कि लाउंज में चलकर आग जलवा सकते हैं। आज सर्दी बहुत है।"

"सर्दी!" वह हँसा। "तो तुम्हें सर्दी लग रही है!" मेरे उठने के लिए तैयार हो जाने पर वह उठा नहीं। अपनी कुर्सी को थोड़ा पीछे को झुलाकर बोला—"तुम चलकर आग के पास बैठो। मुझे सर्दी लगेगी तो मैं भी आ जाऊँगा।"

"मुझे लगता है, अभी थोड़ी देर में फिर बारिश पड़ने लगेगी।"

"बारिश पड़ने लगेगी तो उससे क्या हो जाएगा? जब मन होगा तब उठकर चला आऊँगा।"

मैं कुछ देर खड़ा रहा। उसे देखते हुए लग रहा था कि इस तरह मुझे उसके पास से हटना नहीं चाहिए...वह शफ़ी के कमरे से शायद उठकर ही इसलिए आया था कि कुछ देर मेरे साथ अकेला बैठ सके। पर मैं अपनी जगह उसके साथ अकेला होने से ही बचना चाह रहा था। जितनी बात उससे सुनी थी, उससे आगे की बात...मैं कितना कुछ उस बारे में मन ही मन सोच गया था। जो कुछ सोचा था, उससे उस वक़्त अपने का जोड़ना नहीं चाहता था। उसके खुले होंठ उसके अन्दर के ग़ार के मुहाने की तरह थे। मुझे उस वक़्त अपने में इतनी हिम्मत नहीं लग रही थी कि उस ग़ार में उतर सकूँ।

"तुम क्यों नहीं चलकर कुछ देर कमरे में लेट रहते?"—मैंने कहा।

"तुम जाओ।" वह बोला—"शफ़ी से कह देना, मेरे लिए कुछ व्हिस्की यहाँ भेज दे।"

"तुम अभी और पीना चाहते हो?"

वह फिर मुसकराया। ज़ेब से बटुवा निकालकर बोला, "मेरे पास अभी बहुत पैसे हैं। और ये सब पीने के लिए ही हैं। तुम्हें पता है, मुझे भूख बहुत कम लगती है।"

"मैं इसलिए नहीं कह रहा। मेरा मतलब था कि..."

"तुम जाते हुए शफ़ी से कह देना, प्लीज़। यह बटुवा भी उसी को दे देना... कि अपने पास सँभालकर रख ले। मुझे ज़रूरत पड़ेगी तो मैं उससे ले लूँगा।"

बटुवा उसकी उँगली और अँगूठे के बीच मरे हुए पखेरू की तरह झूल रहा था। मैंने वह उसके हाथ से नहीं लिया। कहा—"अच्छा, मैं अभी शफ़ी को तुम्हारे पास भेजता हूँ।" और वहाँ से चल दिया।

शफ़ी बरामदे में ही मिल गया। वह कमरे का ताला लगाकर बार रूम की तरफ़ जा रहा था। मुझे अकेले देखकर उसने एक नज़र टैरेस की तरफ़ डाली और धीरे से बोला—"उसे वहाँ क्यों छोड़ आए?"

"वह और व्हिस्की माँग रहा है"—मैंने कहा। "तुम्हीं वहाँ से उसे साथ ले आओ।"

Hindi Premi

शफ़ी चाबियों के छल्ले को उँगली में घुमाता हुआ कुछ देर चुप रहकर बोला– ''इसे सँभालना मेरे बस का नहीं है। मैं सुबह से कोशिश करके हार चुका हूँ।''

(वही) बात मेरी ज़बान पर आई, उसे मैंने ज़बान पर ही रोके रखा। लगा कि वह बात सीधे उसी ग़ार में ले जाएगी जिससे मैं निकल आया हूँ।

"तुम्हें उसने कुछ बताया नहीं?''–शफ़ी ने पूछा।

"वह शायद बताना चाहता था''–मैंने कहा। ''पर बात उसने जिस तरह शुरू की थी कि मेरा उसे कुरेदने का मन नहीं हुआ। मुझे बस इतना ही पता उसकी बात से चला है कि वह रात को बिना (घर में) बताए श्रीनगर से चला आया है।''

"...मुझे डर लग रहा है कि यह आदमी कहीं आत्महत्या न कर ले"–शफ़ी ने यह बात जिस ठण्डे लहज़े में कहीं, उससे मेरे शरीर में (लहर) दौड़ गई।

''इस तरह तुम कैसे कहते हो?''

"मुझे इसकी बातों से ऐसा ही लग रहा है। पता है, सुबह आते ही उसने मुझसे बात क्या कही थी?''

मैं कुछ न कहकर उसकी तरफ़ देखता रहा।

''एक तो टूटी हुई सड़क पार करने में अपनी कार तोड़-फोड़ लाया है। फिर आते ही मुझसे बोला कि अपना कमरा मुझे चौबीस घंटे के लिए दे दो और कहीं से मेरे लिए एक औरत का इन्तज़ाम कर दो। अपना बटुवा मेरे हाथ में ठूँसने लगा कि चाहे जितने पैसे ख़र्च हों, यह काम हर हालत में कर दो। और मेरे अकेले के सामने नहीं, यह सब वह अब्दुल्ला और मदन सिंह के सामने कहता रहा। वे अपनी जगह इससे डरे हुए हैं।''

''पर इसका यह मतलब तो नहीं कि..."

''मैं इसे बहुत दिनों से जानता हूँ। यह भी जानता हूँ कि कल वहाँ से यह क्यों चला आया है। मुझे सचमुच डर लग रहा है कि वह कोई ऐसी-वैसी हरकत न कर बैठे।''

मुहाना फिर सामने था और मैं एक तरह से उसके अन्दर क़दम रख चुका था। एक वक़्त था जब दूसरों की ज़िन्दगी के बारे में जानने की बहुत उत्सुकता रहती थी। तब अपनी ज़िन्दगी में वैसे साये नहीं थे, मगर अब वही स्थिति आ गई थी जब न अपने बारे में किसी से बात करने को मन करता था और न किसी के बारे में जानने को। (लगता) था कि साये हर एक के अपने होते हैं...कोई किसी के साथ बाँट नहीं सकता...सिर्फ़ उन सायों में उतरकर अपने सायों को गहरा ही कर सकता है।

''मैं लाउंज में चलकर आग जलवा रहा हूँ।'' मैंने फिर अपने को एक झटके से मुहाने से हटा लिया। ''तुम उसे वहीं ले आओ। लोग वहीं आ रहे हैं...इसलिए लाउंज की भीड़ में उसका मन कुछ भूला रहेगा।'' चलते हुए मैंने देखा, शफ़ी का

Hindi Premi

चेहरा ऐसा हो रहा था जैसे किसी ख़तरनाक मुकाम पर उसे अकेले छोड़ दिया गया हो।

लाउंज में पहले से ही आग जल रही थी। जो थोड़े से लोग वहाँ थे, वे सब आग के इर्द-गिर्द सिमटकर बैठे थे। बीच में दो मेज़ें जोड़कर उस जगह को ही उन्होंने कार्ड रूम में बदल लिया था शायद इसलिए कि कार्ड रूम इतना ठंडा था कि बुखारी जलाने पर भी ठीक से गर्म नहीं होता था। वे तीनों महिलाएँ, जो रोज़ पैसा...रमी में दस-दस रुपए जीतती थीं, बड़ी तत्परता से पत्ते समेट रही थीं। बाज़ी के शुरू से आख़िर तक चलने वाला उनका आधे-आधे पेग का ड्रिंक उनके पास रखा था। इक्कीस साल की गुड्डो जो उनमें से किसी एक की लड़की थी, बुलाती तीनों को 'ममी' कहती थी, उसी तरह अपना ड्रिंक लिए अलग एक कोने में बैठी थी। गुड्डो क्लब में आनेवाले लोगों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण थी...उतना अपनी सुन्दरता की वजह से नहीं जितना अपने (खुलेपन) और लिबास की वजह से। सुबह से शाम तक वह कम से कम तीन चक्कर क्लब के लगाती थी और हर बार अलग तरह की पोशाक में नज़र आती थी। बनावट भी उसकी ऐसी थी कि साड़ी, सलवार-कमीज़ और जीन्स सभी उस पर अलग-अलग तरह से (फबती) थी। जीन्स में वह सोलह साल की लड़की-सी लगती थी जबकि साड़ी में और इयर-रिंग्स में उसकी उम्र असली उम्र से तीन साल और बढ़ जाती थी। चलने और बात करने के ढंग में भी इतना ही फ़र्क़ आ जाता था। कभी वह लाउंज, बैडमिंटन कोर्ट या स्विमिंग पूल के आसपास अपनी उम्र के लड़के-लड़कियों के साथ हल्ला मचा रही होती, और कभी बिल्कुल अकेले कोने में बैठकर कोई किताब पढ़ रही होती। पर जहाँ भी वह होती, वहीं आसपास बहुत से लोग चक्कर काटते नज़र आते। वह शायद होती ही ऐसी जगह पर जहाँ लोग आसानी से चक्कर लगा सकें। आँखें छोटी और होंठ ज़रा मोटे होने पर भी उसका देखने का ढंग ऐसा था कि कोई भी दूसरी-तीसरी बार उसकी तरफ़ देखने से अपने को नहीं रोक पाता था। उसकी ममियों ने उसका और अपना आधे-आधे पेग का कोटा शायद इसीलिए मुकर्रर किया था कि एक दिन वह ज़्यादा पीकर बहक गई थी। बम्बई से आए मिस्टर नेवटिया ने उस दिन क्लब में डिनर दिया था। उस दिन भी हलकी बारिश पड़कर हटी थी और शराब तो मुफ़्त की थी ही। गुड्डो को बार-बार गिलास भरकर देने वाले लोग भी बहुत से थे। "अब इसके बाद नहीं"—कहते-कहते भी वह छः-सात पेग पी गई थी। चौथे पेग के बाद उसने ज़ोरों से हँसना शुरू किया और छठे पेग तक आते-आते अपने प्रशंसकों को बाल पकड़कर झिंझोड़ने लगी। उसके बाद उसने शायद आधा पेग ही और लिया था जब अपने बालों का रिबन खोलकर उसे चारों तरफ़ झुलाती हुई कहने लगी—"मैं जाना चाहती हूँ इस वक़्त कोल्हाई ग्लेशियर पर...उसके खुले जबड़ों में। कोई है जो मेरे साथ ग्लेशियर पर

Hindi Premi

चढ़ेगा? जो घोड़ा बनकर मुझे ग्लेशियर के जबड़ों में ले जाएगा? ग्लेशियर के ऊपर एक झील है...शेषनाग से भी ख़ूबसूरत। कोई है जो उस झील में मेरे साथ गोता लगाएगा? झील शेषनाग से ख़ूबसूरत है...अलपत्थर से भी ऊँची है। तुममें से किसी ने उसका नाम सुना है? जिसे यह रिबन मुझसे लेना हो, वह चले मेरे साथ और उस झील में गोता लगाए। अभी, इसी वक़्त। पहले घोड़ा बनकर मुझे झील तक ले जाए। रातभर झील में गोते खाए। फिर यह रिबन मुझसे ले ले। बोलो, है कोई मर्द तुममें जो मेरे साथ ग्लेशियर पर चढ़ेगा? जो बर्फ़ का पहाड़ पार करेगा? जो झील के एक सिरे से दूसरे सिरे तक तैरेगा और गोते लगाएगा? जो चल सकता हो, वह आए...आए इस वक़्त मेरे साथ...ऊपर...वहाँ...झील में! आए और लगाए गोता! आए...!''

पहले तो लोग उसकी बातों पर हो-हल्ला मचाते रहे, फिर धीरे-धीरे सब तरफ़ ख़ामोशी छा गई। सिर्फ़ उसी की अकेली आवाज़ सुनाई देती रही थी—''आए... चले...लगाए गोता...!'' तब उसकी एक ममी, जो खुद भी काफ़ी पिए हुए थी, उसे लगभग घसीटती हुई लाउंज से बाहर ले गई। वह बाहर जाती हुई भी चिल्लाती रही—''क्यों कोई नहीं? कोई गोता लगाने वाला नहीं? कोई एक भी नहीं...?''

बाद में शाहिद, लतीफ़ और दो-एक और लोग उन्हें उनके होटल में पहुँचाकर आए थे।

आग के पास जमा लोग ताश खेलेने में इतने मशगूल थे कि किसी ने भी आँख उठाकर मेरी तरफ़ नहीं देखा। न ही आसपास मुझे कोई ख़ाली कुर्सी नज़र आई। गुड्डो उस वक़्त साड़ी में थी, इसलिए उसने भी एक नज़र देखने से ज़्यादा महत्व मुझे नहीं दिया। यूँ भी इससे ज़्यादा की नौबत कभी नहीं आती थी, क्योंकि मैं और डॉक्टर क्लब के बाक़ी लोगों की नज़र में बिरादरी बाहर के आदमी थे जो लाउंज, कार्ड रूम और बार रूम से ज़्यादा दिलचस्पी बाहर के टैरेस में रखते थे। दो-चार और लड़के-लड़कियों के बीच एक बार हमने गुड्डो के मुँह से अपने बारे में सुना भी था—''वे आ रहे हैं दोनों...टैरेसियर ब्रीड।''

बैठने के लिए दो ही जगहें थीं—लाउंज के ठंडे कोने में दो सोफ़े, या गुड्डों के बगल में एक सोफ़ा-कुर्सी। मैं अभी सोच ही रहा था कि कहाँ बैठूँ कि अचानक मेरी नज़र खिड़की के बाहर से अपनी तरफ़ हिलते हुए हाथ पर पड़ी। डॉक्टर पोर्च में खड़ा मुझे बाहर आने के लिए इशारा कर रहा था। मैंने जवाब में डॉक्टर की तरफ़ हाथ हिलाया तो गुड्डो ने भी एक बार खिड़की से बाहर देख लिया और अपना गिलास होंठों से छुआती हुई मुसकरा दी।

मैं लाउंज से निकलकर पोर्च में पहुँचा तो डॉक्टर मेरी बाँह थामे मुझे गेट की तरफ़ ले चला। उसके चेहरे से और चलने के अन्दाज़ से लग रहा था कि वह उस वक़्त कहीं पहुँचने की जल्दी में है।

Hindi Premi

"कहाँ चल रहे हो?"—मैंने पूछा।

"अपने क्वार्टर में"—वह बोला। "आज एक मेहमान को खाने पर बुला रखा है।"

"कोई श्रीनगर से आया है?"

"नहीं, यहीं से है। तुम उसे जानते हो।"

"मतलब यहाँ के अफ़सरों में से कोई एक है?"

"नहीं।" डॉक्टर ने मेरी बाँह झटक दी। "तुम्हारा ख़याल है, उन लोगों को खाने पर बुलाऊँगा? उसे बुलाया है आज...तुम्हारी उस को!"

"सच?" मुझे विश्वास नहीं आया। पर साथ ही ख़याल आया...जहीरा भी तो किसी मेहमान के आने की बात कह रहा था।

"सच नहीं तो क्या? मैंने सोचा है तुम्हें भी ले चलूँ। नहीं बाद में तुम मुझे कोसते रहोगे।"

"आज दिनभर तुम कहाँ थे?"

"वहीं था...उसके टेण्ट में।"

"उसके टेण्ट में?"

"हाँ। उसने बुला भेजा था।"

"क्यों?"

"मशविरे के लिए। उसकी तबीअत ठीक नहीं थी।"

"और मैं सुबह से अकेला बोर हो रहा था।" कहते हुए मुझे अयूब का ध्यान हो आया। मन में सोचने लगा कि शफ़ी के कहने से वह टैरेस से उठ आया होगा, या अब तक वहीं होगा।

हम लोग बड़े पुल पर आ गए थे। डॉक्टर मेरी बाँह छोड़कर मुझसे आगे-आगे पुल पार करने लगा। "तुम्हें पता है, अयूब आज श्रीनगर से आया हुआ है?"—मैंने पीछे से कहा।

डॉक्टर ने यह बात जैसे सुनी ही नहीं। दोनों ज़ेबों में हाथ डाल तेज़-तेज़ क़दम रखता हुआ बोला—"जल्दी से आ जाओ। मैं उसे क्वार्टर में छोड़ आया हूँ। वह बेचारी अकेली परेशान हो रही होगी।"

रोज़ की तरह अँधेरा ज़ीना पार करके गैलरी में आए। गैलरी से कमरे में दाखिल हुए। मगर सारा वक़्त मुझे लगता रहा कि जहाँ हम जा रहे हैं, वह डॉक्टर का कमरा नहीं। कोई और ही जगह है जो मेरे लिए बिल्कुल अजनबी है।

कमरे की सारी तरतीब ज़हीरा ने बदल दी थी। सामान पूरे कमरे में ज़्यादा से ज़्यादा फैलाकर रखने की कोशिश की थी। कुछ नई कुर्सियाँ वह शायद टूरिस्ट

Hindi Premi

ऑफिस से उठा लाया था। उन्हीं में से एक पर वह बैठी थी। लग रहा था जैसे तरतीब बदलने के लिए उसे भी वहाँ ले आया गया हो।

मुझे देखकर वह हलके से मुसकराई—उस परिचय के नाते जो इतना एक दूसरे को जाने बिना रोज़ सामने पड़ने वाले व्यक्तियों में रहता है। इस मुसकराहट में कहीं एक संकोच भी था—सड़क और क्लब की जगह डॉक्टर के कमरे में नज़र आने की वजह से। डॉक्टर ने मुझे उसके साथ की कुर्सी पर बैठने को कहा। ज़ाहिर था कि सामने की कुर्सी पर वह खुद बैठना चाहता था।

मेरी कुर्सी कुछ फ़ासले पर थी। फिर भी मैं बैठने लगा तो उसने अपनी साड़ी को थोड़ा समेट लिया। डॉक्टर ने परिचय कराया। उसका नाम था मिसेज़ रोहतगी। आशा रोहतगी। जो बात हैरानी की लगी, वह थी कि वह खुद भी डॉक्टर थी। दिल्ली में प्रैक्टिस करती थी। दो हफ़्तों के लिए अपना काम किसी को सौंपकर घूमने आई थी। आज दो हफ़्ते की जगह पाँच हफ़्ते हो चुके थे, और उसका मन अब भी लौटकर जाने को नहीं था।

मैंने बैठते हुए एक बार अच्छी तरह उसके चेहरे को देख लिया। हर रोज़ दूर से देखकर जो छाप मन में बनी थी, पास से चेहरा वैसा नहीं लगा। लगा कि उसका भराव और ठोड़ी के पास हड्डी के पास का मोड़ कुछ अलग तरह का है। ठोड़ी को काटता एक हलका-सा निशान था...शायद किसी पुरानी चोट का। ऊपरी होंठ के दोनों तरफ़ हलके रोएँ थे। भौंहें और आँखों के बीच डूबती-सी स्याह लकीरें थीं जो पलकें झपकाने पर पलभर के लिए मिट जाती थीं। एक अहसास, जो कई बार होता था, उस वक़्त भी मुझे हुआ कि जिस्म से अलग करके देखने में कोई भी चेहरा उतना ख़ूबसूरत नहीं रहता। सोचा कि अच्छा होता अगर कोने की कुर्सी पर बैठकर उसे रोज़ की दूरी से ही देख सकता।

हम दोनों को कमरे में छोड़कर डॉक्टर थोड़ी देर के लिए बाहर चला गया। शायद ज़हीरा को कुछ बताने के लिए। मैं कमरे में इधर-उधर देखता रहा। बात करने के लिए शुरू के शब्द नहीं मिल रहे थे। ज़बान तक आने से पहले ही शब्दों की आकृतियाँ गड़बड़ा जाती थीं। ज़बान पर बनती लहरें ही महसूस होती थीं। लगता था कि जो कुछ भी मैं कहूँगा, वह झूठा और बेमानी होगा। डॉक्टर ने उसके बारे में जो कुछ बताया था, वह जान लेने के बाद और कुछ जानने की दिलचस्पी भी नहीं रही थी। बल्कि उलझन हो रही थी कि एक लेडी डॉक्टर को खाना खिलाने के लिए कमरे में इतनी तब्दीलियाँ करने की क्या ज़रूरत थी।

मैं कोई बात सोच पाता, इससे पहले मिसेज़ रोहतगी ने पूछ लिया—"आप कहाँ से हैं?"

अच्छा लगा कि बिना मेरी कोशिश के बात का सिलसिला शुरू हो गया है। साथ ही बुरा भी लगा कि डॉक्टर ने उसे मेरे बारे में क्यों नहीं बताया।

Hindi Premi

"पंजाब से"—मैंने कहा। "लुधियाना के एक कॉलेज में पढ़ाता हूँ।"

"गर्मी की छुट्टियों में आए होंगे।"

मैंने सिर हिलाया—इस अन्दाज़ से कि पढ़ाने वाला आदमी सिवा छुट्टियों के और कभी बाहर आ ही कैसे सकता है।

"मेरी भी बहुत इच्छा थी कि मुझे कहीं पढ़ाने की नौकरी मिल जाती"—वह बोली। "जितने भी काम हैं, उनमें सबसे ज़्यादा इज़्ज़त और फु   रसत का काम पढ़ाने का ही है।"

पहले सोचा कि उसे अपनी इज़्ज़त के बारे में बताऊँ। पर फिर लगा कि यह बात गम्भीरता से लेने की नहीं। वह कौन महसूस करके कह रही है। ऐसे ही बात करने के लिए एक बात है।

"पर मुझे यह काम पसन्द नहीं"—सिर्फ़ इतना ही कहना मैंने काफ़ी समझा।

उसने चौंकने के ढंग से आँखें हिलाईं। पल भर मुझे देखती रही। फिर हँस दी। बोली—"क्यों सभी लोग अपने काम के बारे में ऐसा ही सोचते हैं?"

"काम के बारे में भी, और ज़िन्दगी के बारे में भी।" यह वाक्य ऐसे ही ज़बान से निकल गया। कई बार हो जाता है। कह चुकने के बाद आदमी सोचता है कि उसने क्या कहा है। कुछ ढले-ढलाए वाक्य हर वक़्त ज़बान पर तैयार रहते हैं। आदमी ज़रा असावधान हुआ नहीं कि उनमें से एकाध झट से बाहर फिसल जाता है।

रोहतगी ने मुझे ऐसे देखा, जैसे उसका कोई रहस्य मैंने खोल दिया हो। डॉक्टर वापस कमरे में आ रहा था। एक उड़ती नज़र, उसने डॉक्टर पर डाल ली। उसे शायद ख़याल था कि (डॉक्टर ने) रास्ते में मुझसे उसके बारे में बात की है। "यह हैरानी की बात है"—डॉक्टर बैठ गया तो उसने कहा।

"हैरानी की नहीं, हाँ, दुःख की बात ज़रूर है"—मैंने डॉक्टर को पकड़ने की कोशिश करते हुए कहा। डॉक्टर (मेरे) दोनों हाथ (पकड़कर) बैठ गया था और लगातार उसकी तरफ़ देख रहा था। हाथ अलग किए तो मुझे लगा कि वे पसीने से चिपचिपा रहे थे, कान लाल हो रहे थे। शायद उसे अजीब लग रहा था कि (इतनी सी) देर में बात हैरानी और दुःख पर कैसे आ पहुँची।

जब रोहतगी डॉक्टर को बताने लगी कि उसने क्या पूछा था और जवाब दिया था। मेरा ध्यान डॉक्टर की पतलूत के पायंचे की तरफ़ गया। कुछ डोरे बाहर निकले हुए थे। मैं सोचने लगा कि उसका ध्यान उस तरफ़ गया होता तो शायद उसने वे डोरे काट दिए होते। साथ यह भी कि उसने अपना जाँघिया-बनियान शाम को बदला है या नहीं। कमीज़ उसने ज़रूर बदली थी। कोट ताज़ा ड्राईक्लीन हुआ पहना था। मिसेज़ रोहतगी के सेंट की खुशबू पेट्रोल की गन्ध में डूब रही थी।

Hindi Premi

काफ़ी देर बात व्यक्तिगत ज़िन्दगियों को लेकर होती रही (दोनों) के बीच। कहने को वही सब था जो अकसर इस विषय में रहता है। मुझे लग रहा था कि कई बार सुना हुआ एक रिकार्ड फिर से सुन रहा हूँ। रिकार्ड की कॉपी नई है, इसलिए साफ़ सुन पड़ती हैं। चेहरे दोनों के गम्भीर थे। बीच-बीच में कुछ देर के लिए मेरी तरफ़ देखते, तो मैं सिर हिला देता या डॉक्टर की आँखों से लगता था कि उसे मेरी उदासी लग रही है। मिसेज़ रोहतगी की आँखों में एक सन्देह-सा था। मेरा ध्यान बातचीत से हटा रहता तो तेज़ एसिड और मुरदा जिस्म मेरी आँखों के सामने आ जाते जो कुछ (दिन पहले) श्रीनगर के मेडिकल कॉलेज में देखे थे। डॉक्टर और मिसेज़ रोहतगी के साथ-साथ मैं अपने जिस्म की कल्पना भी उसी रूप में करता। फिर तीनों की तश्तरियाँ लेकर आते ज़हीरा की नज़र से देखने की कोशिश करता।

"तुम्हारी तबीअत ठीक नहीं है क्या?" खाना लग गया तो प्लेट मेरे हाथ में देते हुए डॉक्टर ने पूछ लिया।

मुझे लगा कि अब मिसेज़ रोहतगी भी मेरी तरफ़ देखेगी और ऐसी ही कोई बात कहेगी। ख़याल ग़लत नहीं निकला।

"लग रहा है", वह बोली—"कि या तो ये दो रातें सोये नहीं हैं या इन्हें हलका बुख़ार है।"

बुख़ार के ज़िक्र से मैंने अपने माथे और बांहों को छूकर देख लिया। पलभर के लिए सन्देह अपने मन में भी जागा। फिर लगा कि नहीं, सिर्फ़ ऊब की वजह से ऐसा है। दिनभर के अकेले रहने की ऊब ही आँखों से झलक रही है। फिर मुझे एकाएक अयूब का ध्यान हो आया। लगा, मुझे उस वक़्त डॉक्टर के कमरे में नहीं, क्लब में होना चाहिए था। "मुझे आज खाना नहीं खाना चाहिए"—मैंने हाथ की प्लेट को एक अजनबी नज़र से देखते हुए कहा।

"आप खाना खाइए"—मिसेज़ रोहतगी मुसकराकर बोली। "आपके पास दो-दो डॉक्टर हैं।"

पर तब तक मैं खाना खाने की बात से बहुत दूर चला गया था। मैं प्लेट मेज़ पर रखकर ज़ेबों में हाथ डाले चुपचाप खड़ा रहा।

"तुम सचमुच नहीं खाओगे?"—डॉक्टर बोला। "दहीवाला गोश्त मैंने ख़ास तौर से तुम्हारे लिए बनवाया है।" पर उसके स्वर में आग्रह नहीं था। उसे शायद अफ़सोस था कि क्यों मुझे साथ खाने के लिए बुला लाया। मुझ से इस तरह के रूखे व्यवहार की उसे उम्मीद नहीं थी।

"खाने को खा भी सकता हूँ।" मैंने कहा—"पर लगता है, खाकर तबीअत और ख़राब होगी। शाम से तुम्हें ढूँढ़ भी इसीलिए रहा था कि मिल जाओ तो कोई दवाई ले लूँ।"

Hindi Premi

डॉक्टर ने मेरी तरफ़ नहीं देखा। चुपचाप अपनी प्लेट में गोश्त डालता रहा। उसे लग गया था कि मैं झूठ बोल रहा हूँ। मिसेज़ रोहतगी अपनी प्लेट में गोश्त और पुलाव लेकर थोड़ी दूर चली गई।

"तुमने आते हुए नहीं बताया"—डॉक्टर ने सिर उठाकर मेरी तरफ़ देखा।

"यहाँ जल्दी पहुँचना था"—मैंने कहा। "इसलिए सोचा कि तुम डिस्पेन्सरी खोलने के लिए रुक जाओगे, तो ख़ामख़ाह देर होगी।"

"अगर तुम्हें लग रहा है कि तुम्हें इस वक़्त आराम करना चाहिए, तो तुम..."

मिसेज़ रोहतगी खिड़की से बाहर देख रही थी, जैसे उसे किसी बात से कोई मतलब ही न हो।

"मैं तुमसे कहना ही चाहता था", मैं जल्दी से बोला—"हालाँकि बुरा लगता है, पर बेहतर यही होगा कि मैं तुम लोगों से इजाज़त लेकर चला जाऊँ। लेटे रहने से सुबह तक तबीयत ठीक हो जाएगी।"

"तुम चाहो तो मैं थोड़ी देर में आकर तुम्हें देख जाऊँगा।"

"उसकी ज़रूरत नहीं होगी। सुबह तक तबीयत ठीक न हुई, तो डिस्पेन्सरी में आकर तुमसे दवाई ले लूँगा।"

डॉक्टर ने फिर कुछ नहीं कहा। सिर झुकाये अपनी प्लेट के चावल काँटे से समेटता रहा कि अब मुझे और नहीं रुकना चाहिए। ख़ामोशी का वक़्फ़ा कुछ ज़्यादा ही लम्बा हो गया था।

कमरे में था, तो वहाँ से चलने को मन हो रहा था। निकलकर ज़ीने में आया, तो चले आने के लिए अफ़सोस होने लगा। सोचा कि डॉक्टर को तो शायद उतना अजीब न लगा हो, पर मिसेज़ रोहतगी ने अपने मन में जाने क्या समझा होगा।

ज़ीने के आगे लकड़ी का छोटा सा बरामदा था। उससे एक सीढ़ी उतरकर कच्ची पगडंडी शुरू होती थी। पगडंडी पर आते ही दायाँ पैर पानी से भरे गड्ढे में पड़ गया। फिसलन ज़्यादा नहीं थी। इससे किसी तरह अपने को सँभाल लिया, वरना मुँह के बल गिरने में कसर नहीं रह गई थी। आते हुए डॉक्टर से टार्च लाना भूल गया था। एक बार सोचा कि वापस जाकर ले आऊँ। अपने टेण्ट तक ऐसे कितने ही गड्ढे रास्ते में और पड़ते थे। पर फिर यह सोच कर इरादा छोड़ दिया कि अभी थोड़ी देर में शायद डॉक्टर को भी बाहर जाना होगा। मन में ईर्ष्या भी हुई कि वह अकेला मिसेज़ रोहतगी को उसके टेण्ट तक पहुँचाने जाएगा। और शायद...।

पगडंडी पर एक-एक क़दम जमाकर रखता हुआ मैं वापस टेण्ट पर आ गया।

दाएँ जूते में पानी भरा था, इसलिए टांगों पर अपना (वज़न) हमवार नहीं लग रहा था। सामने सोभाना का मकान था...टेढ़ा-मेढ़ा मकाननुमा ढाँचा। लालटेन की रोशनी उसके शहतीरों को यहाँ-वहाँ से उजला कर रही थी। कुछ देर खड़ा सोचता रहा कि

Hindi Premi

जूता उतारकर हाथ में ले लूँ, या उसी तरह गीले मोज़े में चिपचिपाता चलता चलूँ। साथ यह भी कि चलना अब किस तरफ़ को है। अपने टेण्ट की तरफ़, क्लब की तरफ़ या किसी और तरफ़? मन टेण्ट में जाने का नहीं था। उसी वक़्त जाकर मैं बिस्तर का मुँह नहीं देखना चाहता था। क्लब में जाने का भी नहीं था, क्योंकि अयूब के सामने पड़ने से भी मैं बचना चाहता था। कभी-कभी मन हुआ करता था कि रात को दूर तक दरिया के साथ-साथ टहला जाए, पर उस वक़्त यह ख़याल भी बेतुका लग रहा था।

जूते को ज़मीन पर झटककर मैंने उसमें से पानी निकालने की कोशिश की, फिर फ़ीता खोलकर उसे उतार लिया। (सोचा) कि आदमी अगर कहीं भी न जाना चाहे, तो कम से कम वह जूता उतारकर तो फिर से पहन ही सकता है।

फीते अभी ठीक से कसे नहीं थे कि लालटेन की रोशनी शहतीरों में आड़ी-तिरछी लकीरें बनाती खुले ज़ीने से नीचे आने लगी। वैसे घिसी हुई पेशावरी चप्पल, मैली सलवार और फटे हुए कोट में सोभाना को अँधेरे में भी पहचान लेना मुश्किल नहीं था। एक गन्ध हमेशा उसके पास से आती थी—जाने वह उसके कोट की थी या शरीर की। सड़क पार करके वह मेरे पास आ खड़ा हुआ।

''क्या हुआ है साहब?'' उसने पूछा—''पैर में चोट आ गई है क्या?''

फ़ीता कसकर मैंने दोनों हाथ कोट की ज़ेबों में डाल लिए और कहा—''नहीं, एक चींटा जूते में चला गया था।'' सोचा कि अगर सचमुच चींटा जूते में चला गया होता, तो शायद मैं कहता कि पैर गड्ढ़े में पड़ गया था।

''आज डॉक्टर साथ नहीं आया?''

''उसके यहाँ कोई मेहमान आए हैं।''

''हाँ, मैंने देखा था'' वह बोला—''ऊपर के टेण्ट वाली मेम साहब थोड़ी देर पहले डॉक्टर के साथ आई थी।''

मुझे लगा कि वह ज़रूरत से ज़्यादा नज़दीक आने की कोशिश कर रहा है। मगर उस वक़्त मुझे यह बुरा नहीं लगा।

''मैं अपनी खिड़की पर खड़ा था।'' वह कहता रहा, ''रोज़ जब आप और डॉक्टर इधर से निकलकर ऊपर जाते हैं, तब भी मैं आप लोगों को देखा करता हूँ।''

मैंने नज़र उठाकर एक बार सामने के शहतीरों को देख लिया। समझ में नहीं आया कि उस ढांचे का कौन-सा हिस्सा है जिसे वह खिड़की बता रहा है। ''इसका मतलब है, तुम रोज़ रात को देर तक जागते रहते हो''—मैंने कहा।

"मैं तो तब भी जाग रहा होता हूँ, जब डॉक्टर आपके टेण्ट से बाहर आता है। दो साल से, जब से मकान जला है, मुझे रात को नींद आती ही नहीं। इधर जब से फिर से बनवाना शुरू किया है, तब से तो बिल्कुल ही नहीं आती। सुबह के क़रीब घंटा-डेढ़ घंटा (सोता हूँ) बस।''

Hindi Premi

"तुमने डॉक्टर को दिखाया है?"

"कई डॉक्टरों को दिखाया है"—वह बोला। "यहाँ भी और श्रीनगर में भी। पर किसी की भी दवाई असर नहीं करती। मुझे तो यह सोचकर और भी नींद नहीं आती कि यह बीमारी कहीं मेरी जान ही न ले ले। मेरा लड़का अभी बहुत छोटा है। लड़कियाँ दोनों ब्याहने लायक हो गई हैं। बड़ी की तो ख़ैर उतनी फ़िक्र नहीं, क्योंकि ज़बान से गूँगी है। उसे कोई आसानी से ब्याहने को तैयार नहीं होगा। छोटी की तो शादी इस साल या अगले साल जैसे-तैसे कर डालनी है। डरता हूँ कि ऐसा न हो कि दवाई लेकर एक रात आँख ऐसी लगे कि सुबह फिर खुले ही नहीं। इसी से डॉक्टर से कहता हूँ कि वह नींद की दवाई न दे, कोई ताक़त की दवाई दे, जिससे अपने आप मुझे नींद आने लगे। घरवाली रही नहीं कि वही मेरे बच्चों की देख-रेख कर लेती। लड़के की पढ़ाई की वजह से उन सबको श्रीनगर में छोड़ रखा है। लड़कियाँ जवान हैं और वहाँ रहना चाहती हैं, इससे मुझे मन में और भी खटका बना रहता है।"

"फिर क्यों नहीं तुम लगकर एक बार अपना इलाज करा लेते?" फिर खुद ही लगा कि मैंने यह बात हमदर्दी से नहीं कहीं। शायद (उस वक़्त) मैं उससे ज़्यादा उसकी लड़कियों की बात सोच रहा था, (ख़ास तौर) से गूंगी लड़की की, जिसकी शायद ज़िन्दगी भर शादी नहीं होनी थी।

"मुझे अपने इस डॉक्टर ने पचास रुपए के इंजेक्शन बताए थे"—वह बोला। "अब बताइए, मैं इंजेक्शनों के लिए पचास रुपए कहाँ से लाऊँ, मकान के लिए टीन खरीदने को तो पैसा मेरे पास है नहीं। क्या आप डॉक्टर से कहकर सरकारी खर्चे पर मेरे लिए इंजेक्शन नहीं मँगवा सकते?"

मेरा गीला पैर जूते में ठंडा पड़ता जा रहा था। उसे गर्म करने के लिए मैंने धीरे-धीरे चलना शुरू कर दिया। "मैं कल डॉक्टर से बात करूँगा"—चलते-चलते मैंने कहा। "मँगवा सकता होगा, तो वह ज़रूर मँगवा देगा।"

"मँगवा सकता है, साहब!"—सोभाना पीछे से कहता रहा। "उसे हर चीज़ का अख़्तियार है। आप उससे बोलेंगे, तो वह ना नहीं करेगा। आपका वह दोस्त है, इसलिए आप की बात ज़रूर मान लेगा।"

"कह दिया है न, मैं उससे बात करूँगा"—मैंने चिढ़े हुए स्वर में कहा। मन में सोचा, यह आदमी शायद इतने दिनों इसी घात में लगा होगा कि कब मुझसे अकेले में बात करने का मौक़ा मिले और मुझसे वह यह बात कहे, जैसे कि उसका इलाज और उसकी बेटियों की शादी, सब कुछ मेरे डॉक्टर से सिफ़ारिश करने पर ही निर्भर करता हो।

बैरियर के पास से बाएँ को मुड़कर काफ़ी आगे निकल आने पर अहसास हुआ कि मैं अनजाने ही क्लब के रास्ते पर चल रहा हूँ। जहाँ लोगों की एक टोली, जिसमें

Hindi Premi

दो या तीन लड़कियाँ थीं, कहीं से लौटकर आ रही थी। उनकी आवाज़ों से कहीं ऊँची एक और आवाज़ उनके साथ-साथ चल रही थी—उनके ट्रांज़िस्टर की। आवाज़ से बचने के लिए मैं थोड़ा तेज़ चलने लगा। जब काफ़ी आगे निकल गया, तो देखा, क्लब की तरफ़ मुड़ने वाली सड़क भी पीछे छूट गई है।

चक्करदार पहाड़ी सड़क पर चलते हुए मेरे साथ अकसर यह होता है कि रुकने का मुकाम मुझे हमेशा अपने से बीस-तीस गज़ के फ़ासले पर नज़र आता है—वहाँ, जहाँ से कि अगला मोड़ मुड़ता है। पर उस मोड़ तक पहुँचने-पहुँचने में वह मुकाम उतना ही और आगे नज़र आने लगता है। पता नहीं, उस मुकाम तक पहुँचने के लिए मैं कितनी देर चलता रहा। रुका, तब भी वह मुकाम उतना ही आगे था। दाईं तरफ़ मुंडेर के पास रुककर मैं दरिया की धार को देखने लगा। घाटी की दोनों-तीनों धारें वहाँ तक आकर एक हो गई थीं। ढलान गहरी होने से पानी पर कई-कई जालियों का ताना-बाना बुना जा रहा था। बीच धार में कोई चीज़ चमकती नज़र आ रही थी। वह शायद किसी सफ़ेद चट्टान की उभरी हुई नोक थी।

मैं वहाँ खड़ा रहा, देखता रहा और सोचता रहा—अपने बारे में, उस चिट्ठी के बारे में, जो उस दिन लिखकर फाड़ दी थी। लग रहा था कि दरिया की आवाज़ एक ऐसा परदा है, जिसकी ओट में रहकर कुछ भी सोचा जा सकता है। अपने को हर तरह से कमज़ोर होने दिया जा सकता है। तेज़ धार के पास सोचा हुआ सब कुछ दरिया की आवाज़ में खो जाता है। उसके बहाव के साथ बह जाता है। अपने टेण्ट की तरह नहीं कि जो कुछ सोचो, वह वहीं का वहीं रुका रहेगा और रातभर आसपास मँडराता रहेगा।

ठट्...ठट्...ठाट्...ठाट्...ठाट्...मेरा लुढ़काया एक पत्थर पानी की धार में जाकर गुम हो गया। मैंने फिर दूसरा पत्थर लुढ़काया, फिर तीसरा। साथ ही मन ही मन अपने फाड़े हुए पत्र के टुकड़े जोड़कर फिर से पढ़ने लगा।

पत्र डाक में छोड़ दिया होता, तो जिसके नाम लिखा गया था, अब तक उसके हाथ में पहुँच गया होता। उसने पढ़कर शायद मुँह बिचकाया होता और उसे एक तरफ़ रख दिया होता। मन में सोचा होता कि—

ठक्...ठक्...ठाक्...ठाक्...

मैं काफ़ी देर अपने को पत्थर लुढ़काता देखता रहा, जैसे अपने को नहीं, किसी और को देख रहा होऊँ। उसे, जो अपने ऊँचे क़द के बावजूद कभी-कभी बहुत छोटा लगता था।

यही आदमी, जो अकसर बहुत हँसता है, मगर उदास रहता है, जो कभी अपने को ठीक से समझ नहीं पाता, कभी तय नहीं कर पाता कि यह चाहता क्या है, इसे लगता है कि यह चाहकर भी अपनी, सिर्फ़ अपनी, ज़िन्दगी नहीं जी पाता। कई दूसरों की ज़िन्दगियाँ अपने अन्दर समेटकर जीता है। इस हद तक कि अपनी ज़िन्दगी इसे

Hindi Premi

उन सब ज़िन्दगियों में घिरकर गड़बड़ा गई लगती है। यूँ इसे अपने लिए हर चीज़ की ज़रूरत महसूस होती है—घर की, प्यार की और उस सब की, जो कि एक आम आदमी अपनी ज़िन्दगी में चाहता है। शरीर की भूख से यह कई बार बुरी तरह छटपटाता है। कभी-कभी पागलपन की हद तक पहुँच जाता है। और शारीरिक भूख से ही नहीं, एक स्त्री के साथ जीने की हर तरह की भूख से। मगर...कोई चीज़ है, जो ऐन वक़्त पर इसे भाग खड़े होने के लिए मजबूर कर देती है। एक हादसा है, जो पहले भी इसके साथ हो चुका है। इस बार फिर हो रहा है। यह हादसा इसकी अपनी ज़िन्दगी का नहीं, दूसरों की ज़िन्दगी का है। फिर भी यह अपने को उससे बचा नहीं पाता।

और 'वह'। एक लड़की, जिसके लिए इसके मन में बहुत आकर्षण था। शायद अब भी है। 'शायद' इसलिए कि तब से अब के बीच हादसे की शुरुआत हो चुकी है।

जब उससे भेंट हुई थी, तो लगा था कि इस बार ऐसा नहीं होगा। 'उस' एक के साथ यह ज़िन्दगी ठीक से काट सकेगा। पहले जिन-जिनके पास से ऐसे मौक़े पर यह भाग खड़ा हुआ था, उनसे वह बहुत अलग तरह की थी। उसकी आँखों में एक चमक थी, जो किसी और की आँखों में इसने नहीं देखी थी। वह चमक इसी के सामने पैदा होती थी—सिर्फ़ इसी को देखकर।

सब कुछ ठीक था—उस दिन तक जिस दिन तक कि उसने वह बात नहीं की—वही बात जहाँ से हादसा शुरू होता था। ब्याह, यह शब्द ही हादसा की शुरुआत के लिए काफ़ी था। इस शब्द से पहले तक उनकी ज़िन्दगी और लोगों की ज़िन्दगियों से अलग थी। मगर इस शब्द के साथ वह उसी में ढलने लगी थी। इसे लगा था, जैसे अब चन्द दिनों में वह अपना आज का रूप बदलकर एक और ही रूप में ढलने जा रही है। उसकी आँखों की चमक एक चुभती हुई कर्कश दृष्टि में बदलने जा रही है। अपने आसपास कितनी ही बार ऐसा होते देखा था—राजी और सुखदेव की ज़िन्दगी में, कृष्णा और प्रकाश की ज़िन्दगी में। और किसकी ज़िन्दगी में नहीं?

ब्याह करके 'उस' के साथ ज़िन्दगी बिताने की बात वह खुद भी सोचता था। मगर अब जब यह बात असलियत बनकर सामने आने लगी, तो पहाड़ पर छुट्टी बिताने के बहाने यह यहाँ चला आया था।

और आने के बाद से ही सोच रहा था कि उसे क्या लिखे। इनकार कर दे? इनकार के कई मज़मून इसने दिमाग़ मे बनाए थे, मगर वे सब इसे खुद को ही झूठे और ग़लत लगे थे। और इनकार की बात सोचते हुए यह सवाल भी मन में उठ खड़ा होता था कि क्या दरअसल यह इनकार ही करना चाहता है?

इसे लगता था कि यह सिर्फ़ बात को टाले रखना चाहता है। इसका ख़याल था कि बात इतनी आसानी से इस हद तक नहीं पहुँचेगी, उसमें कोई न कोई अड़चन

Hindi Premi

ज़रूर आ पड़ेगी। मौक़ा ही शायद नहीं आएगा कि इसे अपनी तरफ़ से इनकार करना पड़े। पर ऐसा नहीं हुआ। स्थिति ऐसे ही सामने आई थी कि इनकार करना था, तो इसे ही करना था। पर जब इनकार करने की बात सोचता, तो इसे उसकी आँखों की चमक याद आती, और उसके होंठों के कोने, जो बात करते वक़्त बहुत ख़ूबसूरत लगते थे। जब सोचता कि नहीं, ब्याह कर ही लेना चाहिए, तो इसे उसका शरीर बहुत दुबला लगने लगता। उसके दाँतों का ख़याल आने लगता कि वे किस कद्र टेढ़-मेढ़े हैं। उसकी जो बात इसे सबसे बुरी लगती, वह थी उसकी जल्दबाज़ी। इतनी जल्दी ब्याह की बात चलाना उसने क्यों ज़रूरी समझा?

उसे अच्छा लगा होता अगर प्रस्ताव इसकी तरफ़ से होता और उसने इनकार कर दिया होता। खुद अपराधी बनने से कितना अच्छा रहता, यदि अपराध इसके साथ हुआ होता?

उस दिन पत्र लिखा था—'उस' के नाम नहीं, किसी दूसरे के नाम। ऐसे व्यक्ति, के जो दोनों को अच्छी तरह जानता था। उसमें लिखा था कि अभी विवाहित जीवन के लिए मैं अपने को तैयार नहीं कर पा रहा—कि यह बात वह किसी तरह 'उसे' समझा दे। यह भी लिखा था कि मुझे लगता है, उसके साथ ब्याह करने के लिए मैं सही आदमी नहीं हूँ। इसके कई कारण भी लिखे थे। पर पढ़ने पर लगा था कि जो कुछ लिखा है, वह सिर्फ़ चालाकी है—अपने साथ-साथ दूसरे को झुठलाने की बेमानी कोशिश। लिखने के बाद कितनी ही देर चिट्ठी वैसे ही रखी रही थी—मक्खन, डबल रोटी और बिखरे काग़ज़ों के बीच। बाद में सैंडविच बनाते हुए फिर अपने अकेलेपन का अहसास होने लगा, तो चिट्ठी को कई टुकड़ों में फाड़ दिया था।

एक लुढ़कते पत्थर के साथ मुंडेर के नीचे की कुछ मिट्टी भी सरक गई, तो पैर घुमाकर मैं सड़क पर उतर आया। हवा में झूलते पैरों को नीचे ठोस ज़मीन मिल गई, तो भी शरीर में खतरे की (झुरझुरी) कुछ देर बनी ही रही।

रास्ता उतराई का था। सड़क जगह-जगह से गीली थी; इस पर काफ़ी सँभलकर चलने की ज़रूरत थी। मगर मुझे लग रहा था जैसे पैरों से घुटनों तक का हिस्सा बाक़ी जिस्म से अलग हो और उसे किसी तरह ढोकर जिस्म को आगे ले जा रहा हो। जिस रफ़्तार से चल रहा था, उससे यह भी लगता था, जैसे कहीं पहुँचने की जल्दी हो—हाँ, टेण्ट तक पहुँचने में मैं ज़्यादा-से-ज़्यादा वक़्त लेना चाहता था, क्योंकि जो कुछ सोच रहा था, उसे रात भर के लिए अपने साथ नहीं ले जाना चाहता था।

कुछ रास्ता चलकर क्लब की बत्ती सामने नज़र आने पर सोचा, क्लब में एकाध पेग लेकर ही वापस टेण्ट में जाऊँगा।

क्लब में उस समय भी काफ़ी चहल-पहल थी—ख़ासतौर पर कार्ड रूम और टेबल टेनिस के कमरे में। दिल्ली से आई एक पार्टी टेबल टेनिस के कमरे में शोर मचा

Hindi Premi

रही थी। एक-एक गेंद पर वाहवाही होती थी और तालियाँ पीटी जाती थीं। मगर कार्ड रूम में दसों मेज़ें घिरी रहने पर भी बिल्कुल ख़ामोशी छाई थी। खेलने के अलावा कई-एक ऐसे भी लोग वहाँ थे, जो सिर्फ़ घूम-घूमकर दूसरे लोगों के पत्ते देख रहे थे। उन्हें इसमें शायद खेलने से ज़्यादा मज़ा आ रहा था। अपने को वे काफ़ी महत्वपूर्ण भी समझ रहे थे। (गुड्डो) उस वक़्त टेबल टेनिस के कमरे में थी और उसकी तीनों (ममियाँ) कार्डरूम में अपनी-अपनी बाज़ी खेलने के अलावा उन (तीनों में) गुड्डो की भी चिन्ता थी—हर दो एक मिनट में उनमें से किसी न किसी की निगाह टेबल-टेनिस के कमरे की तरफ़ घूम जाती थी। ध्यान उधर से हटने पर उसे साथ के खिलाड़ी से पूछना पड़ता था—कौन सा पत्ता फेंका है, मिस्टर बिंदरा? ईंट का नहला?

लाउंज में दो-तीन लोग ही थे—अखबारों और मैगज़ीनों को जल्दी-जल्दी पलटकर उन्हें वापस रखते हुए। वे शायद कार्ड रूम से अपने साथियों के उठकर आने के इन्तज़ार में थे। लॉन और बैडमिण्टन कोर्ट ख़ाली थे। कॉरिडॉर से बाररूम की तरफ़ जाते हुए मैंने देखा कि बैरा लतीफ गिलासों से भरी ट्रे लेकर आता हुआ मुँह के बल गिर गया है और बाक़ी दोनों बैरे अपना काम छोड़कर उसकी बुढ़ियाई हुई नाज़ुक हड्डियों को मल रहे हैं। बारमैन अब्दुल्ला अपना चौखाना स्वेटर नीचे को खींचता हुआ उन तीनों को डाँट पिला रहा था—"सबके सब हरामखोर हैं! मैं कहता हूँ, अगर तुमसे गिलासों का वज़न भी नहीं उठाया जाता, तो घर से नौकरी करने को क्यों चले आते हो? क्यों नहीं बीवी से कहते कि तुम्हारे खाने-सोने का बंदोबस्त करके तुम्हें घर पर ही रखे? माँ के मोठ मालिक के पैसे को (बाप का) पैसा समझते हैं! मालिक को दिन में बीस रुपए की आमदनी नहीं होती और ये बीस रुपए का माल गिराकर ऊपर से अपनी हड्डियों को मलवाते हैं! अगर तुम्हारे पैर ख़ुदा ने इतने ही नाज़ुक बनाए हैं तो मुझसे कह दो, मैं खुद जाकर कार्ड रूम में ड्रिंक दे आया करूँगा।"

"कोई व्हिस्की खुली हुई है, अब्दुल्ला?"—मैंने उसका ध्यान बँटाने के लिए पूछा।

"हाँ, है साहब।"

"कौन सी?"

"गुड व्हिस्की साहब!" उसने बिना मेरी तरफ़ देखे कहा और फिर उसी तरह उन तीनों क़ी लानत-मुलामत करने लगा। मैं बाहर बार में चला गया।

बार रूम में वही लोग थे, जो रोज़ सब लोगों के चले जाने पर वहाँ जाते थे। वे उन्हीं जगहों पर बैठे हुए थे, जो उन्होंने अपने-अपने लिए निश्चित कर रखी थीं। (कुर्सी पर बैठे) कलकत्ते के मिस्टर पण्डित (व्हिस्की) के गिलास को सिर से ऊँचा उठाकर सामने की तिपाई पर झुके (थे)।...उनका भारी शरीर कुर्सी में ठीक से समाता नहीं था, फिर भी खुले सोफ़े पर बैठना उन्हें पसन्द नहीं था। उनके ख़याल में सोफ़े और कुर्सी में वही अन्तर था, जो एक अधेड़ औरत और एक कम (उम्र लड़की) में

Hindi Premi

होता है—खुद पचास पार कर चुकने पर भी अधेड़ (कहे जाने से) उन्हें सख़्त नफ़रत थी। जितना उनका सिर तिपाई पर झुकता (जाता उतनी) उनकी बलगमी आवाज़ ऊँची होती जाती—"लगता नहीं है दिल मेरा ऽऽउड़ेऽ...उ-उ-उ-उ ज-ज-ज-ज-डे-डे-...उड़ेऽदयाऽऽ र में...लगता नहीं है दिल मेराऽऽ।'' और (गाना बीच) में ही छोड़कर उनका क़िस्सा शुरू हो गया—''एक दफ़ा का ज़िक्र है....शफ़ी साहब—ज़रा ग़ौर से सुनिए, यह चुटकुला नहीं है, सच्चा वाकया है—तो ज़िक्र है, कि हम चार आदमी मयखाने से पीकर निकले—फिर भी सुबहो-शाम चले आते हैं तेरे मयखाने में...एक और बड़ा—तो हाँ, साहब, हम चार आदमी मयखाने (से बाहर) निकले। चारों के चारों धुत्त! किसी को पता नहीं कि उसका घर पहले आएगा या दूसरे का। सुन रहे हैं शफ़ी साहब? किसी को अपने (घर का पता नहीं)।—हाँ, तो साहब, न इसे पता है, न उसे और सब अपनी-अपनी हाँक रहे हैं। एक कहता है, पहले उसका घर आएगा। दूसरा कहता है, नहीं पहले उसका घर आएगा। और मिस्टर पण्डित, फ़रमा रहे हैं कि सबसे पहले हमारा घर आएगा। हाँ, तो साहब, झूमते-झामते वे चारों के चारों एक घर के बाहर पहुँचकर रुकते हैं। अब ये किसी (को भी) पता नहीं कि यह घर है किसका। नीचे से घर वालों को आवाज़ लगाई जाती है। ऊपर से एक औरत झुककर कहती है कि उसके ('वे') घर पर नहीं हैं। इस पर पता है, इधर से क्या कहा जाता है? पता है कि बीबी, यह तो हमको भी मालूम है कि तुम्हारे 'वे' घर पर नहीं हैं। पर ज़रा नीचे आकर देख लो कि हममें से कौन तुम्हारे ('वे') हैं और उन्हें अपने साथ ऊपर ले जाओ। समझे साहब? तो...लगता नहीं है दिल मिराऽऽ मेऽऽरा...लगता नहीं ऽ है दिल मेरा ऽऽ।"

....मिस्टर पण्डित का शागिर्द खोसला बांहें और टांगे फैलाए पड़ा-पड़ा दाद दे रहा था—ग़ज़ल, क़िस्सा और शेर, सब पर वाह! क्या खूब! वाह!

ऊँचे स्टूलों से बार के काउण्टर पर झुके हुए मिर्ज़ा और कोहली झुकी हुई नज़रों से उनकी तरफ़ देखते हुए धीमी आवाज़ में बात कर रहे थे। कोहली के वहाँ तीन मकान थे। दो साल पहले जब आग लगी थी, तीनों ही जलने से बच गए थे। दूसरे लोगों को मुआवज़े के तौर पर सरकार की तरफ़ से ज़मीन भी मिली थी और नकद रुपया भी, कोहली को कुछ नहीं मिला था। इसलिए वह रोज़ की तरह सरकार को गालियाँ निकाल रहा था—''यह भी मैणी...कोई सरकार है? इससे पैसा वसूल करना हो, रात को चुपचाप तेल छिड़ककर अपने घर को आग लगा (दो)। अपना भी फ़ायदा और जिनके घर साथ जलें....उनका भी। लकड़ी मुफ़्त, ज़मीन मुफ़्त। कहीं से दस-बीस मन (सीमेंट) ले आओ और नया मकान खड़ा कर लो। मारे गए वे, जिन्होंने (दो) पैसे का तेल अपने घर पर नहीं छिड़का। मैणी...(उन्होंने) अपना सारा सामान पहले बाहर निकाल लिया था, पर उसका क्लेम अलग से दिया। तुम इस साल देखना,

Hindi Premi

भापे, कि किसके मकान को आग लगती है और किसके नहीं।'' मिर्ज़ा एक-एक घूट भरता, और हो-हो करके हँसने लगता। ''तू भी एक ही हरामी है! धरमसाला का पैसा (अलग) से खाता है, लोगों से मुफ़्त की शराब अलग से पीता है और सरकार से दस-बीस हज़ार का क्लेम अलग से मार लेगा! साले, (ख़ुदा) से तो डरा कर! लड़की तेरी जवान हो रही है, अब तो तू इन (हरकतों) से बाज़ आ जा!'' कोहली ने अपना गिलास ज़ोर से काउण्टर पर पटका और आँखें तरेरकर उसकी तरफ़ देखा—''भापे, तू बात तो समझता है नहीं, और जो मुँह में आता है बके जाता है। मैं अगर दूसरे लोगों की तरह बदमाश होता, तो उसी साल ही न..." मिर्जा ने उसका हाथ दबा दिया। अब्दुल्ला मुँह में गाली बकता हुआ काउण्टर की तरफ़ वापस आ रहा था।

शफ़ी कोने की सीट पर बैठा दिन का हिसाब जोड़ रहा था, मगर मिस्टर पण्डित की वजह से उसका हिसाब जुड़ नहीं रहा था। मुझे देखकर उसने बैठने के लिए इशारा किया और फिर से अपना जोड़ करने लगा। अब्दुल्ला व्हिस्की का गिलास मेरे सामने रख गया। कुछ देर और नाकाम कोशिश करके शफ़ी ने एक लम्बी साँस के साथ रजिस्टर बन्द कर दिया। ''बवाल ही है''—वह ज़ेब से कंधी निकालकर बालों को ठीक करता हुआ बोला। ''बिक्री सोलन की होती है और बोतल 'ब्लैक एंड व्हाइट' की ख़त्म हो जाती है। कमबख़्त अब्दुल्ला को आँख से तो ठीक नज़र आता नहीं। बस, जो बोतल हाथ में आ जाती है, उसी को गिलास में ढाल देता है।''

"अयूब क्या कर रहा है?''—मैंने गिलास होटों से छुआते हुए पूछा। मुझे अफ़सोस था कि अब्दुल्ला मेरे गिलास में यह ग़लती कभी नहीं करता था।

''मेरे कमरे में पड़ा है।'' शफ़ी ने जल्दी-जल्दी दो-एक बिल काटे और रजिस्टर और कापियाँ दराज़ में रखने लगा।

''उसके होश-हवास कुछ ठीक हुए कि नहीं?''

''उसके होश-हवाश ठीक होंगे जब...तुम्हारे जाने के बाद पता है, उसने क्या हरकत की?''

मैं घूँट भरता हुआ उसकी तरफ़ देखता रहा।

शफ़ी ने दराज़ बन्द किया और चाबी सँभालकर अन्दर की ज़ेब में डाल ली। कुर्सी से उठते हुए अब्दुल्ला से उसने कहा—''बाक़ी बिलों के पैसे अब अपने पास रख लेना और मुझे सुबह उनका हिसाब देना।'' फिर मेरी तरफ़ देखकर बोला—''आओ।''

मैंने जल्दी से अपना गिलास ख़ाली किया और पैसे निकाल कर सामने काउण्टर पर रख दिए। शफ़ी पहले बाहर पहुँच गया था। मेरे बाहर आते ही उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। बोला—''आज उसने अपना तो बेड़ा ग़र्क किया ही होता, साथ मेरा भी कर दिया होता।''

Hindi Premi

"कैसे?"

"बस, कुछ पूछो नहीं!"

"पर किया क्या उसने?"

"किया क्या...गुड्डो को हाथ से पकड़कर उसने नहीं खींचा बस, इतनी ही कसर रह गई थी।"

"क्या?" मुझे अफ़सोस हुआ कि मैं उस वक़्त वहाँ क्यों नहीं रहा।

"बस, उसे इस वक़्त तुम अस्पताल में देखते और मेरा पटरा अब तक श्रीनगर पहुँच गया होता। वह लड़की ख़ुद ही इतनी दबंग है, फिर तीन-तीन माँएँ उसकी पहरेदारी करने वाली हैं।"

"ये तीनों उसकी...?"

"तीनों बहनें हैं।" उसने मेरी बात बीच में ही काट दी। "एक की–जिसके दाँत बड़े-बड़े हैं–इसके बाप से शादी हुई थी। बाक़ी दोनों कँवारी है–मतलब कानून के लिहाज़ से कँवारी हैं। इसके बाप ने छोटी उम्र से ही उन दोनों को भी सँभाल लिया था–और अब तक सँभाले हुए है। सुना है, ठेकेदारी में इनकी मदद से उसने बड़े-बड़े काम निकाले हैं।...पर मैं तो तुम्हें अयूब की बात बता रहा था।"

"उस वक़्त बिल्कुल धुत्त होगा वह!" मैंने कहा, हालाँकि यह बात कहने की नहीं थी। शफ़ी जानता था कि मैं उसे धुत्त छोड़कर ही आया था।

"वह तो तुमने देखा ही था।"

"फिर?"

"तुमने यह तो अब तक पूछा ही नहीं कि उसने हरकत क्या की थी!"

"हाँ, यह तो तुमने बताया ही नहीं!"

"गुड्डो इधर लेडीज़ टॉयलेट की तरफ़ आई थी। हर एक-डेढ़ घण्टे में वह इधर आकर अपना मेक-अप करती है। अयूब को मैं टैरेस से लाकर अपने कमरे में छोड़ गया था। अच्छी तरह कम्बल-वम्बल डालकर लिटा दिया था, जिससे उसे नींद आ जाए। पर पता नहीं कैसे, जिस वक़्त गुड्डो लेडीज़ टॉयलेट से बाहर निकली, यह जेन्ट्स टॉयलेट के बाहर खड़ा था।"

मैंने मन ही मन गुड्डो और अयूब को टॉयलेट रूम्ज़ के बाहर आमने-सामने खड़े देखा और मुझे हँसी आने को हुई।

"समझ लो, मेरी खुशकिस्मती थी कि बार रूम में बियर की बोतलें खत्म हो गईं और मैं नया क्रेट निकालने इधर चला आया। आया तो देखा कि बटुआ हाथ में लिए यह गुड्डो से कह रहा है कि उसे उससे कुछ बात करनी है...वह कमरे में चलकर इसकी बात सुन ले।"

मुझसे अब हँसी रोकी नहीं गई। पर हँसने के बाद मैंने शफ़ी से माफ़ी माँग ली।

Hindi Premi

"मैंने देखा, गुड्डो की भँवें तनी हुई हैं। मैं अगर वक़्त पर न पहुँच गया होता, तो शायद वह सैण्डल उतारकर इसकी मरम्मत करने लगती। मुझे देखते ही उसने पूछा कि यह कौन बदतमीज़ आदमी है....इसे अभी पुलिस के हवाले कर देना चाहिए। हालाँकि थानेदार अपना दोस्त है, फिर भी मुझे लगा कि बात अगर फैल गई, तो उसके साथ अपना भी कबाड़ा हो जाएगा। ख़ैर यही थी कि उसकी किसी ममी को इस वक़्त इधर आने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। मैंने गुड्डो को समझाया कि बाहर का आदमा है, पीकर बहक गया है। वह अब फिक्र न करे, मैं इसे सँभाल लूँगा। मैंने अयूब को गले से पकड़कर दो-चार झटके दिए, पाँच-सात मोटी-मोटी गालियाँ सुनाईं और अपने कमरे में धकेल दिया। गुड्डो को फिर समझाया कि वह बात को फैलने न दे, क्योंकि इसमें उसकी भी बदनामी होगी। उसने ख़ैर बात मान ली, बल्कि जाते हुए मेरा शुक्रिया भी अदा कर गई।"

"तो इसका मतलब है कि कल से तुम उससे..."

शफ़ी ने मुझे झटक दिया—"यहाँ मुश्किल से जान बची है, और तुम साले समझते हो कि..."

हम लोग उसके कमरे के बाहर पहुँच गए थे। अयूब को अन्दर बन्द करके बाहर से उसने ताला लगा रखा था। ताला खोलकर उसने आहिस्ता से अन्दर झाँककर देखा। बोला—"देखो, कैसे मुर्दे की तरह पड़ा है!"

दरवाज़ा उसने पूरा खोल दिया। अयूब पतलून-कोट में बिस्तर पर बेहोश-सा पड़ा था। एक बाँह और टाँग बिस्तर से बाहर फैली थी। बटुआ अब भी उसके हाथ में था।

"बाद में मुझसे कह रहा था कि वह इसके साथ आने को तैयार थी," शफ़ी दबी ज़बान में बोला—"मैंने ही उसे नहीं आने दिया। लड़कर वापस आया है, मुसीबत यहाँ आकर मेरी कर दी है!"

"बाप से किस बात पर लड़ आया है?" अब इस बात से अपने को बचाना सम्भव नहीं था।

"उसने इसे बेदखल करके जायदाद का इसका हिस्सा इसके बीबी-बच्चों के नाम कर दिया है।"

"क्यों?"

"इसकी हरक़तों की वजह से, और क्यों! दुकान से जितना पैसा इसके हाथ लगता था, यह बन्दर किसी को दे आता था। इसका कोई दोस्त ही है, जिसकी वह बीवी है... ।"

उसी वक़्त अचानक अयूब ने आँखें खोल लीं। एक मोटी सी गाली देकर उठने की कोशिश करता हुआ बोला—"हरामी, तुझसे कहा नहीं, इसमें सौ-सौ के छह नोट हैं? तुझे जितने चाहिए ले ले और..."पर बात पूरी करने से पहले ही वह वापस बिस्तर में लुढ़क गया।

Hindi Premi

शफ़ी ने इशारा किया कि मुझे अब वहाँ और नहीं रुकना चाहिए। मेरे दहलीज़ से पैर बाहर रखते ही उसने चटखनी चढ़ा ली। वह शायद डर रहा था कि अयूब की आवाज़ उस कमरे से बाहर किसी को न सुनाई दे जाए।

बरामदे से उतरकर मैं लॉन में आ गया। गदरी घास की हलकी ठण्डक गीले जूते के अन्दर से भी महसूस हुई। मन था कि कुछ देर टैरेस पर बैठकर ही वापस जाऊँगा। दूर से देखा कि कोई और भी टैरेस पर अँधेरे में टहल रहा है। मेरे क़दम पलभर के लिए रुके, फिर इस ख़याल से कि डॉक्टर ही न हो, मैं टैरेस की तरफ़ बढ़ गया। ख़याल ग़लत नहीं था। डॉक्टर कोट की ज़ेबों में हाथ डाले टैरेस पर चहलक़दमी कर रहा था।

"हलो, डॉक्टर!"

उसने चौंककर मेरी तरफ़ देखा। अँधेरे में उसका चेहरा ठीक से दिखाई नहीं दिया, फिर भी मुझे लगा कि उस वक़्त मेरा वहाँ आना उसे अच्छा नहीं लगा।

"आओ!"—उसने धीमी आवाज़ में कहा।

"कितनी देर से यहाँ हो?"

"अभी आया हूँ—दस-पन्द्रह मिनट पहले।"

"अभी कुछ देर रुकोगे?"

"हाँ ऽऽ।"

वह इतना गम्भीर था कि मुझे और वहाँ रुकना या उससे बात करना ठीक नहीं लगा। "मैं टेण्ट में जा रहा हूँ"—मैंने कहा। "तुम्हें टहलते देखकर इधर चला आया था। अब कल मिलेंगे।"

डॉक्टर ने सिर हिला दिया। सिर हिलाने का अन्दाज़ उसका अपना ही था। मैं चलते-चलते उसकी तरफ़ देखकर मुसकराया, जैसे कि उसकी पीठ थपथपा रहा होऊँ और बरामदे की तरफ़ बढ़ गया।

वही गदरी घास, कार्ड रूम, लाउंज, बैडमिण्टन कोर्ट। पुल से पहले एक बेंच पर इलाहाबाद के प्रोफ़ेसर श्रीधरानी और उनकी फ्रान्सीसी पत्नी हमेशा की तरह ख़ामोश और एक दूसरे से तटस्थ। मेरे पैर पुल पर आकर रुक गए और मैं नीचे से गुज़र कर जाते तेज़ पानी को देखने लगा। (क्रमशः)

Hindi Premi

बीज-नाटक

हिस्व्*

बीज नाटक

मोहन राकेश

कुकी

कुकू

वेटर

बिट्टू

और सारी दुनिया।

एक कोना : बाग़। बेंच। रास्ता। दूसरा कोना : कैफेटेरिया। कोल्ड ड्रिंक्स के बोर्ड। लकड़ी की कुरसियां।

* इस पृष्ठ के बाईं ओर ऊपर एक क्लिप का गहरा निशान है। उससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि इसके साथ और पृष्ठ भी संलग्न रहे होंगे। राकेश की एक डायरी में एक पन्ने पर कई बार 'हिस्स्व', 'हिस्व्व' और 'हिस्व्' लिखा गया है। संभवतः यह रचना पूरी करने के बाद शीर्षक को अन्तिम रूप से तय करने की प्रक्रिया का प्रमाण है। —सं.

Hindi Premi

दिल्ली-कलकत्ता रेल-यात्रा

कालका मेल : 21-3-68

डब्बे में सिर्फ़ तीन आदमी। नेमि (नेमिचन्द्र जैन), सुरेश (सुरेश अवस्थी) मैं। छिटपुट चर्चा कई विषयों की। नेमि का लेख पढ़ लिया। खाना खा लिया। अब तीनों आदमी ख़ामोश हैं। सुरेश सोने की कोशिश में हैं। नेमि खिड़की से बाहर झाँक रहे हैं। मैंने यह कापी खोल ली है।

सोचा था, रंगमंच की बात लिखूँगा। आपस में हुई बातचीत के कुछ टुकड़े। पर एक तो हिचकोले खाते लिखना मुश्किल लग रहा है, दूसरे दिमाग़ कहीं और है।

बात वही है। लिखने के माहौल की। तीन पक्ष हैं। अपना आप, घर, बाहर। तीनों में कुछ-न-कुछ ताकत है। इनमें से घर और बाहर को कम, अपने को ज़्यादा सही किया जा सकता है। लेकिन सोचना आसान है, कर सकना नहीं।

नहीं चल रहा। फिर देखूँगा।*

* यह दिल्ली से कलकत्ता की रेल-यात्रा की डायरी का पहला पन्ना है। इस यात्रा और 'अनामिका कला संगम' के समारोह का पूरा विवरण राकेश ने इसी डायरी में कई पन्ने छोड़कर अंग्रेज़ी में लिखा है, जिसे इसी खंड में प्रकाशित डायरी में पृष्ठ 134-137 पर यथा स्थान दिया गया है। –सं.

Hindi Premi

पुनर्वास

प्रकाश ने रूमाल से मुँह और माथे का पसीना पोंछा।

बरामदा काफ़ी ठंडा था, या तेज़ धूप में आने के कारण उसे ऐसा लग रहा था। नीले कपड़ेवाली बड़ी-बड़ी चिकें आधे बरामदे को घेरे थीं। पुरानी फ़र्श सीलन की बू दे रहा था। रौशनदान के पास दुबकी हुई कबूतरों की जोड़ी पाँव फड़फड़ा रही थी... नूररर...नूररर...नू...।

माई उसकी चिट लेकर जिस कमरे में गई थी, एक उसी कमरे के बाहर खस की टट्टी लगी थी। बाईं ओर भूरे रंग की तख़्ती पर छोटे-छोटे सफ़ेद अक्षर चमक रहे थे—मिस ए.बी. चावला, डायरेक्टर पुनर्वास।

टिक टिक टिक टिक टिक तेज़ी से किसी की उँगलियाँ टाइपराइटर पर चल रही थीं। कबूतरों की जोड़ी चोंच भिड़ा रही थी—थप थप थप थप थप—नू तररर...टररर...।

माई अन्दर से आई। उसका दुपट्टा मैला था। चेहरे पर हलकी-हलकी मूँछें थीं। आँखों का भाव ऐसा था जैसे सारा संसार एक ओर दाँव लगा रहा हो और वह दूसरी ओर।

"मिस साहिबा बुला रही हैं।" उसने उसी की चिट, मसली हुई, उसके हाथ में दे दी।

एक साथ मिस साहिबा के कई चेहरे प्रकाश के सामने घूम गए—कटे हुए बाल, गोल चेहरा, होंठों पर लिपस्टिक, दुबला साँवला, रेखाओं से लदा हुआ चेहरा, कुढ़ा हुआ भाव...अधखिचड़ी बाल, सुनहरे फ्रेम का चश्मा और ईवनिंग इन पेरिस की गन्ध...।

उसने दुपट्टा ठीक किया, सलवार के पायँचों को देखा और अन्दर चली गई।

सबसे पहले टेबल लैंप की रोशनी उसकी आँखों में टकराई। फिर रेखाएँ स्पष्ट हुईं—हरे कपड़ेवाली बड़ी-सी मेज़, लाल गद्देदार कुर्सियाँ, कढ़े हुए भारी पर्दे, फूलदान, पैडेस्टल फैन, रंगीन जूट कार्पेट। वह क्षण भर के लिए ठिठक गई। सामने बैठी हुई मिस साहिबा ने उसे देखकर कुर्सी से टेक लगा ली। वह चेहरा उसके लिए नया नहीं था। इंटरव्यू बोर्ड में वह इन मिस साहिबा को देख चुकी थी। उसके पूछे हुए प्रश्न अब भी उसे

Hindi Premi

याद थे। उनकी आँखों का भाव अब भी वही था—जैसे किसी चीज़ की निगरानी कर रही हों, या किसी अज्ञात खतरे के लिए अपने को तैयार कर रही हों। प्रकाश ने हाथ जोड़ दिए।

"हूँ...तो तुम आज जॉइन कर रही हो...अ...अ...क्या नाम है तुम्हारा?...मिस लूथरा! हाँ!...बैठो, कुर्सी ले लो।...मैं अभी तुम्हें अटेंड करती हूँ।"

प्रकाश कमीज़ को नीचे से ठीक करती हुई कुर्सी पर बैठ गई। मिस साहिबा के सामने एक और महिला बैठी थीं। अन्दर आकर उसने उनकी पीठ ही देखी थी—जालीदार ब्लाउज़ के नीचे से झलकता हुआ मांस का नदमी विस्तार। ब्लाउज़ या तो छोटा हो गया था, या जानबूझकर छोटा सिलाया गया था। ढीला मांस जैसे शिकंजे में कसा था। कुर्सी पर बैठकर उसने उनका चेहरा देखा—रूखापन और अस्वाभाविक-सी लाली। गरदन से लेकर पेट तक मांस की तीन अलग-अलग इकाइयाँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। छोटी-छोटी आँखें जैसे माथे से बाहर फूट पड़ना चाहती थीं।

"यह मेरी नई असिस्टेंट है", मिस साहिबा उसकी ओर संकेत करके उनसे बोलीं।

महिला ने एक आँख से उसे देखा और फिर काग़ज़ काटने की छुरी को उठाने-गिराने की क्रिया में व्यस्त हो गईं।

"और मिस लूथरा", मिस साहिबा उससे बोलीं, "ये हैं श्रीमती सावित्री देवी... नाम तुमने सुना होगा।"

प्रकाश ने सिर हिलाया और मुसकराकर हाथ जोड़ दिए। श्रीमती सावित्री देवी ने मुसकराकर धीरे से सिर हिलाया। प्रकाश की आँखें कई क्षण उनके चेहरे पर टिकी रहीं। समाचार पत्रों में बड़े-बड़े पोस्टरों पर उसने वह नाम पढ़ा था...अमेरिका द्वारा प्रशान्त सागर में किए गए अणु-विस्फोट का विरोध करने के लिए श्रीमती सावित्री देवी सात दिन अनशन व्रत रखेंगी...7 से 9 मार्च तक महिला मंडल का बारहवाँ अधिवेशन गोखले हाल में होगा। सम्मेलन का सभा-नेतृत्व श्रीमती सावित्री देवी करेंगी...'काश्मीर भारत का अविभाज्य अंग है।'—श्रीमती सावित्री देवी का भाषण...।

मिस साहिबा कुहनियाँ मेज़ पर रखकर आगे को झुक गई थीं।

"खन्ना साहब ने बहुत प्रशंसा की थी कि ऐसी असिस्टेंट मुझे और नहीं मिल सकती। मलहोत्रा साहब का भी टेलिफ़ोन आया था। मैंने उनसे कहा था कि अच्छी लड़की है तो मैं ज़रूर ट्राई करूँगी। आई वांट...और उनकी आँखें उसके चेहरे पर आ टिकीं। "मेरी पहली असिस्टेंट की तरह न हो कि यहाँ की बात वहाँ और वहाँ की बात यहाँ!"

उनकी आँखें सावित्री देवी की ओर मुड़ गईं ओर मुड़ गईं और सावित्री देवी की आँखें उनकी ओर।

"बट शी इज़ ए गुड गर्ल, आई हेयर से।...आगे इसके काम पर निर्भर करता है।"

Hindi Premi

"खन्ना की सिफारिश है?" सावित्री देवी बोलीं। उनके चेहरे पर काफ़ी परुषता थी, फिर भी उसे देखकर ऐसे भारी बैठे हुए मर्दाने स्वर की कल्पना नहीं होती थी।

मिस चावला ने जैसे सतर्क होकर सँभलते हुए सिर हिलाया।

"आजकल तुम्हारी उससे अच्छी पटती है?"

मिस चावला क्षणभर होंठ काटती रहीं।

"अ...और सब बातें ज्यों-की-त्यों ही हैं।...मगर मुझे एक अच्छी असिस्टेंट की ज़रूरत थी और उन्होंने कहा था कि यह लड़की बहुत अच्छी है। मैंने कहा कि अच्छी लड़की है तो...अ...मैं ज़रूर चांस दूँगी। तुम्हें पता है मैं मिस दुग्गल के हाथों कितना तंग थी।"

मिस चावला पैर से पैर को मल रही थीं। उनके लाल सैंडल पास ही उतरे हुए रखे थे। पैर नीचे से इस तरह खाए हुए थे जैसे दिन भर वे पानी में काम करती हों। पैरों के ऊपर बड़ी-बड़ी सफ़ेद चकत्तियाँ थीं जो पिंडलियों तक चली गई थीं। बात करते हुए उनकी बाँहें हिल रही थीं। सावित्री देवी स्थिर आँखों से उनकी ओर देख रही थीं।

"खन्ना आजकल सरस्वती के लिए काम कर रहा है। उसने कइयों से कहा है कि इस बार सावित्री को टिकट नहीं लेने दूँगा।"

मिस चावला की आँखों में परेशानी का भाव उमड़ आया। सावित्री देवी ने काग़ज़ काटने की छुरी को तलवार की तरह हाथ में पकड़ लिया।

"मैं कहती हूँ मेरी जूती को! मुझे टिकट लेना है तो मैं ऐसे भी लेकर दिखा दूँगी। जिस दिन हिन्दू-सिख फसाद हुआ था उस दिन सरस्वती कहाँ थी? उस दिन हमें एक सौ तीन टेंप्रेचर हो गया था और इलैक्शन के समय टिकट लेने के लिए यह आए हैं। मैं सबको समझ लूँगी, खन्ना हो, चाहे कोई हो। मैंने बहुत देखे हैं...माँ के खसम...!"

उनके चेहरे की अस्वाभाविक लाली और भी अस्वाभाविक हो गई थी। कनखी से वे उसकी ओर भी देख रही थीं। प्रकाश को अपने गाल और कान कुछ नर्म महसूस हुए। सावित्री देवी की दृष्टि में उसके प्रति भी विरोध और प्रतिहिंसा की भावना झलक रही थी। मिस चावला की उँगलियाँ उलझ गई थीं और चेहरे पर परेशानी और बढ़ गई थी।

"मिस लूथरा, तुम माई के साथ जाकर अपनी टेबल देख लो।...मैं अभी थोड़ी देर में...अ...तुम्हें बुला भेजूँगा।" उनके माथे पर पसीने की बूँदें भी झलक रही थीं। उन्होंने अपने सफ़ेद कॉटन के ब्लाउज़ के अन्दर से रूमाल निकालकर माथा पोंछा और घंटी बजाई। माई अन्दर आ गई।

"मिस लूथरा को इनकी टेबल दिखा दो", उन्होंने कहा।

प्रकाश माई के पीछे-पीछे कमरे में चली गई।

Hindi Premi

दारोगा राय सिंह—कुछ अजीब-सा नाम है न?—इसीलिए वे अपने को डी.आर. सिंह या सिंह साहब कहलाना पसन्द करते हैं। सिंह साहब आज अपनी दोनों लड़कियों के साथ आए थे। विभा सिंह और आशा सिंह। लड़कियाँ दोनों देखने में अच्छी हैं। पर ख़ूबसूरत नहीं कही जा सकतीं। शायद उम्र बड़ी हो गई है, इसलिए नहीं लगतीं। छोटी—आशा—का चेहरा तो बड़ी से भी ज़्यादा पक गया है। आँखें काफ़ी बड़ी-बड़ी हैं उसकी, हैरानी से देखती है तो और भी बड़ी लगती हैं। मगर गालों की खाल में काफ़ी जर्दी और फीकापन आ गया है—एक तरह का बासीपन—हालाँकि उम्र उसकी सत्ताईस से ज़्यादा नहीं है। वह उन लड़कियों में से हैं जिनका कँवारापन बीस-बाईस के बाद बुरी तरह बाहर उघड़ने लगता है। या यह कँवारापन न होकर कुछ और ही है। सिंह साहब के नाम के साथ जो क़िस्से जुड़े हैं, उनमें एक इन लड़कियों को लेकर भी हैं। पर लड़कियाँ जितनी गम्भीर हैं, ख़ास तौर से विभा, उससे विश्वास नहीं होता उस बात पर। विभा एक बार किसी स्कूल में पढ़ा भी चुकी है, पर ज़्यादा दिन नहीं। बता रही थी कि सिंह साहब के कहने से उसने छोड़ दिया था। सिंह साहब को पसन्द नहीं कि उनकी लड़कियाँ कहीं नौकरी करें।

सिंह साहब बड़े बाऊजी से मिलने आए थे। उनकी वे बहुत कद्र करते हैं। कई बार गाड़ी भेजकर उन्हें अपनी कोठी पर बुला लेते हैं, कई बार खुद चले आते हैं। ख़ास तौर से जब उन्हें किसी राजनीतिक मसले पर उनसे राय लेनी होती है। बड़े बाऊजी अक्सर उनकी गुत्थियाँ सुलझा देते हैं। पाँच साल तक प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुकने के कारण वे यहाँ के उतार-चढ़ावों को सिंह साहब से कहीं ज़्यादा समझते हैं। दूसरे उन लोगों की कमज़ोरियों को भी अच्छी तरह जानते हैं जो सिंह साहब के दिमाग़ पर हौवा बनकर छाई रहती हैं। सिंह साहब दिल के मरीज हैं। ज़रा भी कोई बात इधर-उधर हो, तो उनकी चीफ कमिश्नर की कुर्सी डोलने लगती है। कहते हैं कि वे किसी भी कीमत पर शांति बनाए रखना चाहते हैं। पर इधर आकर कीमतें उनके बस से बाहर होती जा रही हैं।

सिंह साहब महिला आश्रम और कल्याण केन्द्र का निरीक्षण करने जा रहे थे। समाचार-पत्रों में कुछ रिपोर्टें छपी थीं जिन्होंने उन्हें परेशान कर रखा था। वे चाहते थे कि बड़े बाऊजी उनके साथ चलें। पर बाऊजी ने इस बहाने टाल दिया कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है। कहा, मुन्नी साथ चली जाएगी। सिंह साहब चुप रहे। मैंने भी सोचा कि मेरे जाने से बाऊजी का जाना बच सकता है, तो कोई हर्ज़ नहीं।

महिला आश्रम तो मैं पहले भी कई बार जा चुकी हूँ—मिस खोसला के साथ—पर कल्याण केन्द्र आज मैंने पहली बार देखा। अन्दर दाखिल होते ही बरामदे में दस्तकारियों की नुमाइश-सी लगी थी—मेरा ख़याल है ख़ास तौर से सिंह साहब के

Hindi Premi

लिए लगाई गई थी। दस्तकारी के लिए कुछ नमूने काफ़ी अच्छे थे, मगर केन्द्र की संचालिका मुझे कुछ अजीब-सी लगी। उड़े-उड़े बाल, बार-बार कन्धे से सरक जाता साड़ी का पल्लू और दिखावे की व्यस्तता। उम्र उसकी चालीस से कम नहीं थी, मगर वह इधर-उधर जाती-आती अट्ठारह-उन्नीस की लड़कियों की तरह। साड़ी उसने नए ढंग से काफ़ी कसकर नाभि से नीचे बाँध रखी थी जिससे ब्लाउज़ के ऊपर नीचे गोरे मांस की रोयेंदार गद्दियाँ सिर टिका लेने का निमन्त्रण देती-सी जान पड़ती थीं। बरामदा पार करके हम लोगों ने सब क्लासों का चक्कर लगाया। हर क्लास में जो लड़कियाँ दिखीं, वे पन्द्रह और उन्नीस के बीच की होंगी। केन्द्र संचालिका को वे बीजी कहकर बुलाती थीं। उनसे बात करते हुए बीजी की उम्र चालीस से भी सवाई हो जाती थी, मगर सिंह साहब की तरफ मुड़ते ही एकाकए तीन-चौथाई से कम होने लगती थी। "यहाँ सिर्फ़, वही लड़कियाँ लाई जाती हैं जिनका अपना कोई घर-बार नहीं है", वे कह रही थीं। "या वे जो किन्हीं कारणों से अपने रिश्तेदारों के साथ नहीं रहना चाहतीं, या फिर रिश्तेदार उन्हें अपने साथ नहीं रखना चाहते। एक बार कोई लड़की घर छोड़कर भाग-वाग जाती है, तो आप जानते ही हैं कि फिर क्या-क्या गुजरती है उसके साथ। हम यहाँ इन्हें नए सिरे से जीने की शिक्षा देते हैं और कोशिश करते हैं कि जल्दी से जल्दी इन्हें किसी-न-किसी तरह बसा दिया जाए। जब से मैंने चार्ज सँभाला है, कोई लड़की एक साल से ज़्यादा यहाँ नहीं रही।" सिंह साहब 'हूँ हूँ' करके मुसकराते और सिर हिलाते जा रहे थे। आशा और विभा की दिलचस्पी लड़कियों से ज़्यादा दीवारों को देखने में थी। वे या तो बुरी तरह ऊब रही थीं, या कोशिश करके अपने को हँसने से रोक रही थीं। बीच-बीच में वे आँख के इशारे से कुछ बात कर लेती थीं जिसे सिर्फ़ वे दोनों ही समझ सकती थीं। आशा तो कभी मुसकरा भी देती थी, पर विभा के चेहरे की निश्चलता में कोई अन्तर नहीं आता था। "मैं यही कोश्शि करती हूँ कि केन्द्र को ये सब अपना घर मानकर रहें। इसलिए सबसे रसोई में साथ काम करवाती हूँ। जो पन्द्रह रुपए ज़ेब-ख़र्च के लिए दिए जाते हैं, उनसे ऐसी चीज़ें खरीदवाती हूँ जो बाद में इनके काम आएँ। जहाँ तक इनके लिए लड़के ढूँढ़ने का सवाल है...।" लड़कियों के चेहरे काफ़ी सहमे हुए थे— जाने वे रोज़ ही ऐसे रहते थे या हम लोगों के आने की वजह से ऐसे हो रहे थे। मैंने उनमें से दो-एक से बात करनी चाही, तो मुझे उत्तर उनकी आँखों की हलकी चमक से ही मिला। वे बात न करना चाहती हों, ऐसा नहीं था। मगर कहीं कुछ अटकाव था जो उन्हें हलकी खुश्क मुसकराहट से आगे नहीं बढ़ने देता था। मेरा मन था कि कुछ देर और वहाँ रुकूँ, मगर मिस्टर सिंह का इशारा पाकर हमें जल्दी वहाँ से चल देना पड़ा।

Hindi Premi

अगले दिन शान्ति देवी को बीजी के साथ सेक्रेटेरियट जाना था। जाते हुए वे बड़े बाऊजी से कुछ बात करने हमारे यहाँ आईं, और मुझे जबर्दस्ती घसीटकर अपने साथ ले गईं। वहाँ वे जितनी देर बीजी के पास बैठीं, पॉलिटिक्स की ही बातें करती रहीं। उनकी पॉलिटिक्स में सबसे बड़ा नाम था सावित्री देवी एम.एल.ए. का जो उनकी नज़र में एम.एल.ए. तो क्या, किसी हॉस्टल की माई लगने के लायक भी नहीं थी। दूसरा नाम था सुभाष का जिसकी वजह से सावित्री देवी इतनी ऊँची चढ़ गई थी। मैं उन लोगों को बातें करते छोड़कर साथ के कमरे में चली गई। वहाँ मिसेज़ सूंरी और कान्ता मल्होत्रा काम कर रही थीं।

Hindi Premi

भूख

उस दिन पाली ने कहा था कि जब दिमाग़ बहुत उलझने लगे, तो आदमी को डायरी लिखनी चाहिए। यह शायद इसलिए भी कहा हो उसने कि खुद देर-देर मेरी बातें सुनने से बचना चाहता हो। कुछ दिनों से मुझे उसकी आँखों में एक अजीब-सी छाया नज़र आने लगी है। पता नहीं वह उदासी है या ऊब या कुछ और। कहता है, इन दिनों बहुत काम है उसके पास। बात करते हुए लगता है कि किसी तरह वक़्त निकाल रहा है। मन में यही है कि कब उससे विदा ली जाए और वह दरवाज़ा बन्द करके अकेला हो जाए। मुझे कई बार अफसोस भी होता है उसके यहाँ जाने के लिए। जाते हुए जितना उत्साह होता है, लौटते वक़्त उतनी ही पस्ती महसूस होती है अपने अन्दर। कैसे एक आदमी मिनटों में इतना बदल जाता है? अभी मुझसे लिपटकर मुँह से पागलों जैसी आवाज़ें निकाल रहा होगा और अभी तौलिया बाथरूम में फेंककर इस तरह बाहर निकलेगा जैसे मुरदा फूँककर श्मशान से चला आ रहा हो। कई बार मन होता है उससे पूछूँ, पर न जाने क्यों यह बात ज़बान पर नहीं ला पाती। डर लगता है कि सिलसिला बिलकुल टूट ही न जाए। कितनी बार तय किया है कि जब तक वह खुद नहीं बुलाएगा, अब उसके यहाँ नहीं जाऊँगी। लेकिन यह निश्चय दस दिन से ज़्यादा नहीं चलता। उसे भी शायद इसीलिए इतना अहंकार है कि आख़िर तो यह अपने-आप आ ही जाती है। ठीक उसके बताए वक़्त पर—यानी दिन में तीन और चार के बीच। और बिलकुल उसी की शर्तों पर—यानी कि खिड़कियों के परदे अगर खुले हों, तो उसका मतलब है कि उसके यहाँ कोई आए हुए हैं, इसलिए दरवाज़े पर दस्तक भी नहीं देती है।

वह शायद समझता है कि केवल शरीर की ललक मुझे उसके यहाँ ले जाती है। इसलिए आधा घंटा उसके साथ बिताकर चुपचाप लौट आने में मुझे आपत्ति नहीं होनी चाहिए। लेकिन मुझे आपत्ति होती है क्योंकि मेरे अन्दर की भूख कुछ दूसरी है। मुझे लगता है कि कोई चीज़ है जो उसके पास होनी चाहिए, मेरे पास होनी चाहिए, पर उसके पास भी नहीं है, मेरे पास भी नहीं है। अपने घर में और घर के बाहर जितने लोगों को मैं जानती हूँ, उनमें से किसी के भी पास मुझे वह चीज़ नज़र नहीं आती। सब लोग जैसे उसे खोजने के लिए बेचैन हैं, उसे पाने के लिए छटपटाते हैं, पर वह चीज़ हमेशा उनकी पहुँच से बाहर बनी रहती है। क्यों मुझे ऐसा लगता है, मैं नहीं कह सकती। लेकिन

Hindi Premi

लगता है हर किसी को देखकर। उसे, अपने को, बाऊजी को, बड़े बाऊजी को, अम्मा को, बिशनी को, और जिस किसी से भी थोड़ा-बहुत परिचय है उसे। जैसे सब लोग दीवारें नोंच रहे हैं कि किसी तरह वह चीज़ उन्हें हासिल हो जाए। सबके अन्दर एक-सा गुबार है और एक-सी शिकायत। और उस चीज़ के न मिलने की वजह से ही हर आदमी किसी तरह अपना वक़्त बहला रहा है। यह काम, वह काम, पता नहीं क्या-क्या काम। बातें, दौड़-धूप, सुबह और शाम के बीच की खाना-पूरी। मेरे अन्दर बार-बार उमड़ता है कि किसी से इस बारे में बात करूँ। उस चीज़ को अगर पाया नहीं जा सकता, तो उसके अभाव को तो कम-से-कम छुआ ही जा सकता है। पाली के प्रति मेरे आकर्षण का कारण भी यही था कि मुझे लगता था उससे बात की जा सकती है। बड़े बाऊजी बहुत तारीफ़ किया करते थे उसके कि बहुत ब्रिलियेंट लड़का है—ग़लत शादी करके मार खा गया है, वरना...। मुझे तब बहुत हमदर्दी हुई थी उससे। उसकी पत्नी को कभी देखा नहीं, फिर भी मन में उसकी एक तसवीर बनाकर उससे दुश्मनी कर ली थी। शुरू-शुरू में पाली से कई बार कहा था कि मैं उसे देखना चाहती हूँ। ''जब आएगी यहाँ, देख लेना'', वह उड़ते ढंग से कह देता, पर कब आएगी, यह नहीं बताता था। बाद में पता चला था कि वह किसी दूसरे शहर में नौकरी करती है—किसी स्कूल में टीचर हैं। छुट्टियों में आती है, या यह उसके पास चला जाता है। या दोनों साथ पहाड़ पर हो आते हैं। एक बार मेरे ज़्यादा पूछने पर वह चिढ़ गया था। ''क्यों तुम बार-बार यह बात छेड़ देती हो? मेरे लिए जैसे चल रहा है, ठीक है।'' तब से मैंने इस बारे में बात करना छोड़ दिया था। और उसके कुछ ही दिन बाद, पहली बार, मैं अपने कपड़ों में उसकी शरीर की गन्ध लिये हुए लौटी थी। मुझे लगा था कि मेरे नाख़ूनों ने अपने सामने दीवार में एक हलका-सा सुराख़ कर लिया है जिससे शायद दीवार के पार देख सकना असम्भव नहीं रहेगा। मगर पहली से दूसरी बार के बीच ही वह सुराख़ बन्द हो गया था। पहले घंटा दो घंटे उसके पास बैठकर बात हो जाती थी, पर अब शुरुआत ही होती थी ब्लाउज़ के हुकों में उलझी उँगलियों की अटपटी खीझ से।

पता नहीं क्या हो रहा है आजकल मेरे अन्दर। एक पटाखे की रस्सी जैसे सुलग रही है, सुलग रही है, और किसी भी क्षण वह पटाखा फट जाने को है। कुछ ऐसा होने को है जिससे मैं तो एकदम बदल ही जाऊँगी, और भी साथ कुछ—आसपास की सब चीज़ें, सब लोग और के और हो जाएँगे। यह शहर जिससे मुझे इतना प्यार है, यह गली, यह घर, ये दरवाज़े, घर के लोग, आसपास के घर, आसपास के लोग—चाहती हूँ रात को सोकर सुबह उठने तक कुछ भी इस तरह न रहे। इतना बदल जाए कि जिसने कल देखा था, वह आज इसे पहचान तक न सके। सड़क पर चलते हुए मैं दुकानों, छतों और मोड़ों पर इस तरह नज़र डालती हूँ, जैसे मेरा उन्हें देखना बस आख़िरी बार का देखना हो—इसके बाद न उन्हें रहना हो, न मुझे वहाँ से गुज़रना हो।

Hindi Premi

फ़्लैश कट

...कि एक और है...कि उसके सामने दो सम्भावनाएँ हैं...ऐसा कुछ है जो बार-बार दिमाग़ में कौंध जाता है। खाना खाते हुए भी ऐसा हुआ, किताब पढ़ते हुए भी, और अब भी हुआ...दो बार...कि वह औरत है...कि उसे कुछ करना है...।

अभी-अभी एक बार शब्द आया दिमाग़ में—फ़्लैश कट। फ़्लैश कट—यह शब्द कहाँ सुना है? तारा के साथ तो इसका कोई सम्बन्ध हो नहीं सकता...हो सकता है फोटोकॉपी के साथ हो...पर शायद फोटोकॉपी के साथ भी नहीं है...।

शायद उस औरत के बारे में किसी किताब में पढ़ा है...या सिर्फ़ सोचा है...या सपना देखा है। पर किताबों में कितना कुछ पढ़ा होगा...किताबों के बाहर कितना कुछ सोचा होगा...और सपने तो रोज़ देखता हूँ, बिलानागा। सुबह उठने तक हर सपना भूल जाता हूँ और रह जाती है एक उदासी...जो जाने सपने के आने की होती है या खो जाने की...पर सुबह उठने पर सिर भारी होता है। सपने से बड़ा कोई वज़न नहीं है सिर के लिए।

वह विचार फिर कई बार कौंध गया...कि एक औरत है...अबकी बार मैं उसे पकड़ने की कोशिश करूँगा...औरत को नहीं, विचार को...लगता है कि उस औरत के मसले में कहीं एक पुरुष भी है...या शायद एक से ज़्यादा पुरुष हैं।

औरत को कुछ चुनना है...जाने क्या? एक कमरा है जिसमें वह औरत है और एक और कमरा है जिसमें एक या कई पुरुष हैं। चुनाव का अवसर...या मजबूरी... उसी कमरे की तरफ़ से है...पुरुषों के कमरे की तरफ़ से।

बीच में कुछ है...वह प्याली है क्या? दिमाग़ का डब्बा अभी बन्द है। खुलने तक तय नहीं किया जा सकता कि वह प्याली है या क्या है।

...फ़्लैश कट। औरत एक नहीं, दो हैं शायद। कि चुनाव का प्रश्न दोनों के लिए है...या दोनों के बीच में कहीं है...कि एक का चुनना दूसरी के लिए चुनाव आप कर देना या कि उसे चुनाव के बन्धन से मुक्त कर देना।

चुनाव महत्त्वपूर्ण है। इससे बहुत कुछ बन-बिगड़ सकता है। बहुत कुछ क्या सभी कुछ।

Hindi Premi

...बात ज़हर की है या डॉक्टरी की? प्याली में कुछ है जिससे पता चल सकता है।

...बाद में कुछ बदल जाता है। वह औरत कुछ स्वीकार कर लेती है, या अस्वीकार कर देती है। वह औरत नहीं है शायद। मतलब उस उम्र की नहीं है कि उसे औरत कहा जा सके।...एक लड़की की उम्र है उसकी। जिस कमरे में वह है, या रहती है, उसमें एक सलाखोंवाली खिड़की है, एक तख़्त है...और क्या है?

चुनाव जो भी होता है मर्द के हक में होता है...मतलब जैसा वह कहता है, वैसा ही होता है...वास्तव में चुनाव की स्थिति पैदा करनेवाला भी वह मर्द ही है।

...कि कुछ है जो बदल जाता है...पर यह साफ़ नहीं है कि क्या बदल जाता है और क्यों बदल जाता है...

शायद औरत औरत को चांस देती है...या चांस करने के लिए मजबूर करती है। नहीं औरत लड़की को मजबूर करती है। औरत बड़ी है, लड़की छोटी है।

Hindi Premi

परम्परावाद या परम्परा-बोध

1. परम्परा एक निर्विष्ट और निर्धारित इकाई नहीं। बदलने और विकसित होने की अनिवार्य परिस्थिति। आज का विद्रोह और विच्छेद कल के संदर्भ में परम्परा का अगला आयाम।
2. प्राप्त परम्परा को समाहित या तिरस्कृत करना सचेत प्रयास नहीं, एक अनायासता।
3. कई एक राष्ट्रीय परम्पराएँ और एक मानवीय परम्परा। विभिन्न परम्पराओं का अध्ययन सही परिप्रेक्ष्य के लिए। जिसे आप जानते नहीं, उसे आप अस्वीकार भी नहीं कर सकते।
4. इसके बाद सृजन एक अनायास प्रक्रिया, युग की परिस्थितियों द्वारा निर्धारित।
5. नाप या माप का आला लेकर बैठना संभव नहीं कि हम इतने इंच परम्परा या इतने बिंदु प्राचीन-बोध का अपनी रचना में सर्जनात्मक दृष्टि से उपयोग करेंगे। पुनरुत्थानवादी साहित्य का अधिकांश अनुकरण। शेष वह भी नहीं।
6. परम्परा का अस्वीकार। आज तक के बिंदु से अलग होने की तड़प। इस तड़प में ही वास्तविक सर्जनात्मकता।
7. परंतु हर अलगाव अंततः परम्परा द्वारा संदर्भित। कालिदास और मल्लिका।
8. इस तरह परम्परा का विरोध और निषेध करके भी उसे विकसित किया जा सकता है। बल्कि मार्ग ही यह है—क्योंकि विरोध और निषेध कोरे अज्ञान पर आश्रित एक अंधीर प्रक्रिया नहीं है। प्रक्रिया का नाम है विध्वंसकता हालाँकि उसकी भी अपनी एक अलग परम्परा है ही।

●●●

Hindi Premi

Hindi Premi

Hindi Premi

GURUKUL
Access No.
Class No.
Cat No.
Tag etc.
E.A.R.
Recomm. by
Data Ent. by
Checked

मोहन राकेश

जन्म : 8 जनवरी, 1925; जंडीवाली गली, अमृतसर।

शिक्षा : संस्कृत में शास्त्री, अंग्रेजी में बी.ए., संस्कृत और हिन्दी में एम.ए.।

आजीविका : लाहौर, मुम्बई, शिमला, जालंधर और दिल्ली में अध्यापन, सम्पादन और स्वतंत्र-लेखन।

प्रकाशन : आखिरी चट्टान तक (यात्रा वृत्तान्त); इंसान के खँडहर, नये बादल, जानवर और जानवर, एक और ज़िन्दगी, फ़ौलाद का आकाश (कहानी); अँधेरे बन्द कमरे, न आनेवाला कल, अन्तराल (उपन्यास); आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे अधूरे (नाटक); परिवेश (निबंध), मृच्छकटिक, शाकुंतल (नाट्यानुवाद)।

पुरस्कार/सम्मान : सर्वश्रेष्ठ नाटक और सर्वश्रेष्ठ नाटककार के संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, नेहरू फ़ैलोशिप, फ़िल्म वित्त निगम का निदेशकत्व, फ़िल्म सेंसर बोर्ड के सदस्य।

निधन : 3 दिसम्बर, 1972, नई दिल्ली।

जयदेव तनेजा

जन्म : 15 मार्च, 1943, ओकाड़ा (अविभाजित भारतवर्ष)।

शिक्षा : एम.लिट्. पी-एच.डी.।

आजीविका : अध्यापन एवं पत्रकारिता।

प्रकाशन : हिन्दी/भारतीय रंगकर्म पर 26 पुस्तकें प्रकाशित। मोहन राकेश पर—लहरों के राजहंस : विविध आयाम, मोहन राकेश : रंग शिल्प और प्रदर्शन (समीक्षा एवं शोध), राकेश और परिवेश : पत्रों में, पुनश्चः, एकत्र, नाट्य-विमर्श, मेरे साक्षात्कार, पूर्वाभ्यास (सम्पादन)।

पुरस्कार/सम्मान : दिल्ली नाट्य संघ, साहित्य कला परिषद्, हिन्दी अकादमी एवं केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा पुरस्कृत/सम्मानित।

संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

Hindi Premi

मोहन राकेश
रचनावली

खंड 1
अंतरंग

खंड 2
पहले पहल

खंड 3
नाटक

खंड 4
एकांकी

खंड 5
कहानियाँ

खंड 6
उपन्यास

खंड 7
उपन्यास

खंड 8
निबंध-आलोचना

खंड 9
विविध विधाएँ

खंड 10
पत्र

खंड 11
नाट्यानुवाद

खंड 12
कथानुवाद

खंड 13
कथानुवाद

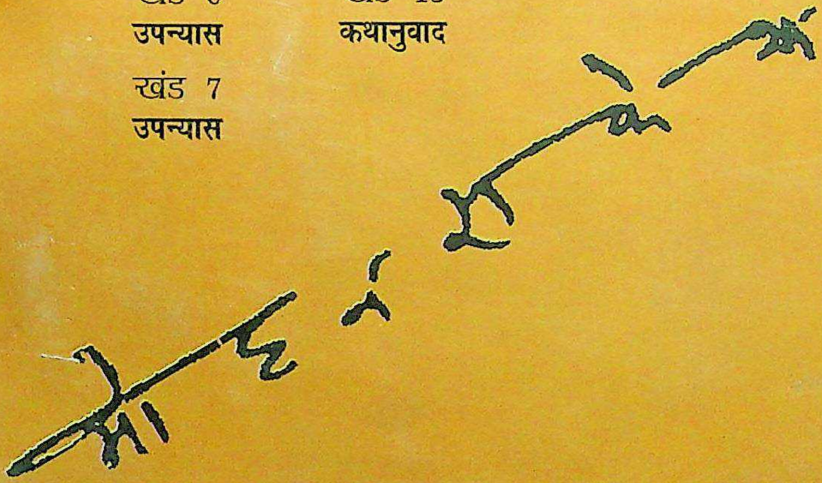

ISBN : 978-81-8361-427-6
₹ 10400 (तेरह खंड)

राधाकृष्ण
नयी दिल्ली पटना इलाहाबाद

Hindi Premi